श्रीगणेशाय नमः

श्लोक—कृते यस्मै प्रणामेऽन्य देवेभ्यः सकृतो भवेत् ।
सर्वेभ्यः फलतः सम्यक् तं नौमि गणनायकम् ॥१॥
सूत्रभाष्यकृतौ नत्वा . नत्वा तदनुसारिणः ।
तद्वाक्यान्यनुसरति कश्चित् सांख्यैककौतुकः ॥२॥

अर्थ यह—जाके नमस्कार तैं अन्य सकल देवनं कूं फल तैं नमस्कार होय जावे है, ता गणनायक कूं नमस्कार है। कोई विचाराभिलापी सूत्रकार भाष्यकार कूं औ तिन के अनुसारि पूर्वाचार्यन कूं नमस्कार करके तिन के वाक्यन के अनुसार भाषाग्रंथ कूं रचे है।

अन्य श्लोक—हित्वा हेयमुपादेयमुपादाय विचारतः।
सर्वः सिद्धान्तलेशस्य इहार्थः प्रकटीकृतः।१
प्राचीनसंमतमिदं व्यवहारभूमौ,
सिद्धांतलेशगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
किंचित्स्वभाषितयुतं स्वहिताय कश्चित्,
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ॥२॥

श्लोकन का अर्थ स्पष्ट है यातैं लिखा नहि ।

अथ ग्रंथारंभः

प्रथमपरिच्छेदः।

जो पुरुष इस जन्म मैं अथवा जन्मांतर मैं निष्काम कर्मन के अनुष्ठान तैं शुद्ध अन्तःकरण है, याहि तैं साधन-चतुष्टयसंपन्न हुवा दृढ विविदिषा तैं आचार्य की सेवा मैं तत्पर है ताकां 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या श्रवणविधि मैं अधिकार है यामैं विवाद नहि, साधन-चतुष्टयसंपन्नजिज्ञासु ब्रह्मसाक्षात्कार वास्ते वेदांतविचार करै, यह श्रवणविधिवाक्य का अर्थ है, पुरुष का प्रवर्तक वचनविधि कहिये है, श्रवणविषयक जो विधि कहिये पुरुष का प्रवर्तक वचन सो श्रवणविधि कहिये है। या स्थान मैं यह जिज्ञासा होवै है—श्रवणविधि अपूर्व-विधि है अथवा नियमविधि है किंवा परिसंख्याविधि है, तहां प्रकटार्थकारादिक यह कहे हैं—श्रवणविधि अपूर्व-विधि है। नियमविधि वा परिसंख्याविधि नहि। काहे तैं—'प्रमाणांतरेणाप्राप्तार्थबोधको विधिरपूर्वविधिः'—अर्थ यह—प्रमाणांतर तैं अप्राप्त अर्थ का बोधकविधि अपूर्वविधि कहिये है। जैसे 'व्रीहीन्प्रोक्षति' यह विधि है इहां व्रीहों का प्रोक्षण प्रमाणांतर तैं अप्राप्त है ताका बोधक होने तैं 'व्रीहीन्प्रोक्षति' यह अपूर्वविधि है। तैसे वेदांत-विचाररूपश्रवण मैं ब्रह्मसाक्षात्कार की साधनता प्रमाणांतर

तैं प्राप्त नहि । यातैं अप्राप्त साधनता को बोधक होने तैं श्रवणविधि अपूर्वविधि संभवै है । जो वेदांतश्रवण होतैं ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है ताके नहि होतैं होवै नहि । या अन्वयव्यतिरेक तैं वेदांतश्रवण मै ब्रह्मज्ञानहेतुता की प्राप्ति कहैं तौ संभवै नहि, काहे तैं किसी कूं अनेकवार किये श्रवण तैं बी ज्ञान होवै नहि-यातैं अन्वयव्यभिचार है श्रवण के होतैं ज्ञान नहि होवै सो या स्थान मै अन्वय-व्यभिचार कहिये हैं। औ वामदेव कूं विना श्रवण तैं गर्भ मै हि ज्ञान हुवा है यातैं व्यतिरेकव्यभिचार है श्रवण के नहि होतैं ज्ञान होवै सो व्यतिरेकव्यभिचार कहिये है इस रीति सै अन्वयव्यतिरेकव्यभिचार होने तैं अन्वय-व्यतिरेक तैं वेदांतश्रवण मै ब्रह्मज्ञान की हेतुता प्राप्त होय सके नहि। जो व्यभिचार होने तैं अन्वयव्यतिरेक सै यद्यपि हेतुता की प्राप्ति नहि संभवै है परंतु प्रकारांतर तैं संभवै है तथा हि—गांधर्वशास्त्र का श्रवण अन्वय-व्यतिरेक तैं षड्जादिस्वरन के साक्षात्कार का हेतु प्रसिद्ध है औ सामान्यरूप तैं कार्यकारणभाव का संभव होवै तहां विशेपरूप तैं कार्यकारणभाव मै गौरव माने हैं यातैं श्रोतव्यार्थ विशेपरूप स्वरन के साक्षात्कार मै गांधर्वशास्त्र का विचाररूप श्रवण विशेष कारण है। इस रीति सै विशेपरूप तैं कार्यकारणभाव माने गौरव होवैगा। श्रोतव्यार्थ के साक्षात्कारमात्र मै श्रवणमात्र हेतु है इस रीति सै सामान्य-

रूप तैं कार्यकारणभाव मानै लाघव है यातैं सामान्यरूप तैं हि कार्यकारणभाव मान्या चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा—पूर्व उक्त अन्वयव्यतिरेकव्यभिचार तैं ब्रह्मसाक्षात्कार मै वेदांतश्रवण कारण है इस रीति से विशेषरूप से तौ कार्य कारणभाव का ग्रहण यद्यपि नहि बी संभवै है परंतु सामान्य-रूप तैं संभवै है। काहे तैं जैसे षड्जादिक स्वर श्रोतव्य अर्थ है ताका साक्षात्कार श्रोतव्य अर्थ का साक्षात्कार है। गांधर्वशास्त्र का विचार श्रवण है। तैसे ब्रह्म श्रोतव्य अर्थ है ताका साक्षात्कार श्रोतव्य अर्थ का साक्षात्कार है। वेदांत-विचार श्रवण है यातैं श्रोतव्य अर्थ के साक्षात्कारमात्र मै श्रवणमात्र हेतु है इस रीति से सामान्य नियम तैं वेदांत-श्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार हेतुता की प्राप्ति कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं धर्माधर्मादिक श्रोतव्य अर्थ है औ कर्म-कांडादिकन का विचार श्रवण है तौ बी कर्म कांडादिकन के श्रवण तै धर्माधर्मादिकन का साक्षात्कार होवै नहि। यातैं गांधर्वशास्त्र के श्रवण मै षड्जादि स्वरन के साक्षात्कार की हेतुता तौ यद्यपि अन्वयव्यतिरेक तैं सिद्ध है। तथापि व्यभिचार होने तैं सामान्य नियम तैं बी वेदांतश्रवण मैं ब्रह्मसाक्षात्कार हेतुता की प्राप्ति संभवै नहि। इस रीति से किसी प्रकार तैं बी वेदांतश्रवण मै ब्रह्म-साक्षात्कार की हेतुता प्राप्त नहि। यातैं अप्राप्तहेतुता का बोधक श्रवणविधि अपूर्वविधि हि मान्या चाहिये नियम-

विधि वा परिसंख्याविधि संभवै नहि। इस रीति सै प्रकटार्थ-कारादिक श्रवणविधि अपूर्वविधि माने हैं। औ विवरण (२ के अनुसारी तौ यह कहे हैं—अप्राप्त अर्थ मै अपूर्वविधि होवै है वेदांतश्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता अप्राप्त नहि यातैं अपूर्वविधि संभवै नहि। तथा हि—वेदांतवाक्य ब्रह्मसाक्षात्कार के जनक हैं या अर्थ की सिद्धि वास्ते वेदांतग्रंथन मै शाब्द अपरोक्षवाद का निरूपण है या ग्रंथ मै बी तृतीयपरिच्छेद मै ताका निरूपण करैंगे तामै अपरोक्षवस्तु गोचरप्रमाण वस्तु साक्षात्कार का हेतु सिद्ध है। इंद्रियरूप प्रमाण हि स्वविषय के साक्षात्कार का हेतु होवै यह नियम नहि। औ विचार विशिष्ट वेदांतरूप श्रवण का विषय ब्रह्मनित्य अपरोक्ष है। काहे तैं स्वव्यवहारानुकुल चेतन तैं अभिन्नवस्तु अपरोक्ष कहिये है। अपरोक्षवस्तु का ज्ञान अपरोक्ष कहिये है। इंद्रियजन्यज्ञान हि अपरोक्ष होवै यह नियम नहि। ब्रह्म के व्यवहारानुकूल साक्षिचेतन है तासै अभिन्न होने तैं ब्रह्म सदा अपरोक्ष है यातैं अपरोक्ष ब्रह्मगोचर वेदांतश्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता विधि सै विना बी प्राप्त होने तैं अपूर्वविधि संभवै नहि। या स्थान मै अपूर्वविधिवादी की यह शंका है—शाब्द अपरोक्षवाद मै अपरोक्ष वस्तुविषयक प्रमाण स्वविषय के साक्षात्कार का हेतु है। यह सामान्य नियम सिद्ध किया है। तासै वेदांत-वाक्यन मै बी स्वविषय नित्य अपरोक्ष ब्रह्म के अपरोक्ष-

मात्र की हेतुता हि प्राप्त होवै है। दृढनिश्चयरूप ब्रह्म-साक्षात्कार की हेतुता प्राप्त होवै नहि काहे तैं विचारविशिष्ट वेदांतवाक्यन तैं हि दृढ निश्चयरूप ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है केवल वाक्य तैं होवै नहि। जो केवल वाक्य तैं बी दृढ निश्चयरूप ब्रह्मसाक्षात्कार माने तौ विचार तैं प्रथम बी हुवा चाहिये। जो वाक्यजन्य अपरोक्षमात्र तैं हि अज्ञान निवृत्तिरूप फल संभवै है यातैं दृढ निश्चयरूप साक्षात्कार की अनपेक्षा कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं उपनिषदन मैं ब्रह्म के उपदेश प्रसंग मैं संशय की निवृत्तिपर्यंत पुनः पुनः प्रश्न उत्तर देखिये हैं। औ किसी कूं अनेकवार ब्रह्मश्रवण हुये बी दृढता के अभाव तैं ज्ञान का फल होवै नहि। तैसे श्रुति मैं ज्ञान की दृढता वास्ते श्रवण मननादिकन का विधान किया है। औ 'वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः' इत्यादिक श्रुतिवाक्यन तैं बी दृढ निश्चयरूप ब्रह्म-साक्षात्कार हि फल का हेतु सिद्ध होवै है। अदृढ साक्षात्कार तैं फल की प्राप्ति होवै नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—ब्रह्म मैं प्रमाणरूप वेदांतवाक्यन मैं आपातदर्शन साधारण ब्रह्म-साक्षात्कारमात्र की हेतुता तौ शाब्द अपरोक्षवाद उक्त रीति सैं प्राप्त है। परंतु विचाररूप श्रवण मैं दृढ ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता विधि सै विना प्राप्त नहि। यातैं अपूर्वविधि मान्या चाहिये। समाधान यह है—ब्रह्म मैं प्रमाणरूप वेदांत-वाक्यन मैं ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता शाब्द अपरोक्षवाद

उक्त रीति से प्राप्त है। औ विचारमात्र मै विचारणीय वस्तु मात्र के निर्णय की हेतुता अन्वयव्यतिरेक तैं प्राप्त है, उभयविध कार्यकारणभाव के मेलन तैं विचारविशिष्ट वेदांतशब्द के ज्ञानरूप श्रवण मै दृढ ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता विधि से विना बी प्राप्त होय सके है यातैं अपूर्वविधि संभवै नहि। जो पूर्व अन्वयव्यतिरेकव्यभिचार तैं वेदांतश्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार हेतुता की अप्राप्ति कहि सो संभवै नहि। काहे तैं उक्त व्यभिचार तैं श्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार हेतुता का अभाव माने तौ श्रवणविधि बी हेतुता का बोधक नहि होवैगा। यातैं अपूर्वविधि का बी असंभव होने तैं यह मान्या चाहिये। एकाग्रचित्तसहित श्रवण तैं ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। जहां अनेकवार किये श्रवण तैं ज्ञान नहि होवै तहां एकाग्रतारूप सहकारि कारण का अभाव है। यातैं ब्रह्मसाक्षात्कार की सामग्री का अभाव होने तैं अन्वयव्यभिचार संभवै नहि। काहे तैं ब्रह्मसाक्षात्कार की सामग्री होतैं साक्षात्कार नहि होवै तौ अन्वयव्यभिचार होवै। औ वामदेव कूं जन्मांतर के श्रवण तैं ज्ञान हुवा है यातैं व्यतिरेकव्यभिचार बी संभवै नहि। काहे तैं श्रवण विना ज्ञान होवै तौ व्यतिरेकव्यभिचार होवै। इस रीति से विधि विना हि श्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता प्राप्त होने तैं श्रवणविधि अपूर्वविधि संभवै नहि। किंतु नियमविधि मान्या चाहिये। काहे तैं 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' 'आवृत्तिरस-

कृदुपदेशात्' या सूत्र के व्याख्यान मै भाष्यकार ने यह कहा है—जैसे तुपनिवृत्तिअवघात का दृष्ट फल है ताकी सिद्धिपर्यंत अवघात की आवृत्ति होवै है। तैसे आत्म-साक्षात्कार श्रवणादिकन का दृष्ट फल है ताकी सिद्धिपर्यंत श्रवणादिकन की आवृत्ति करी चाहिये। इस रीति सै भाष्यकार ने कहा है यातैं यह जान्या जावै है—अवघात की न्याई श्रवणादिकन मै बी नियमविधि हि है अपूर्वविधि नहि। तैत्तिरीय उपनिषत् मै वरुण ने भृगु कूं ब्रह्मज्ञान वास्ते वारंवार विचार का उपदेश किया है। तैसे छांदोग्य उपनिषत् के षष्ठ अध्याय मै श्वेतकेतु कूं उद्दालक ने वारंवार विचारपूर्वक 'तत्त्वमसि' यह उपदेश किया है यातैं श्रवणादिकन की आवृत्ति करी चाहिये। यह सूत्र का अर्थ है। इस रीति सै श्रवण मै ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुता विधि सै विना बी प्राप्त है। यातैं अपूर्वविधि का असंभव होने तैं श्रवणविधि नियमविधि हि मान्या चाहिये। तहां 'पक्षप्राप्तस्याप्राप्तांशपूरकोविधिर्नियमविधिः' अर्थ यह—पक्षप्राप्त अर्थ के अप्राप्त अंश का पूरकविधि नियमविधि कहिये है। जैसे 'व्रीहीनवहन्यात्' यह विधि है इहां तुपनिवृत्ति मै अन्वय-व्यतिरेक तैं कारण अवघात प्राप्त है। औ नखविदलन बी पक्ष मै प्राप्त है। यातैं पक्षप्राप्त अवघात के अप्राप्त अंश का पूरक होने तैं 'व्रीहीनवहन्यात्' यह नियमविधि है। तैसे ब्रह्मसाक्षात्कार मै पूर्व उक्त रीति सै कारण श्रवण प्राप्त-

है औ वक्ष्यमाण रीति सै साधनांतर बी पक्ष मै प्राप्त हैं। यातैं पक्षप्राप्त श्रवण के अप्राप्त अंश का पूरक होने तैं श्रवणविधि बी नियमविधि संभवै है। पक्ष मै प्राप्त साधनांतर दिखावे हैं। रत्नादिक वस्तु कूं नेत्र सै देखे बी ताके सूक्ष्मतत्त्व का ग्रहण होवै नहि। अन्य पुरुष ताका उपदेश करै तब ताके ग्रहण वास्ते नेत्र के व्यापार मै हि पुरुष सावधान हुवा प्रवृत्त होवै है व्यापारांतर मै प्रवृत्त होवै नहि। तैसे मन सै अहंरूप तैं ग्रहण किये आत्मा मै वेदांतवाक्य ब्रह्मरूपता का उपदेश करे हैं। ताकूं सुन के ताके ग्रहण वास्ते सावधान हुवा अधिकारी कदाचित् मनोव्यापार मै हि प्रवृत्त होवैगा। वेदांतश्रवण मै नहि प्रवृत्त होवैगा। यातैं विचारनिरपेक्ष मनोव्यापार, पक्ष मै प्राप्त साधनांतर है। ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै नियमविधि संभवै है। यद्यपि 'यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह' यह श्रुति शब्द की न्यांई मनकी विषयता का बी ब्रह्म मै निषेध करे है। यातैं ब्रह्मज्ञान वास्ते विचार निरपेक्ष मनोव्यापार मै अधिकारी की प्रवृत्ति होवैगी यह कहना संभवे नहि। तथापि 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इत्यादिक श्रुति वाक्यन मै ब्रह्म मनका विषय कहा है, यातैं श्रुति वाक्यनका परस्पर विरोध हुये, 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' या श्रुति मै मनः पदवाच्य बुद्धि का एकाग्रता विशेषण कहा है। यातैं विषयता निषेधक श्रुति का विक्षिप्त मन की विषयता के निषेध मै तात्पर्य है,

एकाग्रमन की विषयता निषेध मैं तात्पर्य नहि। यातैं श्रुति वाक्यन् का विरोध नहि। इसरीति सैं श्रुति वाक्यन की व्यवस्था संभवै है, यातैं विचारनिरपेक्ष मनोव्यापार मैं प्रवृत्ति दुर्वार होने तैं ताकी निवृत्ति वास्ते श्रवण मैं नियम-विधि संभवै है। यद्यपि 'औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' या श्रुति मैं ब्रह्म कूं उपनिषद वेद्य कहा है। यातैं निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कार मैं तौ मनको करणता संभवै नहि। औ सोपाधिक जीव का साक्षात्कार नित्य साक्षिरूप है। ताके साक्षात्कार मैं बी मन करण नहि संभवै है। जो 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' इत्यादि श्रुति तैं मन को करण सिद्ध करैं तौ संभवै नहि। काहे तैं 'यन्मनसानमनु-ते येनाहुर्मनोमतं' अर्थ यह—जिस ब्रह्म कूं मन करके लोक नहि जाने हैं, जिस ब्रह्म चेतन तैं मनका प्रकाश विद्वान् कहे हैं या श्रुति मैं मनोमात्र की करणता का ब्रह्म मैं निषेध है। केवल विक्षिप्त मन की हि करणता का निषेध नहि। ताका विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—'मनसैवानुद्रष्टव्यं' इत्यादि श्रुतिगत तृतीया विभक्ति का वृत्तिरूप साक्षात्कार का मन करण है यह अर्थ नहि। किंतु वाक्यजन्य वृत्तिरूप साक्षात्कार का उपादानरूप साधन मन है यह ताका अर्थ है। यातैं तासैं बी मन करण सिद्ध होवै नहि। इसरीति सैं मन कूं करणता के अभाव तैं मनोव्यापार, पक्ष मैं प्राप्त साधनांतर

है यह कहना संभवै नहि। याहि तैं ताकी निवृत्ति वास्ते श्रवण मै नियमविधि कहना बी नहि संभवै है। तथापि द्वैतशास्त्रका विचाररूप श्रवण पक्ष मै प्राप्त साधनांतर संभवै है ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै नियमाविधि संभवै है। तथाहि—'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिक श्रुति वाक्यन तैं आत्मज्ञान मोक्ष का साधन प्रतीत होवै है, विचार विना आत्मतत्त्व का ज्ञान संभवै नहि। काहे तैं आत्मतत्त्व के प्रतिपादक वेदांतवाक्य हैं तिनका नानाविध व्याख्यानवादी करे हैं। याहि तैं वेदांतवाक्यन के तात्पर्य मै भ्रम संशयादिक होवै हैं। तात्पर्य मै भ्रम संशयादिक आत्मज्ञान के प्रतिबंधक हैं तिनकी निवृत्ति वास्ते वेदांतविचार मै प्रवृत्त हुवा पुरुष जैसे ब्रह्म मीमांसाशास्त्र के विचार मै प्रवृत्त होवै है तैसे न्यायादिशास्त्र विचार मै बी कदाचित् प्रवृत्त होवैगा। काहे तैं न्यायादि शास्त्र विचार मै बी वेदांतविचार का अभिमानवादी करे हैं। यातैं न्यायादि शास्त्र विचार मै ज्ञानार्थी की कदाचित् प्रवृत्ति संभवै है। इसरीति सै न्यायादि द्वैतशास्त्रका विचाररूप श्रवण पक्ष मै प्राप्त साधनांतर है ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै नियमविधि संभवै है। यद्यपि न्यायादि तर्क शास्त्रगत आत्मविचार अद्वितीय आत्मविचाररूप नहि किंतु भिन्नार्थ विचाररूप है याहि तैं अद्वितीय आत्मप्रतिपादक वेदांतवाक्यन के तात्पर्य मै

भ्रमादिकन का निवर्तक वी संभवै नहि उलटा वेदांत तात्पर्य मै भ्रमादिकन का हेतु हि भिन्नात्मशास्त्र का विचार हैं। तामैं ज्ञानार्थी की प्रवृत्ति संभवै नहि। तथापि जीव भिन्न परमात्मज्ञान मोक्ष का साधन है। या भ्रम तैं न्यायादिशास्त्र विचार मै बी कदाचित् प्रवृत्ति संभवै है। यद्यपि 'अहं ब्रह्मास्मि' 'ब्रह्मविदाप्नोति-परम्' इत्यादिक श्रुति वाक्यन तैं जीव सै अभिन्न परमात्मज्ञान मोक्ष का साधन प्रतीत होवै है यातैं न्यायादिशास्त्रविचार मै भ्रममूलक वी प्रवृत्ति संभवै नहि। तथापि श्रुति वाक्यन मै कहुं आपातदृष्टि तैं भेदज्ञान वी मोक्ष का साधन प्रतीत होवै है। यातैं भिन्नात्म प्रतिपादक शास्त्रके विचार मै भ्रममूलक प्रवृत्ति संभवै है ताकी निवृत्ति वास्ते अद्वितीय आत्मप्रतिपादक वेदांतवाक्यन का विचार हि मुमुक्षु करै। इसरीति सै वेदांतश्रवण मै नियमविधि संभवै है। यद्यपि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' यह विचारविधायक वाक्य है तामै आत्मविचार काहि विधान प्रतीत होवै है, अद्वितीय आत्मविचार का विधान प्रतीत होवै नहि। यातैं विचारविषयक नियमविधि तैं भिन्नात्मविचार की निवृत्ति संभवै नहि। तथापि श्रवणविधि वाक्य के प्रकरण कूं विचारैं तौ वाक्यगत आत्मपद अद्वितीय आत्मपर सिद्ध होवै है। यातैं श्रवणविषयक नियमविधि तैं भिन्नात्म विचार की निवृत्ति संभवै है।

यद्यपि वस्तुतः साधनांतर पक्ष मैं प्राप्त होवै ताकी निवृत्ति वास्ते नियमविधि होवै है। व्यवहारदशा मैं जाकी साधनता का अभाव निश्चय नहि होवै सो वस्तुतः साधन कहिये है। तुष निवृत्ति मैं अवघात वस्तुतः साधन है, औं नखविदलन बी वस्तुतः साधन है यातैं नखविदलन की निवृत्ति वास्ते अवघात मैं नियमविधि होवै है। ब्रह्मात्म-साक्षात्कार मै अद्वितीय आत्मविचार तौ वस्तुतः साधन है परंतु भिन्नात्मविचार वस्तुतः साधन नहि। यातैं ताकी निवृत्ति वास्ते अद्वितीय आत्मविचार मै नियमविधि संभवै नहि। यद्यपि गुरु रहित विचारादिकन की निवृत्ति वास्ते गुरुद्वारा वेदांत विचारादिकन मै नियमविधि वक्ष्यमाण है। यातैं भिन्नात्मविचार की निवृत्ति वास्ते अद्वितीय आत्म-विचार मैं नियमविधि का असंभव माने बी नियमविधि पक्ष का अपलाप होय सके नहि। तथापि वक्ष्यमाण रीति सै हि गुरुद्वारा वेदांतविचारादिकन तैं पुण्य की उत्पत्ति होवै है तिन सै हि प्रतिबंधक रहित ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। गुरु विना विचारादिकन तैं पुण्य उत्पत्ति के अभाव तैं प्रतिबंधक रहित ब्रह्मसाक्षात्कार होवै नहि। यातैं गुरुद्वारा वेदांतविचारादिक हि वस्तुतः साधन हैं। गुरु-विना विचारादिक वस्तुतः साधन नहि। यातैं तिन की निवृत्ति वास्ते गुरुद्वारा वेदांतविचारादिकन मैं बी नियम-विधि संभवै नहि। तथापि वस्तुतः साधनांतर की प्राप्ति

स्थल मैं हि नियमविधि होवै यह नियम नहि। काहे तैं अप्राप्त अंश का पूरण हि नियमविधि का फल है। जहां संभावना मात्र तैं बी साधनांतर की पक्ष मै प्राप्ति होवै तासै पक्षप्राप्त विधित्सित साधन के अप्राप्त अंश का वारण अशक्य होवै तहां नियमविधि होवै है। विधान करने कूं इष्ट होवै सो विधित्सित कहिये है ब्रह्मात्मसाक्षात्कार मै वस्तुतः साधनांतर की प्राप्ति तौ यद्यपि नहि संभवै है, तथापि संभावना मात्र तैं साधनांतर की पक्ष मै प्राप्ति संभवै है ताकी निवृत्ति वास्ते नियमविधि संभवै है। इसरीति सै भिन्नात्मविचार की निवृत्ति वास्ते अद्वितीयात्मविचार मै नियमविधि कहा। अथवा गुरुद्वारा वेदांतविचार तैं ब्रह्म-साक्षात्कार होवै है तैसे निपुणको गुरु विना विचार तैं बी साक्षात्कार संभवै है। यातैं जिज्ञासु गुरुद्वाराहि वेदांत-विचार करै गुरुविना नहि करै। इसरीति से गुरुरहित विचार की निवृत्ति वास्ते गुरुद्वारा वेदांतविचार मैं नियम-विधि है। यद्यपि गुरुद्वारा वेदांतविचार का दृष्टफल ब्रह्म-साक्षात्कार है ताकी उत्पत्ति गुरुविना विचार तैं बी संभवै है। यातैं गुरुद्वारा वेदांतविचार मै नियमविधि का दृष्ट प्रयोजन तौ सिलै नहि काहे तैं अनन्यलभ्य हि प्रयोजन होवै है गुरुद्वारा वेदांतविचार मै नियमविधि का दृष्ट प्रयोजन ब्रह्मसाक्षात्कार है ताका लाभ गुरुविना विचार तैं बी संभवै है। तथापि नियमविधि की सफलता

वास्ते गुरुद्वारा वेदांतविचार तैं पुण्य की उत्पत्ति माननी-चाहिये। 'दिने दिने तु वेदांतश्रवणात् भक्तिसंयुतात्। गुरुशुश्रुषया लब्धात्कृच्छ्राशीति फलं लभेत्'। इत्यादि वचन तैं बी तासै ताकी उत्पत्ति सिद्ध है। पुण्य तैं प्रतिबंधक पाप की निवृत्ति होवै है अप्रतिबद्ध ब्रह्मसाक्षात्कार तैं अविद्या की निवृत्ति होवै है। इसरीति से गुरुद्वारा विचारजन्य पुण्य का प्रतिबंधक पाप निवृत्तिद्वारा अविद्या की निवृत्ति मै उपयोग है। गुरुरहित विचार तैं पुण्य की उत्पत्ति होवै नहि। यातैं पापप्रतिबद्ध साक्षात्कार अविद्या का अनिवर्तक होने तैं परोक्ष के समान हि होवै है। यद्यपि पूर्व गुरुद्वारा वेदांतविचारादिकन तैं उत्पन्न हुये पुण्य का प्रतिबंधक पाप निवृत्तिद्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति मै उपयोग कहा है। इहां तिसी पुण्य का पाप-निवृत्तिद्वारा अविद्यानिवृत्ति मै उपयोग कहने तैं पूर्व अपर का विरोध प्रतीत होवै है। तथापि पाप कर्म किसी के मत मै ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति मै प्रतिबंध करे है। गुरुद्वारा विहित वेदांतविचारजन्य पुण्य तैं ताकी निवृत्ति हुये प्रतिबंधक रहित साक्षात्कार होवै है। मतांतर मै उत्पन्न हुये ज्ञान तैं अविद्यानिवृत्ति मै प्रतिबंध करे है। उक्त पुण्य तैं ताकी निवृत्ति हुये प्रतिबंधक रहित अविद्या निवृत्ति होवै है। यातैं मतभेद होने तैं पूर्व अपर का विरोध नहि। यद्यपि सिद्धांत मै प्रतिबंध का भाव कारण नहि माने

हैं यातैं मतभेद तैं प्रतिबंधक पाप निवृत्ति कूं हेतुता कथन संभवै नहि। तथापि सिद्धांत मै बी अप्रतिबद्ध सामाग्री तैं कार्य की उत्पत्ति माने हैं। यातैं सामग्री का अवच्छेदक होने तैं प्रतिबंधकाभाव की अपेक्षा संभवै है। तामै कारणता निषेधका अनन्यथासिद्ध कारणता निषेध मै तात्पर्य है। दंडत्वादिकन की न्यांई कारणताका अवच्छेदक होने तैं प्रतिबंधकाभाव कूं अन्यथासिद्ध सिद्धांत मै माने हैं। यातैं विरोध नहि। इसरीति सै गुरुरहित वेदांतविचार ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतु पक्ष मै प्राप्त है। तिस पक्ष मै गुरुद्वारा वेदांतविचार अप्राप्त है। यातैं अप्राप्त अंश के पूरण वास्ते गुरुद्वारा वेदांतविचार मै नियमविधि संभवै है। यद्यपि 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' या श्रुति मै ब्रह्मसाक्षात्कार वास्ते गुरु अभिगमनका विधान है। शास्त्रके अनुसार गुरुके समीप प्राप्ति गुरु अभिगमन शब्द का अर्थ है। वेदांतजन्य ब्रह्मज्ञान मै गुरु अभिगमन साक्षात् साधन तौ संभवै नहि। जो अदृष्ट द्वारा गुरु अभिगमन कूं हेतुता कहैं। तात्पर्य यह—गुरु अभिगमन तैं पुण्य उत्पन्न होवै है तासै ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं दृष्टद्वार का संभव होवै तहां अदृष्ट कूं द्वार नहि माने हैं। यातैं गुरु अधीन वेदांतविचार द्वारा हि गुरु अभिगमन कूं ब्रह्मज्ञान की हेतुता मानी चाहिये। तासै हि गुरु रहित विचार की निवृत्ति संभवै है ताकी निवृत्ति वास्ते गुरुद्वारा

वेदांतविचार मैं नियमविधि निष्फल है। तथापि 'तद्विज्ञाना-र्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' या वाक्य तैं विहित गुरु अभिगमन विचार का अंग है। अंगी की सिद्धि विना अंग की सिद्धि होवै नहि। यातैं 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या वाक्य तैं गुरुद्वारा वेदांतविचार मैं नियम का विधान होवै तब ताके अंग गुरु अभिगमन का विधान संभवै। विचार मैं नियमविधि विना गुरु अभिगमन का विधान हि संभवै नहि। तासै श्रवणविधि की निष्फलता तौ अत्यंत दूर है। यातैं गुरुरहित विचार की निवृत्ति वास्ते गुरुद्वारा वेदांत-विचार मैं नियमविधि संभवै है। तैसे निर्गुण उपासना तैं ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति तृतीय परिच्छेद मैं कहेंगे। सगुण उपासना तैं ब्रह्मलोक मैं प्राप्त उपासकन कूं ब्रह्म-साक्षात्कार की उत्पत्ति शारीरकशास्त्र मैं प्रसिद्ध है। विचार मैं समर्थ अधिकारी की बी ब्रह्मसाक्षात्कार वास्ते कदाचित् तिनमैं बी प्रवृत्ति होवैगी। यातैं तिन की निवृत्ति वास्ते बी ब्रह्मजिज्ञासु वेदांतविचार हि करे। इसरीति से नियमविधि संभवै है। श्रवण नियमविधि मैं दो पक्ष हैं। एक तौ वेदांत विषयक विचार मैं नियमविधि पक्ष है। दूसरा विचार के विषय वेदांत मैं नियमविधि पक्ष है। तिन मैं प्रथम पक्ष का निरूपण किया। अब द्वितीय पक्ष का निरूपण करे हैं: 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या श्रुति मैं आत्मदर्शन वास्ते विचार का विधान है। आत्मदर्शन के हेतु होने तैं

उपनिषत्रूप वेदांत विचार का विषय प्राप्त हैं। तैसे इतिहास पुराणादिक बी ताका विषय पक्ष मै प्राप्त हैं। तिस पक्ष मै वेदांत अप्राप्त हैं। यातैं ब्रह्मजिज्ञासु वेदांत का हि विचार करै। इसरीति से वेदांत मै नियमविधि तैं इतिहास पुराणादिकन की निवृत्ति होवै है। यद्यपि उपनिषत्रूप वेदांत का दृष्ट प्रयोजन आत्म-साक्षात्कार है। ताकी उत्पत्ति इतिहास पुराणादिकन तैं बी संभवै है। यातैं वेदांत मै नियमविधि का दृष्ट प्रयोजन तौ मिलै नहि। तथापि नियमविधि की सफलता वास्ते नियम तैं वेदांतन का हि विचार करने तैं पुण्य की उत्पत्ति मानी चाहिये। ताका मतभेद तैं प्रतिबंधक पाप निवृत्तिद्वारा ज्ञान की उत्पत्ति मै अथवा अविद्या की निवृत्ति मै उपयोग पूर्व कहा है। यातैं विचार के विषय वेदांत मै नियमविधि संभवै है। इसरीति से विवरणानुसारि मत मै विचारविशिष्ट वेदांत शब्द का ज्ञान श्रवण है। ताका फल दृढ अपरोक्षज्ञान है। श्रवण मै ताकी हेतुता विधि सै विना बी प्राप्त है। यातैं श्रवणविधि अपूर्वविधि नहि किंतु नियमविधि है औ विवरण के एकदेशी का तौ यह मत है—श्रवण का फल दृढ परोक्षज्ञान है। अपरोक्ष नहि। काहेतैं केवल शब्द सै तौ परोक्षहि ज्ञान होवै है तैसे विचार सहित शब्द सै बी अपरोक्षज्ञान होवै नहि किंतु परोक्षहि होवै है। औ विचारविशिष्ट वेदांतशब्द का ज्ञानहि

श्रवण है। तामैं दृढ अपरोक्षज्ञान की हेतुता विधि सै विना पूर्व सिद्ध करी है। तैसे दृढ परोक्षज्ञान की हेतुता बी विधि सै विना हि सिद्ध होवै है। काहेतैं शब्द मै शाब्द-ज्ञान की हेतुता विधि से विना प्राप्त है। तैसे विचारणीय वस्तु के निर्णय की हेतुता विचार मै बी विधि से विनाहिं प्राप्त है। पूर्व उक्त रीति से उभयविध कार्य-कारण भावके मेलनतैं विचारविशिष्ट वेदांतशब्द के ज्ञानरूप श्रवण मै दृढ परोक्षज्ञान की हेतुता बी विधि विनाहि सिद्ध होवै है। यातैं अपूर्वविधि संभवै नहि किंतु पूर्व उक्त प्रकार तैंहि श्रवणविधि नियमविधिहि है। एकदेशी के मत मै श्रवण का फल दृढ परोक्षज्ञान है। पूर्व मत मै दृढ अपरोक्षज्ञान ताका फल है इतनाहि पूर्व मत सै या मत का भेद है। श्रवणनियमविधि मै और प्रकार सारा समान है। यद्यपि मनन निदिध्यासन का फल शाब्द परोक्षज्ञान माने मननादिक व्यर्थ होवैंगे। काहे तैं तिन्ह सै विनाहि विचार सहित शब्द तैं परोक्षज्ञान सिद्ध है। शाब्द अपरोक्षज्ञान तिन का फल माने शब्द तैं परोक्षज्ञान की उत्पत्ति कथन असंगत होवैगा। तथापि 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा होवै तहां केवल इंद्रिय सै तौ तत्ता अंश का ज्ञान नहि बी संभवै है। परंतु संस्कार सहित इंद्रिय तैं होवै है औ केवल अंतःकरण तैं नष्ट वनिता का साक्षात्कार नहि बी होवै है परंतु भावना सहित अंतःकरण तैं होवै

है तैसे केवल शब्द सै वा विचारविशिष्ट शब्द सै तौ ब्रह्म-साक्षात्कार नहि बी संभवै है। परंतु मनन निदिध्यासन-रूप भावना सहित शब्द सै संभवै है। शब्द तैं परोक्ष हि ज्ञान होवै है। या कहने तैं मनन निदिध्यासन रहित शब्द तैं परोक्षज्ञान विवक्षित है। यातै विरोध नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—श्रवण मै परोक्षज्ञान की हेतुता विधि विना प्राप्त होने तैं तामै नियमविधि कहा है। तैसे विधुरांतःकरण की न्यांई मनन निदिध्यासनरूप भावना सहित शब्द मै अपरोक्षज्ञान की हेतुता बी विधि सै विनाहि प्राप्त है। यातैं मनन निदिध्यासन मै बी नियम-विधिहि मान्या चाहिये अपूर्वविधि संभवै नहि। इसीरीति सै विवरणानुसारि मत मै श्रवणादिक तीनों का फल अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है। एकदेशी के मत मै श्रवण तैं उत्पन्न हुवा ज्ञान मनन निदिध्यासन तैं अपरोक्ष होवै है। यातैं श्रवण का फल तौ परोक्ष ब्रह्मज्ञान है। मनन निदिध्यासन का फल अपरोक्ष है। परंतु इंद्रियजन्य ज्ञान अपरोक्ष है शब्दादिजन्य परोक्ष है इसरीति सै ज्ञानगत परोक्षत्वादिक करण विशेष के अधीन होवैं तौ केवल शब्द तैं वा विचारविशिष्ट शब्द तैं परोक्षज्ञान कहना संभवै करण विशेषाधीन परोक्षत्वादिकन का ग्रंथकार खण्डन करे हैं। ज्ञानगत परोक्षत्वादिक विषय के अधीन सिद्ध करे हैं। या ग्रंथ मै हि यह अर्थ स्पष्ट

होवैगा। यातैं मनन निदिध्यासन की न्यांई श्रवण का फल बी अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानहि मान्या चाहिये। इसरीति सै एकदेशी के मत मै केवल वेदांतश्रवण तैं परोक्षज्ञान होवै है मनन निदिध्यासन सहित तैं अपरोक्ष होवै है। औ कितने ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—केवल वेदांतश्रवण तैं अपरोक्षज्ञान नहि होवै है। तैसे मनन निदिध्यासन सहित तैं बी होवै नहि। काहे तैं शब्द का स्वभाव परोक्षज्ञान जनन का है किंतु मनन निदिध्यासन सहित मन तैं अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होवै है। काहे तैं शास्त्राचार्य उपदेश, शम दमादि संस्कृतमन आत्मदर्शन मै करण है। यह गीताभाष्य मै कहा है। तहां 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्य शास्त्र है आचार्यकृत ताका व्याख्यान आचार्य उपदेश है। औ 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' या श्रुति तैं बी मनहि ब्रह्म साक्षात्कार का करण सिद्ध होवै है। एकदेशी के मत मैं मनन निदिध्यासन शब्द के सहकारी हैं। मनन निदिध्यासन सहित शब्द तैं अपरोक्षज्ञान होवै है या मत मै मन के सहकारी हैं। मनन निदिध्यासन सहित मन तैं अपरोक्षज्ञान होवै है। इतना दोनों मतन का भेद है। श्रवण का फल परोक्षज्ञान दोनों मतन मै समान है। इसरीति सै कितने ग्रंथकार श्रवण का फल परोक्षज्ञान माने हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—अपरोक्षज्ञान हि श्रवण का फल है परोक्ष नाहि। काहे तैं 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'

या वचन तैं श्रवण का फल अपरोक्ष आत्मज्ञानहि कहा है। परंतु विचारात्मक श्रवण तर्करूप है प्रमाणरूप नहि। यातैं ताका स्वतंत्र फल अपरोक्षज्ञान संभवै नहि। किंतु श्रवण सहित मन तैं अपरोक्षज्ञान होवै है। विवरणानुसारि मत मै बी श्रवण का फल अपरोक्षज्ञानहि है। परंतु विचाररूप श्रवण शब्द का सहकारी है। विचार सहित शब्द तैं अपरोक्षज्ञान होवै है या मत मै मनका सहकारी है। इतना दोनों मतन का भेद है। यद्यपि मनका सहकारिरूप तैं साक्षात्कार की हेतुता श्रवण मै प्रमाणांतर तैं अप्राप्त है यातैं अपूर्वविधि मान्या चाहिये। तथापि गांधर्वशास्त्रके विचार सहित श्रोत्र तैं षड्जादि स्वरनका साक्षात्कार होवै तहां श्रोत्र इंद्रिय करण है गांधर्वशास्त्र का विचार सहकारी है। तैसे वेदांतविचार सहित मनतैं ब्रह्म साक्षात्कार होवै तहां बी मनरूप इंद्रिय करण है वेदांतविचार सहकारी है दोनों स्थल मै इंद्रिय का सहकारिरूप तैं साक्षात्कार का हेतु श्रवण है। यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि मन का सहकारिरूप सैं तौ साक्षात्कार की हेतुता श्रवण मै अप्राप्त है। तथापि गांधर्वशास्त्र के विचार की न्यांई इंद्रिय का सहकारिरूप सैं साक्षात्कार की हेतुता वेदांत श्रवण मै विधि से विनाहि प्राप्त है। यातैं अपूर्वविधि का असंभव होने तैं नियमविधि हि मान्या चाहिये। इसरीति सै विवरणानुसारि मत मै शाब्द अपरोक्षज्ञान श्रवण का

फल है। एकदेशी के मत मै औ तांसै अनंतर उक्त तृतीय मत मै शाब्द परोक्षज्ञान ताका फल है। या मत मै श्रवण का फल मानस अपरोक्षज्ञान है। औ संक्षेप शारीरक के अनुसारी तौ यह कहे हैं—परोक्षापरोक्षज्ञान शब्दादि प्रमाण का फल है श्रवण का फल नहि। काहे तैं वेदांतवाक्यन का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म मै है या निश्चय के अनुकूल षड्लिंगनका विचार हि श्रवण है। सो यत्नसाध्य क्रियारूप चित्त की वृत्ति विशेष है। विधि के असंभव तैं ज्ञानरूप वृत्ति श्रवण नहि ताका फल परोक्षापरोक्ष ब्रह्मज्ञान संभवै नहि। किंच 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' यह शारीरकशास्त्र का प्रथम सूत्र है। जिस कारण तैं कर्मन का फल अनित्य है ज्ञान का फल नित्य है। यातैं साधन चतुष्टय संपत्ति तैं अनंतर जिज्ञासु ब्रह्मज्ञान वास्ते विचार करै। यह ताका अर्थ है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' यह श्रुति सूत्र का विषयवाक्य है। श्रवण कूं ज्ञानरूप माने तौ श्रुतिगत श्रोतव्यपद का ज्ञान कर्तव्य है यह अर्थ कहना होवैगा। सूत्र का अर्थ विचार कर्तव्यता कहा है। यातैं अर्थभेद तैं श्रुति औ सूत्र का विषय विषयीभाव नहि होवैगा। यातैं बी विचार विशिष्ट वेदांतशब्द के ज्ञानरूप वृत्ति कूं श्रवण कहना संभवै नहि। किंतु ऊहापोह आत्मक मानस क्रियारूप विचारहि श्रवण मान्या चाहिये। ऊहापोह का लक्षण

यह हैं—'न्यायाभासेभ्यो निष्कृष्य न्यायानामुपादानमूहः'। 'न्यायाभासनिराकरणमपोहः'। अर्थ यह—न्यायाभासन तैं जुदा करके न्यायन का उपादान कहिये ग्रहण ऊहा है न्यायाभासन का निराकरण अपोह है। अनुमानप्रयोग का नाम न्याय है। दुष्ट न्याय का नाम न्यायाभास है। इसरीति सै परोक्षापरोक्षज्ञान विचाररूप श्रवण का फल संभवै नहि। यद्यपि विचार के स्वरूप का समालोचन करैं ताका साक्षात् फल तौ ब्रह्मज्ञान नहि बी संभवै है। परंतु परंपरा तैं संभवै है। तथाहि—पट्लिंगन का स्वरूप जाने विना विचार का स्वरूप जान्या जावैं नहि। यातैं प्रथम पट्लिंगन का स्वरूप निरूपण करे हैं। ईशावास्य-उपनिषत् मै 'ईशावास्यमिदं सर्वं' अर्थ यह—यह संपूर्ण जगत् ईश्वरात्मबुद्धि सै आच्छादनीय है। इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'स पर्यगात्' अर्थ यह—सो परमात्मा आकाश की न्यांई व्यापक है। इत्यादि वचन तैं उपसंहार है। 'अनेजदेकं' 'तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः' अर्थ यह—सो परमात्मतत्त्व चलन रहित एक है सोई सर्व के बाह्य अंतर है। इत्यादि अभ्यास है। 'नैनद्देवा आप्नुवन्' अर्थ यह—यह आत्मतत्त्व इंद्रिय व्यापार का विषय नहि। इत्यादि वाक्य तैं प्रमाणांतर की अविषयता-रूप अपूर्वता कहि है। 'तत्र को मोहः कः शोकः' इत्यादि वचन तैं आत्मज्ञान तैं शोक मोहादिकन की निवृत्ति फल

कहा है। 'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येकेचात्महनो जनाः' अर्थ यह—जो आत्मा कूं पापिलादिरूप माने हैं सो नानाविध योनि कूं प्राप्त होवै हैं। इत्यादि वाक्यन तैं भेदज्ञान की निंदा तैं अर्थ से अभेदज्ञान की स्तुतिरूप अर्थवाद कहा है। 'तस्मिन्नपोमातरिश्वादधाति' अर्थ यह—सर्व के आश्रयरूप नित्य चेतन आत्मा के होतैंहि सर्वलौकिक वैदिक व्यापार होवैं हैं। यह उपपत्ति कहि है। तैसे केन उपनिषत् मैं 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोहवाचम्' इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'प्रतिबोधविदितं मतम्' इत्यादि वचन तैं उपसंहार है। श्रोत्रादिक इंद्रियन मै स्वस्व विषय के प्रकाशन का सामर्थ्य चेतन आत्म प्रयुक्त है। यह उपक्रम वाक्य का अर्थ है। संकल बुद्धिवृत्ति का साक्षिरूप तैं आत्मा जानिये है। यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है। 'यद्वाचा नभ्युदितं येन वागभ्युद्यते यन्मनसा नमनुते येनाहुर्मनोमतं, यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि' इत्यादि वाक्यन तैं अभ्यास कहा है। जो वस्तु वागादिक इंद्रियन तैं प्रकाशित होवै नहि। वागादिक जातैं प्रकाशित होवै हैं सोई ब्रह्म है। यह तिनका अर्थ है। 'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति' इत्यादि वचन तैं अपूर्वता कहि है। ब्रह्म नेत्रादि इंद्रियन का आत्मा है। यातैं ब्रह्म मै नेत्रादिक प्रवृत्त होवैं नहि। यह ताका

अर्थ है। 'प्रेत्यंसाल्लोकादमृता भवन्ति' अर्थ यह—विद्वान् शरीर त्यागतैं अमृत होवै है इत्यादि वाक्य तैं फल कह्या है। 'तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान्, तस्माद्वा इंद्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्' अर्थ यह—ब्रह्मज्ञान तैं हि देवन मै अग्नि आदिक श्रेष्ठ हैं तिनतैं बी इंद्र अत्यंत श्रेष्ठ है। इत्यादि वाक्यन तैं अर्थवाद कहा है 'अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां' अर्थ यह—जैसे। असम्यग्दर्शी कूं कल्पित रजतादि वस्तु विज्ञात होवै है सम्यक्दर्शी कूं अविज्ञात होवै है तैसे ब्रह्म मै ज्ञेयता कल्पित है ज्ञेय कूं हि विज्ञात कहे हैं असम्यक्दर्शी कूं ब्रह्म विज्ञात है सम्यक्दर्शी कूं अविज्ञात है। इत्यादि वाक्य तैं उपपत्ति कहि है। तैसे कठउपनिषत् मै 'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्तीतिचैके' इत्यादि वाक्य तैं मरण सै अनंतर आत्मा मै संशय कहा है। तासै सामान्यरूप सै औ 'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्' अर्थ यह—आत्मा धर्माधर्म कार्य कारणादिकन तैं भिन्न है। इत्यादि वचन तैं विशेषरूप सै उपक्रम करके 'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽतरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः' अर्थ यह—जो अंगुष्ठमात्र अंतर आत्मा पुरुष है सो सदा हृदय मै स्थित है। इत्यादि वाक्य तैं उपसंहार है। 'न जायते म्रियते, अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितं, नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्' अर्थ यह—आत्मा

जन्मादि विकाररहित है अनित्य शरीरनमैं स्थित हुवा बी वास्तव तैं अशरीर है। स्वनित्यताद्वारा आकाश कालदिकन मैं बी नित्यता व्यवहार का हेतु है। तैसे स्वचेतनताद्वारा बुद्धि आदिकन मैं बी चेतनता व्यवहार का हेतु है। इत्यादि वाक्य तैं अभ्यास है। 'नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा' इत्यादि वचन तैं वागादिक इंद्रियन की अविषयतारूप अपूर्वता कहि हैं। 'ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूत् विमृत्युः' अर्थ यह—ज्ञानप्राप्ति सै अनंतर नचिकेता धर्माधर्मादिरहित हुवा औ अविद्या काम कर्म तैं रहित हुवा ब्रह्म कूं प्राप्त होता भया। इत्यादि वाक्य तैं फल कहा है। 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि अर्थवाद है। 'येन रूपं रसं गंधं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् एते नैव विजानाति' अर्थ यह—जिस चेतन तैं रूप रसादिक जानिये हैं सो आत्मा है इत्यादिक उपपत्ति कहि है। तैसे प्रश्न उपनिषत् मैं 'तेहसमित्पाणयो भगवंतं पिप्पलादमुपसन्नाः' अर्थ यह—भारद्वाजादिक षट् ऋषि ब्रह्म जिज्ञासा तैं समित्पाणि हुये पूज्य पिप्पलाद ऋषि के समीप प्राप्त भये। इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'तान्होवाच एतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति' यह उपसंहार है। पिप्पलाद ने कहा इतनाहि परब्रह्म ज्ञातव्यं है इस तैं अधिक नहि। यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है। 'एतद्वै सत्यकामपरं

चापरं च ब्रह्म यदोंकारः' अर्थ यह—हे सत्यकाम यह ओंकारही परापर ब्रह्म है। इत्यादि अभ्यास है। 'इहैवांतः शरीरे सोम्य स पुरुषः' अर्थ यह—हे प्रियदर्शन भारद्वाज जो तैने पूछा है सो पुरुष या शरीरके अंतरहि विद्यमान है परंतु आचार्य उपदेश विना जान्या जावे नहि। इत्यादि वाक्य तैं अपूर्वता सूचन करी है। 'तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा' अर्थ यह—हे शिष्यं तिसं वेद्य पुरुष कूं जानो तुमको मृत्यु पीड़ा मत करे। इत्यादि वाक्य तैं फल कहा है। 'तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयतेयस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति' अर्थ यह—हे प्रियदर्शन गार्ग्य जो कारण शरीररहित सूक्ष्म-शरीरवर्जित रक्तादि रूपवाले स्थूल शरीर तैं रहित शुद्ध अक्षर ब्रह्म कूं जाने है सो सर्वज्ञ औ सर्व रूप होवै है। इत्यादि वाक्य तैं अर्थवाद कहा है। 'स यथेमा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छंति' इत्यादि वाक्य तैं नदी समुद्रादि दृष्टांतरूप उपपत्ति कहि है। तैसे मुंडक उपनिषत् मैं 'अथपरा यया तदक्षरमधिगम्यते' अर्थ यह—जातैं अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होवै सो पर विद्या है। इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' या वाक्य तैं उपसंहार है। जो परब्रह्म कूं जाने है सो ब्रह्म हि होवै है। यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है। 'आविः सन्निहितं' अर्थ यह—प्रकाशरूप ब्रह्म आत्मरूप है।

इत्यादि अभ्यास है। 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' इत्यादि वचन तैं नेत्रादि इंद्रियन की अविषयतारूप अपूर्वता कहि है। 'भिद्यते हृदयग्रंथिः' इत्यादि वाक्यन से ब्रह्मज्ञान तैं हृदयग्रंथि आदिकन की निवृत्ति फल कहा है। 'यं यं लोकं मनसा संविभाति' इत्यादि वचन तैं ज्ञानवान् कूं कामित फल की प्राप्ति अर्थवाद कहा है। 'यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवंते सरूपाः तथाक्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायंते तत्र चैवापियन्ति' या वाक्य तैं उपपत्ति कहि है। जैसे प्रज्वलित अग्नि से समान रूपवाले अनेक विस्फुलिंग होवै हैं। तैसे अक्षर ब्रह्म से विविध भाव होवै हैं तिसी मैं लीन होवै हैं यह ताका अर्थ है। तैसे माडूक्य मै 'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं' अर्थ यह—यह सर्व जगत् ओंकाररूप है इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'अमात्रश्चतुर्थः' अर्थ यह—मात्राविभाग रहित तुरीय है। इत्यादि उपसंहार है 'प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते' अर्थ यह—प्रपंचरहित अविक्रिय आनंदरूप अद्वैत कूं शास्त्रवेत्ता तुरीय पाद माने हैं। इत्यादि अभ्यास है। 'अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिंत्यमव्यपदेश्यं' या वाक्य तैं अपूर्वता कहि है। ज्ञान इंद्रियन का अविषय, अर्थ क्रियारहित, कर्म इंद्रियन का अविषय, अननुमेय, अंतःकरण की वृत्ति का अविषय, शब्दशक्ति का अविषय; तुरीय है। यह ताका अर्थ है।

'संविशत्यात्मनात्मानं यः एवं वेद' या वाक्य तैं फल कहा है। जो ओंकार को आत्मरूप जाने है सो आत्मरूप तैं ब्रह्म कूं प्राप्त होवै है। यह ताका अर्थ है। आप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद' अर्थ यह—जो विश्व, वैश्वानर औ अकार को एक जाने है सो सर्व कामन कूं प्राप्त होवै हैं औ महान्पुरुषन मै मुख्य होवै है। यह अवांतर फल·कथनहि अर्थवाद है। 'सोऽयमात्मा चतुष्पाद' इत्यादि वाक्यन तैं अद्वितीय ब्रह्मज्ञान वास्ते विश्वादिपाद कल्पनाहि उपपत्ति है। तैसे तैत्तिरीय मैं 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' या वाक्य तैं उपक्रम करके 'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः' अर्थ यह—जो व्यष्टि समष्टि उपाधि मैं है सो एक है। इत्यादि उपसंहार है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म कूं प्राप्त होवै है यह उपक्रम वाक्य का अर्थ है। भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'. या वचन तैं अभ्यास कहा है। परमात्मा के भय तैंहि वायु सूर्यादिक स्व स्व व्यापार कूं करे हैं यह ताका अर्थ है 'यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह' या वचन तैं अपूर्वता कहि है। जिस ब्रह्म तैं मनसहित वाचक शब्द न प्राप्त होयके निवृत्त होय जावे हैं। यह ताका अर्थ है। 'सोश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इत्यादि वाक्य तैं ब्रह्मज्ञान तैं सर्व कामावाप्ति फल कहा है। 'यदाह्येवैष एतस्मिन्न दृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्ते·

ऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विंदतेऽथ सोऽभयंगतो भवति' यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरुतेऽथतस्य भयं भवति.' अर्थ यह—जब यह पुरुष स्थूल शरीररहित सूक्ष्म शरीरवर्जित शब्दशक्ति के अविषय कारण शरीररहित ब्रह्मात्मा मैं अभय जैसे होवै तैसे स्थिति कूं प्राप्त होवै है तब सो अभय को प्राप्त होवै है। जब इस मैं अल्प बी अंतर कूं करे है तब ताकूं भय होवै है। इत्यादि वाक्य तैं सर्वात्मभाव हेतुता सैं अभेदज्ञान की स्तुति औ भयका हेतु होने तैं भेदज्ञान की निंदारूप अर्थवाद कहा है। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादि वाक्यन तैं जीव जगत् का ब्रह्माभेद मैं उपपत्ति कहि है। तैसे ऐतरेय मैं 'आत्मा वा इदमेक एव अग्र आसीत्' या वाक्य तैं उपक्रम करके 'प्रज्ञानं ब्रह्म' यह उपसंहार है। यह नामरूपात्मक जगत् सृष्टि तैं पूर्व एक आत्माहि होता भया यह उपक्रम वाक्य का अर्थ है। प्रज्ञान कहिये त्वं.पद का लक्ष्य चेतन ब्रह्म है। यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है। 'स इमाल्लोकान-सृजत्' अर्थ यह—सो आत्मा संकल्पपूर्वक लोकपालन सहित लोकन कूं उत्पन्न कर्ता भया। इत्यादि वाक्य तैं अभ्यास कहा है। 'स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत' अर्थ यह—सो परमात्मा जीवरूप सै शरीर मै प्रविष्ट हुवा, भूतनकूं अपरोक्ष जानता भया। इत्यादि वाक्यनं तैं सर्व का प्रकाशक होने तैं परमात्मा किसी का प्रकाश्य नहि। या रीति सैं अपूर्वता

सूचन करी है । 'स एतेन प्राज्ञेनात्मना अस्माल्लोका-दुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः सम-भवत्' अर्थ यह—प्रत्यक्‌रूप सै ब्रह्म कूं जानता हुवा विद्वान् जीवन्मुक्तिदशा मै आप्त काम होने तैं सर्वात्मरूप सै सर्व-कामन कूं प्राप्त होय के वर्तमानशरीर से उत्क्रमण करके सुखरूप ब्रह्म मै आत्मरूप सै स्थित होता भया। इत्यादि वाक्य तैं फल कहा है 'शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयं' अर्थ यह—ज्ञान तैं पूर्व मुझ-वामदेव कूं लोहमय शृंखला की न्यांई अनेक शरीर बंधन कर्ते भये अब ज्ञान के प्रभावतैं जाल कूं तोड़ के निकसे पक्षी की न्यांई निकसा हूं। इत्यादि वाक्य तैं अर्थवाद कहा है। 'स इमाँल्लोकानसृजत् स एतमेव सीमानं विदार्य एतया द्वारा प्रापद्यत' इत्यादि वाक्यन तैं जीव जगत् के ब्रह्म सै अभेद वास्ते जगत् की उत्पत्ति औ जीवरूप सै प्रवेश, उपपत्ति कहि है। तैसे छांदोग्य के षष्ठाध्याय मै 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' अर्थ यह—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो सृष्टि तैं पूर्व यह जगत् ब्रह्महि होता भया इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं' अर्थ यह—ब्रह्महि यह सर्व है यह उपसंहार है। 'तत्त्वमसि' या वाक्य का आवृत्तिरूप अभ्यास है। 'अत्र वावकिल सत्सोम्य न निभालयसे' अर्थ यह—हे सोम्य या देह मै हि विद्यमान सत् ब्रह्म कूं आचार्य उपदेश

विना प्रमाणांतर तैं तूं नहि जानता। इत्यादि वचन तैं अपूर्वता कहि है। 'तस्य तावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' या वाक्य तैं फल कहा है। तिस विद्वान् को विदेह कैवल्य मै उतना कालहि विलंब है जबतक भोगं तैं प्रारब्ध निवृत्त नहि होवै है ताकी निवृत्ति सै अनंतर ब्रह्म कूं प्राप्त होवै है यह ताका अर्थ है। 'येनाश्रुतं श्रुतं भवति' इत्यादि वाक्य तैं एकके विज्ञान तैं सर्व का विज्ञान कथन सै ब्रह्मज्ञानकी स्तुतिरूप अर्थवाद कहा है। 'यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्' इत्यादि वाक्य तैं मृदादि दृष्टांतरूप उपपत्ति कहि है। तैसे सप्तमाध्याय मै 'तरति शोकमात्मवित्' या वाक्य तैं उपक्रम करके। 'तस्य आत्मत एवेदं सर्वं' अर्थ यह—विद्वान् के आत्मा तैं हि यह सर्व होवै है। इत्यादि उपसंहार है। 'स एव अधस्तात्स उपरिष्टात्' अर्थ यह—भूमाहि नीचे है सोइ ऊपर है। इत्यादि अभ्यास है। 'सोहं भगवो मंत्रविदेवास्मि न आत्मवित्' इत्यादि वाक्य तैं गुरु उपदेश विना प्रमाणांतर की अविषयतारूप अपूर्वता कहि है। 'न पश्यो मृत्युं पश्यति' अर्थ यह—विद्वान् मृत्यु कूं नहि देखे है इत्यादि वाक्य तैं फल कहा है। 'सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वं आप्नोति सर्वशः' या वचन तैं अर्थवाद कहा है विद्वान् सर्व कूं आत्मा जाने है यातैं सर्व प्रकार तैं सर्व कूं प्राप्त होवै है। तात्पर्य यह—पूर्णरूप होवै है यह ताका अर्थ है।

'आत्मत एवेदं सर्वं' अर्थ यह—आत्मा सैहि यह सर्व होवै है यातैं आत्मा से भिन्न नहि। यह उपपत्ति है। तैसे अष्टमाध्याय मै 'य आतमा अपहत पाप्मा' अर्थ यह—जो आत्मा पाप रहित है। इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते' या वाक्य तैं उपसंहार है। इंद्रं के प्रति प्रजापति ने कथन किये तिस आत्मा की देवता अब वी उपासना करे हैं यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है। 'एतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म' अर्थ यह—यह आत्मतत्त्व अमृत अभय ब्रह्म है। इत्यादि अभ्यास है। 'तयएवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविंदंति तेषामेवैषब्रह्मलोकः' अर्थ यह—जो पूर्व उक्त ब्रह्मरूप लोक कूं ब्रह्मचर्य सहित शास्त्र आचार्य के उपदेश तैं अनंतर जाने हैं तिन कूं हि यह ब्रह्मलोक प्राप्त होवे है। या वाक्य तैं शास्त्र औ आचार्य उपदेश सै भिन्न प्रमाण की अविषयतारूप अपूर्वता सूचन करी है। 'ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न स पुनरावर्तते' या वाक्य तैं फल कहा है। ब्रह्मलोक कूं प्राप्त होय के पुनरावृत्ति कूं प्राप्त होवै नहि। यह ताका अर्थ है। इन्द्रोहैव देवानामभि प्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्' अर्थ यह—देवन का राजा हुवा बी इंद्र तैसे असुरन का राजा विरोचन प्रजापति के समीप जाते भये। इत्यादि वाक्यन तैं इंद्र विरोचन की आख्यायिका हि अर्थवाद है। 'अशरीरोवायुरभ्रं' इत्यादि वाक्यन तैं उपपत्ति कहि

है। जैसे अशरीर होने तैं आकाश सैं अविभक्त हुये वायु मेघादिक वर्षादि सिद्धि वास्ते तासै विभक्त होय के पुरोवातादिरूप से स्थित होवै हैं। तैसे शरीर सैं तादात्म्यापन्न जीव आत्मा कूं तासै भिन्न जान के ब्रह्मरूप सै स्थित होवै है। यह तिनका अर्थ है। तैसे बृहदारण्यक के प्रथमाध्याय मैं 'आत्मेत्येवोपासीत' या वाक्य तैं उपक्रम करके 'आत्मानमेवलोकमुपासीतं' यह उपसंहार है। शब्द प्रत्ययके अवेद्य आत्मा का चिंतन करे। यह उपक्रम वाक्य का अर्थ है। सर्व अनात्म दृष्टि कूं त्याग के आत्मरूप लोक का निरंतर चिंतन करे। यह उपसंहार वाक्य का अर्थ है 'तदेतत्पदनीयम्' अर्थ यह—यह आत्मा विचारणीय है। इत्यादि अभ्यास है। 'यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्यामन्यंते' अर्थ यह—मनुष्य,ब्रह्मविद्यातैं सर्वात्मभाव की संभावना करे हैं। या वाक्य तैं ब्रह्मविद्या सै भिन्न प्रमाण की अविषयतारूप अपूर्वता सूचन करी है। 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' या वाक्य तैं ब्रह्मज्ञान का सर्वात्मभाव की प्राप्ति फल कहा है। 'तस्यहनदेवांश्च नाभूत्या ईशते आत्माह्येषां स भवति' या वाक्य तैं अभेदज्ञान की स्तुति औ भेदज्ञान की निंदारूप अर्थवाद कहा है। सर्वात्मरूप विद्वान् के अब्रह्मभाव वास्ते देवता बी समर्थ नहि। यह ताका अर्थ है। 'स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः' अर्थ

यह—ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत शरीरन मैं नखाग्रपर्यंत परमात्मा प्रविष्ट हुवा है यातैं जीव परमात्मा की एकता संभवै है। इत्यादि उपपत्ति है। तैसे द्वितीयाध्याय मैं 'ब्रह्मते ब्रवाणि' अर्थ यह—बालाकि ने अजातशत्रु को कहा ब्रह्म तेरे तांई कहता हूं। यह सामान्यरूप तैं उपक्रम करके। 'य एष विज्ञानमयः पुरुषः' यह सामान्यरूप तैं उपसंहार है औ 'व्येत्र त्वाज्ञपयिष्यामि' अर्थ यह—अजातशत्रु ने कहा जाके ज्ञान तैं सर्ववित् होवै तिस ब्रह्म का शिष्यभाव विनाहि तेरे तांई विज्ञाप्न कर्ता हूं। या वाक्य तैं विशेषरूप सैं उपक्रम करके 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरं' अर्थ यह—ब्रह्म कार्यकारणादि रहित है। इत्यादि वाक्य तैं विशेषरूप सैं उपसंहार है। 'सत्यस्य सत्यं' अर्थ यह—परमात्मा सत्य का सत्य है। इत्यादि अभ्यास है। 'विज्ञातारमरेकेनविजानीयात्' इत्यादि वाक्य तैं अपूर्वता कहि है। 'यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं जिघ्रेत्' इत्यादि वाक्य तैं अद्वैतज्ञान का त्रिपुटी द्वैतरहित ब्रह्म की प्राप्तिरूप फल कहा है। 'ब्रह्म तं परादात् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद' अर्थ यह—जो ब्राह्मणादि जाति कूं आत्मा तैं भिन्न जाने है ताकूं जाति कैवल्य के अयोग्य करे है। इत्यादि वाक्य तैं भेदज्ञान की निंदा तैं अर्थ सैं अभेदज्ञान की स्तुतिरूप अर्थवाद कहा है। 'यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेत्' इत्यादि वाक्य तैं उपपत्ति कहि है।

जैसे असहाय मकडी तैं तंतु होवै हैं तैसें असहाय आत्मा तैं सर्व जगत् होवै है यह ताका अर्थ है। तैसे तृतीयाध्याय मैं 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म' अर्थ यह—जो स्वरूप सै हि अपरोक्ष ब्रह्म है। इत्यादि वाक्य तैं उपक्रम करके 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' अर्थ यह—विज्ञान। आनंदस्वरूप ब्रह्म है। इत्यादि उपसंहार है। 'एप त अंतर्याम्यमृतः' अर्थ यह—यह ईश्वर आत्मा अंतर्यामि अमृत है। इत्यादि अभ्यास है। तंत्वौपनिपदं पुरुषं पृच्छामि' या वाक्य तैं केवल उपनिषद की विषयतारूप अपूर्वता कहि है। 'परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदः' अर्थ यह—ब्रह्म मैं स्थित तत्त्ववेत्ता का ब्रह्म परम गति है। यह फल कहा है। 'यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते अंतवदेवास्य तद्भवति य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकाप्रैति स ब्राह्मणः' अर्थ यह—हे गार्गि जो अक्षर ब्रह्म कूं न जानके होमादि करे है ताकूं विनाशि फल होवै है। जो जानके मृत्यु कूं प्राप्त होवै है सो मुक्त होवै है। इत्यादि अर्थवाद है 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' अर्थ यह—हे गार्गि अक्षर ब्रह्म की आज्ञा मै हि भृत्यादिकन की न्यांई सूर्य चंद्रादिक नियम तैं प्रवृत्त होवै हैं। इत्यादि उपपत्ति है। तैसे चतुर्थाध्याय मै 'इन्धो हवैनामैप योऽयं दक्षणेऽक्षन्पुरुषः' अर्थ यह—जो दक्षिण नेत्र मै पुरुष है सो जागरित मै स्थूल

पदार्थन का भोक्तारूप से सदा स्फुरण होवै है । इत्यादि वाक्य तैं सामान्यरूप से उपक्रम करके 'अभयं वै जनक-प्राप्तोसि' इत्यादि सामान्यरूप तैं उपसंहार है । औ 'किं ज्योतिरयं पुरुषः' अर्थ यह—जातैं यह कार्यकरण संघात आसनादि व्यवहार कूं करे है ऐसा ताका प्रकाशक कौन है । इत्यादि वाक्य तैं विशेपरूप से उपक्रम करके 'यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत्' इत्यादि विशेपरूप से उपसंहार है । 'तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्' अर्थ यह—सूर्यादि प्रकाशक तिस ब्रह्म की आयु औ अमृतरूप तैं देवता उपासना करे हैं । इत्यादि अभ्यास है । 'न तं पश्यति कश्चन, अगृह्यो नहि गृह्यते, विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इत्यादि वाक्यन तैं प्रमाणांतर की अविपयतारूप अपूर्वता कहि है । 'योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति' अर्थ यह—जो आत्मकाम औ आप्तकाम है याहि तैं स्थूल सूक्ष्म शब्दादिकन की कामना से रहित है ताके प्राण उत्क्रमण करैं नाहि यातैं ब्रह्मरूप हुवाहि ब्रह्म कूं प्राप्त होवै है । इत्यादि वाक्य तैं फल कहा है । 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि अर्थवाद है । 'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' इत्यादि उपपत्ति कहि है । इसरीति से ईशावास्यादिक

दश उपनिषदन मैं पट्लिंगन का स्वरूप निरूपण किया इसीप्रकार अन्य उपनिषदन मैं बी लिंगन का स्वरूप जानि लेना। वह्निज्ञान का हेतु धूम, लिंग कहिये है। तैसे तात्पर्य ज्ञान के हेतु होनेतैं उपक्रम उपसंहारादिक लिंग हैं। पट् लिंगन मैं उपक्रम उपसंहार, अभ्यास, उपपत्ति, यह तीनतौ शब्दनिष्ठ हैं अपूर्वता, फल, अर्थवाद, यह अर्थनिष्ठ हैं। तथाहि—'ईशावास्यमिदं सर्वं' इत्यादि 'स पर्यगात' इत्येतदंतं वाक्यजातं, अद्वितीयवस्तुपरं, अद्वितीयवस्तुप्रतिपादकउपक्रमउपसंहारवत्वात, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत' इत्यादि 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं' इत्यंतवाक्यवत।'अनेजदेकं' इत्यादि 'तदंतरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः' इत्येतदंतं वाक्यजातम्, अद्वितीयवस्तुपरं, अद्वितीयवस्तुप्रतिपादकअभ्यासवत्वात्, 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्यवत 'ब्रह्म, वेदांततात्पर्यविषयः, अपूर्वत्वात, यत् यत्रापूर्वं तत्तत् तात्पर्यविषयः यथा कर्मकांडे अपूर्वो धर्मः'।'ब्रह्म,वेदांततात्पर्यविषयः,फलरूपत्वात, यत्यत्र फलरूपं तत् तत् तात्पर्यविषयः यथा कर्मकांडे फलरूपं स्वर्गादि'। ब्रह्म, वेदांततात्पर्यविषयः, स्तूयमानत्वात्, यत यत्र स्तूयमानं तत तत् तात्पर्यविषयः यथा कर्मकांडे स्तूयमानो धर्मः।'तस्मिन्नपोमातरिश्वादधाति' इत्यादि वाक्यं,अद्वितीयवस्तुपरं, अद्वितीयवस्तुप्रतिपादकउपपत्तिमत्वात, 'यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं

स्यात्' इत्यादि वाक्यवत्। अनुमानप्रयोगगत श्रुतिवाक्य-नंका अर्थ लिग निरूपण मै पूर्व कहि आये हैं। ईशावास्य मै यह विचार का स्वरूप है। उपनिषदन मै सर्वत्र या रीति से हि विचार का स्वरूप जानि लेना। अनुमितिरूप तात्पर्य निश्चय ताका साक्षात्फल है। तात्पर्य निश्चयद्वारा तात्पर्य मैं भ्रमादिकन् की निवृत्ति बी विचार का फल है। तात्पर्य विषयक भ्रमसंशयादिक हि ब्रह्मबोध की उत्पत्ति मै प्रति-बंधक हैं। तिनकी निवृत्ति हुये प्रतिवंधकरहित वेदांत-वाक्य तैं अद्वितीयब्रह्म का साक्षात्कार होवै है यह निर्धार है। इसरीति सै विचाररूप श्रवण का साक्षात्फल तौ ब्रह्मज्ञान नहि बी संभवै है परंतु परंपरातैं संभवै है। यातैं श्रवण का फल ज्ञान नहि यह कहना संभवै नहि। तथापि तात्पर्यज्ञान वा प्रतिबंधक निवृत्ति शाब्दबोध मै कारण होवै तौ परंपरा तैं विचाररूप श्रवण का फल ब्रह्मज्ञान संभवै। तात्पर्यज्ञानादिक कारण नहि यातैं परंपरा तैं बी ताका फल ज्ञान संभवै नहि। तथाहि— प्रतिबंधक निवृत्ति का जनक होने तैं तात्पर्यज्ञान अन्यथा सिद्ध है शाब्दबोध का कारण नहि। ताका कारण तात्पर्यज्ञान माने परतः प्रामाण्यवाद की प्राप्ति होवैगी। काहे तैं शाब्दज्ञान की सामग्री शब्दप्रमाण है। तासै भिन्न तात्पर्यज्ञान तैं ताकें प्रमात्व की उत्पत्ति माने परतः प्रामाण्यवाद स्पष्टहि है। तात्पर्यज्ञान कूं शाब्दबोध मै

अहेतुता सिद्ध हुये ताका फल प्रतिबंधक निवृत्तिद्वारा विचार कूं हेतुता तौ अत्यंत दूर है औ प्रतिबंधकाभाव कारण संभवै बी नहि। काहेतैं सामग्री के होतैं बी प्रतिबंधकवश तैं कार्य न हुवा यह व्यवहार लोक मै होवै है तासै प्रतिबंधकाभाव का कारण सामग्री मै अनंतर भावहि सिद्ध होवै है। अंतरभाव सिद्ध होवै नहि। ताकूं कारण माने लोक व्यवहार का विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहियें–अप्रतिबद्ध सामग्री कार्य का हेतु है। ताका अवच्छेदक होनेतैं प्रतिबंधकाभाव दंडत्वादिकन की न्यांई अन्यथा सिद्ध है कारण नहि। इस रीति सै तात्पर्यज्ञानादिद्वारा बी विचाररूप श्रवण का फल ब्रह्मज्ञान संभवै नहि। किंतु तात्पर्य निश्चयद्वारा असंभावना विपरीतभावना की निवृत्ति हि ताका फल है औ जो पूर्व कहा 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' या वचन तैं अपरोक्षज्ञान श्रवण का फल मान्या चाहिये सो बी संभवै नहि। काहेतैं पूर्व उक्त प्रकार तैं किसीरीति सै बी ब्रह्मज्ञान श्रवण का फल संभवै नहि। यातैं यह मान्या चाहिये–श्रवणादि मात्रतैं जाका दर्शन होवै है ऐसा उत्तम आत्मतत्त्व है। यातैं आत्मश्रवणादिक करे चाहिये। इसरीति सै आत्मश्रवणादिकन मै प्रवृत्ति वास्ते 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' या वचन तैं आत्मा की स्तुति मात्र है। आत्मदर्शन श्रवण का

फल सिद्ध होवे नहि। इसरीति सै नियम विधिपक्ष मै पांच मत कहे। तिनमै श्रवणके फल मै तौ विवाद है। विवरणानुसारीमत मै दृढ अपरोक्षज्ञान श्रवण का फल है। एकदेशी के मत मै औ तासे अनंतर उक्त तृतीयमत मै परोक्षज्ञान फल है। चतुर्थ मत मै मानस अपरोक्षज्ञान ताका फल है। संक्षेपशारीरकानुसारिमत मै असंभावना विपरीत भावना की निवृत्ति श्रवण का फल है। परंतु श्रवणविधि नियमविधि है। या अर्थ मै विवाद नहि। औ कितने ग्रंथकार तौ श्रवणविधि परिसंख्याविधि हि माने हैं। तिनका यह तात्पर्य है। औषधिज्ञान वास्ते चरकसुश्रुतादि ग्रंथ श्रवण मै प्रवृत्ति होवै तहां मध्य मै व्यापारांतर मै बी प्रवृत्ति होयजावे है। तैसे ब्रह्मज्ञान वास्ते वेदांतश्रवण मै प्रवृत्त अधिकारी की मध्य मै व्यापारांतर मै बी प्रवृत्ति होवैगी ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै परिसंख्याविधि मान्या चाहिये। यद्यपि वेदांतश्रवणादिक हि ब्रह्मज्ञान के साधन हैं व्यापारांतर ताका साधन नहि। यातैं ब्रह्मज्ञान वास्ते वेदांतश्रवणादि करै। ताकी व्यापारांतर मै प्रवृत्ति कहना संभवै नहि। तथापि जैसे चरकसुश्रुतादि वैदिक ग्रंथन का विचार हि औषधिज्ञान का साधन है। तासै भिन्न व्यापार तैं औषधि का ज्ञान होवै नहि तौ बी विषयवासना तैं व्यापारांतर मै प्रवृत्ति होय जावै है तैसे भेद वासना तैं ब्रह्मज्ञान के असाधन-

रूप बी व्यापारांतर मै प्रवृत्ति संभवै हैं ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै परिसंख्याविधि संभवै है। यद्यपि सुश्रुतादि श्रवणकाल मै व्यापारांतर के हुये बी औषधि का ज्ञान होवै है। तैसे वेदांतश्रवणकाल मै व्यापारांतर हुये बी ब्रह्मज्ञान का संभव होने तैं परिसंख्याविधि निष्फल हैं। तथापि 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' 'तमेवैकं जानथ आत्मान मन्यावाचो विमुंचथ' 'आसुप्ते रामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया' इत्यादिक श्रुति स्मृति वाक्य मुमुक्षु कूं व्यापारांतर का निषेध करे हैं। व्यापारांतर के होतैं बी वेदांतश्रवण तैं ज्ञान मानेसो निष्फल होवैंगे। यातैं तिनकी सफलता वास्ते औ श्रवणविधि की सफलता वास्ते बी निरंतर किया श्रवणहि ज्ञान का साधन मान्या चाहिये। कादाचित्क श्रवण तैं ज्ञान होवै नहि। यद्यपि उभयप्राप्तावितरव्यावृत्तिबोधकोविधिः परिसंख्याविधिः अर्थ यह—दो पदार्थों की साथहि प्राप्ति हुये अपर पदार्थ की निवृत्ति का बोधकविधि परिसंख्याविधि कहिये है। यह परिसंख्याविधि का लक्षण है। जहां एक कार्य मै उपयोगिरूप तैं दो पदार्थ साथहि प्राप्त होवैं तहां इतर की निवृत्ति वास्ते परिसंख्याविधि होवै है। जैसे एक यज्ञ मै उपयोगीरूप तैं अश्व, गर्धभ उभय रशना ग्रहण की साथहि प्राप्ति हुये गर्धभरशना ग्रहण की निवृत्ति वास्ते 'अश्वाभिधानीमादत्ते' यह परिसंख्याविधि है।

श्रवणकाल मै प्राप्त व्यापारांतर का ब्रह्मज्ञान मै उपयोग नहि। यातैं एक कार्य मै उपयोगिरूप सै श्रवण के साथ व्यापारांतर की अप्राप्ति तैं ताकी निवृत्ति वास्ते परिसंख्याविधि संभवै नहि। तथापि उपयोगि व्यापारांतर की प्राप्ति तैं हि ताकी निवृत्ति वास्ते विधि होवै यह नियम नहि। काहे तैं तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद मै सूत्रकार-भाष्यकार ने अनुपयोगि व्यापारांतर की बी पक्ष मै प्राप्ति तैं निदिध्यासन मै नियमविधि का अंगीकार किया है। तैसे श्रवणकाल मै प्राप्त अनुपयोगी बी व्यापारांतर की निवृत्ति वास्ते परिसंख्याविधि संभवै है। इसरीति सै 'नियमः परिसंख्या वा विध्यर्थोऽत्रभवेद्यतः। अनात्मादर्शनेनैव-परात्मानमुपास्महे'॥ या वार्तिकवचन के अनुसारी कोई ग्रंथकार श्रवण मै परिसंख्याविधि माने हैं। इसरीति सै श्रवणादिक विधेय हैं या पक्ष मै मतभेद सै विधि का निरूपण किया औ वाचस्पतिमिश्र के अनुसारी तौ श्रवणादिकन मै विधिहि नहि माने हैं। तिनका यह तात्पर्य है—'आत्मा श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' या वचन मै आत्मा श्रवणादिकन का साक्षात् विषय प्रतीति होवै है श्रवण कूं तात्पर्य का विचाररूप मानके अनुष्ठेय क्रियारूप माने ताका साक्षात् विषय आत्मा संभवै नहि यातैं साक्षात् आत्मगोचर मनन निदिध्यासन ज्ञानरूप हैं। तैसे श्रवण बी ज्ञानरूपहि मान्या चाहिये

क्रियारूप कहना संभवै नहि । यातैं शास्त्र, आचार्य उपदेशजन्य आत्मज्ञानहि श्रवण है तात्पर्य का विचाररूप नहि । काहेतैं मानस क्रियारूप विचार का साक्षात् विषय आत्मा संभवै नहि । औ ज्ञान मै विधिका असंभव है । यातैं श्रवण मै विधि संभवै नहि । शंका । प्रमेयगत असंभावना निवृत्ति के अनुकूल उपपत्तिका विचारहिं मनन है ज्ञानरूप नहि । तैसे निदिध्यासन वी ध्यान क्रियारूप है ज्ञानरूप नहि । यातैं मनन निदिध्यासन की न्यांई श्रवण कूं ज्ञानरूप कहना संभवै नहि । समाधान । 'आत्मा, ब्रह्म स्वभावः, चिद्रूपत्वात् , ब्रह्मवत् । बुद्ध्यादिः, कल्पितः, दृश्यत्वात, शुक्तिरजतादिवत्' इत्यादि अनुमिति ज्ञान-रूपहि मनन है क्रियारूप नहि । 'आगमार्थ विनिश्चित्यै मंतव्यइति भण्यते । वेदशब्दानुरोध्यत्र तर्कोपि विनियुज्यते ॥'पदार्थ विषयस्तर्कस्तथैवानुमितिर्भवेत्' । या वार्तिक वचन मै वी मनन कूं अनुमितिरूपहि कहा है । श्रुत अर्थ की दृढता वास्ते श्रुति मै तर्करूप मननका विधान है । श्रुति से अविरुद्ध तर्ककाहि मननरूप तैं विधान है । विरुद्ध का नहि । तत्त्वं पदार्थहि तर्करूप मननका विषय है । वाक्यार्थ ताका विषय नहि । काहेतैं वाक्यार्थ वाक्य का हि विषय होवै है । जैसे मननरूप तर्क वेदका अविरोधी है तैसेहि अनुमिति रूप है यह वार्तिकवचन का अर्थ है । न्यायशास्त्र मै वी मनन कूं अनुमितिरूपहि

माने हैं। इसरीतिसै मनन ज्ञानरूप है क्रियारूप नहि। तैसे निदिध्यासन बी वार्त्तिककारके मत मै ज्ञानरूपहि है ध्यान क्रियारूप नहि। तथाहि—बृहदारण्यक मै 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' या वाक्य तैं दर्शन श्रवणादिकनका निरूपण करके तासै अनंतर 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितं' इत्यादि वाक्य तैं तिनका अनुवाद किया है। तहां दर्शन श्रवण मनन का अनुवाद तौ 'दर्शनेन श्रवणेन मत्या' इसरीति सै दर्शनादिकन के समान पदन तैं है। निदिध्यासन का विज्ञान पद तैं अनुवाद है। यातैं यह शंका होवै है—दर्शनादिकन की न्यांई निदिध्यासन का अनुवाद बी निदिध्यासनेन इसरीति सै समानपद तैंहि हुवा चाहिये। विज्ञानेन या निदिध्यासनके असमान पद तैं अनुवाद संभवै नहि। या शंका का वार्त्तिककारने यह समाधान कहा है— निदिध्यासनपद ध्यान का वाचक है यातैं यह शंका होवै है—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' या वाक्य तैं श्रवण मननकी न्यांई दर्शन का साधनरूप करके ध्यान का विधान है। या शंका की निवृत्ति वास्ते अनुवादवाक्य मै विज्ञानपद तैं निदिध्यासन का अनुवाद है। पूर्ववाक्य मैं निदिध्यासन विज्ञानरूप विवक्षित है ध्यानरूप नहि। यातैं ध्यानविधि

की शंका संभवै नहि। या अभिप्राय तैं अनंतर वाक्य मै विज्ञानपद तैं निदिध्यासन का अनुवाद है। औ श्रवण मनन सैं अनंतर ध्यान का विधान संभवै बी नहि। काहेतैं तिनके अभ्यास तैं तत्त्वंपद के लक्ष्यार्थ का निर्णय हुये वाक्यार्थज्ञान हि हुवा चाहिये ध्यानविधि का अवकाश नहि। यद्यपि श्रवण मनन तैं प्रमाण प्रमेयगत असंभावना की निवृत्ति होवै है। विपरीतभावनारूप प्रतिबंधक होतैं वाक्यार्थज्ञान संभवै नहिं यातैं ताकी निवृत्ति वास्ते ध्यान-विधि मान्या चाहिये। तथापि श्रवण मनन के हि वारंवार अभ्यास तैं विपरीत भावना की बी निवृत्ति संभवै है ध्यानविधि निष्फल है। औ वाक्यार्थबोधतैंहि विपर्यय की निवृत्ति होवै है ताका तासै प्रतिबंध कहना संभवै बी नहि। काहेतैं विपर्यय मै स्वविरोधिदर्शन की प्रतिबंधकता लोकप्रसिद्ध नहि। जो विपर्यय कूं स्वविरोधिदर्शन का प्रतिबंधक माने तौ रजतादिकन का विपर्यय होतैं शुक्ति आदिकनका ज्ञानहि नहि होवैगा। ताकी तासै निवृत्ति तौ अत्यंत दूर है। इसरीतिसैं निदिध्यासन ध्यानरूप नहि किंतु प्रयत्न निरपेक्ष बोधहि निदिध्यासन है ताकी उत्पत्तिपर्यंत श्रवण मनन कर्तव्य हैं तिनतैं पदार्थ-निर्णय सै अनंतरहि वाक्यजन्य साक्षात्कार होवै है। तासै कृतकृत्य होवै है। इसरीति सै वार्त्तिककार के मत मै मनन निदिध्यासन ज्ञानरूप हैं। तैसे श्रवण बी ज्ञानरूप

संभवै है। शंका संभवै नहि। यद्यपि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' या वाक्य मै द्रष्टव्य-पद का अर्थ दर्शन है। दर्शन औ विज्ञान पर्याय शब्द हैं। यातैं निदिध्यासितव्यपद का अर्थ विज्ञानमाने दर्शन-पद तैं ताकी पुनरुक्ति होवैगी। तथापि द्रष्टव्यपद तैं दर्शनका उद्देश करके 'श्रोतव्यो मंतव्यः' या वचन तैं श्रवण मनन का विधान है। निदिध्यासितव्यपद तैं उद्दिष्ट दर्शनरूप फल का उपसंहार है। अथवा द्रष्टव्य-पद तैं विचार हेतु आपातदर्शन का अनुवाद है। निदि-ध्यासितव्यपद तैं विचार के फल साक्षात्कार का अनुवाद है। यातैं वार्त्तिककारके मत मै पुनरुक्ति दोष नहि। इसरीति सै ज्ञानरूप होने तैं श्रवणादिकन मै विधि संभवै नहि। या अभिप्रायतैंहि चतुर्थ सूत्र के व्याख्यान मै भाष्यकारने दर्शन श्रवणादिकन की स्तुति मै तव्य प्रत्यय की लक्षणा कहि है। विधि ताका अर्थ नहि। औ जो श्रवणादिकन कूं क्रियारूप मान लेवैं तो बी तिनमै विधि नहि संभवै है। काहे तैं वेदांतन के तात्पर्य का विचारहि श्रवण है। तात्पर्य निर्णयद्वारा तात्पर्य मै भ्रम-संशयादिकन की निवृत्तिहि ताका फल है। तैसे मनन बी प्रमेयगत असंभावना निवृत्ति के अनुकूल उपपत्तिका विचाररूप है। निदिध्यासन ध्यानक्रियारूप है तिनका फल बी असंभावना विपरीतभावना की निवृत्ति है ब्रह्म-

ज्ञान तिनका फल नहि। काहेतैं प्रतिबंधक निवृत्तिद्वारा श्रवणादिकन का ब्रह्मज्ञान मै उपयोग तौ संभवै है। परंतु प्रमाण का फल ब्रह्मज्ञान क्रियारूप श्रवणादिकन का साक्षात्फल संभवै नहि। प्रतिबंधक निरास की हेतुता श्रवणादिकन मै अन्वयव्यतिरेक तैंहि प्राप्त है। यातैं अपूर्वविधि संभवै नहि। औ जैसे तुष निवृत्ति मै साधनांतर नखविदलन पक्ष मै प्राप्त है। यज्ञ मै अश्व औ गर्धभ रशना का ग्रहण मिलके प्राप्त हैं तहां नियमविधि वा परिसंख्याविधि होवै है। तैसे प्रतिबंधक निवृत्ति मै श्रवणादिकन सै भिन्न साधन, पक्ष मै वा मिलके प्राप्त नहि। यातैं नियमविधि वा परिसंख्याविधि बी संभवै नहि। जो गुरुरहित विचारपक्ष मै प्राप्त साधनांतर है ताकी निवृत्ति वास्ते गुरुसापेक्ष विचार मैं नियमविधि पूर्व कहा सो संभवै नहि। काहेतैं 'तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्' या वाक्य तैं ब्रह्मज्ञान वास्ते गुरु अभिगमन का विधान है। वेदांतजन्य ज्ञान मै गुरु अभिगमन साक्षात् साधन तौ संभवै नहि। औ दृष्टद्वार संभवै तहां अदृष्ट कूं द्वार मानै नहि। यातैं गुरुसापेक्ष विचार द्वाराहि गुरु अभिगमन, ज्ञान का हेतु सिद्ध होवै है। तासै हि गुरुरहित विचार की निवृत्ति संभवै है। गुरुसापेक्ष विचार मै नियमविधि का अंगीकार निष्फल है। औ जो कहा गुरु अभिगमन विधिविचार विधि का अंग है विचार-

विधि विना गुरु अभिगमन विधि का स्वरूपहि असिद्ध है। तासैं विचारविधि की निष्फलता कहना संभवै नहि। सो बी संभवै नहि। काहेतैं गुरु अभिगमनविधि का फल ब्रह्मज्ञान है। ताकी उत्पत्ति मै द्वार की अपेक्षा हुये लोक प्रसिद्ध गुरुसापेक्ष विचार तैंहि अपेक्षा शांत होवै है। विचारविधि की अपेक्षा के अभाव तैं गुरु अभिगमन विधि ताका अंग संभवै नहि औ विचार की न्यांई गुरु अभिगमन् बी ज्ञान का हि अंग संभवै है। यातैं बी विचार का अंग संभवै नहि। इस रीति सै गुरु अभिगमन विधि तैंहि गुरुरहित विचार की निवृत्ति सिद्ध है। ताकी निवृत्ति वास्ते गुरुसापेक्ष विचार मै नियमविधि संभवै नहि। जो तात्पर्य भ्रमादिकन की निवृत्ति वास्ते न्यायादिशास्त्र विचार पक्ष मै प्राप्त साधनांतर है ताकी निवृत्ति वास्ते वेदांतश्रवण मै नियमविधि कहा सो बी संभवै नहि। काहेतैं वेदांततात्पर्य मै भ्रमादिकन का हेतुहि द्वैतशास्त्र का विचार है तिनका निवर्तक संभवै नहि। यातैं तात्पर्य भ्रमादि निवृत्ति मै भिन्नात्मविचारपक्ष मै प्राप्त साधनांतर संभवै नहि। जो भिन्नात्मज्ञान मोक्षका साधन है या भ्रम तैं न्यायादिशास्त्र विचार मै प्रवृत्ति का संभव कहा सो बी असंगत है। काहेतैं ईश्वरकृपा तैं अद्वैत मै श्रद्धा होवै है तासै रहित पुरुष कूं यह भ्रम बी संभवै है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या

वाक्य मैं भिन्नात्मविचार का हि विधान है अद्वितीय आत्मविचार का नहि। यातैं न्यायादिशास्त्र विचार मैं भ्रममूलक प्रवृत्ति का वारण विधि शत तैं बी होय सके नहि। तात्पर्य यह—निष्काम कर्मन तैं अंतःकरण शुद्ध होवै है। तामैं च्यार साधन सहित दृढविविदिषा होवै तब श्रवणादिकन मैं पुरुष अधिकारी होवै है या मैं विवाद नहि। निष्काम कर्मन तैं प्रथम यह निश्चय होवै है मोक्ष का साधन अद्वितीय आत्मज्ञान है भिन्नात्मज्ञान नहि। तासैं अद्वितीय आत्मज्ञान मैं हि दृढ इच्छारूप विविदिषा होवै है भिन्नात्मज्ञान मैं होवै नहि। तासैं अद्वितीय आत्मज्ञान के साधन अद्वितीय आत्म श्रवणादिकन मैं हि मुमुक्षु की प्रवृत्ति होवै है भिन्नात्मज्ञान के साधन भिन्नात्म श्रवणादिकन मैं प्रवृत्ति होवै नहि। काहेतैं भ्रममूलक भिन्नात्म विविदिषातैं श्रवणादिद्वारा भिन्नात्मज्ञान हि होवैगा अद्वितीय आत्मज्ञान संभवै नहि। औ 'ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना' या स्मृति तैं ईश्वरार्पित कर्मन का फल अद्वितीय आत्मज्ञान है भिन्नात्मज्ञान तिनका फल नहि। यज्ञादि संपादित ईश्वरानुग्रह तैं हि अद्वितीय आत्मज्ञानकी इच्छारूप अद्वैतवासना होवै है। यह स्मृति वचनका अर्थ है। यातैं यह सिद्ध हुवा—भिन्नात्मज्ञान मोक्ष का साधन है। इसरीति से भ्रांतपुरुष कूं अद्वैतात्मज्ञानादिकन मैं

इच्छा श्रद्धादिक हि होवैं नहि । याहितैं श्रवणविधि मै ताका अधिकार बी संभवै नहि। ताकूं भिन्नात्मविचार की निंवृत्ति वास्ते अद्वितीय आत्मविचार मै नियम का विधान् निष्फल है। और जो निर्गुण उपासना पक्ष मैं प्राप्त साधनांतर है ताकी निवृत्ति वास्ते विचार मै नियमविधि कहा सो बी संभवै नहि । काहेतैं विचार मै जाका सामर्थ्यनहि ताकी निर्गुण उपासना मै योग्यता है। विचार मै समर्थ अधिकारी की विचार मैं हि योग्यता है निर्गुण उपासना मै नहि। काहैतैं विचार कूं त्याग के उपासना हि करै ताकूं भेदवादि पुरुषन के संबंध तैं पुनः तत्त्व मै संशय होय जावैगा। निश्चयरूप ब्रह्मज्ञान संभवै नहि। विचार मै असमर्थ कूं वी भेदवादी का संबंध नहि होवै या प्रकार तैं निरंतर उपासना करी चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा—विचार मै समर्थ कूं योग्यता के अभाव तैं हि निर्गुण उपासना अप्राप्त है ताकी निवृत्ति वास्ते विचार मै नियमविधि निष्फल है। औ जो सगुण उपासना की निवृत्ति वास्ते नियमविधि कहा सो बी संभवै नहि। काहेतैं सर्वथाविरक्त का श्रवण मै अधिकार है। ब्रह्मलोक की प्राप्तिद्वारा मुक्ति साधन सगुण उपासना मै ताकी प्रवृति संभवै नहि। औ तुष निवृत्ति मै अवघात निरपेक्ष नखविदलन पक्ष मै प्राप्त साधन है। तैसे सगुण उपासना श्रवणादि निरपेक्ष पक्ष मै प्राप्त साधन नहि,काहेतैं

सगुण उपासना श्रवणादि द्वारा हि ज्ञान का साधन है साक्षात् साधन नहि। यातैं बी ताकी निवृत्ति वास्ते श्रवण मैं नियमविधि संभवै नहि। जो सगुण उपासना तैं सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार श्रवणादि विना होवै है। तैसे निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार बी तिनसै विना कहैं तौ संभवै नहि। काहेतैं श्रवणादिकन मैं प्रतिबंधक निवृत्ति द्वारा दृढ-साक्षात्कार की हेतुता विवरणानुसारि मतके निरूपण मैं अन्वयव्यतिरेकतैं पूर्व सिद्ध करी है ताका त्याग तौ होय सके नहि। यातैं सगुण उपासना तैं बी श्रवणादिद्वारा हि निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार मान्या चाहिये। सगुण साक्षात्कार की न्यांई ताका साक्षात् हेतु सगुण उपासना संभवै नहि। किंच प्रथमाध्यायके तृतीयपाद मैं सूत्रकार भाष्यकारादिकन ने पूर्व जन्म मैं सगुण उपासक देवादिकन कूं श्रवणादि द्वारा हि ज्ञान सिद्ध किया है। केवल सगुण उपासना तैं ज्ञान माने ताका विरोध होवैगा। यातैं बी केवल सगुण उपासना तैं निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कहना संभवै नहि। यद्यपि सकल सगुण उपासकन कूं श्रवणादिकन तैं हि ज्ञान होवै यह नियम नहि। काहेतैं हिरण्यगर्भ ने बी पूर्व जन्म मैं सगुण उपासना करी है। परंतु बृहदारण्यक भाष्य मैं ताकूं श्रवणादि विना ज्ञान कहा है। तथापि तहां हि भाष्यकार ने साक्षात ज्ञेय विषयक होने तैं श्रवणादिकन की ज्ञान मैं आवश्यकता

कहि है। यातैं हिंरण्यगर्भ कूं बी वामदेव की न्यांई जन्मांतर के श्रवणादिकन तैं ज्ञान मान्या चाहिये। श्रवणादि विना ज्ञानकथन भाष्यकार का प्रौढिवाद है। औ कारण विना कार्य होवै नहि। यातैं वामदेव की न्यांई हिरण्यगर्भ कूं जन्मांतर के साधन तैंहि ज्ञान कहना होवैगा। तहां ज्ञान के प्रसिद्ध साधन श्रवणादिक हि जन्मांतर मैं साधन मान्या चाहिये यातैं बी हिरण्यगर्भ कूं श्रवणादि विना ज्ञान सिद्ध होवै नहि। जो पूर्व जन्म मैं हिरण्यगर्भ सगुण उपासनानिष्ठ है ताकूं श्रवणादिकन का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहेतैं एक जन्म मैं सगुण उपासना मात्र तैं हिरण्यगर्भपदकी प्राप्ति माने सकल सगुण उपासकन कूं साक्षात् हिरण्यगर्भ की प्राप्ति हुयी चाहिये। यातैं हिरण्यगर्भ का निरतिशय ऐश्वर्य शास्त्र तैं निश्चय करके ताकी प्राप्ति वास्ते ध्रुव प्रह्लादादिकन की न्यांई अनेक जन्म मैं सगुण निर्गुण उपासनादि करै ताकूं हिरण्यगर्भ-पद की प्राप्ति मानी चाहिये। श्रवणादिक बी निर्गुण उपासनारूप हैं। यातैं पूर्व एक जन्म मैं तौ हिरण्यगर्भ कूं सगुण निर्गुण उपासना नहि बी संभवै हैं। परंतु जन्म-भेद तै संभवै हैं। यातैं वामदेव की न्यांई हिरण्यगर्भ मैं ी जन्मांतर के श्रवणादिकन की कल्पना संभवै है। पूर्व जन्म मैं किये श्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति मैं हेरण्यगर्भपद की इच्छा प्रतिबंधक है ताकी निवृत्ति हुये

हिरण्यगर्भ कूं ज्ञान संभवै है। यद्यपि विचार मै जाका सामर्थ्य नहि ताकूं बी निर्गुण उपासना तैं ज्ञानकी उत्पत्ति तृतीय परिच्छेद मै कहैंगे। यातैं श्रवणादिकन तैं हि ज्ञान होवै यह नियम नहि। तथापि विचार समर्थ अधिकारी कूं विचार विना ज्ञान होवै नहि यह नियम है। यद्यपि या प्रसंग मै श्रवणादिकन कूं बी निर्गुणउपासनारूप कहा है यातैं तिनतैं उत्पन्न हुवा ज्ञान बी निर्गुणउपासना तैं कहना संभवै है। तथापि निर्गुणब्रह्म का समालोचन-रूप होने तैं श्रवणादिकन मै उपासना व्यवहार गौण है मुख्य नहि। 'तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्नम्' इत्यादि श्रुतिगत योगपद का वाच्य मुख्य निर्गुण उपासना तृतीय परिच्छेद मै कहैंगे। तासै उत्पन्न हुवा ज्ञानहि निर्गुण उपासना तैं कहिये है। यातैं यह सिद्ध हुवा जो अदृष्ट-द्वारा तत्त्वज्ञान का साधन शास्त्र मै कहा है सो सगुण उपासना की न्यांई विचार मै समर्थ अधिकारी कूं सांख्य-मार्गद्वारा तत्त्वज्ञान का साधन है असमर्थ कूं योगमार्ग-द्वारा ताका साधन है अदृष्ट मात्र तैं ज्ञान होवै नहि। जो अदृष्ट मात्र तैं ज्ञान माने तौ जीवन के हेतु अदृष्ट तैं हि बालक की स्तनपानादिकन मै प्रवृत्ति संभवै है। जन्मांतर के संस्कार तैं इष्टसाधनता की स्मृति ताका हेतु सर्वसंमत है ताका त्याग होवैगा। जो दृष्ट कारण विना कार्य होवै नहि। यातैं इष्टसाधनता की स्मृति हेतु कहैं

तौ अधिकारीभेद तैं सांख्ययोग मार्ग बी हेतु मान्या चाहिये। अदृष्ट मात्र तैं ज्ञान कहना संभवै नहि। तत्त्वज्ञान मैं मार्गद्वय का नियम पंचदशी आदिक ग्रथन मैं कहा है। औ या ग्रंथ मै बी तृतीय परिच्छेद मै कहैंगे। यातैं यह निष्कर्ष हुवा—विचार मै समर्थ त्रैवर्णिक ज्ञानाधिकारी कूं वेदांतश्रवण कर्तव्य है। तासै भिन्न कूं इतिहास पुराणादि श्रवण कर्तव्य है। विचार मै असमर्थ कूं योगपद वाच्य निर्गुण उपासना कर्तव्य है। मार्गद्वय का असंभव हुये ताके योग्य जन्मप्राप्ति तैं ताके अनुष्ठानद्वारा ज्ञान होवै है। इसरीति सै सगुण उपासना श्रवणादिद्वारा ज्ञान का साधन है ताकी निवृत्ति वास्ते बी विचार मै नियमविधि संभवै नहि। जो इतिहास पुराणादिकन की निवृत्ति वास्ते विचार के विषय वेदांत मै नियमविधि कहा सो बी संभवै नहि। काहेतैं सांगवेदाध्ययन तैं जाकूं आपात ब्रह्मज्ञान हुवा है ताकूं दृढ ज्ञान की इच्छा तैं विचार कर्तव्य है। किसके विचार तैं दृढज्ञान होवै या अन्वेषणा तैं यह बुद्धि होवै है—वेद के अंतर्गत वेदांतवाक्यन तैं पूर्व आपात ज्ञान हुवा है तिनतैं हि दृढ होवैगा। यातैं वेदांत हि विचारणीय हैं। इतिहास पुराणादिक नहि। इसरीति सै विधि विनाहि इतिहासादिकन की निवृत्ति सिद्ध है। तिनकी निवृत्ति वास्ते वेदांत मै नियमविधि संभवै नहि। औ जो व्यापारांतर की निवृत्ति वास्ते परिसंख्याविधि कहा सो बी

संभवै नहि। काहेतैं स्वाश्रमधर्म विधिके विरोधतैं गृहस्थादिकन के व्यापारांतर की निवृत्ति कहना तौ संभवै नहि। श्रवणविधि तैं संन्यासी के व्यापारांतर की निवृत्ति कहैं तथापि नहि संभवै है काहेतैं 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' या श्रुति मै ब्रह्म संस्थता धर्मक संन्यासाश्रम का विधान भाष्यकारादिकन नें सिद्ध किया है। शमदमादि सहित श्रवणादिनिष्ठताहि ब्रह्मसंस्थतापद का अर्थ है तासैहि संन्यासी के व्यापारांतर की निवृत्ति सिद्ध है 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या वाक्य मै ताका उपदेश निष्फल है। इसरीतिसै श्रवणादिकन मै किसी प्रकार का विधि बी संभवै नहि। जो तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद मै सूत्रकार भाष्यकारने श्रवणादिकन मै विधि अंगीकार किया है। तिनमै विधि नहि मानै ताका विरोध कहैं तौ संभवै नहि काहेतैं ज्ञानरूप होनेतैं तिनमै विधि का असंभव पूर्व कहा है। क्रियारूप मानै तौ बी श्रवणादिकन मै प्रतिबंधक निवृत्ति की हेतुता अन्वयव्यतिरेक तैं प्राप्त है प्राप्त अर्थ मै विधिकी अपेक्षा होवै नहि। यातैं श्रवणादिमात्र तैं आत्मा का दर्शन होनेतैं आत्म श्रवणादिक अति प्रशस्त हैं। इसरीति सै स्तुति तैं श्रवणादिकन मै उत्साहपूर्वक पुरुष की प्रवृत्ति होवै है। यातैं 'श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' यह वाक्य स्तुतिद्वारा पुरुष का प्रवर्तक है। पुरुष का प्रवर्तकहि विधि होवै है। उक्तरीति सै मुख्य विधिरूपता तौ संभवै नहि।

यातैं 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इत्यादि मुख्य विधि मै प्रवर्तकत्व गुण रहे है। तैसे 'श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' या वाक्य सै बी प्रवर्तकत्वगुण का संबंध होनेतैं गौणविधिरूपता मानी चाहिये या अभिप्राय तैं सूत्रकार भाष्यकार ने विधि व्यवहार किया है यातैं विरोध नहि। औ विचार मै समर्थ अधिकारी कूं श्रवणादिकन तैंहि ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति का नियम पूर्व सिद्ध किया है। यातैं श्रवणादिकन का अनुष्ठान बी विधि विना हि सिद्ध होवै है। औ जो तिनके अनुष्ठान वास्ते विधि की अपेक्षा होवै तौ बी 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' या वाक्य मै विधि का अंगीकार निष्फल है। तथाहि– 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' या वाक्य मै वेदाध्ययन का विधान है ताका फल अर्थज्ञान मीमांसक माने हैं। वेद का अर्थ धर्म औ ब्रह्म है विचार विना ताका ज्ञान संभवै नहि। यातैं 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' या अध्ययन विधि तैं हि कर्मकांड का विचाररूप श्रवण सिद्ध होवै है। 'कर्म वाक्यविचारः कर्तव्यः' इसरीति सै कर्मकांड के श्रवण मै पृथक् विधि नहि। तैसे वेदांत का विचाररूप श्रवण बी अध्ययन विधि तैं हि सिद्ध होवै है। श्रोतव्य वाक्य मै पृथक् विधि की अपेक्षा नहि। इसरीति सै वाचस्पति मिश्र के अनुसारि मत मै ज्ञानरूप मानै अथवा क्रियारूप मानै किसीरीति सै बी श्रवणादिकन मै विधि का संभव नहि। यातैं 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः

श्रोतव्यः मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' या वाक्य मै विधि का अंगीकार नहि किंतु श्रोतव्यादि पद उत्तरवर्त्ती तव्य प्रत्यय की श्रवणादि स्तुति मै लक्षण है। मुमुक्षु की उत्साह पूर्वक श्रवणादिकन मै प्रवृत्ति हि स्तुति का फल है यातैं तव्य प्रत्यय व्यर्थ नहि। इसरीति से 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' इत्यादि श्रुति उक्त ब्रह्मविचार का निरूपण किया। अब विचारणीय ब्रह्म के लक्षण का निरूपण करे हैं। ब्रह्म का लक्षण दो प्रकार का है। एक स्वरूप लक्षण है दूसरा तटस्थ लक्षण है। 'सत्य ज्ञानानंदाः स्वरूपं लक्षणं' अर्थ यह—सत्यज्ञान आनंदस्वरूप लक्षण है। औ 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति' या श्रुति मै जन्म स्थिति लय का कारणत्वतटस्थ लक्षण कहा है। तहां यह जिज्ञासा होवै है—जन्मादि त्रितय का कारणत्वरूप एकहि ब्रह्मलक्षण श्रुति मै विवक्षित है। अथवा जन्मकारणत्वं स्थिति कारणत्वं लयकारणत्वं इसरीति सै अनेक लक्षण विवक्षित हैं। तहां कौमुदीकार यह कहे हैं—फल के अभाव तैं लक्षण का मेलन संभवै नहि। यातैं जन्मादिकन मै एक एक सै निरूपित कारणत्व परस्पर निरपेक्ष होने तैं अनेक लक्षण श्रुति मै विवक्षित हैं। जन्मादि त्रितय निरूपित कारणत्वरूप एक लक्षण विवक्षित नहि। यद्यपि 'यतो भूतानि जायंते तद्ब्रह्म, येन जीवंति तद्ब्रह्म, यदभिसंविशंति तद्ब्रह्म' इसरीति सै श्रुति पाठ

होवै तौ अनेक लक्षण संभवैं। श्रुति पाठं इसरीति से है नहि। यातैं अनेक लक्षण संभवैं नहि। तथापि लक्षण निर्दोष हुवा चाहियें। अनेक लक्षणमानै बी असंभवादि दोष होवैं नहि। यातैंअनेक लक्षण माने चाहियें। तथाहि— ब्रह्म मै कारणता श्रुति सिद्ध है। यातैं असंभव दोष नहि। औ लक्ष्य व्यक्ति अनेक होवैं तिनमै एक मै लक्षण वर्त के अन्य मै नहि वर्ते तौ अव्याप्ति होवै। लक्ष्य ब्रह्म एक व्यक्ति है यातैं अव्याप्ति बी नहिं औ लक्ष्य ब्रह्म से भिन्न अलक्ष्य मै लक्षण जावैं नहि। यातैं अतिव्याप्ति बी होवै नहि। इसरीति सै निर्दोष होने तैं अनेक बी लक्षण संभवै हैं। यद्यपि सांख्य मत मै प्रधान कूं जगत् का उपादान माने हैं यातैं प्रधान जगत् के जन्म का कारण संभवै है। आधार होने तैं स्थिति का कारण है। प्रधान मै हि प्रपंच का लय होवै है। यातैं लय का कारण है। इसरीति सै प्रधान मै अतिव्याप्तिहोने तैं अनेक लक्षण संभवैं नहि। तथापि 'जन्म कर्तृत्वेसति, स्थिति कर्तृत्वेसति, लयकर्तृत्वेसति' इसरीति से तीन विशेषण कहकर तिन मै प्रत्येक विशेषण के अंत मै जगदुपादानत्व कहैं तौ अनेक लक्षण सिद्ध होवै हैं। जड प्रधान मै कर्तृत्व के अभाव तैं अतिव्याप्ति होवै नहि। जो जगदुपादानत्व कूं त्याग के जगत् जन्म कर्तृत्वादिक हि ब्रह्म के लक्षण करैं तौ अदृष्ट द्वारा जीव बी जगत् के जन्मादिकन का कर्ता है। तामै अतिव्याप्ति होवैगी।

परिच्छिन्न जीव जगत् का उपादान संभवै नहि यातैं अति-
व्याप्ति होवै नहि । यद्यपि 'साक्षात् जगत् जन्म कर्तृत्वं,
नियंतृतया स्थिति हेतुत्वं, संजिहीर्षया संहर्तृत्वं च ब्रह्मण-
स्तटस्थ लक्षणं' इसरीति सै लक्षण करैं तौ जीव मै अति-
व्याप्ति होवै नहि । काहेतैं अदृष्ट द्वारा जगत् के जन्मादि
कर्ता जीव मै साक्षात् जन्मकर्तृत्वादिक संभवैं नहि । यातैं
जगदुपादानत्वरूप विशेष्य व्यर्थ है । तथापि 'जगदुपा-
दानत्वं ब्रह्मणस्तटस्थ लक्षणं' इसरीति सै जगदुपादानत्व
बी भिन्न हि लक्षण संभवै है । माया ब्रह्मगत उपादान ताका
प्रयोजक मात्र है उपादान नहि । यातैं जगदुपादानत्वरूप
ब्रह्म लक्षण की माया मै अतिव्याप्ति नहि । प्रधानादिक
प्रमाण शून्य हैं यातैं तिन मै बी अतिव्याप्ति होवै नहि ।
इसरीति सै लक्षण वाक्य मै साक्षात् जगत् जन्म कर्तृत्व,
नियंतारूप सै स्थिति हेतुत्व, संहार इच्छा तैं संहर्तृत्व,
जगदुपादानत्वरूप अनेक लक्षण विवक्षित हैं । या
अभिप्राय तैं हि सूत्रकार भाष्यकार ने जगत्कर्तृत्वादिकन मै
एक एक ब्रह्म का लिंग कहा है इसरीति से कौमुदीकार जीव
भिन्न ईश्वरके अनेक लक्षण मै लक्षणवाक्य का तात्पर्य माने हैं ।
औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं 'यतोवा इमानि भूतानि
जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंतितद्वि-
जिज्ञासस्व तद्ब्रह्म' इसरीति सै संपूर्ण लक्षण वाक्य है । तामै
'तद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म' या कहने तैं वाक्यार्थरूप . द्विती

ब्रह्म के लक्षण मैंहि लक्षण वाक्य का तात्पर्य प्रतीत होवै है। तत्पदवाच्य ईश्वर के लक्षण मै ताका तात्पर्य कथन कौमुदीकार का असंगत है। काहेतैं तद्विजिज्ञासस्व या वचनतैं कारण ब्रह्म कूं जिज्ञास्य कहा है। जाके ज्ञान तैं मोक्ष होवै सोई जिज्ञास्य कहा चाहिये। वाक्यार्थ रूप अद्वितीय ब्रह्म के ज्ञान तैं हि मोक्ष वेदांतशास्त्र मै प्रसिद्ध है। तत्पदार्थ मात्र के ज्ञान तैं नहि। यातैं वाक्यार्थरूप अद्वितीयब्रह्म के लक्षण मैंहि लक्षणवाक्य का तात्पर्य मान्या चाहिये याहि तैं एकहि ब्रह्म लक्षण मै ताका तात्पर्य मान्या चाहिये अनेक लक्षण मै तात्पर्य संभवै नहि। तथाहि—घटके निमित्त कारण दंड कुलालादिक बी ताके जन्म औ स्थिति के कारण हैं यातैं उपादानता की सिद्धि वास्ते 'यत्प्रयंत्यभिसंविशंति' या वचनं तैं ब्रह्म मै प्रपंच का लय कहा है ताका यह तात्पर्य है—जड़ चेतन सर्वभूतन की उपादानता के ज्ञान तैं हि ब्रह्म अद्वितीय सिद्ध होवै है। ब्रह्म मै सर्वभूतन की उपादानता जाने विना ब्रह्म अद्वितीय है यह निश्चय होवै नहि। यद्यपि जीव चेतन नित्य है ताका उपादान ब्रह्म संभवै नहि। तथापि स्वरूप से नित्य हुवा बी जीव,स्थूल सूक्ष्म शरीर विशिष्टरूप तैं कार्य होने तैं ताका बी उपादान ब्रह्म संभवै है। यद्यपि कार्य प्रपंच के होतैं ब्रह्म अद्वितीय है यह बोध संभवै नहि। तथापि उपादान हि कार्य का वास्तव स्वरूप होवै है तासै भिन्न ताका

वास्तव स्वरूप होवै नहि। प्रपंच का वास्तव स्वरूप अस्ति-भाति प्रिय है सो ब्रह्म से भिन्न नहि। नामरूपात्मक जगत् रूप मिथ्या है यातैं सर्व का उपादान होने तैं सर्व का वास्तव स्वरूप ब्रह्महि है। इसरीति से सर्व की उपादानता ज्ञान तैं ब्रह्म वास्तव तैं अद्वितीय है यह बोध संभवै है। अद्वितीय ब्रह्म बोधतैं मोक्ष होवै है। इसरीति से मोक्ष का हेतु अद्वितीय ब्रह्म बोध है। ताका हेतु उपादानता का ज्ञान है ताकी सिद्धि वास्ते प्रपंच का ब्रह्म मैं लय कहा है। यद्यपि उपादान मैं हि कार्य का लय होवै है, अन्य मैं होवै नहि। यातैं ब्रह्म मैं लय कहने तैं हि उपादानता सिद्ध होय सके है। जन्म औ स्थिति की कारणता कथन निष्फल है। तथापि घटका उपादान मृत्तिका है तासै भिन्न कुलाल ताके जन्म का कर्ता है। तैसे प्रपंच की उत्पत्ति का कर्त्ता बी उपादान ब्रह्म से भिन्न हि होवैगा। औ पालनीय प्रजा आदिकन के उपादान तैं भिन्न राजा आदिक तिनका पालन करे हैं। तैसे प्रपंच का पालनकर्त्ता बी उपादान ब्रह्म तैं भिन्नहि होवैगा। या शंका की निवृत्ति वास्ते 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति' या वचन तैं ब्रह्महि प्रपंच के जन्म औ स्थिति का कर्त्ता कहा है। उत्पत्ति औ स्थिति का कर्तृत्व कहने तैं उपादान ब्रह्महि प्रपंच का निमित्त सिद्ध होवै है। यातैं 'अभिन्ननिमित्तो-पादानत्वं ब्रह्मणस्तटस्थ लक्षणं' इसरीति सै एकहि ब्रह्म का

लक्षण सिद्ध होवै है। तासै अद्वितीय ब्रह्म का बोध होवै है। अनेक लक्षण नहि। अभिन्ननिमित्तोपादान पद मै'निमित्तं च तत् उपादानं निमित्तोपादानं' इसरीति सै कर्मधारय समास करके। 'अभिन्नं च तत् निमित्तोपादानं अभिन्ननिमित्तोपादानं' इसरीति सै पुनः कर्मधारय समास है। यद्यपि प्रथम कर्मधारय तैं हि निमित्त औ उपादान का अभेद सिद्ध होने तैं अभिन्नपद व्यर्थ है। तथापि कर्मधारय तैं सिद्ध अभेद एकतां रूप है। भेदघटित तादात्म्यरूप नहि। या अर्थ के बोधन वास्ते पुनः अभिन्नपद है। इसरीति सै ब्रह्म का लक्षण निरूपण किया। लक्षण तैं ब्रह्महि प्रपंच का निमित्त औ उपादान सिद्ध होवै है। परंतु अद्वितीय होने तैं परमाणु की न्यांई आरंभक उपादान तौ संभवै नहि। काहेतैं परमाणु आदिक सद्वय पदार्थ हि संयोग द्वारा आरंभक माने हैं। अद्वितीय ब्रह्म का संयोग संभवै नहि। तैसे कूटस्थ होने तैं प्रधान की न्यांई परिणामी उपादान बी नहि संभवै है। काहेतैं परिणामवाद मै कार्य औ उपादान का वास्तव अभेद माने हैं। ब्रह्म कूं परिणामी उपादान माने कार्य के जन्मादिक विकार ब्रह्म मै प्राप्त होवैंगे। यातैं 'न जायते म्रियते' इत्यादि श्रुति का विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये--जैसे कल्पित रजतादिकन का अधिष्ठानरूप उपादान शुक्ति आदिक हैं। तैसे कल्पित प्रपंच का अधिष्ठानरूप उपादान

ब्रह्म है। अधिष्ठानरूप उपादान कूं हि विवर्त्तोपादान कहे हैं। यातैं यह सिद्ध हुवा—प्रपंचरूप विवर्त्तका अधिष्ठानरूप उपादानहि ब्रह्म है, आरंभक वा परिणामी उपादान नहि। परंतु इहां यह शंका होवै है—सिद्धांत मै विवर्तरूप प्रपंच का ब्रह्म सै अभेद माने हैं। आरंभवाद मै आरंभयोग्य कार्य का आरंभक कारण तैं अत्यंत भेद माने हैं यातैं आरंभयोग्य कार्य औ विवर्त्त का भेद तौ यद्यपि स्पष्ट हि है। परंतु परिणामवाद मै परिणामरूप कार्य का परिणामी उपादान तैं अभेद सांख्यादिक माने हैं। यातैं विवर्त्त औ परिणाम का भेद सिद्ध होवै नहि। काहे तैं दोनों का उपादान तैं अभेद समान है। समाधान यह है—यद्यपि विवर्त्त औ परिणाम का उपादान सै अभेद तुल्य होने तैं तिनका भेद सिद्ध होवै नहि तथापि लक्षण भेद तैं भेद सिद्ध होवै है। तथाहि—'वस्तुनस्तत्समसत्ताकोऽन्यथाभावः परिणामः' 'वस्तुनस्तद्विषमसत्ताकोऽन्यथाभावोविवर्तः' अर्थ यह—उपादान के समान सत्तावाला ताका अन्यथा भाव परिणाम कहिये है। उपादान तैं विषम सत्तावाला ताका अन्यथा भाव विवर्त कहिये है। तहां परिणाम लक्षण मै अन्यथा भाव कूं परिणाम कहैं तौ विवर्त्त मै अतिव्याप्ति होवैगी। यातैं उपादान के समान सत्तावाला कहा विवर्त उपादान के समान सत्तावाला होवै नहि। यातैं अतिव्याप्ति नहि। उपादान के समान सत्तावाले कूं परिणाम कहैं तौ

घट का उपादान मृत्तिका है ताके समान सत्तावाला पट बी ताका परिणाम हुवा चाहिये। यातैं अन्यथाभाव कहा। पट मृत्तिका का अन्यथाभाव नहि यातैं दोष नहि। औ विवर्त लक्षण मैं उपादान तैं विषम सत्तावाले कूं विवर्त कहैं उपादान मृत्तिकादिकन तैं विषम सत्तावाला चेतन आत्मा बी तिनका विवर्त हुआ चाहिये यातैं अन्यथा भाव कहा। चेतन आत्मा मृत्तिकादिकन का अन्यथा भाव नहि यातैं दोष नहि। अन्यथाभाव कूं विवर्त कहैं परिणाम मैं अतिव्याप्ति होवैगी यातैं उपादान तैं विषम सत्तावाला कहा। परिणाम उपादान तैं विषम सत्तावाला नहि यातैं अतिव्याप्ति नहि। परंतु उक्तरीति सै विवर्त औ परिणाम का लक्षण त्रिविध सत्तावाद मैं हि संभवै है। एक सत्तावाद मैं संभवै नहि। यातैं उभयमत साधारण लक्षण कहे हैं। 'कारणसलक्षणोऽन्यथाभावः परिणामः' 'तद्विलक्षणोऽन्यथाभावो विवर्तः' अर्थ यह—उपादान के समान स्वभाववाला अन्यथाभाव परिणाम कहिये है। उपादान सै विलक्षण स्वभाववाला अन्यथाभाव विवर्त कहिये है। परिणामस्थल मैं कार्य औ उपादान नियम तैं जड़ स्वभाववाले होवै हैं यातैं परिणामलक्षण की कहूं बी अव्याप्ति नहि। उपादान के समान स्वभाववाले कूं परिणाम कहैं तौ घट स्वगत रूप स्पर्शादिकन का उपादान है ताके समान स्वभाववाली

मृत्तिका बी ताका परिणाम हुयी चाहिये। यातैं अन्यथा भाव कहा। मृत्तिका घट का अन्यथाभाव नहि यातैं दोष नहि। विवर्त मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते उपादान के समान स्वभाववाला कहा। आकाशादिकन की न्यांई शुक्ति रजतादिकनका बी चेतनहि अधिष्ठान है। यातैं विवर्त लक्षण मै उपादान तैं विलक्षण स्वभाववाला कहने तैं कहूं बी अव्याप्ति नहि। काहेतैं चेतन का विवर्त संपूर्ण जड प्रपंचतासैं विलक्षण स्वभाववाला है। उपादान मृत्तिकादिकन तैं विलक्षण स्वभाववाला चेतन है। तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते अन्ययाभाव कहा। परिणाम मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते उपादान तैं विलक्षण स्वभाववाला कहा। अथवा 'कारणाभिन्नं कार्यं परिणामः' 'कारणात्वस्तुतोभिन्नाभिन्नत्वेनदुर्निरूपं कार्यं विवर्तः' अर्थ यह—उपादान सै अभिन्नकार्य परिणाम कहिये है। उपादान से वास्तवतैं भिन्नाभिन्न रूप सैं दुर्निरूप कार्य विवर्त कहिये है। परिणाम लक्षण मै कार्य कूं परिणाम कहैं तौ विवर्त मै अतिव्याप्ति होवैगी। यातैं उपादान तैं अभिन्न कहा। यद्यपि विवर्तका बी उपादान तैं अभेद सिद्धांत मै माने हैं। तथापि परिणाम लक्षण मै कार्य औ उपादान के समान सत्तावाला अभेद विवक्षित है। सिद्धांत मै उपादान चेतनतैं विषम सत्तावाला विवर्त का कल्पित अभेद माने हैं। यातैं अतिव्याप्ति नहि। उपादान तैं अभिन्न कूं परिणाम कहैं परिणामवाद मै

उपादान का बी कार्य तैं अभेद माने हैं। यातैं स्वगत रूपादिकन के उपादान घटादिक हैं। तिनसैं अभिन्न मृत्तिकादिक बी तिनका परिणाम हुये चाहिये। यातैं कार्य कहा। मृत्तिकादिक घटादिकन के कार्य नहिं यातैं दोष नहिं। विवर्त लक्षण मै अविद्या का अधिष्ठानरूप उपादान चेतन है। तासैं वास्तव तैं भिन्नाभिन्नरूप तैं दुर्निरूप अविद्या है। तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते कार्य पद है। आरंभवाद मै उपादान सै अभिन्नरूप तैं कार्य दुर्निरूप है तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते भिन्न पद है। परिणाम-वाद मै उपादान सै भिन्नरूप तैं कार्य दुर्निरूप है तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते अभिन्न पद है।' सिद्धांत मै कार्य कारण का कल्पित भेदाभेद माने हैं यातैं असंभव वारण वास्ते वास्तव पद है। और जो सिद्धांत मै अनादि अविद्यादिकन कूं बी विवर्त माने हैं। यातैं अनादि साधारण विवर्त का लक्षण विवक्षित होवै तौ उक्त विवर्त लक्षण मै कार्य पद नहि कहना। कार्यरूप विवर्त का लक्षण मान के कार्यपद कहा है उपादान सै वास्तव तैं भिन्नाभिन्न रूपसै कार्य की दुर्निरूपता का प्रकार यह है। कार्य का उपादान तैं अभेद सांख्यादिक माने हैं तिनके मत मै भेद दुर्निरूप है। नैयायिकादिक भेदमाने हैं तिनके मत मै अभेद दुर्निरूप है। तथाहि—निम्नोन्नत्तादि युक्त मृत्तिका तैं भिन्न घटादिकन की प्रतीति होवै नहि।

संयोगविशेषविशिष्ट तंतवों तैं भिन्न पट की प्रतीति होवै नहि । औ वास्तव तैं भिन्न पदार्थन का सामानाधिकरण्य होवै नहि । कार्यकारण का मृद्घटः, तंतवः पटः, सुवर्णं कुंडलं, इसरीति सै सामानाधिकरण्य होवै है। यातैं कार्यकारण का भेद दुर्निरूप है। किंच उत्पत्ति तैं पूर्व कार्य असत् माने तौ शशशृंगादिकन की न्यांई कारण व्यापार तैं ताकी उत्पत्ति नहि हुयी चाहिये औ उत्पद्यते घटः इसरीतिसै घट उत्पत्ति क्रिया का कर्त्ता प्रतीत होवै है। लोक मै कर्त्ता पूर्व सिद्ध होवै है। उत्पत्ति तैं पूर्व घटादिकार्य असत्माने उत्पत्ति क्रिया का कर्त्ता नहि होवैगा। किंच पूर्वसिद्ध पदार्थन काहि पश्चात् संबंध प्रसिद्ध है। उत्पत्ति तैं पूर्व कार्य असत् माने उत्पत्तिकाल मै उपादान सैं ताका संबंध नहि हुवा चाहिये। जो असत् का बी संबंध माने तौ शशशृंगादिकन का बी कारण सै संबंध हुआ चाहिये। कारण व्यापार तैं पूर्व असत् विलक्षण कार्य नहि माने पीछे बी विलक्षण नहि होवैगा यातैं बी उत्पत्ति तैं पूर्व कार्य सत् मान्या चाहिये। सत्-कार्य का कारण तै भेद मै कोई प्रमाण नहि। यातैं पूर्व की न्यांई पीछे बी कारण तैं अभेद हि मान्या चाहिये। इसरीति सै सांख्यादिमत मै कार्य का कारण तैं वास्तव भेद दुर्निरूप है। औ नैयायिकादिक तौ यह कहे हैं— आपहि अपना कार्य वा कारण होवै नहि। यातैं कार्य

कारण भाव के विरोध तैं तिनका अभेद संभवै नहि। किंच कार्य-कारण का अभेद माने अर्थ क्रिया का भेद नहि होवैगा। औ जलानयनादि रूप घट की अर्थ क्रिया मृत्तिका तैं होवै नहि जो घट की अर्थ क्रिया मृत्तिका तैं माने तौ घट की उत्पत्ति तैं पूर्व बी हुयी चाहिये। तैसे मृत्तिका की अर्थ क्रिया घट तैं माने घट तैं बी घट हुवा चाहिये। इसरीति से घट की अर्थ क्रिया मृत्तिका तैं वा मृत्तिका की अर्थ क्रिया घट तैं होवै नहि। यातैं अर्थ क्रिया के भेद-तैं बी कार्य कारण का भेद मान्या चाहिये। जो उत्पत्ति-तैं पूर्व कार्य सत कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं कारण व्यापार तैं पूर्व कार्य सत् माने मृत्तिका की न्यांई ताकी उप-लब्धि हुयी चाहिये। औ कारण व्यापार बी व्यर्थ होवैगा। इसरीति से सांख्यादि उक्त युक्ति तार्किकन तैं निराकरण करने कूं अशक्य हैं। तार्किक उक्त युक्ति सांख्यादिकन तैं अशक्य निराकरण हैं। तिन तैं कार्य का कारण तैं वास्तव भेदाभेद, औ उत्पत्ति तैं पूर्व सत्वासत्व दुर्निरूप सिद्ध होने तैं कार्य मिथ्या सिद्ध होवै है। कार्य तैं पूर्व उत्तर औ वर्तमानकाल मै बी विद्यमान होने तैं कारण सत्य सिद्ध होवै है। मृत्तिकादिक अवांतर कारण स्वकार्य की अपेक्षा तैं हि सत्य सिद्ध होवै हैं परमार्थ सत्य सिद्ध होवैं नहि। कांहे तैं 'नेहनानास्तिकिंचन' इत्यादिक श्रुति वचन ब्रह्म भिन्न सर्व का निषेध करे हैं। सर्वथा बाधरहित ब्रह्म हि

परमार्थ सत्य सिद्ध होवै है। 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिके त्येव सत्यं' या श्रुति का वी इसी अर्थ मै हि तात्पर्य है। काहे तैं जगत् कारण ब्रह्म की सत्यता मै मृदादि सत्यता औ जगत् के मिथ्यात्व मै घटादि कार्य का मिथ्यात्व श्रुति मै दृष्टांत कहा है। तासै यह जान्या जावै है—ब्रह्म की परमार्थ सत्यता मै हि श्रुति का तात्पर्य है। मृदादि अवांतर कारण स्वकार्य की अपेक्षा तैं हि सत्य हैं परमार्थ सत्य नहि। घटादि विकार का घटादि शब्द तैं व्यवहार हि होवै. है दुर्निरूप होने तैं विकार वास्तव नाहि। यद्यपि मृत्तिका तैं घट हुवा इसरीति से कार्य कारण का भेद व्यवहार होवै है। तथापि भेद व्यवहार वी नाम मात्र है भाव यह— विकार की न्याई अनिर्वचनीय है। मृत्तिका हि सत्य है विकार सत्य नहि यह श्रुति का अर्थ है। इसरीति से कार्य का कारण तैं वास्तव भेदाभेद दुर्निरूप होने तैं विवर्त लक्षण संभवै है। औ लक्षण भेद तैं विवर्त परिणाम का भेद वी संभवै है। पूर्व प्रपंचरूप विवर्त का उपादान ब्रह्म कहा है। तामै यह प्रश्न होवै है—प्रपंच का उपादान शुद्ध ब्रह्म है अथवा ईश्वररूप ब्रह्म है किंवा जीवरूप ब्रह्म ताका उपादान है। यद्यपि 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभि संविशंति' या वाक्य तैं उत्पत्ति स्थिति

लयकारणत्व ब्रह्म का लक्षण कहकर 'तद्विजिज्ञासस्व' या वचन तैं ताका विचार श्रुति मै विधान किया है औ मोक्षकाम कूं महावाक्यार्थ रूप शुद्ध ब्रह्म हि विचारणीय है। यातैं ताकाहि पूर्व वाक्य मै लक्षण सिद्ध होवै है। जीव वा ईश्वर का लक्षण सिद्ध होवै नहि। इसरीतिसै लक्षण वाक्य तैं शुद्ध ब्रह्महि उपादान निश्चित है। निश्चित अर्थ मै प्रश्न संभवै नहि। तथापि वाक्यार्थरूप शुद्ध ब्रह्मके ज्ञान मै तत्त्वं पदार्थ का ज्ञान हेतु है। यातैं शुद्ध ब्रह्म की न्याई तत्त्वं पदार्थरूप जीव ईश्वर बी विचारणीय हैं। औ वक्ष्यमाणरीति सै अभिन्न निमित्तोपादान बी संभवै हैं। यातैं विचारणीयता औ कारणता तीनों मै समान होनेतैं प्रश्न संभवै है। 'जीव ईशो विशुद्धाचित्' इत्यादि सांप्रदायिक वचन मै चेतन के तीनहि भेद प्रसिद्ध हैं। यातैं तीन प्रकार तैं प्रश्न है। या प्रश्न का संक्षेप शारीरक के अनुसारी यह उत्तर कहे हैं—शुद्ध ब्रह्महि प्रपंचका उपादान है जीव वा ईश्वर उपादान नहि। काहे तैं 'जन्माद्यस्ययतः' अर्थ यह—जासै इस जगत् के जन्मादिक होवै हैं सो ब्रह्म है। यह शारीरक शास्त्र का द्वितीय सूत्र है। तामै औ ताके भाष्य मै उपादानता ज्ञेयब्रह्म का लक्षण कहा है। शुद्ध ब्रह्महि ज्ञेय है, जीव बा ईश्वर ज्ञेय नाहि। यद्यपि वाक्यार्थ-रूप शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान वास्ते तत्त्वं पदार्थरूप जीव ईश्वर बी ज्ञेय हैं। तथापि जीव ईश्वर प्रधान ज्ञेय नहि। किंतु

शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान का सहकारि रूपतैं ज्ञेय हैं। वाक्यार्थ रूप शुद्ध ब्रह्महि प्रधान ज्ञेय है। यातैं उपादानता ताकाहि लक्षण मान्या चाहिये। जीव ईश्वर का लक्षण संभवै नहि। किंच 'अथातोब्रह्मजिज्ञासा' या प्रथम सूत्रगत ब्रह्म पद तैं वेदांतशास्त्र का विषय कथन किया है। शुद्ध ब्रह्महि ताका विषय प्रसिद्ध है ताके लक्षण की आकांक्षा हुये द्वितीय सूत्र मै ताकाहि लक्षण कहा चाहिये आकांक्षा के अभाव तैं जीव वा ईश्वर का लक्षण कहना संभवै नहि। यातैं वी उपादानता शुद्ध ब्रह्म काहि लक्षण मान्या चाहिये। यद्यपि 'आत्मनः आकाशः संभूतः' 'सोऽकामयत' 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादिक कारण प्रतिपादक वाक्य हैं। तिनतैं ईश्वररूप ब्रह्महि कारण सिद्ध होवै है। शुद्ध ब्रह्म कारण सिद्ध होवै नहि। काहेतैं कामना कर्तृत्व सर्वज्ञत्वादिक धर्म ईश्वर मैंहि संभवै हैं। शुद्ध ब्रह्म मै संभवैं नहि। यातैं कारण वाक्यगत आत्मादिक पद मायाशबल ईश्वर के वाचक होने तैं शुद्ध ब्रह्म उपादान सिद्ध होयसके नहि तथापि पूर्व उक्त प्रकार तैं द्वितीय सूत्र औ ताके भाष्य तैं शुद्ध ब्रह्म उपादान निश्चित है। यातैं शबलवाचक आत्मादिक पदन की शुद्ध मै लक्षणा मानी चाहिये। यातैं कारण वाक्यन तैं बी शुद्ध ब्रह्म कारण सिद्ध होय सके है। इंसरीति से सर्वज्ञात्माचार्य के अनुसारी शुद्ध ब्रह्महि प्रपंच का उपादान मान के प्रश्न

का उत्तर कहे हैं। औ विवरण के अनुसारी तौ यह कहे हैं 'यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते' 'सोऽकामयत' 'एष सर्वेश्वरः' इत्यादि श्रुति तैं सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट मायाशबल ईश्वररूप ब्रह्महि प्रपंच का उपादान है शुद्ध वा जीवरूप ब्रह्म उपादान नहि। काहे तैं माया निरूपित बिंबत्वविशिष्ट चेतन मै हि सर्वज्ञत्वादिक संभवै हैं। शुद्ध मैं वा जीवरूप ब्रह्म मै संभवैं नहि। यातैं सर्वज्ञत्व, सर्ववित्त्व, कामयितृत्व, सर्वेश्वरत्वादि विशिष्ट ईश्वर हि उपादान मान्या चाहिये। जो परमात्मा सामान्य विशेषरूपतैं सर्व कूं जाने है ज्ञानमय जाका तप है तासै कार्य ब्रह्म औ लोक प्रसिद्ध नामरूप औ अन्न उपजे हैं। यह प्रथम श्रुति वाक्य का अर्थ है। किंच शारीरकशास्त्र के प्रथमाध्याय मै भाष्यकार ने अनेक स्थल मै सर्वात्मकता जीव अवृत्ति ईश्वर का लिंग कहा है। ईश्वर कूं सर्व का उपादान मानै सर्वात्मकता ईश्वर का लिंग संभवै है। जीव वा शुद्ध ब्रह्म कूं उपादान माने सर्वात्मकता ईश्वर का लिंग संभवै नहि। काहे तैं कार्य कारण का तादात्म्य होने तैं जो सर्वका उपादान है सो सर्वात्मक है तासै अन्य नहि। यह निर्विवाद है। जीव ईश्वर मै अनुगत शुद्ध ब्रह्म कूं सर्व का उपादान माने सोई सर्वात्मक होवैगा ईश्वर सर्वात्मक नहि होवैगा। यातैं ईश्वर लिंग सर्वात्म-

कता कथन भाष्यकार का असंगत होवैगा। जो शुद्ध ब्रह्म कूं उपादान मानै बी ईश्वर का लिंग सर्वात्मकता संभवै है। काहे तैं बिंबत्वविशिष्ट चेतन ईश्वर है औ विशेष्य के धर्म का विशिष्ट मै व्यवहार होवै है। यातैं विशेष्यरूप शुद्ध ब्रह्मगत सर्वात्मकता का ईश्वर मै भाष्यकार का व्यवहार कहैं तौ प्रतिबिंबत्वविशिष्ट चेतन जीव है। तामै बी विशेष्य चेतन शुद्ध ब्रह्म से न्यारा नहि। यातैं सर्वात्मकता का व्यवहार हुवा चाहिये। यातैं जीव अवृत्ति ईश्वर का लिंग सर्वात्मकता कथन भाष्यकार का असंगत होवैगा। इसरीति से शुद्ध ब्रह्म उपादान माने सर्वात्मकता जीव अवृत्ति ईश्वर का लिंग संभवै नहि। तैसे जीव कूं उपादान माने बी सर्वात्मकता जीव अवृत्ति ईश्वर का लिंग नहि संभवै है। यातैं ईश्वर हि उपादान मान्या चाहिये। शंका। संक्षेप शारीरक मै मायाशबल कूं उपादानता का निषेध किया है शबल ईश्वर कूं उपादानमाने ताका विरोध होवैगा। समाधान यह है—पूर्व उक्तरीति से माया शबल उपादान सिद्ध है ताका त्याग तौ होय सके नहिं यातैं यह मान्या चाहिये बिंबरूप ईश्वर का विशेषण माया है माया विशिष्ट ईश्वर वृत्ति उपादानता की माया मै बी प्राप्ति हुये शबल उपादानता निषेध ग्रंथ का माया की उपादानता निषेध मै तात्पर्य है ईश्वर कूं उपादानता निषेध मै तात्पर्य नहि। यद्यपि संक्षेप शारीरक मै शबल कूं

उपादानता का निराकरण करके उपादानता ज्ञेय ब्रह्म का लक्षण सिद्ध किया है। यातैं जीव ईश्वर मै अनुगत शुद्ध ब्रह्म कूं उपादानता प्रतिपादन मै संक्षेप शारीरक ग्रंथ का तात्पर्य प्रतीत होवै है। उक्त अर्थ मै तात्पर्य संभवै नहि। तथापि संक्षेप शारीरक के प्रथमाध्याय मै प्रथम शबल कूं उपादानता का निषेध करके ताके अंत मै उपादानता तत् पदार्थरूप ईश्वरवृत्ति कहा है। निषेध ग्रंथ का स्वार्थ मै तात्पर्य माने संक्षेप शारीरक ग्रंथ का पूर्व उत्तर विरोध होवैगा। तैसे सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ईश्वर कूं कारणता प्रतिपादक पूर्व उक्त अनेक श्रुति वाक्यन का विरोध होवैगा। यातैं शबल उपादानता निराकरण ग्रंथ का पूर्व उक्त प्रकार तैं माया की उपादानता निराकरण मैहि तात्पर्य मान्या चाहिये। यातैं संक्षेप शारीरक ग्रंथ का विरोध नहि। जो द्वितीय सूत्र औ ताके भाष्य मै उपादानता ज्ञेय ब्रह्म का लक्षण कहा है। शुद्ध ब्रह्महि प्रधान ज्ञेय है। शबल कूं उपादान मानै ताका विरोध कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं प्रथमाध्याय मैहि भाष्यकार ने अनेकस्थल मै सर्वात्मकता जीव अवृत्ति ईश्वर का लिंग कहा है। ईश्वर कूं उपादानमाने विना सर्वात्मकता ईश्वर का लिंग कहना संभवै नहि। यातैं अभिन्न निमित्तोपादानतारूप लक्षण बिंबरूप ईश्वर का सिद्ध हुये द्वितीयसूत्र औ ताके भाष्य का यह तात्पर्य मान्या चाहिये—'क्व चंद्रः' या प्रकार का प्रश्न होवै

तब 'शाखायां' यह उत्तर होवै है। तहां वृत्तगत शाखा चंद्रस्वरूप तैं बहिर्भूत हुयी ताकूं देशांतरस्थ नक्षत्रगण तैं भिन्न बोधन करे है। तैसे ईश्वरगत उपादानता ईश्वर कूं जीव प्रधानादिकन तैं भिन्न बोधन करे है। औ तामै अनुगत अखंड चेतन के स्वरूप तैं बहिर्भूत हुयी ताकूं बी तिन तैं भिन्न बोधन करे है। तात्पर्य यह—जीव प्रपंच का उपादान संभवै नहि प्रधानादिक ताका कर्त्ता नहि संभवै हैं। यातैं ईश्वरगत अभिन्न निमित्तोपादानता तैं ईश्वर का तिन सै भेदज्ञान होवै है। तैसे ईश्वर मै अनुगत विशेष्यरूप ज्ञेय ब्रह्म का बी तिन तैं भेदज्ञान होवै है। या अभिप्राय तैं द्वितीयसूत्र औ ताके भाष्य मै उपादानता ज्ञेय ब्रह्म का लक्षण कहा है। उपादानता मै ज्ञेय ब्रह्म की लक्षणता प्रतिपादक संक्षेप शारीरक ग्रंथ का बी इसी अर्थ मै तात्पर्य है यातैं विरोध नहि। इसरीति सै विवरण के अनुसारी ईश्वररूप ब्रह्महि प्रपंच का उपादानमान के पूर्व उक्त प्रश्न का उत्तर कहे हैं ताहि मै माया अविद्या का भेदवादि ग्रंथकार यह कहे हैं— यद्यपि उपादान तौ ईश्वररूप ब्रह्महि है। परंतु ईश्वराश्रित माया का परिणाम होने तैं आकाशादि प्रपंच का हि ईश्वर उपादान है अंतःकरणादिकन का उपादान जीव ईश्वर दोनों हैं केवल ईश्वर तिनका उपादान नहि। तथाहि— प्रपंच का परिणामी उपादान माया है तामै प्रतिबिंबरूप

ईश्वर हि माया का आश्रय है। यद्यपि माया कल्पित प्रति-
बिंबत्वविशिष्ट चेतन ईश्वर है सो माया का आश्रय संभवै
नहिं चेतन मात्रहि आश्रय कहा चाहिये। तथापि प्रति-
बिंबत्व कूं सादि मानै तब तौ तासै पूर्व चेतन मात्रहि
माया का आश्रय होने तैं पीछे बी सोई आश्रय
मान्या चाहिये। परंतु माया की न्यांई ताकूं
अनादि माने हैं यातैं अनादि प्रतिबिंबत्वविशिष्ट
ईश्वर चेतन माया का आश्रय संभवै है। प्रतिबिंबत्व की
स्थिति माया के अधीन है यातैं प्रतिबिंबत्व माया
कल्पित कहिये है कार्य होने तैं माया कल्पित नहि
कहिये है। काहे तैं प्रतिबिंबत्व कूं कार्यमाने प्रतिबिंबत्व-
विशिष्ट चेतनरूप ईश्वर सादि होवैगा, सादि ईश्वर का
अंगीकार सिद्धांत विरुद्ध है। इसरीति सै अनादि
प्रतिबिंबत्वविशिष्ट ईश्वर माया का आश्रय सिद्ध होवै
है। चेतन मात्र माया का आश्रय माने 'मायिनं तु महेश्वरं'
या श्रुति का विरोध होवैगा। काहे तैं श्रुति मै 'मायिनं'
या पद तैं ईश्वरमाया का आश्रय प्रतीत होवै है यातैं चेतन
मात्रमाया का आश्रय कहना संभवै नहि। जैसे माया
मै प्रतिबिंब ईश्वर है तैसे 'जीवेशावाभासेनकरोति' या
श्रुति तैं जीव बी अविद्या मै प्रतिबिंबरूप है ईश्वर की
उपाधि माया है तासै जीव की उपाधि अविद्या भिन्न है।
काहे तैं उपाधि भेदविना प्रतिबिंब का भेद संभवै नहि।

यद्यपि दर्पणादि एक उपाधि मैं बी अनेक प्रातिबिंब होवै हैं यातैं प्रतिबिंब भेद स्थल मैं उपाधि भेद का नियम संभवै नहि। तथापि बिंब का भेद होवै तहांहि एक उपाधि मैं प्रतिबिंब का भेद होवै है। सूर्यादि एक बिंबस्थल मैं उपाधि भेद विना प्रतिबिंब का भेद होवै नहि। औ चेतनरूप बिंब एक है यातैं उपाधि भेद विना ताका प्रतिबिंब भेद संभवै नहि यातैं ईश्वर की उपाधि माया तै जीव की उपाधि अविद्या का भेद मान्या चाहिये। तैसे अविद्या के भेदविना तामैं प्रतिबिंबरूप जीवन का भेद बी नहि संभवै है। यातैं जीव की उपाधि अविद्या बी नानाहि मानी चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं' या श्रुति तैं आकाशादिक पंच महाभूत तौ ईश्वराश्रित माया के परिणाम हैं जीवाश्रित अविद्या के परिणाम परिच्छिन्नभूत हैं सो महाभूतन के आश्रित रहे हैं। उभयविध भूतन का कार्य अंतःकरणादिक हैं काहे तैं 'एवमेवास्यपरिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छंति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते' यह प्रश्न श्रुति है। तामैं विद्वान् के अंतःकरणादिकन की विदेह कैवल्य मैं ज्ञान तैं निवृत्ति कहि है 'गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठाः' या मुंडक श्रुति मैं महाभूतन मैं तिनका लय कहा है। पूर्व उक्त प्रकार तैं माया अविद्या दोनों का परिणाम अंतःकरणादिक मानै श्रुति-

द्वय की व्यवस्था संभवै है। काहे तैं अंतःकरणादिकन मै दो अंश हैं एक तौ परिच्छिन्न भूत कार्यत्व अंश है दूसरा महाभूतकार्यत्व अंश है तहां तत्त्वज्ञान तैं अविद्या की निवृत्ति हुये अविद्या परिणाम परिच्छिन्न भूत कार्यत्व अंश तैं अंतःकरणादिकन की निवृत्ति कथन संभवै है। ईश्वर उपाधि माया की तत्त्वज्ञान तैं निवृत्ति होवै नहि। यातैं माया परिणाम महाभूत कार्यत्व अंश तैं तिन का भूतन मै लय कथन संभवै है। जीव आश्रित अविद्या मात्र का परिणाम अंतःकरणादिक माने तत्त्वज्ञान तैं तिन की निवृत्ति कथनहि संभवैगा महाभूतन मै लय कथन असंगत होवैगा। यातैं उक्त· रीति सै दोनों का परिणाम माने चाहिये। जैसे गंगा यमुनादिक नदी समुद्र को प्राप्त होवैं तब तिन के नाम रूप रहैं नहि याहि तैं तिन की प्रतीति बी नहि होवै है। परिशिष्ट जलरूप वस्तु समुद्र नाम तैं कहिये है। तैसे आत्मा कूं सर्वरूप देखै ताकी षोडशकला आत्मा कूं प्राप्त होवै हैं। नामरूप के अभाव तैं तिन की प्रतीति होवै नहि परिशिष्ट चेतनरूप वस्तु पुरुष नाम तैं कहिये है समष्टि· प्राण, शुभकर्मन मै प्रवृत्ति की हेतु आस्तिक्य बुद्धिरूप· श्रद्धा, पंचमहाभूत, इंद्रिय, संकल्प विकल्पात्मक मन, व्रीहियवादिरूप अन्न, सर्व कर्मन मै प्रवृत्ति का साधन सामर्थ्यरूप वीर्य, चित्तशुद्धि का साधन तप, ऋगादि वेदरूप

मंत्र, अग्नि होत्रादिरूप कर्म, कर्मन का फलरूप चंद्रादिलोक, देवदत्त यज्ञदत्तादि नाम यह षोडश कला हैं यह प्रश्न श्रुति का अर्थ है। प्राणादिक कला स्व स्व कारण कूं प्राप्त होवै हैं यह मुंडक श्रुति का अर्थ है। इस रीति सैं माया अविद्या का भेदवादि ग्रंथकार श्रुतिद्वय की व्यवस्था की अनुपपत्ति तैं माया अविद्या दोनों का परिणाम अंतःकरणादिक माने हैं जीवईश्वर दोनों तिन का उपादान माने हैं औ तिन के एकदेशी तौ यह कहे हैं–विद्वान् की दृष्टि तैं अंतःकरणादिक आत्मा सै भिन्न रहैं नहि। यातैं प्रश्न श्रुति मै तत्त्वज्ञान तैं तिन की निवृत्ति कहि है। औ चूर्णीकृत घट का मृत्तिका मै लय होवै है। तैसे विद्वान् के समीपस्थ पुरुष ताके शरीरादिकन का पृथिवी आदिकन मै लय माने हैं। यातैं मुंडक श्रुति मै विद्वान् के अंतःकरणादिकन का महाभूतन मै लय कहा है। इस रीति सैं शारीरकशास्त्र के चतुर्थाध्यायगत द्वितीय पाद मै श्रुतिद्वय की व्यवस्था भाष्यकार ने कहि है। यातैं व्यवस्था की अनुपपत्ति तैं जीव ईश्वर दोनों अंतःकरणादिकन का उपादान हैं। यह कहना संभवै नहि। किंतु आकाशादि प्रपंच ईश्वराश्रितमाया का परिणाम है. ताका ईश्वर उपादान है तैसे अंतःकरणादिक जीवाश्रित अविद्या मात्र का परिणाम हैं तिन का जीव हि उपादान है ईश्वर नहि। इस रीति सै. एकदेशी के मत मै अंतःकरणादिकन का.

उपादान ईश्वर नहि परंतु 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि च खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वस्य धारिणी' इत्यादि श्रुति मैं आकाशादिकन की न्याईं अंतःकरणादिकन का बी ईश्वर हि उपादान कहा है। यातैं एकदेशी का मत श्रुति विरुद्ध है। तैसे माया अविद्या का भेदवाद बी श्रुति युक्ति विरुद्ध है। तथाहि—यद्यपि बिंबके अभेद स्थल मैं उपाधिभेद विना प्रतिबिंब का भेद होवै नहि यातैं प्रति बिंबरूप जीव ईश्वर का उपाधि भेद मान्या चाहिये। तथापि 'जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेवभवति' या श्रुति मैं स्वयंपद वाच्य मूल प्रकृति तैं माया अविद्या का अभेद प्रतिपादन किया है। माया अविद्या का स्वरूप सैं भेद माने ताका विरोध होवैगा। जो पूर्व उक्त रीति से आकाशादि प्रपंच का प्रकृति माया है, अंतःकरणादिकन का प्रकृति अविद्या है। यातैं माया अविद्या मैं प्रकृतित्व धर्म एक होने तैं तिन के गौण अभेद मैं श्रुति का तात्पर्य कहैं तौ संभवै नहिं। काहे तैं मुख्य अभेद का संभव हुये गौण अभेद मैं श्रुति तात्पर्य मानना अयुक्त है औ धर्म कल्पना तैं धर्मिकल्पना मैं गौरव माने हैं। यातैं गुणन की साम्यावस्थारूप एक हि मूल प्रकृति का शुद्ध सत्त्व-प्रधानत्व मलिन सत्त्वप्रधानत्वादि धर्मभेद तैं माया अविद्या भेद मानै लाघव है। स्वरूप सैं माया अविद्या का भेद माने गौरव होवैगा। यातैं बी

माया अविद्या का स्वरूप सै भेद कहना नहि संभवै है किंतु एक हि मूल प्रकृति के माया अविद्या दो रूप कल्पित हैं तिन मै प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर का बी कल्पित भेद संभवै है यह अर्थ जीवईश्वर के स्वरूप निरूपण मै आगे स्पष्ट होवैगा माया अविद्या का स्वरूप सै भेद मानना निष्फल है। किंच माया अविद्या के भेदवाद मै तत्त्वज्ञान तैं माया की निवृत्ति नहि माने माया सत्य हुयी चाहिये। यातैं अद्वैत श्रुति का विरोध होवैगा। औ मोक्ष मै बी माया की स्थिति होने तैं निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष का हि अभाव होवैगा। जो तत्त्वज्ञान तैं माया की निवृत्ति कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं जीवाश्रित ज्ञान तैं ईश्वराश्रित माया की निवृत्ति कहना अयुक्त है। यातैं बी माया अविद्या का भेद संभवै नहि। और जो माया मै प्रतिबिंब ईश्वर ताका आश्रय कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं अक्षर ब्राह्मण मै 'एतस्मिन्नु खलु अक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्चप्रोतश्च' या वाक्य तैं अक्षर शब्दार्थ नित्यचेतनरूप शुद्ध ब्रह्म हि आकाश शब्दार्थ माया का आश्रय कहा है। ईश्वर कूं आश्रय माने ताका विरोध होवैगा औ माया कल्पित प्रतिबिंबत्वविशिष्ट ईश्वर माया का आश्रय संभवै बी नहि। जो प्रतिबिंबत्व को अनादि मान के निर्वाह कहा सो बी नहि संभवै है। काहे तैं प्रतिबिंबत्व को अनादि माने बी ताकी स्थिति माया के अधीन हि

माननी होवै है। प्रतिबिंबत्व विशिष्ट ईश्वर माया का आश्रय है या कहने तैं माया की स्थिति प्रतिबिंबत्व के अधीन होने तैं अन्योऽन्याश्रय होवैगा जो 'मायिनं तु महेश्वरं' या श्रुति तैं ईश्वर माया का आश्रय कहा सो बी असंगत है। काहे तैं 'मायिनं' यह पद महेश्वर शब्दार्थ ब्रह्म तैं माया के संबंध मात्र का बोधक है यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा। पूर्व उक्त श्रुति युक्ति विरोध तैं ईश्वर माया का आश्रय है यह ताका अर्थ नहि। यातैं माया मै प्रतिबिंब ईश्वर ताका आश्रय कहना संभवै नहि। तैसे अविद्या मै प्रतिबिंब जीव ताका बी आश्रयं नहि संभवै है। यातैं चेतन मात्र हि आश्रय मान्या चाहिये। 'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः'॥ या श्लोक का बी इसी अर्थ मै तात्पर्य है। जिस कारण तैं अज्ञान प्रथम सिद्ध है पश्चात् भावी जीव वा ईश्वर ताका आश्रय वा विषय संभवै नहि। यातैं जीव ईश्वर विभाग रहित चेतन मात्र हि ताका आश्रय विषय मान्या चाहिये यह ताका अर्थ है। इस रीति से आश्रय के अभेद तैं बी माया अविद्या का भेद संभवै नहि। याहि तैं सांप्रदायिक माया अविद्या का अभेद हि माने हैं। तिन मै बी कोई यह कहे हैं—यद्यपि माया का परिणाम होने तैं आकाशादि प्रपंच का उपादान तौ ईश्वर हि है। तथापि अंतःकरणादिकन का

जीव हि उपादान है ईश्वर नहि। काहे तैं अहं कर्ता, अहं काणः, अहं मूकः अहं स्थूलः इस रीति सै शरीरपर्यंत अंतः-करणादिकन का जीव मै तादात्म्य प्रतीत होवै है। अध्यास विना तादात्म्य संभवै नहि। यातैं जीव हि तिन कां अधि-ष्ठानरूप उपादान मान्या चाहिये। यद्यपि माया अविद्या का अभेद माने अविद्या के परिणाम बी अंतःकरणादिक माया के हि परिणाम हैं औ माया ईश्वर की उपाधि है यातैं आकाशादिकन की न्याईं तिन का उपादान बी ईश्वर हि मान्या चाहिये। तथापि उक्त प्रतीति के बल तैं जीव उपादान सिद्ध होवै है। इस रीति सै कोई ग्रंथकार माया अविद्या का अभेद मान के बी अंतःकरणादिकन का उपादान जीव हि माने हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। ईश्वर की उपाधि माया तैं अविद्या का अभेद माने अंतःकरणादिकन का उपादान बी ईश्वर हि मान्या चाहिये। काहे तैं अविद्या कें परिणाम बी अंतःकरणादिक माया के हि परिणाम हैं। जो जीव मै अंतःकरणादिकन का तादात्म्य प्रतीत होवै है यातैं जीव कूं उपादान कहैं तौ पूर्वमत की न्याईं परिणामी उपादान अविद्या का आश्रय बी जीव हि मान्या चाहिये। काहे तैं परिणामी उपादान की आश्रयता हि चेतन मै उपादानता है। तैसे ईश्वराश्रित माया तैं अविद्या का भेद बी मान्या चाहिये। माया तैं अविद्या का भेद माने विना जीव चेतन हि अंतःकरणादिकन का उपादान

है यह कहना संभवै नहि। इस रीति सै माया अविद्या का अभेद माने जीव हि अंतःकरणादिकन का उपादान है यह कहना संभवै नहि। ताकूं उपादान माने माया अविद्या का अभेद संभवै नहि। दोनों का अंगीकार परस्पर विरुद्ध होने तैं असंगत है। यातैं माया अविद्या के अभेद पक्ष मै अंतःकरणादिकन का उपादान बी ईश्वर हि मान्या चाहिये। 'एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि च खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वस्य धारिणी' इत्यादिक श्रुति मै बी आकाशादिकन की न्याईं अंतःकरणादिकन का ईश्वर हि उपादान कहा है। यद्यपि जीव कूं उपादान नहि माने तामै अंतःकरणादिकन का तादात्म्य नहि हुवा चाहिये। तथापि अनुपादान बी साम्नादिमान् व्यक्ति मै गोत्वादिक धर्मन का तादात्म्य होवै है। तैसे अनुपादान जीव मै बी स्वभाव सै हि अंतःकरणादिकन का तादात्म्य संभवै है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार संपूर्ण व्यावहारिक प्रपंच का उपादान तौ ईश्वर हि माने हैं प्रातिभासिक स्वप्न प्रपंच का उपादान जीव कहे हैं। परंतु अहंकारानवच्छिन्न चेतन स्वप्न का अधिष्ठान है। या पक्ष मै ईश्वर बी स्वप्न का अधिष्ठान होने तैं उपादान है यातैं अशेष कार्य का ईश्वर हि उपादान है जीव नहि। इस रीति सै ईश्वर कूं उपादान मान के बी ग्रंथकारन का अवांतर मत भेद है परंतु पूर्व उक्त रीति सै माया शबल ब्रह्म प्रपंच का उपादान है। यह

उत्तर समान हि सिद्ध होवै है पूर्व शुद्ध ब्रह्म प्रपंच का उपादान है, अथवा ईश्वररूप ब्रह्म है। किंवा जीवरूप ब्रह्म ताका उपादान है यह प्रश्न किया था ताका शुद्ध ब्रह्म वा ईश्वररूप ब्रह्म उपादान मान के उत्तर कहा औ दृष्टि सृष्टि वादी तौ जीवरूप ब्रह्म कूं हि उपादान मान के उत्तर कहे हैं तिन का यह तात्पर्य है—ब्रह्म हि अज्ञान तैं जीव भाव कूं प्राप्त हुवा स्वप्न की न्याईं अपने मैं ईश्वर की कल्पना करे है। तासै आकाशादि सृष्टि औ अपना भेद, तैसे प्रेरणादिकन की कल्पना करे है.। तैसे क्रम तैं देव तिर्यक् मनुष्यादिक औ तिन के निवास योग्य लोकन की कल्पना करे है। इस रीति सै जीवभावापन्न ब्रह्म हि अपने मै सर्व प्रपंच का कल्पक होने तैं सर्व का उपादान है। इस रीति सै मतभेद तैं प्रपंच का उपादान ब्रह्म कहा। परंतु तामैं यह शंका होवै है—जैसे मृत्तिकादिकन का धर्म श्लक्षणतादिक घटादिकन मै प्रतीत होवै है। यातैं मृत्तिकादिक घटादिकन का उपादान हैं मर्दनादिजन्य मृदादि संस्कार विशेष का नाम श्लक्षणता है। तैसे 'जडो घटः' इस रीति सै माया का धर्म जडता कार्य प्रपंच मै प्रतीत होवै है। औ 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' इत्यादि श्रुति मैं बी माया कूं उपादान कहा है। यातैं माया हि प्रपंच का उपादान है। ब्रह्म उपादान नहि। यद्यपि पूर्व अनेक श्रुति वाक्यन तैं ब्रह्म उपादान सिद्ध किया है। तथापि संभवै नहि। काहे तैं निरवयव ब्रह्म

मृत्तिकादिकन की न्याईं परिणामी उपादान तौ संभवै नहि, जो निरवयव बी आकाशादिक नीलतादि विवर्त का अधिष्ठानरूप उपादान हैं। तैसे निरवयव ब्रह्म बी प्रपंच-रूप विवर्त का अधिष्ठान होने तैं उपादान कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं परिणामी मृत्तिकादिकन मै उपादानता लोकप्रसिद्ध है। तैसे विवर्ताधिष्ठान मै उपादान-ता लोक प्रसिद्ध नहि। किंतु परिभाषा मात्र तैं तामै उपादानता का अंगीकार होने तैं संभवै नहि। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी ब्रह्म उपादान संभवै नाहि। याहि तैं उपादानता घटित पूर्व उक्त ब्रह्म का लक्षण बी नहि संभवै है। इस रीति सै उपादानता की अनुपपत्ति द्वारा ब्रह्मलक्षण मै असंभव की शंका होवै है पदार्थतत्त्व निर्णयकार ताका यह समाधान कहे हैं—केवल माया हि उपादान माने ब्रह्म उपादान नहि माने तौ ब्रह्म कूं उपादानता प्रतिपादक अनेक श्रुतिवाक्य असंगत होवैंगे औ कार्य प्रपंच मै ब्रह्म की सत्ता प्रतीत का असंभव होवैगा। तैसे माया उपादान नहि माने ताकूं उपादानता प्रतिपादक श्रुति स्मृति वाक्य असंगत होवैंगे। औ कार्य प्रपंच मै जडता प्रतीति का असंभव होवैगा ब्रह्म माया दोनों उपादान मानै उभयविध श्रुति युक्ति संभवै हैं। यातैं दोनों उपादान माने चाहिये। तिन मै बी ब्रह्म तौ विवर्तोपादान है, माया परिणामी उपादान है। यातैं उपादानद्वय का अंगीकार व्यर्थ बी नहि। औ

आकाशादिकन की न्याईं निरवयव ब्रह्म उपादान बी संभवै है। जो विवर्ताधिष्ठान कूं उपादान मानने मै अप्रसिद्धि दोष कहा सो संभवै नहिं। काहे तैं लोक प्रसिद्ध उपादान का लक्षण तामै बी संभवै है। तथाहि—'तादात्म्य संबंधेन कार्याधारत्वे सति कार्यजनि हेतुत्वमुपादानत्वं' अर्थ यह— तादात्म्य संबंध तैं कार्य का आधार हुवा ताका जनक होवै सो उपादान कहिये है। निमित्त कारण मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते कार्य का आधार कहा है, भूतलादिकन मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते जनक कहा है, घटादिकन का आधार हुवा तिन का जनक चक्रादिक बी हैं। यातैं तादात्म्य संबंध तैं कार्य का आधार कहा है। मृत्तिकादिकन मै प्रसिद्ध यह उपादान का लक्षण विवर्ताधिष्ठान मै बी संभवै है। यातैं अप्रसिद्धि दोष नहिं। इस रीति सै ब्रह्म मै उपादानता, लक्षण औ प्रमाण सिद्ध है। यातैं उपादानता घटित ताके लक्षण मै असंभव दोष बी नहि। पदार्थतत्त्व निर्णयकार इस रीति सै उक्त शंका का समाधान कहे हैं। औ कोई ग्रंथकार तौ पूर्व उक्त रीति सै ब्रह्म माया दोनों कूं हि उपादान मान के विवर्त औ पारिणामी उपादान द्वय का साधारण लक्षण इस रीति सै कहे हैं। 'स्वाभिन्न कार्य जनकत्वमुपादानत्वं' अर्थ यह—अपने सै अभिन्न कार्य का जनक होवै सो उपादान कहिये है। लक्षण गत स्वपद तैं घटादि उपादान मृत्तिकादिकन का औ प्रपंच का

परिणामी उपादान अज्ञान तैसे विवर्त उपादान ब्रह्म का ग्रहण है। मृद्घटः,तंतवः पटः,सुवर्णं कुंडलं इस रीति सै घटादि कार्य मृत्तिकादिकन तैं अभिन्न प्रतीत होवै है ताका जनक होने तैं मृत्तिकादिक उपादान हैं। 'जडो घटः' या रीति सै परिणामी जड अज्ञान तैं बी घटादिकार्य का अभेद प्रतीत होवै है ताका जनक होने तैं अज्ञान उपादान है। तैसे सन् घटः या प्रकार तैं सत्‌रूप अधिष्ठान ब्रह्म तैं बी घटादिकार्य अभिन्न हि प्रतीत होवै है। ताका जनक होने तैं ब्रह्म उपादान है। इहां यह ज्ञातव्य है। 'स देव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुति वाक्यन तैं ब्रह्म सत्‌रूप सिद्ध है। 'जडं मोहात्मकं' या श्रुति वचन तैं अज्ञान जड रूप सिद्ध है। औ सुवर्णादि अभेद तैं हि कुंडलादिकन मै सुवर्णत्वादिकन का अनुभव होवै है। तैसे ब्रह्म औ अज्ञान सै कार्य प्रपंच का अभेद है। तासै हि प्रपंच मै सत्तादि गोचर अनुभव का संभव हुये पृथक् सत्तादि धर्म का अंगीकार युक्त नहि। यातैं ब्रह्म घटः,अज्ञानं घटः इस रीति सै ब्रह्मत्व अज्ञानस्वरूप सै ब्रह्म अज्ञान सै प्रपंच के अभेद का अनुभव नहि हुये बी सन् घटः जडो घटः या रीति सै सत्त्व जडत्वरूप सै होने तैं ब्रह्म अज्ञान तैं अभिन्न कार्य प्रपंच है ताका जनक होने तैं ब्रह्म अज्ञान उपादान हैं। यद्यपि शारीरकभाष्य औ भामती निबंध मै ब्रह्म सै प्रपंच के अभेद का निषेध किया है। कार्य कारण का अभेद

माने ताका विरोध होवैगा। तथापि वास्तव अभेद के निषेध मै भाष्यभामती ग्रंथ का तात्पर्य होने तैं कल्पित अभेद मानै बी विरोध नहि। यद्यपि ब्रह्म सै वास्तव प्रपंचाभेद का निषेध करैं भेद वास्तव हुवा चाहिये। तथापि धर्मी प्रतियोगी दोनों वास्तव होवैं तौ भेद वास्तव होवै। ब्रह्मरूप धर्मी तौ यद्यपि वास्तव है परंतु प्रतियोगी प्रपंच मिथ्या होने तैं तिन का भेद वास्तव संभवै नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार उक्त शंका के समाधान मै और प्रकार तौ पूर्वमत के समान हि माने हैं उपादान का लक्षण भिन्न कहे हैं। परंतु विचार करैं तौ लक्षण भेद संभवै नहि। काहे तैं स्वाभिन्न कार्य का जनक उपादान कहिये है। या लक्षण मै कार्य का कारण तैं कल्पित अभेद विवक्षित है। औ अनंतर उक्त रीति सै तिन का भेद बी कल्पित हि है। कल्पित भेदाभेद कूं हि तादात्म्य कहे हैं यातैं 'स्वाभिन्नकार्य जनकत्वमुपादानत्वं' या लक्षण वाक्य का यह अर्थ सिद्ध होवै है। अपने मै तादात्म्यवाले कार्य का जनक उपादान कहिये है। तादात्म्य संबंध तैं कार्य का आधार हुवा ताका जनक होवै सो उपादान कहिये है। यह उपादान का लक्षण पूर्व मत मै कहा है। अर्थ सै तिन का भेद सिद्ध होवै नहि यातैं तादात्म्य संबंध तैं जामै कार्य उत्पन्न होवै ऐसा कारण उपादान कहिये है यह एक हि लक्षण सिद्ध होवै है। परिणामी अज्ञान औ मृत्तिकादिकन मै है

अधिष्ठानरूप कारण मै यह लक्षण संभवै है। यातैं विवर्ताधिष्ठान मै बी उपादानता का अंगीकार परिभाषा मात्र तैं नहि किंतु लक्षण प्रमाण सिद्ध है। यातैं उपादानता घटित ब्रह्मलक्षण मै असंभव की शंका बनै नहि। इस रीति सै पदार्थतत्त्व निर्णयकारादिक ब्रह्म माया दोनूं कूं उपादान मान के ब्रह्म लक्षण मै असंभव शंका का समाधान कहे हैं। औ कितने ग्रंथकार तौ ब्रह्म कूं हि प्रपंच का उपादान मान के ताके लक्षण मै असंभव शंका का परिहार करे हैं। तिन मै बी संक्षेप शारीरककार यह कहे हैं—ब्रह्म हि प्रपंच का उपादान है, माया उपादान नहि। यद्यपि ब्रह्म कूं हि प्रपंच का उपादान माने माया कूं उपादान नहि माने तौ माया व्यर्थ होवैगी। तथापि माया विना ब्रह्म कूं उपादान माने ब्रह्म परिणामी उपादान हि कहना होवैगा। औ परिणाम वाद मै कार्य कारण का वास्तव अभेद माने हैं यातैं कार्य के जन्मादिक विकार ब्रह्म मै प्राप्त होने तैं 'न जायते म्रियते' इत्यादिश्रुति वाक्यन का विरोध होवैगा। यातैं मायाद्वारा ब्रह्म उपादान मान्या चाहिये। तात्पर्य यह—घटादिकन का उपादान यद्यपि मृत्तिका है। तथापि असंस्कृत मृत्तिका उपादान नहि संभवै है। यातैं श्लक्ष्णता संज्ञक संस्कार द्वारा मृत्तिका उपादान है। तैसे कल्पित माया कूटस्थ ब्रह्म मै उपादानता का साधक होने तैं सहकारि कारण है यातैं व्यर्थ नहि।

यद्यपि माया कूं उपादान नहि मान के सहकारि मात्र माने 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' या श्रुति मै ताकूं प्रकृति कहा है। ताका विरोध होवैगा। तथापि मृत्तिकादिगत शक्ति उपादानता का निर्वाहक मात्र प्रसिद्ध है उपादान प्रसिद्ध नहि। तैसे माया बी परमात्मा की शक्ति शास्त्र मै प्रसिद्ध है यातैं ब्रह्मगत उपादानता का निर्वाहक मात्र मानी चाहिये उपादान नहि। याहि तैं माया ब्रह्म दोनों उपादान हैं यह कहना बी संभवै नहि। इस रीति सै ब्रह्मगत उपादानता का निर्वाहक होने तैं श्रुति मै माया कूं प्रकृति कहा है। माया प्रपंच का उपादान है या अभिप्राय तैं प्रकृति नहि कहा। यातैं विरोध नहि। यद्यपि ब्रह्म तौ प्रपंच का परिणामी उपादान संभवै नहि माया कूं बी सहकारि मात्र मान के परिणामी उपादान नहि माने परिणामी उपादान का हि असंभव होवैगा। तथापि वाचस्पति के मत मै जीवाश्रित अविद्या तैं आवृत ब्रह्म है ताका विवर्तमात्र प्रपंच वक्ष्यमाण है अविद्या का परिणाम नहि। तैसे हमारे मत मै बी चेतन मात्र के आश्रित माया है तासै आवृत ब्रह्म का विवर्तमात्र प्रपंच संभवै है। परिणामी उपादान की अपेक्षा के अभाव तैं ताका असंभव दोषकर नहि। इस रीति सै सर्वज्ञात्माचार्य के मत मै माया सहकारि मात्र है परिणामी उपादान नहि। यद्यपि संक्षेप शारीरक मै हि माया कूं परिणामी कहा है ताकूं सहकारि

मात्र माने संक्षेप शारीरककार की उक्ति का परस्पर विरोध होवैगा तथापि संक्षेप शारीरककार का माया मै परिणामी व्यवहार मतांतर के अभिप्राय सै है स्वमत सै नहि यातैं विरोध नहि। यद्यपि जड माया उपादान नहि माने प्रपंच मै जडता की प्रतीति नहि हुई चाहिये। तथापि श्लक्ष्णताख्य संस्कारद्वाररूपकारण है उपादान नहि। तौ बी घटादि कार्य मै ताकी प्रतीति होवै है। तैसे अनुपादान बी जड माया की प्रपंच मै प्रतीति संभवै है विरोध नहि। इस रीति सै प्रपंच मैं जडता कारण का गुण मानै तिन के मतभेद तैं माया कूं उपादान वा कार्य मै अनुगतद्वार कारण कहा औ वाचस्पति-मिश्र तौ यह कहे हैं—प्रपंच मै जडता कारण का गुण नहि किंतु प्रपंच का हि स्वाभाविक है। स्वभाव सै जड प्रपंच जीवाश्रित माया तैं आवृत ब्रह्म का विवर्त है। माया तामै सहकारि मात्र है, उपादान वा कार्य मै अनुगतद्वार कारण नहि। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—'मायिनं तु महेश्वरं' या श्रुति मै महेश्वर शब्दार्थ ब्रह्म माया का आश्रय कहा है। जीव कूं आश्रय माने ताका विरोध होवैगा। या प्रसंग मै माया औ अविद्या पद का एक हि अर्थ है यातैं माया का आश्रय जीव कहिये है। किन्तु स्वरूप सै चेतन किसी का उपादान नहि किंतु परिणामी उपादान माया का आश्रय होने तैं चेतन उपादान कहिये है। माया का आश्रय जीव माने

प्रपंच का उपादान बी जीव हि कहा चाहिये ब्रह्म उपादान संभवै नहि। किंच जीवाश्रित माया तैं आवृत ब्रह्म है या मत मै माया का आश्रय ब्रह्म नहि, यातैं उपाधि के अभाव तैं ब्रह्म मै सर्वज्ञतादिकन का असंभव होवैगा—समाधान यह है—'गृही देवदत्तः धनी देवदत्तः' इत्यादि वाक्यन का देवदत्त गृहादिकन का आश्रय है यह अर्थ नहि किंतु स्व स्वामिभाव संबंध तिन का अर्थ है। तैसे 'मायिनं तु महेश्वरं' या श्रुति वचन का महेश्वर शब्दार्थ ब्रह्म माया का आश्रय है यह अर्थ नाहि किंतु विषय विषयीभाव संबंध ताका अर्थ है। यातैं विरोध नाहि। औ प्रपंच कूं माया का परिणाम मानै तौ ताका आश्रय होने तैं जीव मै उपादानता प्राप्त होवै। परंतु जीवाश्रित माया तैं आवृत ब्रह्म का विवर्त हि प्रपंच है माया का परिणाम नाहि। यातैं जीव मै उपादानता बी प्राप्त होवै नहि औ ब्रह्म यद्यपि निरुपाधिक है तथापि सर्वज्ञत्वादिक जीव की अविद्या तैं आवृत ब्रह्म के विवर्त हैं। यातैं 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादि श्रुति तैं ताके हि धर्म कल्पित हैं जीव के नहि। काहे तैं जीव मै सर्वज्ञत्वादिक धर्मन का अंगीकार अनुभव विरुद्ध है। यातैं शंका संभवै नहि। इस रीति सै वाचस्पति के मत मै जडता प्रपंच का स्वाभाविक धर्म है कारण का गुण नहि। यातैं माया उपादान वा द्वाररूप कारण नाहि। किंतु जीवाश्रित माया तैं आवृत ब्रह्म का विवर्त हि प्रपंच है। माया सहकारि

मात्र है। परंतु या मत मैं ब्रह्म भिन्न जीव माया का आश्रय कहा है सो संभवै नहि। काहे तैं जीव ईश्वर भाव की न्याई तिन का भेद बी माया कल्पित है याहि तैं अनादि बी जीव ईश्वर औ तिन के भेदादिकन की स्थिति माया के अधीन हि कहि चाहिये। औ जैसे दो पदार्थन कूं अपनी उत्पत्ति औ ज्ञान मैं परस्पर अपेक्षा होवै तहां अन्योऽन्याश्रय दोष होवै है। तैसे स्थिति मैं बी परस्पर अपेक्षारूप अन्योऽन्याश्रय दोष माने हैं। यातैं ब्रह्म भिन्न जीवके अधीन माया की स्थिति माने अन्योऽन्याश्रय दोप स्पष्ट हि है। यातैं ब्रह्म भिन्न जीव वा जीव भिन्न ईश्वररूप ब्रह्म माया का आश्रय वा विषय कहना संभवै नहि। किंतु बाह्य तम की न्याई अज्ञान तम का आश्रय विषय एक हि मान्या चाहिये। यातैं शुद्ध ब्रह्म हि ताका आश्रय विषय सिद्ध होवै है। किंच अक्षर ब्राह्मण मैं शुद्ध ब्रह्म हि माया का आश्रय कहा है जीव आश्रय नहि औ ईश्वर मैं आश्रयता का निराकरण पूर्व किया है। यातैं बी शुद्ध ब्रह्म हि अज्ञान का आश्रय विषय मान्या चाहिये इस रीति से सर्वज्ञात्माचार्य औ वाचस्पति मिश्र के मत मैं ब्रह्म हि प्रपंच का उपादान है। माया नहि। यातैं ब्रह्म लक्षण मैं असंभव शंका का अवकाश नहि। औ सिद्धांत मुक्तावलीकार तौ यह कहे हैं—'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' या श्रुति तैं माया हि प्रपंच का उपादान है ब्रह्म नहि। काहे तैं 'ब्रह्मापूर्व मनपरं' 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते'

इत्यादि श्रुति वाक्यन मैं ब्रह्म कार्यकारणरहित कहा है। यद्यपि अनेक श्रुति सूत्र भाष्यादिकन मैं प्रपंच का उपादान ब्रह्म कहा है। माया हि उपादान माने ताका विरोध होवैगा। तथापि ब्रह्म कूं मुख्य उपादान माने तामैं कारणता निषेधक पूर्व उक्त श्रुतिवाक्यन का विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—प्रपंच का मुख्य उपादान माया है ताका अधिष्ठान होने तैं श्रुति सूत्र भाष्यादिकन मैं उपचार तैं ब्रह्म उपादान कहिये है मुख्य उपादान नहि यातैं विरोध नहि। औ ब्रह्म लक्षण मै असंभव शंका बी नहि। इस रीति सै मतभेद तैं ब्रह्म मैं उपादानता सिद्धि द्वारा ताका लक्षण निर्दोष निरूपण किया। अब प्रसंग तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण करे हैं। तहां प्रकटार्थ विवरण मैं यह कहा है—शुद्ध चेतन के आश्रित अनादि अनिर्वचनीय मूल प्रकृति माया है तामै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर है। यद्यपि 'मायिनं तु महेश्वरं' या श्रुति मै माया का आश्रय ईश्वर कहा है। शुद्ध चेतन ताका आश्रय नहि। औ प्रतिबिंब उपाधि का आश्रय प्रसिद्ध नहि। माया मै प्रतिबिंब कूं ईश्वर माने ईश्वर माया का आश्रय नहि होवैगा। यातैं माया मै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर कहना संभवै नहि। तथापि ईश्वर माया का आश्रय मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु अक्षरब्राह्मण के अनुसार शुद्ध चेतन मात्र माया का आश्रय है। उक्त

श्रुतिगत 'महेश्वर' पद बी चेतन मात्र का लक्षक है। यातैं दोष नहि। इस रीति सै माया मै प्रतिबिंब ईश्वर है। औ माया के आवरण विक्षेप शक्ति विशिष्ट अविद्या संज्ञक परिच्छिन्न अनंत भाग हैं तिन मै प्रतिबिंब जीव है। सो उपाधि भेद तैं नाना हैं। प्रकटार्थ विवरण मै इस रीति सै माया अविद्या का भेद मान के जीव ईश्वर का स्वरूप कहा है। औ तत्त्वविवेक मै तौ यह कहा है। गुणन की साम्यावस्थारूप प्रकृति के दो रूप कल्पित हैं। शुद्ध सत्त्वप्रधान माया है, मलिन सत्त्वप्रधान अविद्या है। माया मै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर है अविद्या मै प्रतिबिंब जीव है औ कोई ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। एक हि मूल प्रकृति विक्षेप शक्ति प्रधान माया कहिये है तामै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर है। आवरण शक्ति प्रधान अविद्या कहिये है तामै प्रतिबिंब जीव है। यद्यपि जीव ईश्वर साधारण बिंब चेतन प्रकृति का आश्रय है। याहि तैं जीव ईश्वर सै ताका संबंध बी समान है। यातैं दोनों सर्वज्ञ वा अल्पज्ञ हुये चाहिये। तथापि एक हि मूल प्रकृति के शक्तिभेद तैं माया अविद्या दो रूप कल्पित हैं। तिन मै जीव की उपाधि अविद्या, आवरण शक्ति प्रधान है। यातैं जीव मै हि 'अज्ञोऽहं' इस रीति सै अज्ञान का संबंध प्रतीत होवै है। अज्ञानकृत अल्पज्ञता बी तामै हि है। ईश्वर की उपाधि माया मै आवरणशक्ति का प्रवेश

नहि। यातैं अज्ञान संबंध के अभावं तैं तामै अल्पज्ञता नहि। कितने ग्रंथकार इस रीति से माया अविद्या का भेद मान के जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण करे हैं। औ संक्षेप शारीरक मै तौ यह कहा है—'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः' या श्रुति मै कारण माया ईश्वर का उपाधि कहा है। कार्य अंतःकरण जीव का उपाधि कहा है। यातैं माया मै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर है, अंतःकरण मै प्रतिबिंब जीव है। परंतु इहां यह शंका होवै है—माया का अधिष्ठान चेतन माया अवच्छिन्न प्रसिद्ध है। अंतःकरण का अधिष्ठान अंतःकरण अवच्छिन्न प्रसिद्ध है। तिन कूं हि जीव ईश्वर मान लेवैं लाघव है तिन सै भिन्न प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर माने कल्पना गौरव होवैगा। यातैं माया अवच्छिन्न चेतन ईश्वर औ अंतःकरण अवच्छिन्न जीव मान्या चाहिये। समाधान यह है—'जीवेशावाभासेन करोति' या श्रुति सिद्ध प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर हैं। यातैं प्रमाणमूलक गौरव दोषकर नहि। औ अंतःकरण अवच्छिन्न कूं जीव माने चेतन के भिन्न प्रदेश कर्ता भोक्ता होवैंगे। यातैं कृतनाश अकृताभ्यागम दोष होवैगा। तथा हि—या लोक मै अंतःकरण ब्राह्मणादि शरीरस्थ है तासै अवच्छिन्न चेतन प्रदेश कर्म का कर्ता है। ताकूं लोकांतर मै फल का भोग होवै नहि। परलोक मै सोई अंतःकरण देवादि

शरीरस्थ होवै तासै अवच्छिन्न चेतन प्रदेश कर्म का कर्ता नहि। ताकूं अकृत कर्म के फल का भोग होवै है। यातैं कृतनाश अकृताभ्यागम स्पष्ट हि है। जो ब्राह्मणादि शरीरस्थ अंतःकरण का लोकांतर मै गमन होवै है तासै अवच्छिन्न हि चेतन प्रदेश का बी तहां गमन कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं घट का देशांतर मै गमन हुये घटावच्छिन्न आकाश प्रदेश का गमन दृष्ट नहि, तैसे अंतःकरण का लोकांतर मै गमन हुये बी चेतन प्रदेश का गमन कहना संभवै नहि। इस रीति सै अवच्छेदपक्ष मै कृतनाश अकृताभ्यागम दोष होवै है। प्रतिबिंब पक्ष मै यह दोष नहि। काहे तैं जलपूरित घटादिकन का देशांतर मै गमन हुये बी सूर्यादिप्रतिबिंब का भेद होवै नहि तैसे अंतःकरण का लोकांतर मै गमनागमन हुये बी प्रतिबिंबरूप जीव का भेद संभवै नहि। यातैं प्रतिबिंब रूप हि जीव ईश्वर माने चाहिये अवच्छेदरूप संभवैं नहि। इस रीति सै उक्त च्यारि मतन मै जीव ईश्वर दोनों प्रतिबिंबरूप हैं। यातैं मुक्त जीव का प्राप्य बिंबरूप शुद्ध ब्रह्म है। ईश्वर ताका प्राप्य नहि। काहे तैं अनेक उपाधि मै सूर्यादिकन का प्रतिबिंब होवै तहां एक उपाधि के नाश तैं ताके प्रतिबिंब का बिंब सै हि अभेद होवै है प्रतिबिंबांतर सै होवै नहि। तैसे विदेह काल मै प्रतिबिंबरूप मुक्त जीव का बिंबरूप शुद्ध ब्रह्म सै हि अभेद संभवै है प्रतिबिंबांतररूप ईश्वर सै संभवै नहि

यद्यपि बिंबत्वविशिष्ट चेतन कूं शुद्ध कहना संभवै नहि। तथापि सर्वज्ञतादिकप्रतिबिंबरूप ईश्वर के हि धर्म हैं बिंब-चेतन के धर्म नहि। यातैं या स्थान मै शुद्ध पद तैं बिंब-चेतन मै सर्वज्ञत्व सर्व कर्तृत्वादिकन का अभाव विवक्षित होने तैं दोष नाहि। उक्त च्यारि मतन मै जीव ईश्वर शुद्ध भेद तैं तीन प्रकार का चेतन है। औ बिंब प्रतिबिंब का भेदमात्र कल्पित है स्वरूप सै तिन का अभेद है यातैं प्रति-बिंब मिथ्या नाहि। औ चित्रदीप मै विद्यारण्यस्वामी ने तौ चेतन के च्यारि भेद कहे हैं। औ प्रकारांतर तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण करके प्रतिबिंब कूं मिथ्या कहा है। तथाहि—जैसे घटाकाश, जलाकाश, महाकाश, मेघा-काश भेद तैं आकाश चतुर्विध है। तैसे कूटस्थ, जीव, ब्रह्म, ईश्वर भेद तैं चतुर्विध चेतन है। तहां घटावच्छिन्न आकाश घटाकाश कहिये है। घटस्थ जल मै आकाश का प्रतिबिंब जलाकाश कहिये है। औ निरवच्छिन्न आकाश महाकाश कहिये है। मेघस्थ सूक्ष्मजल मै आकाश का प्रति-बिंब मेघाकाश कहिये है। इस रीति सै उपाधि भेद तैं चतु-र्विध आकाश के लक्षण कहकर चतुर्विध चेतन के लक्षण या रीति सैं कहे हैं—स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयावच्छिन्न चेतन कूटस्थ कहिये है। शरीररूप घट मै अंतःकरणरूप जल है तामै चेतन का प्रतिबिंब जीव कहिये है। निरवच्छिन्न चेतन ब्रह्म कहिये है। ब्रह्मरूप महाकाश मै

है तामै बुद्धि वासनारूप जल है तामै चेतन का प्रतिबिंब ईश्वर कहिये है। जाग्रत् स्वप्न मै स्थूल अंतःकरण बुद्धि पद का वाच्य हैं। सुषुप्ति मै तिन की सूक्ष्म अवस्था वासना हैं। वासनाविशिष्ट अज्ञान ईश्वर की उपाधि है। इस रीति से चित्रदीप मै चेतन के च्यारि भेद मान के अंतःकरण औ वासनाविशिष्ट अज्ञानरूप उपाधिभेद तैं जीव ईश्वर का स्वरूप कहा है। शुक्ति रजत की न्याईं प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर का स्वरूप मिथ्या है। कूटस्थ औ जीव का अन्योऽन्याध्यास है। ब्रह्म चेतन औ ईश्वर का अन्योऽन्याध्यास है याहि तैं तिन का अभेद हि प्रतीत होवै है। भेद प्रतीति शास्त्र तैं होवै है। यद्यपि प्रतिबिंब कूं मिथ्या माने विनाशि जीव का अविनाशि ब्रह्म से अभेद संभवै नहि। यातैं "अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि अभेदप्रतिपादक वाक्यन का विरोध होवैगा। तथापि 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि स्थल मै पदार्थन का अभेद वाक्यार्थ है। तैसे 'स्थाणुः पुरुषः' इत्यादि स्थल मै पुरुषादिकन मै वास्तव तैं स्थाणु आदिकन का अभाव रूप बाधा हि वाक्यार्थ है। तथा हि—जहां पुरुष मै स्थाणु भ्रम तैं अनंतर 'स्थाणुः पुरुषः' यह व्यवहार होवै तहां व्यावहारिकपुरुष से प्रातिभासिक स्थाणु का अभेद तौ वाक्यार्थ संभवै नाहि। किंतु अधिष्ठान पुरुष मै वास्तव से स्थाणु के तादात्म्य का अभावरूप बाधा हि वाक्यार्थ संभवै है। यातैं 'यः स्थाणुः स पुरुषः' या वाक्य तैं

'वस्तुतः स्थाणु तादात्म्याभाववान् पुरुषः' या प्रकार का बोध होवै है। अथवा 'वस्तुतः स्थाणु तादात्म्याभावरूपः पुरुषः' या प्रकार का बोध का आकार है। कल्पित का अभाव अधिष्ठान सै भिन्न है। या मत मै बोध का प्रथम आकार है। अधिष्ठान रूप हि कल्पित का अभाव है। या मत मै द्वितीय आकार है। तासै पुरुष मै स्थाणुभ्रम निवृत्त होवै है। तैसे 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्यन तैं 'जीव तादात्म्याभाववत् ब्रह्मास्मि अथवा जीव तादात्म्याभावरूपं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक बोध होवै है। तासै कर्तृत्वादिधर्मविशिष्ट जीवभ्रम कारणसहित निवृत्त होवै है ताकी निवृत्ति हुये कूटस्थ ब्रह्मरूप सै स्थिति होवै है। यातैं अभेदप्रतिपादक वाक्यन का विरोध नहि। औ जो विवरणादि उक्त रीति सै महावाक्यन मै अभेदरूप वाक्यार्थ मान लेवैं तौ बी संभवै है। काहे तैं जीव वाचकपद लक्षणा तैं कूटस्थ पर होने तैं अबाधित कूटस्थ का ब्रह्म से अभेद संभवै है। इस रीति सै महावाक्यन मै बाधसमानाधिकरण मानै अथवा अभेद समानाधिकरण मानै दोनों रीति सै वाक्यार्थ बोध संभवै है। यातैं प्रतिबिंब कूं मिथ्या मानै बी विरोध नहि। पूर्व वासना विशिष्ट अज्ञान मै प्रतिबिंब ईश्वर कहा है सो मांडूक्य श्रुति उक्त आनंदमय है। यद्यपि केवल अज्ञान ईश्वर की उपाधि मानै बुद्धि वासना विशिष्ट अज्ञान कूं उपाधि कथन का

विरोध होवैगा । वासना विशिष्ट अज्ञान कहैं तौ बी अज्ञान हि उपाधि संभवै है । वासना कूं ताका विशेषण मानना निष्फल है । जो सर्वज्ञता की सिद्धि वास्ते तिन कूं विशेषण माने तथापि नहि संभवै है । काहे तैं सर्व गोचर अज्ञान की सात्त्विक वृत्ति तैं हि सर्वज्ञता संभवै है ताकी सिद्धि वास्तें वासना कूं अज्ञान का विशेषण मानना निष्फल है । जो केवल वासना उपाधि मान के सकल वासना मै एक प्रतिबिंब कूं ईश्वर कहैं तौ बी नहि संभवै है । काहे तैं अनेक उपाधि मै अनेक हि प्रतिबिंब दृष्ट हैं तैसे अनंत बुद्धि वासना मै बी अनंत हि प्रतिबिंब होवैंगे एक प्रतिबिंब संभवै नहि । औ सकल वासना प्रलय विना एक काल मै संभवैं बी नहि । यातैं बी सकल वासना मै प्रतिबिंब ईश्वर कहना नहि संभवै है जो एक एक बुद्धि वासना आनंदमय की उपाधि कहैं तौ एक एक बुद्धि वासना मै प्रतिबिंबरूप आनंदमय जीव हि है ताकूं ईश्वर कहना संभवै नहि । याहि तैं ब्रह्मानंद ग्रंथ मै जीव की अवस्था विशेष होने तैं आनंदमय कूं जीव हि कहा है । जो मांडूक्य श्रुति मै प्राज्ञरूप आनंदमय कूं ईश्वर कहा है सो अभेद चिंतन के अर्थ होने तैं तासै बी आनंदमय ईश्वर सिद्ध होवै नहि । यातैं चित्रदीप मै आनंदमय कूं ईश्वरता कथन संभवै नहि । तथापि आनंदमय कूं ईश्वरता कथन विद्यारण्यस्वामी का प्रौढिवाद है । यातैं दोष नहि ।

इस रीति सै चित्रदीप मै विद्यारण्य स्वामी ने चेतन के च्यारि भेद कहे हैं। औ दृक् दृश्य विवेक मै तीन भेद मान के कूटस्थ का जीव मै अंतरभाव कहा है। तथा हि—जैसे समुद्रादि जलाशय के उपरि तरंग होवै हैं तिन के उपरि बुद्बुदा होवै हैं। तैसे कूटस्थरूप पारमार्थिक जीव के उपरि व्यावहारिक अंतःकरण कल्पित है तामै चेतन का प्रतिबिंबरूप व्यावहारिक जीव है। ताके उपरि स्वप्न मै वासनामय प्रातिभासिक अंतःकरण कल्पित है तामै प्रतिबिंबरूप प्रातिभासिक जीव है। इस रीति सै पारमार्थिक, व्यावहारिक, प्रातिभासिक भेद तैं तीन प्रकार का जीव कहकर त्रिविध जीव मानने का प्रयोजन या रीति सै कहा है—'अहंब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्यन मै जीव ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन किया है। तहां मिथ्या होने तैं व्यावहारिक वा प्रातिभासिक जीव का तौ सत्य ब्रह्म सै अभेद संभवै नहि। यातैं स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयावच्छिन्न कूटस्थरूप पारमार्थिक जीव मान्या चाहिये। कूटस्थ चेतन रूप पारमार्थिक जीव मै यद्यपि अवच्छेदक अंश कल्पित है। तथापि स्वरूप सै सत्य होने तैं ताका ब्रह्म सै अभेद संभवै है। औ जाग्रत मै जन्म मरणादि संसार प्रतीत होवै है। ताका आश्रय कूटस्थ तौ संभवै नहि व्यावहारिक जीव हि ताका आश्रय संभवै है। यातैं 'अहंकर्ताभोक्ता' इत्यादि अनुभव सिद्ध व्यावहारिक जीव बी मान्या

चाहिये। किंच कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक चेतन केहि धर्म प्रसिद्ध हैं चिदाभासरहित केवल अंतःकरण मै संभवैं नहि औ चिदाभास यद्यपि मिथ्या है तौ बी चेतनता व्यवहार के योग्य है ताके धर्म कर्तृत्वादिक मानै तिन मै चेतन धर्म प्रसिद्धि का विरोध होवै नहि औ कूटस्थ होने तैं पारमार्थिक जीव मै कर्तृत्वादि संसार धर्म संभवैं नहि। यातैं बी व्यावहारिक अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप व्यावहारिक जीव मान्या चाहिये। तैसे व्यावहारिक जीव से भिन्न प्रातिभासिक जीव बी मान्या चाहिये । काहे तैं आवृत होने तैं व्यावहारिक जीव कूं तौ स्वप्न देहादिकन मै 'अहं मम' अभिमान संभवै नहि प्रातिभासिक जीव बी नहि माने अभिमान का असंभव होवैगा। यातैं देहादिकन की न्याईं स्वप्न द्रष्टा बी प्रातिभासिक हि मान्या चाहिये। इस रीति से सप्रयोजन त्रिविध जीव मै कूटस्थ का अंतर्भाव है। यातैं चेतन के तीन भेद सिद्ध होवै हैं। इस रीति सै जीव की न्याईं ईश्वर बी प्रतिबिंबरूप मानै तिन के मतभेद तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण किया। अब ईश्वर कूं प्रतिबिंबरूप नहि मानै तिन के मतभेद तैं ताका निरूपण करे हैं। तिन मै बी विवरण के अनुसारी यह कहे हैं 'विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यंतिकं गते। आत्मनो ब्रह्मणोभेदमसंतं कः करिष्यति' यह विष्णु-पुराण। का वचन है। तामै एक हि अज्ञान जीव

ईश्वर का उपाधि कहा है औ उपाधि भेद विना प्रति- बिंब का भेद संभवै नहि। यातैं जीव ईश्वर दोनों प्रति- बिंबरूप नहि। किंतु अज्ञान मै प्रतिबिंब जीव है बिंब- चेतन ईश्वर है। जीव ईश्वर के भेद का स्थापक अज्ञान है ताका तत्त्वज्ञान तैं अत्यंत नाश हुये निवृत्त हुवा भेद पुनः होवै नहि। यह वचन का अर्थ है। किंच अनेक श्रुति स्मृति वाक्यन मै ईश्वर स्वतंत्र औ जीव ताके परतंत्र कहा है। 'प्रतिबिंबगताः पश्यन्नृजुवक्रादि विक्रियाः। पुमान् क्रीडेद्यथा ब्रह्म तथा जीवस्थ विक्रियाः' ॥ या वचन तैं कल्पतरुकार ने लौकिकबिंब प्रतिबिंब के दृष्टांत तैं ईश्वर मै स्वतंत्रता औ जीव मै परतंत्रता सिद्ध करी है। बिंब प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर मानै हि ईश्वर मै स्वतंत्रता औ जीव मै परतंत्रता संभवै है प्रकारांतर तैं जीव ईश्वर का स्वरूप माने संभवै नहि। यातैं बी अज्ञान मै प्रतिबिंब जीव औ बिंब ईश्वर मान्या चाहिये। दर्पणादिकन मै मुख का प्रतिबिंब होवै तहां प्रतिबिंब की ऋजु वक्रादि चेष्टा बिंबरूप स्वप्रयुक्त देख के पुरुष व्यापारवाला होवै है। तैसे प्रतिबिंबरूप जीव की चेष्टा प्राणिकर्मानुसार स्वप्रयुक्त देख के ईश्वर सृष्टि आदि व्यापार मै प्रवृत्त होवै है। यह कल्पतरु वचन का अर्थ है। यद्यपि अज्ञान जीव का उपाधि माने श्रुति सूत्र भाष्यादिकन मै अंतःकरण कूं उपाधि कथन निष्फल होवैगा। तथापि जैसे सूर्य का प्रकाश व्यापक है। दर्पण

मै ताकी विशेष अभिव्यक्ति होवै है । तैसे अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव व्यापक है ताका विशेषरूप सै अभिव्यंजक अंतःकरण है । तात्पर्य यह—अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव सुषुप्ति मै बी है । औ कर्तृत्वादिक धर्मन की जाग्रत् स्वप्न मै हि प्रतीति होवै है सुषुप्ति मै होवै नहि । साक्षात् अज्ञान के परिणाम कर्तृत्वादिक माने सुषुप्ति मै बी प्रतीत हुये चाहियें । यातैं अज्ञान मात्र के परिणाम कर्तृत्वादिक नहि । याहि तैं अज्ञान मात्र उपाधिक जीव मै कर्तृत्वादिकन की उपलब्धि होवै नहि किंतु जाग्रत् स्वप्न मै अंतःकरण होतैं कर्तृत्वादिक प्रतीत होवै हैं । सुषुप्ति मै ताके नहि होतैं प्रतीत होवैं नहि । यातैं अंतःकरण द्वारा अज्ञान के परिणाम कर्तृत्वादिक माने चाहिये । अंतःकरण के संबंध तैं जीव मै प्रतीत होवै हैं । इस रीति सै कर्तृत्वादि विशेषरूप तैं जीव का अभिव्यंजक अंतःकरण है । यातैं श्रुति सूत्र भाष्यादिकन मै ताकूं उपाधि कथन निष्फल नहि । केवल अंतःकरण हि उपाधि माने पूर्व उक्त विष्णुपुराण वचन मै अज्ञान कूं उपाधि कथन निष्फल होवैगा । यातैं उक्त रीति सै दोनों उपाधि माने चाहियें । विवरणानुसारि मत मै बी अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव सत्य है । मिथ्या नहि । यातैं जीव ईश्वर शुद्ध भेद तैं तीन हि प्रकार का चेतन है । जो चित्रदीप मै अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप जीव मिथ्या है ताकूं मोक्ष की

प्राप्ति संभवै नहि। काहे तैं मिथ्या जीव मोक्ष काल मैं रहै नहि। यातैं मोक्ष प्राप्ति वास्ते जीव ईश्वर तैं विलक्षण कूटस्थ मान के चेतन के च्यारि भेद कहे हैं। तैसे दृक्दृश्य विवेक मैं प्रतिबिंब जीव कूं मिथ्या मान के हि मोक्ष प्राप्ति वास्ते पारमार्थिक जीव का अंगीकार किया है सो दोनों प्रकार का कथन संभवै नहि। काहे तैं प्रतिबिंबरूप जीव मिथ्या होवै तौ द्विविध कथन संभवै परंतु बिंब प्रतिबिंब का भेद-मात्र कल्पित है। स्वरूप सै प्रतिबिंब सत्य है मिथ्या नहि। प्रतिबिंबरूप सत्य जीव कूं हि मोक्ष प्राप्ति संभवै है। तासै भिन्न कूटस्थ वा पारमार्थिक जीव का अंगीकार निष्फल है। तैसे प्रमाण के अभाव तैं व्यावहारिक जीव तैं भिन्न प्रातिभासिक जीव का अंगीकार बी संभवै नहि। जो व्यावहारिक जीव आवृत है ताकूं स्वप्न देहादिकन मैं 'अहं मम' अभिमान संभवै नहि। यातैं प्रातिभासिक जीव का अंगीकार करैं, तथापि नहि संभवै है। काहे तैं जीव चेतन मैं आवरण माने 'अहं असि न वा' इस रीति सै तामै संशयादिक हुये चाहिये यातैं व्यावहारिक जीव कूं आवृत कहना संभवै नहि। किंच कितने आचार्य जीव कूं हि साक्षी माने हैं। तासै भिन्न साक्षी नहि माने हैं। यह अर्थ साक्षिनिरूपण मैं आगे स्पष्ट होवैगा। औ साक्षी मैं आवरण का अंगीकार नहि। यद्यपि कोई ग्रंथकार राहु की न्यांई स्वावृत प्रकाश तैं हि

अविद्या का प्रकाश माने हैं। तिस पक्ष मै अविद्या के प्रकाशक साक्षि चेतन मै आवरण सिद्ध होवै है। तथापि सर्व प्रकार तैं राहु आवृत चंद्रमंडलादिकन तैं स्वावरक राहुमात्र काहि प्रकाश होवै है। तासै भिन्नवस्तु का प्रकाश होवै नहि। तैसे अविद्या आवृत साक्षी तैं अविद्यामात्र का हि प्रकाश होवैगा। अहंकार सुखादिकन का प्रकाश नहि होवैगा। यातैं साक्षी मै आवरण का अंगीकार संभवै नहि। इस रीति सै व्यावहारिक जीवरूप साक्षी निरावरण है। तासै हि स्वप्न का बी व्यवहार संभवै है। तासै भिन्न प्रातिभासिक जीव का अंगीकार निष्फल है। और जो कहे हैं देवदत्तनाम ब्राह्मणजाति जाग्रत् काल मै पितापितामहादिकन के मरण तैं दाह श्राद्धादि करके धनपुत्रादि संपदा सहित सोवता हुवा अपने कूं यज्ञदत्त नाम क्षत्रियजाति बाल्यावस्थाविशिष्ट अन्न वस्त्र के अलाभ तैं क्षुधा शीत तैं पीडित हुवा स्वपितादिकन के अंक मै रोदनकर्ता अनुभव करे है। यातैं जाग्रत्काल के व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य का आवरण मान्या चाहिये। सो बी संभवै नहि। काहे तैं उक्त वक्ष्यमाण रीति सै द्रष्टा चेतन मै तौ आवरण का अंगीकार संभवै नहि तैसे जाग्रत् काल का ब्राह्मणत्वादिरूप दृश्य जड है। प्रयोजन के अभाव तैं औ अधिष्ठान ताकी अनुपपत्ति तैं तामै बी आवरण का अंगीकार नहि संभवै है। यह अर्थ द्वितीय परिच्छेद मै स्पष्ट होवैगा। यातैं यह मान्या

चाहिये—उद्बुद्ध संस्कार सहित अविद्या के परिणाम स्वप्न पदार्थ हैं। कदाचित् क्षत्रियत्वादिकन के संस्कार हि उद्बुद्ध होवै हैं। ब्राह्मणत्वादिकन के संस्कार उद्बुद्ध होवैं नहि। यातैं उद्बुद्ध संस्कारसहित अविद्या के परिणाम क्षत्रियत्वादिकन की हि स्वप्न मै प्रतीति होवै है। ब्राह्मणत्वादिकन की प्रतीति होवै नहि। इस रीति सै सामग्री के अभाव तैं हि ब्राह्मणत्वादिकन की अप्रतीति संभवै है। अप्रतीति की सिद्धि वास्ते तिन मै आवरण का अंगीकार निष्फल है। औ 'योऽहं स्वप्नमद्राक्षं स एव इदानीं जागर्मि' यां प्रत्यभिज्ञा तैं जाग्रत् स्वप्न का द्रष्टा एक हि सिद्ध होवै है तामै आवरण माने तासै स्वप्न का बी प्रकाश नहि होवैगा। यातैं बी जीव मै आवरण का अंगीकार संभवै नहि। और जो कहे हैं। जाग्रत् बोध तैं क्षत्रियादिरूप स्वप्नद्रष्टा का बी बाध होवै है। यातैं स्वप्न का द्रष्टा प्रातिभासिक मान्या चाहिये। सो बी नहि संभवै है। काहे तैं जाग्रत् मै 'नाहं क्षत्रियः' इत्यादि बोध तैं स्वप्नद्रष्टा का बी बाध माने पूर्व उक्त प्रत्यभिज्ञा का विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—आत्मा मै क्षत्रियत्वादिक धर्म आरोपित हैं 'नाहं क्षत्रियः' इत्यादि बोध तैं तिन का हि बाध होवै है। स्वप्न द्रष्टा का बाध होवै नहि। इस रीति से प्रमाण के अभाव तैं प्रातिभासिक जीव का अंगीकार बी संभवै नहि। और जो कहे हैं बृहदारण्यक मै 'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' या वचन

तैं उपाधि की उत्पत्ति तैं आत्मा की उत्पत्ति ताके नाश तैं नाश कहा है। सोपाधिक आत्मा के हि उत्पत्ति नाश संभवै हैं। निरुपाधिक के संभवैं नहि। यातैं अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप सोपाधिक जीवात्मा मिथ्या मान्या चाहिये। अविद्या मै प्रतिबिंब कूं जीव मान के ताकूं सत्य माने ताके उत्पत्ति नाश संभवैं नहि। यातैं उत्पत्ति नाश कथन असंगत होवैगा। औ 'अविनाशी वा अरे अयमात्मा' या वचन तैं प्रज्ञानघन आत्मा कूं अविनाशी कहा है। मिथ्या जीव तैं भिन्न कूटस्थ चेतन हि अविनाशी संभवै है। यातैं विनाशि प्रतिबिंब तैं भिन्न कूटस्थ बी मान्या चाहिये सो बी संभवै नहि। काहे तैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव यद्यपि सत्य है। स्वरूप से तौ ताके उत्पत्ति नाश संभवैं नहि। तथापि अंतःकरणादिरूप उपाधि की उत्पत्ति तैं प्रमातृरूप तैं ताकी उत्पत्ति संभवै है। तत्त्वज्ञान तैं उपाधि का नाश हुये प्रतिबिंबस्वरूप तैं नाश संभवै है। औ स्वरूप सै प्रतिबिंब सत्य है यातैं अविनाशी कथन बी संभवै है। इस रीति सै अविद्या मै प्रतिबिंबरूप एक हि जीव मै धर्मभेद तैं हि उत्पत्ति नाश वचन औ अविनाशित्व प्रतिपादक वचन संभवै है। मिथ्या जीव औ कूटस्थरूप धर्मी का भेद मानना निष्फल है। किंच चतुर्विध चेतनवाद मै देह द्वयावच्छिन्न चेतन कूं कूटस्थ वा पारमार्थिक जीव कहे हैं। त्रिविध चेतनवाद मै अविद्या मै

प्रतिबिंबरूप जीव वा शुद्ध चेतन मैं तौ ताका अंतर्भाव नहि बी संभवै है। काहे तैं उपादानता के अभाव तैं जीव वा शुद्ध चेतन के अवच्छेदक स्थूल सूक्ष्म शरीर संभवैं नहि। परंतु बिंबरूप ईश्वर मै ताका अंतर्भाव संभवै है। काहे तैं ईश्वर सर्व का उपादान है ताके अवच्छेदक देहादिक संभवै हैं। यातैं अविद्या मै प्रतिबिंब जीव है बिंब ईश्वर है। दोनों मै अनुगत चेतन शुद्ध है। इस रीति सै त्रिविध चेतन हि अंगीकार किया चाहिये। चतुर्विध चेतन संभवै नहि। इस रीति सै चेतन का प्रतिबिंब मानैं तिन के मतभेद तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण किया औ अन्य ग्रंथकार तौ चेतन का प्रतिबिंब हि नहि माने हैं। औ प्रकारांतर तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण वास्ते प्रतिबिंबवाद का खंडन करे हैं। तथा हि—चेतन का प्रतिबिंब संभवै नहि। काहे तैं रूपवान् सूर्यादिकन का हि प्रतिबिंब दृष्ट है रूपरहित वायु आदिकन का प्रतिबिंब दृष्ट नहि। यातैं यह नियम सिद्ध होवै है—रूपवान् द्रव्य का हि प्रतिबिंब होवै है नीरूप का होवै नहि यातैं नीरूप चेतन का प्रतिबिंब संभवै नहि। जो रूपरहित बी आकाश का प्रतिबिंब होवै है यातैं उक्त नियम का व्यभिचार कहैं। तथापि रूपवान् उपाधि मै हि प्रतिबिंब होवै है रूपरहित मै होवै नहि। या नियम का कहुं बी व्यभिचार नहि। यातैं रूपरहित अविद्या अंतःकरणादिकन मै चेतन का प्रतिबिंब

संभवै नहि। औ विचार करैं तौ प्रथम नियम का बी आकाश के प्रतिबिंब स्थल मै व्यभिचार नहि। काहे तैं आकाश व्यापी आलोक द्रव्य है ताका कूपजल तडाकादिकंन मै प्रतिबिंब होवै है तामै आकाश प्रतिबिंब का भ्रम होवै है। नीरूप आकाश का प्रतिबिंब संभवै नहि। काहे तैं नीरूप वायु आदिकन का प्रतिबिंब दृष्ट नहि। रूपवान् पदार्थ का हि प्रतिबिंब दृष्ट है। इहां प्रतिबिंबवादी की यह शंका है—बाह्यआकाश मै 'नीलं नभः विशालं नभः' इस रीति सै नीलता विशालता का अनुभव होवै है। तैसे कूपजलादिकन मै बी 'नीलं नभः विशालं नभः' इत्यादि अनुभव सर्व संमत है। औ कूपजलादिकन मै नीलता विशालतादि विशिष्ट आकाश वास्तव तैं है नाहि। प्रतिबिंबरूप आकाश बी नहि माने नीलतादि विशिष्ट आकाश के अनुभव का विरोध होवैगा। यातैं आकाश का प्रतिबिंब आवश्यक होने तैं ताका अपलाप संभवै नाहि। जो नीरूप पदार्थ का प्रतिबिंब संभवै नाहि यातैं आकाश के प्रतिबिंब का निषेध कहा सो संभवै नाहि। काहे तैं नीरूप बी रूप संख्या परिमाणादिकन का प्रतिबिंब दृष्ट है। यातैं रूपवान् पदार्थ का हि प्रतिबिंब होवै यह नियम संभवै नहि। जो नीरूप द्रव्य को प्रतिबिंब होवै नाहि या नियम तैं आकाश के प्रतिबिंब का असंभव कहैं। तथापि संभवै नहि। काहे तैं

सिद्धांत मै द्रव्य गुणादि परिभाषा का अंगीकार नहि जो ताकूं मान लेवैं तौ बी आकाश का प्रतिबिंब अनुभव सिद्ध है। ताका निषेध तौ होय सकै नाहि। यातैं यह मान्या चाहिये—रूपसहित द्रव्य का प्रतिबिंब होवै है कल्पित रूपसहित होवै अथवा वास्तव रूपसहित होवै या मै अभिनिवेश नहि सर्वथा रूपसहित द्रव्य का हि प्रतिबिंब होवै है। रूपरहित का होवै नहि। यातैं कल्पित नीलतादि विशिष्ट आकाश का प्रतिबिंब संभवै है, दोष नहि। जो जलादिकन मै आलोक का प्रतिबिंब सर्वसंमत है तासै भिन्न आकाश का प्रतिबिंब मानै गौरव दोष कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं आकाश का प्रतिबिंब नहि मानै तिन के मत मै बी आलोक के प्रतिबिंब मै आकाश प्रतिबिंब का भ्रम मानना होवै है। औ भ्रमज्ञान निर्विषय संभवै नहि। यातैं भ्रम का विषय मिथ्या आकाश प्रतिबिंब अवश्य अंगीकरणीय होने तैं गौरव दोष समान है। औ आकाश का प्रतिबिंब अनुभव सिद्ध है अनुभवानुसारि गौरव दोष-कर होवै नहि। यातैं बी आकाश का प्रतिबिंब निरपवाद सिद्ध होवै है। तैसे चेतन का प्रतिबिंब बी संभवै है। या शंका का यह समाधान है—उक्त रीति सै कल्पित अकल्पित साधारण रूपसहित द्रव्य का प्रतिबिंब मान के आकाश का प्रतिबिंब मान लेवैं तौ बी चेतन का प्रतिबिंब किसी प्रकार तैं बी संभवै नहि। काहे तैं चेतन मै कल्पित-

रूप का बी अभाव हैं औ अंतःकरणादि उपाधि रूपरहित है।यातैं नीरूप अंतःकरणादिकन मै नीरूप चेतन का प्रतिबिंब संभवै नहि। जो तारत्वादिक ध्वनिरूप शब्द के धर्म हैं वर्णात्मक शब्द के स्वाभाविक धर्म नहि तौ बी वर्णात्मक शब्द मै प्रतीत होवै हैं। तहां अन्य प्रकार सै तौ तिन की प्रतीति संभवै नहि। किंतु दर्पण मै मुख का प्रतिबिंब होवै तहां प्रतिबिंब द्वारा दर्पणगत श्यामता का मुख मै आरोप होवै है। तैसे ध्वनि मै वर्णात्मक शब्द का प्रतिबिंब होवै है। प्रतिबिंब द्वारा ध्वनि के धर्म तारत्वादिकन का वर्णात्मक शब्द मै आरोप होवै है। इस रीति से नीरूप ध्वनि मै नीरूप द्रव्यात्मक वर्ण का प्रतिबिंब होवै है। तैसे नीरूप अंतःकरणादिकन मै नीरूप चेतन के प्रतिबिंब का संभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं ध्वनि मै वर्णात्मक शब्द का प्रतिबिंब माने विना तारत्वादिकन का आरोप नहि संभवै तब तौ उक्त रीति सै चेतन का बी प्रतिबिंब कहना संभवै। परंतु तामै ताका प्रतिबिंब नहि मानै बी ध्वनिधर्म तारत्वादिकन का वर्णात्मक शब्द मै आरोप संभवै है। तथा हि—व्यजन वायु का व्यंजक है व्यजन की मंदगति तैं वायु मंद चले है ताकी शीघ्रगति तैं वायु शीघ्र चले है। यह व्यवहार लोक मै होवै है। तहां यद्यपि गति वायु का स्वाभाविक धर्म हैं तथापि निवातस्थान मै मंद वा शीघ्र गतिरूप व्यजन

धर्म का हि वायु मै आरोप होवै है। तैसे ध्वनि वर्णात्मक शब्द का व्यंजक है ताके धर्म तारत्वादिकन का तामै आरोप संभवै है। प्रमाण के अभाव तैं ध्वनि मै वर्णात्मक शब्द का प्रतिबिंब कहना संभवै नहि। जो पटहादि शब्द काल मै पाषाणादि संनिहित आकाश प्रदेश मै प्रतिध्वनि होवै है कारण के अभाव तैं ताकूं मुख्यध्वनि तौ कहना संभवै नहि पटहादि शब्द का प्रतिबिंब हि कहा चाहिये। इस रीति से नीरूप आकाश प्रदेश मै नीरूप ध्वनि-आत्मक शब्द का प्रतिबिंब होवै है। तैसे नीरूप अविद्यादिकन मै नीरूप चेतन का प्रतिबिंब कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं प्रतिध्वनि कूं पूर्वशब्द का प्रतिबिंब माने शब्द आकाश का गुण नहि होवैगा। काहे तैं पटहादि शब्द तौ पार्थिव होने तैं आकाश का गुण संभवै नहि। प्रतिध्वनिरूप शब्द हि आकाश का गुण संभवै है। ताकूं अन्य शब्द का प्रतिबिंब माने आकाश का गुण कहना संभवै नहि। काहे तैं मिथ्या प्रतिबिंब पक्ष मै तौ प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब प्रातिभासिक है व्यावहारिक आकाश का गुण संभवै नहि। बिंब प्रतिबिंब के अभेद पक्ष मै बिंबरूप पार्थिव शब्द तैं प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब का भेद नहि। यातैं आकाश का गुण नहि संभवै है। इस रीति सै प्रतिध्वनि कूं पूर्वशब्द का प्रतिबिंब माने किसी रीति सै बी आकाश का गुण शब्द सिद्ध होवै नहि। यातैं

प्रतिध्वनि पूर्वशब्द का प्रतिबिंब नहि। किंतु मुख्य ध्वनि हि है। ताकी उत्पत्ति मै आकाश उपादान कारण है पूर्व-शब्द निमित्त कारण है। जो कदाचित् पुरुष उद्घोष करै तब पर्वत गुहादि अवच्छिन्न आकाश प्रदेश मै वर्णरूप प्रतिशब्द होवै है। ताकी अभिव्यक्ति स्थल मै वर्ण के व्यंजक कंठतालु आदिक हैं नहि याहि तैं ताकूं मुख्य वर्णरूप कहना तौ संभवै नहि। वर्णरूप प्रतिशब्द पूर्व-शब्द का प्रतिबिंब हि कहा चाहिये। तहां नीरूप आकाश प्रदेश मै नीरूप वर्णात्मक शब्द का प्रतिबिंब होवै है। तैसे नीरूप अंतःकरणादिकन मै नीरूप चेतन का प्रति-बिंब कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं कंठतालु आदिक वर्ण के व्यंजक होवैं तब तौ प्रतिशब्द की अभिव्यक्ति स्थल मै तिन के अभाव तैं प्रतिशब्द कूं पूर्वशब्द का प्रतिबिंब कहना संभवै। परंतु कंठतालु आदि स्थल मै बी कंठतालु आदिक वर्ण के व्यंजक नहि किंतु कंठतालु आदिकन मै वायुसंयोग तैं ध्वनिरूप शब्द होवै है। तासै वर्णात्मक शब्द की अभिव्यक्ति होवै है। याहि तैं ध्वनि के धर्म तारत्वादिक वर्णात्मक शब्द मै भासे हैं। तिसी ध्वनिरूप निमित्त तैं वर्णात्मक प्रतिशब्द की अभिव्यक्ति-स्थल मै प्रतिध्वनि उत्पन्न होवै है। जैसे मूल ध्वनि वर्ण का व्यंजक है तैसे वर्णात्मक प्रतिशब्द की अभिव्यक्ति स्थल मै उत्पन्न हुवा प्रतिध्वनि बी तहां वर्ण का व्यंजक

संभवै है। यातैं प्रतिशब्द मुख्य वर्णरूप हि संभवै है पूर्व वर्ण का प्रतिबिंब संभवै नहि। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी नीरूप अंतःकरणादिकन मै नीरूप चेतन का प्रतिबिंब संभवै नहि। याहि तैं जीव ईश्वर प्रतिबिंबरूप कहने नहि संभवै हैं किंतु अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन जीव औ तासै अनवच्छिन्न ईश्वर मान्या चाहिये। यद्यपि अंतःकरण अनवच्छिन्न चेतन कूं ईश्वर माने ब्रह्मांड सै बाह्यदेशस्थ चेतन हि ईश्वर कहना होवैगा। काहे तैं ब्रह्मांड मै अनंत जीवन के अनंत अंतःकरण व्याप्त हैं। यातैं अंतःकरण अनवच्छिन्न चेतन ब्रह्मांड मै संभवै नहि। जो ब्रह्मांड सै बाह्य ईश्वर का सद्भाव कहैं तौ अंतर्यामि ब्राह्मण का विरोध होवैगा। काहे तैं अंतर्यामि ब्राह्मण मै 'यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमंतरो यमयति' इत्यादिक अनेक पर्याय हैं। तिन सै अंतःकरणादिक सर्व विकारन मै जीव की न्याईं ईश्वर की बी अंतर्यामि रूप सै स्थिति कहि है। यातैं अंतःकरण अनवच्छिन्न चेतन कूं ईश्वर कहना संभवै नहि। तथापि अंतःकरण अनवच्छिन्न ईश्वर है या कहने तैं अंतःकरण के अभावावच्छिन्न चेतन ईश्वर विवक्षित है। यातैं अंतर्यामि ब्राह्मण का विरोध नहि। काहे तैं कल्पित अंतःकरण का वास्तव अभाव अंतःकरणादि अवच्छिन्न चेतन मै बी रहे है। तासै अवच्छिन्न ईश्वर चेतन की अंतःकरणादिकन मै स्थिति संभवै है। जो अभाव कूं

उपाधि मानै ईश्वर मै सर्वज्ञता का असंभव कहैं तौ माया अवच्छिन्न चेतन ईश्वर है। ईश्वर की उपाधि माया सर्व देश मै है। यातैं ईश्वर मै अंतर्यामिता बी संभवै है विरोध नहि। जैसे भावरूप अंतःकरण द्रष्टृत्वादि रूप सै जीव का बोधक है तैसे अंतःकरण के निषेध तैं ब्रह्म का बोध होवै है। या अभिप्राय तैं अंतःकरण का अभाव उपाधि कहे हैं। सर्वथा ईश्वर मै अंतर्यामिता प्रतिपादक ब्राह्मण का विरोध नहि। औ अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन कूं जीव मानै कृतनाश अकृताभ्यागम दोष कहे हैं। यातैं अविद्या अवच्छिन्न चेतन जीव है। अंतःकरण अवच्छिन्न नहि। यातैं दोष नहि। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—'यथाह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपोभिन्ना बहुधैकोनुगच्छन् उपाधिना क्रियते भेदरूपोदेवः क्षेत्रेष्वेवमजोयमात्मा' अर्थ यह—जैसे एक हि प्रकाशरूप सूर्य अनेक जलपात्रन मै प्रतिबिंबित हुवा औपाधिक नानात्व कूं प्राप्त होवै है। तैसे वास्तव तैं एक हि स्वप्रकाश आत्मा अंतःकरणादि रूप अनेक उपाधि मै प्रतिबिंबित हुवा नानात्व कूं प्राप्त होवै है। इत्यादि श्रुति वाक्यन तैं चेतन का प्रतिबिंब सिद्ध होवै है। अवच्छेद पक्ष मै ताका विरोध होवैगा। काहे तैं जैसे एक हि सूर्यादिकन का अनेक उपाधि मै प्रतिबिंबितत्व प्रयुक्त भेद है। तैसे आत्मा का बी अनेक अंतःकरणादिकन मै प्रतिबिंबितत्व प्रयुक्त हि भेद है।

या अभिप्राय तैं हि श्रुति उक्त जल प्रतिबिंबित सूर्यादि दृष्टांत का संभव कहना होवैगा। चेतन आत्मा का प्रतिबिंब नहि माने दृष्टांत असंगत होवैगा। यातैं अवच्छेद पक्ष श्रुति विरुद्ध है। या शंका का यह समाधान है– 'अंबुवदग्रहणात्तु न तथा त्वं' अर्थ यह–सूर्यादिक रूपवान् हैं औ तिन सै दूरदेशस्थ स्वच्छ जलादिक प्रतिबिंब ग्रहण के योग्य हैं। यातैं सूर्यादिकन का तौ जलादिकन मै प्रतिबिंब संभवै है। परंतु अंतःकरणादिकन मैं चेतन आत्मा का प्रतिबिंब संभवै नहि। काहे तैं आत्मा रूपरहित है। औ नीरूप अंतःकरणादिक व्यापक आत्मा सै दूरदेशस्थ नहि। या सूत्र तैं सूत्रकार ने चेतन आत्मा के प्रतिबिंब का असंभव कहकर श्रुति उक्त दृष्टांत दार्ष्टांतिक भाव का या प्रकार तैं संभव कहा है–जलादिकन मै सूर्यादिकन का प्रतिबिंब होवै तहां जलादिकन के वृद्धि ह्रासादिक धर्म भ्रांति से सूर्यादिकन मै प्रतीत होवै हैं। तैसे गज मशकादि शरीरगत अंतःकरण के वृद्धि ह्रासादि धर्मन का चेतन आत्मा मै भ्रम होवै है। या अभिप्राय तैं श्रुति वाक्यन मै जल प्रतिबिंबित सूर्यादि दृष्टांत कहा है। इस रीति सै जल-प्रतिबिंबित सूर्यादि दृष्टांत प्रतिपादक श्रुति वाक्यन का तात्पर्य सूत्रकार ने कहा है। यातैं अवच्छेद पक्ष मै श्रुति-वाक्यन का विरोध कहना संभवै नहि। उलटा 'स एष इह प्रविष्टः आ नखाग्रेभ्यः' अर्थ यह–कार्यकारण संघात

मै नखाग्रपर्यंत परमात्मा प्रविष्ट हुवा। इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं ताकी सिद्धि होवै है। तथा हि—जैसे देवदत्त का गृह मै प्रवेश होवै है औ सर्प का बिल मै प्रवेश होवै है। तैसे तौ व्यापक आत्मा का प्रवेश संभवै नहि। औ सूर्यादिकन का प्रतिबिंब द्वारा जलादिकन मै प्रवेश होवै है। तैसे प्रतिबिंबद्वारा बी परमात्मा का प्रवेश नहि संभवै है। काहे तैं तैत्तिरीय उपनिषत् के व्याख्यान मै भाष्यकार ने प्रतिबिंब द्वारा प्रवेश का निषेध किया है। किंतु जलादिकन मै सूर्यादिकन का प्रतिबिंब होवै तब जलादिकन के चलनादिक धर्म सूर्यादिकन मै भासे हैं। तैसे संघात मै प्रथम सिद्ध हि अधिष्ठान आत्मा मै संघात के धर्म भासे हैं। यहि आत्मा का संघात मै प्रवेश है। इस रीति सै प्रवेश श्रुतिवाक्यन तैं चिदात्मा मै अंतःकरणादि अवच्छेद कृत हि द्रष्टृत्वादि धर्मन का अध्यास सिद्ध होवै है। यातैं अवच्छेदपक्ष श्रुतिसंमत है और बी श्रुति स्मृति वाक्यन मै जीव कूं घटावच्छिन्न आकाश के सदृश कहा है। यातैं बी अवच्छेद पक्ष की सिद्धि होवै है। किंच जैसे व्यापक आकाश का घटादिकन सै अवच्छेद होवै है। तैसे व्यापक चेतन का अवच्छेद प्रतिबिंबवाद मै बी अवश्य मानना होवै है। अवच्छिन्न चेतन कूं हि जीव ईश्वर मानै लाघव है तासै भिन्न प्रतिबिंब रूप जीव ईश्वर माने गौरव होवैगा। यातैं बी पूर्व उक्त प्रकार तैं अविद्या

अवच्छिन्न जीव औ माया अवच्छिन्न चेतन ईश्वर मान्या चाहिये। जो संक्षेप शारीरक उक्त रीति सै जीव ईश्वर के स्वरूप निरूपण मै पूर्वे 'जीवेशावाभासेनकरोति' यह श्रुति वचन जीव ईश्वर की प्रतिबिंबरूपता मै प्रमाण कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं पूर्व उक्त रीति सै किसी प्रकार तैं बी चेतन का प्रतिबिंब संभवै नहि यातैं श्रुतिवचनगत आभासपद अवच्छिन्न पर मान्या चाहिये प्रतिबिंब पर संभवै नहि। यातैं विरोध नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार अवच्छेद रूप हि जीव ईश्वर सिद्ध करे हैं। औ सिद्धांत मुक्तावलीकारादिक तौ यह कहे हैं—ब्रह्म का प्रतिबिंब वा अवच्छेदरूप जीव ईश्वर नहि। किंतु कुंतीपुत्र कर्ण मै राधापुत्रता का भ्रम हुवा तहां कुंतीपुत्र का प्रतिबिंब वा अवच्छेद रूप राधापुत्रता नहि। किंतु प्रतिबिंब अवच्छेद विना कुंतीपुत्र मै राधापुत्रता का भ्रम होवै है। तैसे प्रतिबिंब अवच्छेद विना हि अज्ञान तैं ब्रह्म मै जीव भ्रम होवै है। काहे तैं बृहदारण्यक के व्याख्यान मै भाष्यकार वार्तिककार ने यह कहा है—राजकुल मै उत्पन्न हुवा कर्ण जन्म सै लेके हीनकुल मै रहा निकृष्ट जाति के संबंध तैं अपने कूं राधा का पुत्र मानता भया। स्वाभाविक कुंतीपुत्रता का अनुभव न हुवा। तासै अनंतर कुंतीपुत्रता निमित्तक उत्कर्ष सै प्रच्युत हुवा सर्वत्र नानाविध अपमानादिजन्य दुःख कूं अनुभव कर्ता भया। कदाचित

एकांत मै सूर्य भगवान् ने कहा 'कर्ण त्वं कौंतेयोऽसि न राधेयः' अर्थ यह—हे कर्ण तूं मेरे संबंध तैं कुंतीउदर तैं उत्पन्न हुवा है राधा का पुत्र नहि। या प्रकार के उपदेश तैं अपने कूं कुंतीपुत्र क्षत्रिय जानता भया। तासै अनंतर भ्रम सिद्ध राधापुत्रतादिकन की निवृत्ति हुये हीनता निमित्तक नानाविध दुःख कूं त्याग के उत्कृष्टता निमित्तक कुशल कूं प्राप्त हुवा। तैसे ब्रह्म बी अनादि अविद्याकृत आवरण तैं जीवभाव कूं प्राप्त होय के स्वाभाविक निरतिशय स्वरूपानंद के अनुभव तैं प्रच्युत होवै है। तासै अनंतर नानाविध संसार दुःख कूं अनुभव करे है। कदाचित् स्वप्न कल्पित गुरुशास्त्र की न्याईं कल्पितशास्त्र आचार्य के उपदेश तैं ज्ञान द्वारा अविद्या की निवृत्ति हुये जीवभाव निमित्तक संसार दुःख कूं त्याग के निरतिशयानंद का अनुभव करे है। इस रीति सै भाष्यकार वार्तिककारने कहा है। यातैं प्रतिबिंब अवच्छेद विना हि ब्रह्म मै जीवभाव सिद्ध होवै है। अज्ञान तैं जीवभावापन्नब्रह्म हि आकाशादि प्रपंच का कल्पक है सर्वज्ञतादिधर्म विशिष्ट ईश्वर बी या पक्ष मै जीव कल्पित हि है। जैसे स्वप्न द्रष्टा जीव स्वकल्पित ईश्वर की उपासना तैं भोग अपवर्ग कूं प्राप्त होवै है। तैसे जीवभावापन्नब्रह्म स्वकंल्पित सर्वज्ञ ईश्वर के आराधन तैं भोग मोक्ष कूं प्राप्त होवै है। इस रीति से सिद्धांत-

मुक्तावलीकारादिक प्रतिबिंब अवच्छेद विना हि ब्रह्म मै जीव ईश्वरभाव सिद्ध करे हैं। यद्यपि जीव ईश्वरादि पदार्थन मै परस्पर विरुद्ध नाना प्रकार भेद का निरूपण पूर्वाचार्यों ने किया है ताके अनुसार हि या ग्रंथ मै बी ताका निरूपण है। तथापि जीव ईश्वरादि संपूर्ण पदार्थ भ्रांति मात्र सिद्ध हैं। तिन मै प्रकारभेद निरूपण मै आचार्यन का तात्पर्य नहि। काहे तैं परस्पर विरुद्ध पदार्थन मै अभिनिवेश तैं भेदवादियों मै अनाप्तत्व की शंका होवै है। तैसे कोई जीव ईश्वर प्रतिबिंबरूप माने हैं। कोई अवच्छेदरूप माने हैं। कोई प्रतिबिंब अवच्छेद विना हि जीव ईश्वर भाव माने हैं। कोई जीव एकमाने हैं कोई नाना माने हैं। तैसे वक्ष्यमाण रीति सै और बी अज्ञानादि पदार्थन मै एकत्व नानात्वादि प्रकारभेद; या ग्रंथ मै स्पष्ट है औ पूर्व उक्त रीति सै श्रवण विधि आदि पदार्थन मै प्रकारभेद स्पष्ट है। इस रीति सै परस्पर विरुद्ध प्रकारभेद मै आचार्यन का तात्पर्य माने तिन मै बी अनाप्तत्व की शंका होवैगी। यातैं परस्पर विरुद्ध प्रकारभेद प्रदर्शन मै आचार्यन का तात्पर्य कहना संभवै नहि। याहि तैं या ग्रंथ मै किसी मत के खंडन मै वा उपपादन मै अत्यंत आग्रह नहि किया। जो कहूं खंडन वा उपपादन किया है सो बी संप्रदाय तैं उत्पथ गमन की निवृत्ति वास्ते किया है। यातैं दोष नहि। इस रीति सै विरुद्ध प्रकारभेद

प्रदर्शन मै आचार्यन का तात्पर्य नहि किंतु अद्वितीय ब्रह्मबोध मै हि तात्पर्य मान्या चाहिये। ताकी उत्पत्ति वास्ते आचार्यन का विरुद्ध प्रकारभेद प्रदर्शन दोषकर नहि। किंतु अलंकार रूप हि है। काहे तैं अधिकारि पुरुषन की प्रज्ञा विचित्र हैं। यातैं किसी अधिकारी कूं किसी प्रकार तैं अद्वितीय ब्रह्म का बोध संभवै है। 'यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि सा सैव प्रक्रियेहस्यात् साध्वी सा चानवस्थिता' या वचन तैं सुरेश्वराचार्य ने बी प्रकारभेद का निरूपण अलंकाररूप हि कहा है। नानाविध प्रकारभेद मै जिस प्रकार तैं अधिकारि पुरुषन कूं प्रत्यगात्म विषयक बोध होवै सोई प्रकार निर्दोष औ गुणभूत है। यह ताका अर्थ है। कल्पतरु की टीका परिमल मै दीक्षित ने बी यह कहा है—जैसे वास्तव अरुंधती के बोध वास्ते ताके पूर्व उत्तरादि देशस्थ स्थूल नक्षत्ररूप अरुंधती की नाना पुरुष कल्पना करैं, तहां सप्रयोजन होने तैं कल्पित अरुंधती मै विरोध दोषकर नहि। तैसे अकल्पित ब्रह्मात्मा के बोध वास्ते कल्पित प्रकारभेद मै बी विरोध दोषकर नहि। यातैं उक्त औ वक्ष्यमाण जीव ईश्वरादि पदार्थन मै परस्पर विरुद्ध नानाप्रकार भेद कूं देख के मोह कूं प्राप्त होवै सो अल्पश्रुत है। इस रीति सै मतभेद तैं जीव ईश्वर का स्वरूप निरूपण किया। अब प्रसंग तैं हि जीव मै एकत्व नानात्व का निरूपण करे हैं। तहां सिद्धांतमुक्तावलीकारादिक हि यह कहे

हैं अज्ञान तैं ब्रह्म हि जीव है प्रतिबिंबरूप वा अवच्छेद-रूप जीव का अंगीकार नहि औ ब्रह्म एक है। यातैं ब्रह्मरूप जीव वी एक हि है नाना नहि। स्वप्न की न्याईं ताके अज्ञान कल्पित हि संपूर्ण प्रपंच है। ज्ञान की उत्पत्ति पर्यंत संपूर्ण लौकिक वैदिक व्यवहार हैं। ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति हुये निवृत्त होवैं हैं। या पक्ष मैं गुरु शिष्यभाव, उपास्य उपासकभाव, बंध मोक्ष व्यवस्थादिक स्वप्न की न्याईं जैसे दृष्ट हैं तैसे हि माने हैं। यातैं अनुपपत्ति की शंका संभवै नहि। औ अन्य ग्रंथकार तौ हिरण्यगर्भ कूं हि एक जीव माने हैं। तिन का यह तात्पर्य है—ब्रह्म का प्रतिबिंबरूप हिरण्यगर्भ भौतिक सृष्टि मै समर्थ है औ कारण अविद्या ताका उपाधि है। यातैं मुख्य जीव है। अन्य जीव ताके प्रति-बिंबरूप जीवाभास हैं। याहि तैं अमुख्य जीव हैं तिन मै जन्मादि संसार बंध है बिंबरूप हिरण्यगर्भ की प्राप्ति द्वारा शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति मोक्ष होवै है। या मत मै ब्रह्म का प्रतिबिंबरूप मुख्य जीव हिरण्यगर्भ के शरीर मै रहे है। अन्य शरीरन मै ताके प्रतिबिंबरूप जीवाभास रहे हैं। इस रीति से कितने ग्रंथकार हिरण्यगर्भ कूं हि मुख्य एक जीव माने हैं। अन्य जीवन कूं जीवाभास कहे हैं। औ अपर ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—हिरण्यगर्भ प्रतिकल्प भिन्न हि होवै है। यातैं कौन हिरण्यगर्भ मुख्य जीव है

यह निश्चय होय सके नहि। यातैं हिरण्यगर्भ मुख्य एक जीव है अन्य जीव ताके प्रतिबिंबरूप जीवाभास हैं यह कहना बी संभवै नहि। किंतु अविद्या कूं एक होने तैं तामै ब्रह्म का प्रतिबिंबरूप जीव तौ यद्यपि एक हि है। परंतु प्रमाण के अभाव तैं अन्य जीव ताके प्रतिबिंब नहि। याहि तैं अविद्या मै ब्रह्म का प्रतिबिंबरूप मुख्य जीव हिरण्यगर्भ के शरीर मै रहे है ताके प्रतिबिंबरूप अमुख्य जीवाभास अन्य शरीरन मै रहे हैं। यह कहना बी नहि संभवै है। किंतु अविद्या मै प्रतिबिंबरूप सोई एक जीव मुख्यामुख्य विभाग विना सर्व शरीरन मै रहे है। काहे तैं जीव भेद होवै तब तौ कोई जीव मुख्य है अन्य जीवाभासरूप अमुख्य जीव हैं इस रीति सै विभाग का संभवै होने तैं मुख्यामुख्य विभाग तैं सकल शरीरन मै तिन की स्थिति कहना संभवै। जींव एक मानै मुख्यामुख्य विभाग संभवै नहि। याहि तैं मुख्यामुख्य विभाग तैं शरीरभेद मै तिन की स्थिति कहना बी नहि संभवै है। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—'शिरसि मे वेदना पादे मे सुखं' इस रीति सै देवदत्त कूं स्वहस्त-पादादि अवयवगत सुख दुख का अनुसंधान होवै है। तैसे सर्व शरीरन मै जीव एक माने 'मम देवदत्तशरीरे सुखं यज्ञदत्तनामक शरीरे दुःखं' इत्यादिरूप सै सकल शरीरगत सुख दुःख का सर्व कूं अनुसंधान हुवा चाहिये। समाधान

यह है—जैसे प्रति शरीर जीवभेदपक्ष मै अतीत वर्तमान सर्व शरीरन मै अस्मदादिक जीव एक होतैं बी जन्मांतर के सुखादिकन का अनुसंधान होवै नहि। तहां और प्रकार सै तौ अनुसंधान का अभाव कहना संभवै नहि। किंतु जीव एक हुये बी वर्तमान शरीर तैं अतीत शरीरभिन्न हैं यातैं अस्मदादिकन कूं जन्मांतरं के सुखादिकन का अनुसंधान नहि होवै है यहि कहना होवैगा। तैसे हमारे मत मै बी सर्व शरीरन मै अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव एक हुये बी शरीरभेद तैं हि व्यवस्था संभवै है। सर्व कूं सर्व शरीरगत सुखादि अनुसंधान की आपत्ति नहि। यद्यपि शरीरभेद तैं सुखादिकन का अननुसंधान माने योगी कूं कायव्यूहगत सुखादिकन का अनुसंधान नहि हुवा चाहिये। औ शरीरभेद हुये बी योगी कूं सुखादि अनुसंधान होवै है। यातैं व्यभिचार होने तैं शरीरभेद अननुसंधान का प्रयोजक है यह नियम संभवै नहि। तथापि अस्मदादिकन कूं व्यवहित वस्तु का साक्षात्कार होवै नहि। योगी कूं होवै है। तहां प्रकारांतर सै तौ व्यवस्था संभवै नहि अदृष्ट विशेष के अभाव तैं अस्मदादिकन कूं व्यवहित का साक्षात्कार नहि होवै है। योगजधर्म के प्रभाव तैं योगी कूं होवै है। इस रीति से हि व्यवस्था कहि चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा—केवल शरीरभेद सुखादिकन के अननुसंधान का साधक नहि किंतु अदृष्ट विशेषा-

सहकृत शरीरभेद अनुसंधान का प्रयोजक है। अस्मदादिकन का अदृष्ट विशेष नहि है। औ वर्तमान शरीर तैं अतीतशरीरन का भेद है। यातैं अदृष्ट विशेषासहकृतशरीर भेद होने तैं जन्मांतर के सुखादिकन का अनुसंधान होवै नहि। योगी का योगजन्य अदृष्ट विशेष है। यातैं शरीरभेद होतैं बी अदृष्ट विशेषासहकृत शरीरभेद के अभाव तैं अननुसंधान होवै नहि। किंतु कायव्यूहगत सुखादिकन का अनुसंधान हि होवै है। इस रीति से कितने ग्रंथकार पूर्वमत मै दोषदर्शन पूर्वक सर्व शरीरन मै जीव एक माने हैं। इस रीति सै मतभेद तैं एक जीववाद का निरूपण किया। अब नाना जीववाद का निरूपण करे हैं—नानाजीववादि ग्रंथकार सर्व शरीरन मैं जीव एक है या मत मै दोषदर्शनपूर्वक नाना जीववाद की सिद्धि इस रीति सै करे हैं—'तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्' अर्थ यह—इंद्रादि देवन के मध्य मै जिस देव ने ब्रह्म कूं साक्षात्कार किया है सोई ब्रह्मरूप हुवा है अन्य नहि। या श्रुति मै विद्वान् का ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष औ अविद्वान् का बंधप्रतिपादन किया है। यातैं बंध मोक्ष की व्यवस्था सिद्ध होवै है। और बी श्रुति स्मृति भाष्यादिकन मै बंधमोक्ष की व्यवस्था प्रतिपादन करी है। सर्व शरीरन मै जीव एक माने ताका विरोध होवैगा। यातैं सर्व शरीरन मै जीव एक कहना संभवै नहि। किंतु अंतःकरणादिरूप उपाधि भेद

तैं प्रतिशरीर जीव का भेद मान्या चाहिये। इस रीति सै नाना जीववादि ग्रंथकार बंधमोक्ष व्यवस्था की सिद्धि वास्ते नाना जीववाद की सिद्धि करे हैं। तिन मै बी कोई या प्रकार तैं व्यवस्था का उपपादन करे हैं—यद्यपि नाना जीववाद मै बी अंतःकरण जीव का उपाधि है या पक्ष मै अज्ञान एक है; नाना नहि। काहे तैं आश्रय के भेद विना तौ अज्ञान का भेद संभवै नहि औ अज्ञान कल्पित जीव ईश्वर ताका आश्रय वा विषय संभवैं नहि, किंतु शुद्ध ब्रह्म हि अज्ञान का आश्रय विषय मानना होवैगा। यातैं आश्रय एक होने तैं अज्ञान का भेद सिद्ध होय सके नाहि। यातैं एक अज्ञान की एक के ज्ञान तैं निवृत्ति हुये सर्व का मोक्ष हुवा चाहिये। तथापि एक जीव के ज्ञान तैं संपूर्ण अज्ञान की निवृत्ति मानै तौ सर्व मोक्ष की शंका संभवै, संपूर्ण अज्ञान की निवृत्ति नहि माने हैं किंतु अनिर्वचनीय अज्ञान के अनिर्वचनीय हि भागरूप अंश अनंत हैं। अनंत अंशान के परिणाम अंतःकरणादिक अनंत हैं। जा जीव कूं ज्ञान होवै ताका जीवभाव के प्रयोजक अज्ञान अंश की निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है। अन्य जीवन कूं अंशांतर कृतबंध रहे है यातैं व्यवस्था संभवै है शंका संभवै नहि। इस रीति सै कोई ग्रंथकार अंशभेद तैं बंध मोक्ष की व्यवस्था का संभव कहे हैं। तिन के मत मै अज्ञान का सद्भाव बंध है। ताका नाश मोक्ष है। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—अज्ञान

का अंश भेद माने बी अज्ञान एक है यातैं विरोधि अग्नि-संयोग तैं तूलपिंड का शेष नहि रहे है। तैसे विरोधि ज्ञान के होतैं अज्ञान का शेष संभवै नहि। अज्ञान का नाश हि मोक्ष माने एक जीव के ज्ञान तैं अशेष अज्ञान की निवृत्ति होने तैं बंध मोक्ष व्यवस्था का असंभव होवैगा औ जीवन्मुक्ति शास्त्र का विरोध होवैगा। यातैं अज्ञान का नाश मोक्ष नहि। किंतु अज्ञान का संसर्ग बंध है। ज्ञान तैं संबंधाभाव मोक्ष है। तात्पर्य यह—एक-देशि *नैयायिक घट वाले भूतल मैं बी संयोग संबंधावच्छिन्न* घट का अत्यंताभाव माने हैं, तामै यह शंका होवै है—निर्घट भूतल की न्याईं सघट भूतल मै बी 'संयोगेन घटो नास्ति' यह प्रतीति प्रमा हुयी चाहिये। ताका समाधान यह कहे हैं-निर्घट भूतल मै 'संयोगेन घटो नास्ति' यह प्रतीति होवै है। सघट भूतल मै निर्दोष पुरुष कूं उक्त प्रतीति होवै नहि। यातैं यह मान्या चाहिये—संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव के संबंध का नियामक घटसंयोग का प्रागभाव वा प्रध्वंसाभाव है। सघट भूतल मै घट संयोग का प्रागभाव औ प्रध्वंसाभाव रहै नहि। यातैं संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव के हुये बी नियामक के अभाव तैं ताका संबंध तहां नहि रहे है। यह दृष्ट के अनुसार कल्पना है। इस रीति सै सघट भूतल मै संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव का

संबंध नहि होने तैं 'संयोगेन घटो नास्ति' यह प्रतीति भ्रमरूप हि होवै है प्रमा होवै नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—जैसे संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव के संबंध मैं नियामक घट संयोग का प्रागभाव वा प्रध्वंसाभाव है तिस वाले अनेक अधिकरणन मैं संबंधी घटात्यंताभाव है। परंतु सघट भूतल मैं संयोग की उत्पत्ति तैं ताका प्रागभाव औ प्रध्वंसाभाव रहै नहि। याहि तैं संयोग संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव का संबंध बी तहां नहि रहे है। तैसे चेतन आत्मा मैं अज्ञान के संबंध का नियामक मन है तिस वाले अनेक चेतन प्रदेशन मैं संबंधी अज्ञान है। जिस चेतन प्रदेश मैं ज्ञान की उत्पत्ति तैं मन की निवृत्ति होवै तहां अज्ञान का संबंध रहै नहि। अज्ञान के संबंधासंबंध हि क्रम तैं बंध मोक्ष हैं। यातैं व्यवस्था संभवै है। इस रीति से शुद्ध चेतन अज्ञान का आश्रय विषय मानै तिन के मतभेद तैं व्यवस्था का निरूपण किया औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं— शुद्ध चेतन अज्ञान का आश्रय नहि किंतु जीव ताका आश्रय है विषय शुद्धब्रह्म है। या मत मैं बी अज्ञान एक हि है नाना नहि। परंतु जैसे गोत्वादिक जाति अनेक व्यक्ति मैं रहे है नष्ट व्यक्ति कूं त्याग देवै है। तैसे अंतःकरण मैं प्रतिबिंबरूप अनेक जीवन मैं अज्ञान रहे है जा जीव कूं ज्ञान होवै ताकूं त्याग देवै है। काहे

तैं ज्ञान तैं मन की निवृत्ति हुये तामै प्रतिबिंबरूप जीव व्यक्ति रहै नहि। अज्ञान का त्याग हि मोक्ष है। अत्याग बंध है। ज्ञान रहित जीवन मै पूर्व की न्याईं अज्ञान रहे है। यातैं बंध मोक्ष की व्यवस्था संभवै है। परंतु या मत मै अज्ञान किसी कूं त्याग देवै है अन्य मै पूर्व की न्याईं रहे है। या कहने तैं बी अज्ञान के संबंधासंबंध हि बंध मोक्ष सिद्ध होवै हैं। पूर्वमत सै या मत का अर्थ सै भेद सिद्ध होवै नहि। अज्ञान के संबंधा-संबंध हि बंध मोक्ष माने ज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति प्रतिपादक श्रुति स्मृति भाष्यादिकन का विरोध होवैगा। तैसे ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति विना मन की निवृत्ति-कथन बी असंगत है। ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति नहि माने निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष का हि अभाव होवैगा। तैसे द्वितीय मत मै अज्ञान कल्पित जीव कूं अज्ञान का आश्रय कहना बी संभवै नहि। इस रीति सै नाना जीववाद मै एक अज्ञान मानै तिन के मतभेद तैं व्यवस्था का संभव कहा। नाना जीववाद मै हि अन्य ग्रंथकार जीव जीव के प्रति अज्ञान का भेद माने हैं। जा जीव कूं ज्ञान होवै ताका अज्ञान निवृत्ति-रूप मोक्ष होवै है अन्य कूं बंध रहे है। इस रीति सै बंध मोक्ष व्यवस्था का संभव कहे हैं। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—एक जीव के एक अज्ञान तैं प्रपंच की

उत्पत्ति माने किस जीव के अज्ञान तैं प्रपंच होवै है यह निश्चय होय सकै नहि। औ आवरण विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान तैसे अदृष्टादिरूप निमित्त सकलजीवन के समान होतैं एक के हि अज्ञान तैं प्रपंच होवै है यह कहना हि संभवै नहि। जो सकल जीवन के सकल अज्ञान प्रपंच का उपादान कहैं तौ एक के ज्ञान तैं एक अज्ञान की निवृत्ति हुये प्रपंच का बी नाश होने तैं अन्य जीवन कूं बी प्रपंच की प्रतीति नहि हुयी चाहिये। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—जैसे न्यायमत मै अनेक तंतु पट का आरंभक होवै हैं। तिन मै एक तंतु का नाश हुये तिस तंतु साधारण पट का नाश होवै है। तिसी काल मै विद्यमान अन्य तंतवों तैं अन्य सकल तंतु साधारण पटांतर की उत्पत्ति होवै है। तैसे सकल जीवन के सकल अज्ञान प्रपंच का उपादान हैं। एक जीव के ज्ञान तैं एक अज्ञान की निवृत्ति हुये तिस अज्ञान साधारण प्रपंच का नाश होवै है। तिसी काल मै विद्यमान अज्ञानांतर तैं अन्य सकल जीवसाधारण प्रपंचांतर की उत्पत्ति होवै है। यातैं मुक्त जीव तैं भिन्न जीवन कूं प्रपंचके अभान की आपत्ति नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार अज्ञान का भेदमान के बी ताका कार्य प्रपंच सर्व जीव साधारण एक माने हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार अज्ञान के भेद तैं जीव जीव के प्रति प्रपंच का भेद माने हैं। तथा हि—अनेक पुरुषन

कूं शुक्ति मै रजत भ्रम होवै तहां अज्ञान के भेद तैं रजत का भेद नहि माने एक कूं शुक्ति ज्ञान तैं रजत की निवृत्ति हुये अन्य पुरुषन कूं बी रजत की प्रतीति नहि हुयी चाहिये। यातैं जाके अज्ञान तैं जो रजतकल्पित है सो ताहि कूं प्रतीत होवै है अन्य कूं नहि। इस रीति सै अज्ञानभेद तैं रजत का भेद मान्या चाहिये। औ अनेक पुरुषन कूं अनेक पदार्थन मै द्वित्वादि संख्या प्रतीत होवै तहां सिद्धांत मै तौ जैसे नैयायिक एकत्व संख्या यावत् द्रव्य भावी माने हैं तैसे द्वित्वादि संख्या बी यावत् द्रव्य भावी है अपेक्षा बुद्धिजन्य नहि। काहे तैं जन्य माने अनंत द्वित्वादिक औ तिन के प्रागभावादिक मानने मै गौरव होवैगा। परंतु अपेक्षा बुद्धि द्वित्वादिकन का व्यंजक है। यातैं सदा तिन के प्रत्यक्ष की आपत्ति नहि। 'अयं एकः अयं एकः' इस रीति सै अनेक एकत्व गोचर बुद्धि अपेक्षा बुद्धि कहिये है। इस रीति सै सिद्धांत मै द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धि जन्य नहि। याहि तैं अपेक्षा बुद्धि के भेद तैं प्रति पुरुष द्वित्वादिकन का भेद बी नहि। परंतु न्यायमत मै द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धि जन्य है। अनेक पुरुषन कूं युगपत् द्वित्वादिक प्रतीत होवैं तहां जाकी अपेक्षा बुद्धि तैं जो द्वित्वादिक होवै सो ताहि कूं प्रतीत होवै है अन्य कूं प्रतीत होवै नहि। इस रीति सै अपेक्षा बुद्धि के भेद तैं द्वित्वादि संख्या का भेद नैयायिक

माने हैं। तैसे अज्ञान भेद तैं प्रपंच का भेद है। सर्व जीव साधारण प्रपंच एक नहि परंतु पूर्व उक्त प्रकार तैं प्रति-पुरुष रजतादिकन का भेद हुये बी जो रजत तुम ने देखा सोई हम ने देखा जो द्वित्वादि संख्या तुम ने देखी सोई हम ने देखी इस रीति सै रजतादिकन मै एकत्व का भ्रम होवै है। तैसे प्रपंच का भेद हुये बी जो घट तुम ने देखा सोई हम ने देखा। इस रीति सै प्रपंच मै एकता का भ्रम होवै है। यातैं प्रपंच का भेद माने अभेद प्रत्यक्ष नहि हुवा चाहिये। यह शंका संभवै नहि। इस रीति सै जीव का अज्ञान आकाशादि प्रपंच का उपादान मानै तिन के मतभेद तैं सर्व जीव साधारण वा असाधारण प्रपंच कहा औ कोई ग्रंथकार तौ ईश्वर उपाधि माया का परिणाम प्रपंच सर्व जीव साधारण एक माने हैं। या मत मै बी घटादिकन मै एकता प्रतीति भ्रमरूप नहि। इस रीति सै जीव के एकत्व नानात्व निरूपण मै प्रसंग तैं हि बंधमोक्ष की व्यवस्था औ प्रपंच का भेदाभेद निरूपण किया। पूर्व अभिन्न निमित्तोपादानता ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा है। तासै यह लक्षण सिद्ध होवै है—'जगत्कर्तृत्वे सति तदुपादानत्वं ब्रह्मणः तटस्थ लक्षणम्' अर्थ यह—प्रपंच का कर्ता हुवा ताका उपादान होवै सो ब्रह्म कहिये है। तहां अधिष्ठानतारूप उपादानता तौ ब्रह्म मै पूर्व सिद्ध करी है। अब कर्तृत्व की सिद्धि वास्ते प्रथम यह शंका होवै है—घटा-

दिकन का उपादान मृत्तिकादिक तिन का कर्ता होवैं नाहि। तैसे प्रपंच का उपादान ब्रह्म ताका कर्ता संभवै नाहि। औ ब्रह्म उदासीन है तामैं कर्तृत्वधर्म संभवै वी नहि। यातैं वी ब्रह्म प्रपंच का कर्ता नहि संभवै है। किंच 'कार्यानुकूलज्ञान चिकीर्षा कृतिमत्वं वा' 'कार्यानुकूलज्ञानवत्वमेव वा' 'कार्यानुकूल स्रष्टव्यालोचनरूपज्ञानवत्वं वा कर्तृत्वं' यह तीन हि प्रकार का कर्तृत्व का लक्षण कहना होवैगा। तहां प्रमाण के अभाव तैं कार्य के अनुकूल ज्ञान चिकीर्षा कृतिमत्वरूप कर्तृत्व तौ ब्रह्म मैं कहना संभवै नहि। जो कार्यानुकूल ज्ञानवत्वरूप हि कर्तृत्व कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं ज्ञान कूं कार्य माने ताके कर्तृत्व की सिद्धि वास्ते ज्ञानांतर की अपेक्षा हुये अनवस्था होवैगी। ताकूं नित्य माने नित्यज्ञानरूप हि ब्रह्म है तामैं तादृशज्ञानवत्वरूप कर्तृत्व कहना संभवै नहि। याहि तैं 'मया इदं स्रष्टव्यं' या रीति सैं कार्य के अनुकूल स्रष्टव्या लोचनरूप ज्ञानवत्व कर्तृत्व है यह कहना वी नहि संभवै है। इस रीति सैं किसी प्रकार तैं वी ब्रह्म मैं कर्तृत्व की सिद्धि होय सके नहि। याहि तैं कर्तृत्व घटित ताका तटस्थ लक्षण वी नहि संभवै है। इस रीति से शंकावादी कर्तृत्व की असिद्धि द्वारा ब्रह्मलक्षण मैं असंभव की शंका करे है। कोई ग्रंथकार ताका यह समाधान कहे हैं—घट ईश्वर संयोग के उपादान घट ईश्वर दोनों हैं। तहां उपादान ईश्वर हि ताका कर्ता है। तैसे

प्रपंच का उपादान ब्रह्म ताका कर्ता संभवै है। मृत्तिकादिकन की न्याईं उपादान ब्रह्म मैं कर्तृत्व का अभाव कहना संभवै नहि। औ उदासीन ब्रह्म मैं यद्यपि स्वभाव सै तौ कर्तृत्वधर्म नहि बी संभवै है। तथापि औपाधिक संभवै है। यातैं उदासीनता प्रयुक्त वी कर्तृत्व का असंभव कथन नहि संभवै है। किंच 'तदैक्षत बहुस्यां' 'सोऽकामयत बहुस्यां' 'तदात्मानं स्वयमकुरुत' इत्यादिक श्रुतिवाक्य ब्रह्म मैं सृष्टि के अनुकूल ज्ञान इच्छा कृति का प्रतिपादन करे हैं यातैं न्यायमत की न्याईं वेदांतमत मैं बी कार्य के अनुकूल ज्ञानचिकीर्षा कृतिमत्त्वरूप हि कर्तृत्व संभवै है प्रमाणाभावरूप दोष नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार कार्यानुकूल ज्ञानचिकीर्षा कृतिमत्त्व हि कर्तृत्व सिद्ध करे हैं। अन्य ग्रंथकार तामै यह दोष कहे हैं—यद्यपि ब्रह्मरूप होने तैं कार्यानुकूल ज्ञान तौ नित्य है ताके कर्तृत्व वास्ते तौ अन्य ज्ञानादिकन की अपेक्षा होवै नहि। तथापि चिकीर्षा कृति कार्यरूप हैं तिन के कर्तृत्व वास्ते अन्य चिकीर्षा कृति की अपेक्षा हुये अनवस्था होवैगी औ चिकीर्षा कृति का बी कर्तृत्व लक्षण मैं प्रवेश माने गौरव होवैगा। यातैं वी कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि ब्रह्म मैं कर्तृत्व मान्या चाहिये चिकीर्षा कृति का लक्षण मैं प्रवेश संभवै नहि। यद्यपि इच्छा कृति का लक्षण मैं प्रवेश नहि माने 'सोऽकामयत' 'तदात्म

स्वयमकुरुत' इस रीति सै श्रुतिवाक्यन मै इच्छा कृति का प्रतिपादन व्यर्थ होवैगा । तथापि श्रुतिवाक्यन तैं इच्छा कृति सृष्टि के हेतु हि सिद्ध होवै हैं । प्रमाण के अभाव तैं कर्तृत्व लक्षण मै प्रवेश वास्ते इच्छा कृति का प्रतिपादन सिद्ध होवै नहि । कार्यानुकूल ज्ञान ब्रह्मरूप होने तैं नित्य है कार्यरूप नहि । यातैं ज्ञानघटित कर्तृत्व लक्षण मै अनवस्था दोष नहि । यद्यपि कार्यानुकूलज्ञान ब्रह्मरूप माने ब्रह्म मै तादृशज्ञानवत्ता कहना संभवै नहि । तथापि औपाधिक भेद मान के संभवै है । यद्यपि 'तदैक्षतबहुस्यां' या श्रुति मै सृष्टि का हेतु ज्ञान कादाचित्क कहा है ज्ञान कूं नित्य माने ताका विरोध होवैगा । तथापि ब्रह्मरूप होने तैं कार्यानुकूल ज्ञान यद्यपि स्वरूप सै तौ नित्य है परंतु कार्याभिमुख अदृष्टरूप ताका सहकारि कादाचित्क है कादाचित्क सहकारि विशिष्टरूप तैं ज्ञान बी कादाचित्क है । या अभिप्राय तैं श्रुति मै कादाचित्क कहा है यातैं विरोध नहि । किंच श्लोक 'निःश्वसितमस्यवेदाः वीक्षितमस्य पंचभूतानि । स्मितमेतस्य चराचरमस्य सुषुप्तिर्महाप्रलयः' यह वाचस्पति मिश्र का वचन है । पुरुष के निःश्वास की न्याई विना प्रयत्न सै वेद जाके कार्य हैं जाके वीक्षण तैं हि महाभूत होवै हैं हिरण्यगर्भ के सहित स्थावर जंगम प्रपंच जाका मंदहास मात्र है महाप्रलय जाका सुषुप्ति है सो परमात्मा

श्रति प्रशस्त है। यह ताका अर्थ है। वचन मै महाभूतन कूं ब्रह्म का वीक्षित कहा है, स्थावर जंगम प्रपंच ताका सित कहा है। कल्पतरुकार ने ताका यह तात्पर्य कहा है—वीक्षण नाम ज्ञान का है। ब्रह्म के वीक्षण मात्र साध्य होने तैं आकाशादिक पंच महाभूत ताके वीक्षित हैं। मंदहास का नाम स्मित है। लोक मै मंदहास ज्ञान तैं अधिक प्रयत्नसाध्य प्रसिद्ध है। तैसे ब्रह्म कूं स्थावर ज़ंगम प्रपंच की उत्पत्ति मै ज्ञान की न्याई हिरण्यगर्भ की उत्पत्तिरूप अधिक व्यापार की वी अपेक्षा है। काहे तैं चराचर सृष्टि मै परब्रह्म की न्याई हिरंण्यगर्भ वी कर्ता श्रुति स्मृति मै प्रसिद्ध है तहां हिरण्यगर्भ साक्षात् कर्ता है परब्रह्म प्रयोजक कर्ता है या प्रकार की व्यवस्था तौ संभवै नहि। काहे तैं शारीरकशास्त्रगत द्वितीयाध्याय के चतुर्थपाद मै भौतिक सृष्टि मै वी परमेश्वर साक्षात् कर्ता सिद्ध किया है। प्रयोजक कर्ता माने ताका विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—जैसे अंकुर की उत्पत्तिरूप व्यापार की अपेक्षा करके वीज वृक्ष कूं करे है तैसे ज्ञान तैं अधिक हिरण्यगर्भ की उत्पत्तिरूप व्यापार की अपेक्षा करके परमात्मा चराचर प्रपंच कूं रचे है या अभिप्राय तैं स्थावर जंगम प्रपंच ब्रह्म का स्मित कहा है। तहां महाभूतन के कर्तृत्व मै इच्छा कृति का वी प्रवेश माने तिन कूं वीक्षण मात्र साध्य कथन कल्पतरुकार का

असंगत होवैगा। तैसे महाभूतन कूं हि वीक्षण तैं अधिक इच्छा कृति साध्य माने तिन कूं वी सित कहना संभवै है। स्थावर जंगम प्रपंच कूं हि ब्रह्म का सित कथन वी असंगत होवैगा। इच्छा कृति कूं सृष्टि की हेतुता पूर्व कहि है। इहां सृष्टि के कर्तृत्व मै तिन का अप्रवेश विवक्षित है यातैं पूर्व अपर का विरोध नहि। या स्थान मै यह निष्कर्ष है—कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व मानै आकाशादिक महाभूतन कूं वीक्षण मात्र साध्य कथन औ चराचर प्रपंच कूं ब्रह्म का सित कथन कल्पतरुकार का संभवै है। कर्तृत्व लक्षण मै इच्छा कृति का वी प्रवेश माने पूर्व उक्त प्रकार तैं द्विविध कथन हि संभवै नहि। यातैं कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व का लक्षण मान्या चाहिये। किंच विवरणकार ने सुखादिकन का कर्ता जीव कहा है। कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व मानै सुखादि कार्य के अनुकूल साक्षिरूपज्ञानजीव कूं विद्यमान है। यातैं सुखादि कर्तृत्व कथन संभवै है। कर्तृत्वलक्षण मै इच्छा कृति का वी प्रवेश माने सुखादिकन के अनुकूल इच्छादिकन का अनुभव विरोध तैं जीव मै अंगीकार नहि। यद्यपि सुख की इच्छा तैं साधनानुष्ठान द्वारा सुख की उत्पत्ति होवै है यातैं सुखादिकन के अनुकूल इच्छादिकन का जीव मै अभाव कहना संभवै नहि। तथापि सुखादि उपादान अंतःकरण

गोचर इच्छा कृति का अभाव इहां विवक्षित है। अंतःकरण गोचर सुखादि अनुकूल इच्छादिक जीव मै होवैं नहि। यातैं कर्तृत्वलक्षण मै इच्छा कृति का बी प्रवेश माने विवरणकार का जीव मै सुखादि कर्तृत्व कथन असंगत होवैगा। यातैं बी कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व मान्या चाहिये। इच्छाकृति का कर्तृत्वलक्षण मै प्रवेश कहना संभवै नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार इच्छा कृति के निराकरण पूर्वक कार्यानुकूल ज्ञानवत्व हि कर्तृत्वलक्षण माने हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह कहे हैं—कार्य के अनुकूल 'मया इदं स्रष्टव्यं' इत्याकारक ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व है कार्यानुकूल ज्ञानवत्व मात्र नहि। काहे तैं शुक्तिरजत औ स्वप्न पदार्थन के अनुकूल अधिष्ठान का ज्ञान जीव कूं है। कार्यानुकूल ज्ञानवत्व मात्र कर्तृत्व माने जीव तिन का कर्ता बी हुवा चाहिये। यद्यपि 'अथरथान् रथयोगान् पथः सृजते' 'स हि कर्ता' इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं जीव स्वप्न का कर्ता प्रतीत होवै है। तथापि भाष्यकार ने उपचार मात्र तैं जीव स्वप्न का कर्ता सिद्ध किया है। तथा हि—'लांगलं गवादीनुद्वहति' अर्थयह—लांगल गवादिकन की स्थिति करे है। या स्थान मै लांगल मै मुख्य तौ गवादि स्थिति कर्तृत्व संभवै नहि। किंतु लांगल द्वारै कृषि द्वारा गवादि स्थिति के हेतु पलालादिक होवै हैं तिन तैं गवादिकन की स्थिति होवै है यातैं लांगल मै गवादि स्थिति कर्तृत्व का

उपचार होवै है। तैसे धर्माधर्म तैं स्वप्न पदार्थन की प्रतीति होवै है। धर्माधर्म का कर्ता जीव है। यातैं श्रुतिवाक्यन मै उपचार तैं जीव स्वप्न का कर्ता कहिये है। इस रीति सै भाष्यकार ने औपचारिक कर्तृत्व मै उक्त श्रुति वाक्यन का तात्पर्य कहा है। यातैं स्वप्न का मुख्यकर्ता जीव सिद्ध होवै नहि। तैसे विवरणकार उक्त सुखादि कर्तृत्व वी उपचार मात्र तैं जान लेना। काहे तैं 'मया इदं सुख दुःखादि स्रष्टव्यं' इत्याकारक ज्ञान का अभाव हुये वी सुखादिक होवै हैं। यातैं जीव तिन का मुख्यकर्ता संभवै नहि। किंतु धर्माधर्म तैं सुखादिकन का भान होवै है। धर्माधर्म का कर्ता जीव है। यातैं उपचार तैं सुखादिकन का कर्ता कहिये है। तैसे कल्पतरु मै महाभूतन कूं वीक्षणमात्र साध्य कहा है। तहां वी वीक्षण शब्द तैं कार्यानुकूल स्रष्टव्यालोचनरूप हि वीक्षण विवक्षित है यातैं विरोध नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार कार्यानुकूल स्रष्टव्यालोचनरूप ज्ञानवत्व हि कर्तृत्व लक्षण सिद्ध करे हैं। यातैं कर्तृत्व की असिद्धि द्वारा ब्रह्मलक्षण मै असंभव की शंका संभवै नहि। निखिल प्रपंच का कर्ता होने तैं हि ब्रह्म सर्वज्ञ सिद्ध होवै है। काहे तैं सर्वज्ञता विना निखिल प्रपंच का कर्तृत्व संभवै नहि। परंतु या स्थान मै यह शंका होवै है—अंतःकरण के अभाव तैं ब्रह्म मै ज्ञातृत्व हि सिद्ध होय सके नहि सर्वज्ञता की सिद्धि तौ अत्यंत दूर है।

तथा हि–'कार्योपाधिरयं जीवः' या श्रुति तैं अंतःकरण जीव का उपाधि है यातैं अंतःकरण का परिणामरूप वृत्तिज्ञान का आश्रय होने तैं जीव मै तौ ज्ञातृत्व संभवै है। परंतु ब्रह्म का उपाधि अंतःकरण है नहि। यातैं ब्रह्म मै ज्ञातृत्व के अभाव तैं ताका व्याप्य सर्वज्ञता संभवै नहि। तात्पर्य यह–जैसे धूम का व्यापक वह्नि है जहां वह्नि का अभाव होवै तहां धूम का सद्भाव होवै नहि। तैसे सर्वज्ञत्व का व्यापक ज्ञातृत्व है। काहे तैं ज्ञातृत्व विशेषरूप हि सर्वज्ञत्व है। यातैं व्यापक ज्ञातृत्व के अभाव तैं ब्रह्म मै ताका व्याप्य सर्वज्ञता संभवै नहि। प्रकटार्थकार या शंका का यह समाधान कहे हैं–जैसे अंतःकरण ज्ञातृत्व का उपाधि है। तैसे माया बी ज्ञातृत्व का उपाधि है। यातैं माया उपहित ब्रह्म मै ज्ञातृत्व का संभव होने तैं ताका व्याप्य सर्वज्ञता संभवै है शंका संभवै नहि। इस रीति सै प्रकटार्थकार ज्ञातृत्व की सिद्धि द्वारा ब्रह्म मै सर्वज्ञता सिद्ध करे हैं। परंतु प्रकटार्थकार के मत मैं अतीत अनागत वर्तमान सकल वस्तु गोचर ईश्वर का ज्ञान अपरोक्ष है। औ तत्त्व शुद्धिकार तौ यह कहे हैं–लोक मै प्रत्यक्ष ज्ञान वर्तमान वस्तुमात्र गोचर हि प्रसिद्ध है अतीत अनागत वस्तुगोचर प्रसिद्ध नहि औ सर्वज्ञता प्रतिपादक शास्त्र ईश्वरज्ञानगत परोक्षता अपरोक्षता मै उदासीन है। यातैं यह मान्या चाहिये–वर्तमान निखिल पदार्थ गोचर माया

की वृत्तिरूपज्ञान ईश्वर कूं अपरोक्ष होवै है। ताके संस्कार तैं अतीत पदार्थन की स्मृति होवै है। तैसे अनागत पदार्थन का बी माया की वृत्तिरूपज्ञान परोक्ष हि होवै है अपरोक्ष होवै नहि। इस रीति से तत्त्वशुद्धिकार जीव की न्याईं ईश्वर कूं बी अतीतादि गोचरज्ञान परोक्ष हि माने हैं। वर्तमान वस्तुमात्रगोचर अपरोक्षज्ञान माने हैं। इस रीति सै प्रकटार्थकारादिक जीव की न्याईं ईश्वर का ज्ञान बी वृत्तिरूप हि माने हैं। तिन के मतभेद तैं सर्वज्ञता का निरूपण किया। अब स्वरूप ज्ञान तैं सर्वज्ञता मानै तिन के मतभेद तैं ताका निरूपण करे हैं। तिन मै बी कौमुदीकार का यह मत है—स्वरूपज्ञान तैं हि स्वसंबद्ध सर्व का प्रकाशक होने तैं ब्रह्म सर्वज्ञ है वृत्तिज्ञानकृत सर्वज्ञता नहि। काहे तैं 'तमेव भांतमनुभाति सर्वं' या श्रुति मै स्वप्रकाश आत्मा हि सर्व प्रपंच का प्रकाशक कहा है तासै भिन्न प्रकाशक का निषेध किया है। वृत्तिज्ञानकृत सर्वज्ञता माने ताका विरोध होवैगा। तैसे 'एकमेवाद्वितीयं' या श्रुति मै सृष्टि तैं पूर्व काल मै स्वगत सजातीय विजातीय भेद रहित ब्रह्म कहा है। तिस काल मै वृत्ति माने ताका विरोध होवैगा। सृष्टि तैं पूर्व काल मै वृत्तिज्ञान का बी लय माने तिस काल मै ब्रह्म सर्वज्ञ नहि होवैगा। यातैं 'तदैक्षत' या श्रुति सिद्ध ईक्षण कर्तृत्व के हि अभाव तैं ईक्षण पूर्वक महाभूतादि सृष्टि का कर्ता बी नहि होवैगा।

यातैं वृत्तिज्ञानकृत सर्वज्ञता संभवै नहि। यद्यपि स्वरूप-ज्ञान तैं सर्वज्ञता माने प्रलय काल मै अतीत प्रपंच नहि है। सृष्टि तैं पूर्वकाल मै अनागत प्रपंच नहि। अविद्यमान अतीत अनागत प्रपंच का ब्रह्म से संबंध बी संभवै नहि। यातैं तिस काल मै ब्रह्म सर्वज्ञ नहि होवैगा। तथापि प्रथमाध्याय के तृतीयपाद मै सूत्रकार भाष्यकारादिकन ने प्रलयकाल मै संस्काररूप से अतीत प्रपंच की सत्ता सिद्ध करी है। तैसे द्वितीयाध्याय के प्रथमपाद मै सृष्टि तैं पूर्व काल मै संस्काररूप से हि अनागत प्रपंच की बी सत्ता सिद्ध करी है। यातैं अतीतादि प्रपंच बी ब्रह्म संबद्ध होने तैं तिस काल मै बी ब्रह्म मै सर्वज्ञता संभवै है। या मत मै सर्वगोचर ज्ञानरूप हि ब्रह्म है। सर्व गोचर ज्ञान का कर्ता नहि। 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादि श्रुतिवाक्यन का बी इसी अर्थ मै हि तात्पर्य माने हैं। परंतु ब्रह्म कूं सर्वगोचर ज्ञानरूप हि माने वृत्ति-ज्ञानकृत सर्वज्ञता नहि माने तौ स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का युगपत् ज्ञान नहि होवैगा। काहे तैं स्थूल प्रपंच काल मै संस्काररूप सूक्ष्म प्रपंच नहि। प्रलयकाल मै औ सृष्टि तैं पूर्वकाल मै स्थूल प्रपंच नहि। यातैं स्थूल प्रपंचकाल मै स्वसंबद्ध स्थूल प्रपंच का हि प्रकाशक ब्रह्म संभवै है तिस काल मै अविद्यमान सूक्ष्म प्रपंच का प्रकाशक संभवै नहि। तैसे सूक्ष्म प्रपंचकाल मै ताका हि प्रकाशक

संभवै है । स्थूल प्रपंच का प्रकाशक संभवै नहि । इस रीति सै निखिल प्रपंच का युगपत् प्रकाशक नहि होने तैं ब्रह्म मै सदा असंकुचित सर्वज्ञता का असंभव होवैगा । वृत्तिज्ञानंकृत सर्वज्ञता पक्ष मै यह दोप नहि । काहे तैं स्थूल सूक्ष्म प्रपंच गोचर माया की वृत्तिरूपज्ञान युगपत् संभवै है । यातैं वृत्तिज्ञानकृत सर्वज्ञता पक्ष हि समीचीन है । स्वरूप ज्ञान तैं सर्वज्ञता पक्ष समीचीन नहि । जो वृत्तिज्ञानकृत सर्वज्ञता पक्ष मै दोप कहा 'तमेवभांतमनुभाति सर्वं' या श्रुति मै स्वप्रकाश आत्मा हि प्रपंच का प्रकाशक कहा है । प्रपंच के प्रकाश वास्ते आत्मभिन्न वृत्तिज्ञान की अपेक्षा माने ताका विरोध होवैगा । परंतु विचार करैं तौ स्वरूपज्ञानकृत सर्वज्ञता पक्ष मै बी या दोप का परिहार होय सके नहि । काहे तैं प्रपंच के प्रकाश वास्ते ब्रह्म कूं माया वृत्ति की अपेक्षा मानै श्रुति का विरोध कहैं तौ घटादिकन के प्रकाश वास्ते जीव कूं अंतःकरण की वृत्ति की अपेक्षा माने बी विरोध तुल्य है । जो अंतःकरण की वृत्ति जड है ताकी अपेक्षा हुये बी सकल जड वस्तु का प्रकाशक चेतन संभवै है । यातैं श्रुतिविरोध का परिहार कहैं तौ माया की वृत्ति बी जड है ताकी अपेक्षा हुये बी जडमात्र का प्रकाशक चेतन संभवै है । यातैं श्रुति विरोध का परिहार समान है । और जो दोप कहा सृष्टि तैं पूर्वकाल मै वृत्तिमाने 'एकमेवाद्वितीयं' या श्रुति का

विरोध होवैगा। वृत्ति नहि माने ईक्षण कर्तृत्व के हि अभाव तैं ईक्षणपूर्वक महाभूतादि सृष्टि कर्तृत्व का असंभव होवैगा। सो दोष बी संभवै नहि। काहे तैं सृष्टि तैं पूर्वकाल मै वृत्ति मानै श्रुति का विरोध कहैं तौ ब्रह्म सैं भिन्न मायादिक बी सृष्टि तैं पूर्वकाल मै विद्यमान हैं। यातैं श्रुति का विरोध अपरिहार्य है। जो 'अजामेकां' 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' इत्यादि श्रुति स्मृति मै मायादिक अनादि कहे हैं। यातैं 'एकमेवाद्वितीयं' या श्रुति का ब्रह्म से भिन्न कार्यरूप द्वितीय वस्तु के अभाव मै तात्पर्य कहैं तौ 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादिक श्रुति ब्रह्म मै सदा सर्व वस्तु गोचरज्ञान का कर्तृत्वरूप सर्वज्ञता कहे हैं। यातैं सर्वज्ञता साधक माया वृत्ति तैं भिन्न कार्य के अभाव मै उक्त श्रुति का तात्पर्य मान्या चाहिये। विरोध नहि। पंचम सूत्र के व्याख्यान मै भाष्यकार ने माया वृत्ति से हि ब्रह्म मै सर्वज्ञता सिद्ध करी है। तहां सांख्य की यह शंका है—लोक मै वृत्तिज्ञान शरीरादि साध्य प्रसिद्ध है। औ सृष्टि तैं पूर्वकाल मै ब्रह्म शरीरादि रहित है। यातैं तिस काल मै ब्रह्म कूं स्रष्टव्यालोचनरूप ज्ञान कहना संभवै नहि। या शंका का भाष्यकार ने यह समाधान कहा है—जीव के ज्ञान मै अविद्या काम कर्मादिक प्रतिबंधक हैं ताकूं हि शरीरादि सापेक्ष ज्ञान की उत्पत्ति होवै है। ईश्वर अविद्यादि रहित है। यातैं

शरीरादिकन की अपेक्षा विना हि ईश्वर कूं माया की वृत्तिरूपज्ञान संभवै है। यातैं सृष्टि तैं पूर्वकाल मै तैसे प्रलय काल मै बी ईश्वर कूं माया की वृत्तिरूप-ज्ञान औ सदा सर्वज्ञता संभवै है। इस रीति सै माया वृत्तिकृत सर्वज्ञता पक्ष भाष्यसंमत है तामै दोष कथन कौमुदीकार का असंगत है। इस रीति मै कौमुदीकार के मत मै सर्वगोचर नित्य ज्ञानरूप हि ब्रह्म है सर्वगोचर ज्ञान का कर्ता नहि। औ वाचस्पति मिश्र तौ यह कहे हैं—'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यादि श्रुति वाक्यन मै सर्व गोचरज्ञान का कर्ता हि सर्वज्ञादि पदन का अर्थ है। सर्व गोचरज्ञानरूप तिन का अर्थ नहि। सर्व गोचरज्ञान कूं दृश्य विशिष्टरूप तैं बी नित्य माने ताका विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—यद्यपि ब्रह्म स्वरूप ज्ञान तैं हि स्वसंबंधि सर्व का प्रकाशक है। औ सर्व गोचरज्ञान स्वरूप सै नित्य है। तथापि दृश्य विशिष्ट रूप तैं कार्य है। यातैं सर्व गोचरज्ञान का कर्ता ब्रह्म संभवै है विरोध नहि इस रीति से कौमुदीकारादिकन के मतभेद तैं वृत्ति की अपेक्षा विना स्वरूप ज्ञान तैं हि ईश्वर सर्व का प्रकाशक होने तैं सर्वज्ञ कहा। तहां यह शंका होवै है—जैसे ईश्वर स्वरूप ज्ञान तैं सर्व का प्रकाशक है। तैसे जीव बी वृत्ति की अपेक्षा विना स्वरूप ज्ञान तैं हि घटादि विषय का प्रकाशक मान्या चाहिये। जो जीव कूं

वी वृत्ति निरपेक्ष स्वरूप ज्ञान तैं हि विषय का प्रकाशक माने तौ अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव चेतन व्यापक होने तैं ताका सर्व विषय सै संबंध है। यातैं स्वसंबंधि सर्व का प्रकाशक होने तैं सर्वज्ञ हुवा चाहिये। औ स्वरूप ज्ञान नित्य है। यातैं नेत्रादिक इंद्रिय वी व्यर्थ होवैंगे। या शंका का समाधान विवरणकार ने यह कहा है—ईश्वर सर्व का उपादान है। औ उपादान का कार्य मै तादात्म्य होवै है। यातैं ईश्वर तौ स्वसंबंधि सर्व का प्रकाशक संभवै है। परंतु जीव प्रकाशक संभवै नहि। काहे तैं जीव उपादान नहि। याहि तैं घटादि विषय सै ताका संबंध नहि। यद्यपि व्यापक जीव चेतन का घटादिकन सै संनिधिरूप संबंध तौ है। तथापि उपादानता के अभाव तैं विषय प्रकाश का हेतु विलक्षण संबंध नहि। यातैं जीव तैं घटादिकन का प्रकाश होवै नहि। वृत्ति द्वारा विषय प्रकाश का हेतु विलक्षण संबंध होवै तब जीवचेतन विषय कूं प्रकाशे है। शंका उपादानता के अभाव तैं जीव का घटादिकन सै विषय प्रकाश का हेतु संबंध वृत्ति विना नहि माने तौ अंतःकरणादिकन सै वी वृत्ति विना संबंध नहि होवैगा। काहे तैं घटादिकन की न्याई अंतःकरणादिकन का वी जीव उपादान नहि। जो घटादिकन की न्याई हि अंतःकरणादिकन सै वी वृत्ति द्वारा संबंध कहैं तौ अंतःकरणादिक वृत्ति विना

जीव चेतनरूप साक्षि भास्य माने हैं ताका विरोध होवैगा।
समाधान–यद्यपि अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव हि साक्षी है औ अंतःकरणादिक साक्षि भास्य हैं, परंतु संबंध विना तिन कूं साक्षी प्रकाशे नहि। वृत्ति द्वारा संबंध माने तासै विना साक्षिभास्यता कथन का विरोध होवैगा। तैसे वृत्ति मै बी वृत्ति द्वारा संबंध मानने मै अनवस्था होवैगी यातैं यह मान्या चाहिये–जेसै गोत्वजाति सर्वत्र व्यापक है औ गो अश्वादि व्यक्ति का उपादान नहि तौ बी स्वभाव सै हि अश्वादि व्यक्ति सै ताका संबंध नहि होवै है। सास्नादिमान् व्यक्ति सै होवै है। तैसे घटादिकन की न्याईं अंतःकरणादिकन का बी जीव उपादान तौ यद्यपि नहि है। परंतु स्वभाव सै हि घटादिकन सै जीवचेतन का संबंध नहि होवै है। अंतःकरणादिकन सै होवै है। यातैं वृत्ति विना हि अंतःकरणादिक साक्षिभास्य संभवै हैं विरोध नहि। किंच जैसे सामान्य अग्नि तृणादि देश मै विद्यमान बी है परंतु तासै तृणादिकन का दाह होवै नहि। काष्ठादिकन मै आरूढ अग्नि तैं होवै है। तैसे व्यापक होने तैं घटादि देश मै विद्यमान बी केवल जीव-चेतन तैं घटादिकन का प्रकाश नहि होवै है। अंतःकरण की वृत्ति नेत्रादि द्वारा निकस के घटादिकन के आकार होवै ता वृत्ति मै आरूढ जीव चेतन घटादिकन कूं प्रकाशे है यातैं नेत्रादिक इंद्रिय बी व्यर्थ नहि। औ जीव मै

सर्वज्ञता की आपत्ति वी नहि। या मत मै जीव चेतन मै आवरण का अंगीकार नहि। काहे तैं 'ब्रह्म न जानामि' या प्रकार तैं ब्रह्म मै तौ आवरण का अनुभव होवै है। परंतु 'मामहं न जानामि' इस रीति सै जीवचेतन मै आवरण का अनुभव होवै नहि। याहि तैं घटादि देश मै विद्यमान वी व्यापक जीव चेतन कूं संबंधाभाव तैं घटादिकन का प्रत्यक्ष नहि होवै है। वृत्ति द्वारा जीवचेतन का घटादिकन सै संबंध होवै तब प्रत्यक्ष होवै है। या प्रकार तैं हि जीव मै सर्वज्ञतापत्ति शंका का समाधान कहा है। व्यापक जीव का घटादिकन सै संबंध हुये वी ब्रह्म की न्याईं आवृत होने तैं तासै घटादिकन का प्रकाश होवै नहि। या प्रकार तैं समाधान नहि कहा। यह समाधान का प्रकार आगे कहैंगे। इस रीति सै अविद्या मै प्रतिबिंबरूप व्यापक जीव अनावृत है। या पक्ष मै सर्वज्ञतापत्तिशंका का समाधान कहा। जीव का उपाधि अंतःकरण है या पक्ष मै तौ सर्वज्ञतापत्ति की शंका हि होवै नहि। काहे तैं अंतःकरण उपाधिक जीव परिच्छिन्न है। यातैं घटादि देश मै अविद्यमान होने तैं घटादिकन कूं प्रकाशे नहि। वृत्ति द्वारा विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन की जीव सै अभेदाभिव्यक्ति होवै तब जीवचेतन घटादिकन कूं प्रकाशे है। अविद्या जीव का उपाधि है या पक्ष मै शंका होवै है।

ताके समाधान मै दो पक्ष हैं तिन मै बी जीव मै घटादिविषय की अनुपादानता तौ दोनूं पक्षन मै समान है। कोई उपादानता के अभाव तैं जीवचेतन का घटादिकन सै संबंध नहि माने हैं औ जीव कूं अनावृत माने हैं। तिस पक्ष मै व्यापक बी जीवचेतन विलक्षण संबंध के अभाव तैं घटादिकन कूं नहि प्रकाशे है। वृत्ति द्वारा विषय प्रकाश का हेतु विलक्षण संबंध होंवै तब प्रकाशे है। या रीति सै सर्वज्ञतापत्ति शंका का समाधान कहा है। औ अन्य ग्रंथकार तौ अनुपादान बी जीवचेतन का घटादिकन सै संबंध माने हैं। औ ब्रह्म की न्याईं जीव कूं आवृत माने हैं या पक्ष मै सर्वज्ञतापत्ति शंका का यह समाधान है—यद्यपि व्यापक होने तैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव का घटादिकन सै संबंध तौ है। परंतु आवृत होने तैं ताका हि प्रकाश नहि होवै है तासै घटादिकन का प्रकाश तौ अत्यंत दूर है। तात्पर्य यह—जड होने तैं घटादिकन का तौ प्रकाश स्वभाव सै नहि बी प्राप्त है। तथापि स्वप्रकाश होने तैं जीव का प्रकाश स्वभाव तैं हि प्राप्त है। परंतु आवृत होने तैं प्रकाशे नहि। याहि तैं घटादिकन कूं बी नहि प्रकाशे है। यद्यपि जीव मै आवरण माने 'मामहं न जानामि' इस रीति सै आवरण का अनुभव हुवा चाहिये। औ अनुभव होवै नहि। यातैं जीव मै आवरण का अंगीकार संभवै नहि। तथापि अंतःकरण उपहितरूप से

तौ जीव मै आवरण का अनुभव नहि बी होवै है। परंतु 'व्यापकरूपेण मामहं न जानामि' इस रीति सै व्यापकरूप सै आवरण का अनुभव होवै है। यातैं जीव मै अंतःकरणदेश मै आवरण नहि मानै बी बाधक के अभाव तैं घटादिविषय देश मै आवरण का अंगीकार संभवै है जब इंद्रिय द्वारा घटादि विषय से वृत्ति का संबंध होवै तब विषय देशस्थ जीवचेतन का वृत्ति सै संबंध होवै है तासै जीव चेतन गत आवरण का अभिभव होवै है। अनावृत जीव चेतन तैं तिसी विषय का प्रकाश होवै है। अन्य का नहि। यातैं सर्वज्ञता की आपत्ति नहि औ नेत्रादिक इंद्रिय बी व्यर्थ नहि। इस रीति सै जीव मै सर्वज्ञतापत्ति शंका के समाधान मै तीन पक्ष कहे। तिन मै विवरणकार के पक्ष मै तौ जीवचेतन का विषय सै संबंध वृत्ति का प्रयोजन है। अंतःकरण जीव का उपाधि है। या द्वितीयपक्ष मै विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन की जीव चेतन सै अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन है। तृतीयपक्ष मै आवरण का अभिभव ताका प्रयोजन है। सर्वथा नेत्रादि इंद्रिय द्वारा निकस के अंतःकरण की वृत्ति का जा विषय सै संबंध होवै ताका हि जीवचेतन तैं प्रकाश होवै है। अन्य का नाहि। यातैं जीव मै अनुभव सिद्ध अल्पज्ञता संभवै है। सर्वज्ञतापत्ति की शंका संभवै नहि। औ नेत्रादिक इंद्रिय बी व्यर्थ नहि। परंतु विवरणकार के

पक्ष मै यह शंका होवैं है—जीवचेतन का विषय से स्वरूप-संबंध वृत्ति का प्रयोजन कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीवचेतन व्यापक है। यातैं विषयदेशस्थ जीवचेतन औ विषय का स्वरूपात्मक संबंध वृत्ति विना बी सिद्ध होने तैं ताकूं वृत्ति के अधीन कहना संभवै नहि। जो जीवचेतन औ विषय का तादात्म्य संबंध वृत्ति का प्रयोजन कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं तादात्म्य संबंध का यह स्वभाव है। जिन पदार्थन का तादात्म्य होवै तिन का प्रथम मै लेके हि होवै है मध्य मै आगंतुक होवै नहि। यातैं पूर्वसिद्ध जीवचेतन औ विषय का वृत्ति के अधीन आगंतुक तादात्म्य संबंध कहना संभवै नहि। जो जीवचेतन औ विषय का संयोग संबंध वृत्ति का प्रयोजन कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तै जीवचेतन औ विषय का संयोग अन्यतर कर्मज वा उभय कर्मज हि कहना होवैगा। तहां अविद्या मै प्रतिबिंब-रूप व्यापक जीवचेतन तौ स्वरूप सै निष्क्रिय हि है औ घटादि विषय मै बी तिस काल मै क्रिया प्रतीत होवै नहि। यातैं निष्क्रिय जीवचेतन औ विषय का दोनूं प्रकार का संयोग संभवै नहि। जो संयोग के आश्रय दो होवैं हैं। तिन मै एक की क्रिया सै होवै सो अन्यतर कर्मज संयोग कहिये है। जैसे पक्षी की क्रिया सै वृक्ष पक्षी का संयोग होवै है। औ दोनों की क्रिया सै होवै सो उभय

कर्मज कहिये है। जैसे मेषद्वय की क्रिया से मेषद्वय का संयोग होवै है। औ द्विविध कर्म का अभाव हुये वी सुवर्णादिगत तैजसभाग औ पार्थिव भाग का संयोग दृष्ट है ताहि कूं सहज संयोग बी कहे हैं। तैसे जीवचेतन औ विषय का सहज संयोग मानै तौ ताकूं वृत्ति के अधीन कहना नहि संभवैगा। शंकावादी का तात्पर्य यह है—कार्य औ उपादान का तादात्म्य स्वतः सिद्ध होवै है। औ सावयव पदार्थन का संयोग बी कहुं स्वतः सिद्ध होवै है। जैसे तैजसभाग औ पार्थिवभाग का संयोग है। जीव-चेतन घटादि विषय का उपादान नहि। औ सावयव नहि। किंतु निरवयव है। यातैं घटादि विषय सै ताका स्वतः सिद्ध तादात्म्य वा संयोग संभवै नहि। तैसे पूर्व उक्त प्रकार तैं वृत्ति के अधीन बी नहि संभवै है। यातैं घटादि विषय सै जीवचेतन का संबंध वृत्ति का प्रयोजन है। यह कहना संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—जीवचेतन का घटादि विषय सै स्वरूप वा तादात्म्य अथवा संयोग संबंध वृत्ति के अधीन मानै तौ उक्त दोष होवै परंतु स्वरूपादि संबंध वृत्ति का प्रयोजन नहि मानै हैं। किंतु घटादि विषय सै जीवचेतनका विषय विषयिभाव संबंधवृत्ति के अधीन मानै हैं। काहे तैं वृत्ति की उत्पत्ति तैं पूर्व विषय देशस्थ बी जीव चेतन का घटादिकन सै विषय विषयिभाव होवै नहि ताकी उत्पत्ति सै अनंतर होवै है।

यातैं विषय विषयिभाव संबंध वृत्ति के अधीन संभवै है।
ताकी सिद्धि हि घटादि देश मै वृत्ति निर्गमन का
प्रयोजन है। यातैं विवरणाचार्य उक्त विषयदेश मै वृत्ति
का निर्गमन सफल है। घटादि विषय सै जीव चेतन के
संबंध की सिद्धि वास्ते विवरणाचार्य विषयदेश मै वृत्ति
का निर्गमन माने हैं। कितने ग्रथंकार तिन का इस
रीति सै विषय विषयिभाव संबंध मै तात्पर्य कहे हैं। औ
तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—अनुमिति आदि
परोक्ष वृत्ति का विषय देश मै निर्गमन तौ नहि होवै है
परंतु ता वृत्ति उपहित जीव चेतन का बी अनुमेयादि
विषय सै विषय विषयिभाव संबंध सिद्धांत मै माने हैं।
विषय विषयिभाव संबंध हि वृत्ति का प्रयोजन माने
विषयदेश मै ताका निर्गमन मानना निष्फल होवैगा।
काहे तैं उपादानता के अभाव तैं व्यापक बी जीवचेतन
का घटादि विषय सै स्वाभाविक संबंध तौ है नहि संबंध
की सिद्धि वास्ते विवरणाचार्य विषय देश मै वृत्ति का
निर्गमन माने हैं। औ विषय विषयिभाव संबंध परोक्ष-
स्थल की न्याईं अनिर्गत वृत्ति तैं बी संभवै है। ताकूं
वृत्तिनिर्गमन का प्रयोजन कहना संभवै नहि। याहि
तैं विषयदेश मै वृत्ति का निर्गमन कहने तैं विषय विषयि-
भाव संबंध मै विवरणाचार्य का तात्पर्य है। यह कहना
बी नहि संभवै है किंतु अंतःकरण की वृत्ति नेत्रादि

इंद्रिय द्वारा निकस के घटादिकन के आकार होवै तब विषय देशस्थ जीव चेतन वृत्ति का अधिष्ठान है। अधिष्ठान जीव चेतन सै वृत्ति का तादात्म्य होवै है। औ घटादि विषय सै वृत्ति का संयोग संबंध है। यातैं विषय संयुक्त वृत्ति तादात्म्यरूप हि जीव चेतन का विषय सै संबंध सिद्ध होवै है। यह संबंधवृत्ति निर्गमन विना संभवै नहि। यातैं विवरणाचार्य विषय देश मै वृत्ति का निर्गमनं माने हैं। इस रीति सै कितने ग्रंथकार विषय संयुक्त वृत्ति तादात्म्यरूप परंपरा संबंध मै विवरणाचार्य का तात्पर्य कहे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह कहे हैं— अंतर सुखादिकन के प्रत्यक्ष मै जीव चेतन सै तिन का साक्षात् संबंध हेतु प्रसिद्ध है। तैसे बाह्य घटादिकन के प्रत्यक्ष मै बी साक्षात् संबंध हि हेतु मान्या चाहिये परंपरा संबंध हेतु कहना संभवै नहि। काहे तैं एक रूप संबंध मै हेतुता का संभव हुये कहुं साक्षात् संबंध कहुं परंपरा संबंध हेतु मानना उचित नहि। तैसे साक्षात् संबंध का संभव होवै तहां परंपरा संबंध मानना बी उचित नहि। यातैं परंपरा संबंध मै बी विवरणाचार्य का तात्पर्य कहना संभवै नहि। किंतु घटादि विषय सै वृत्ति का संयोग होवै तब ताके उपादान जीव चेतन का बी तासै संयोगज संयोग होवै है। तात्पर्य यह—हस्ततरु का संयोग होवै तब 'हस्तावच्छेदेन तरुः

रूप से प्रकाशक हैं। अविद्या मै प्रतिबिंबरूप व्यापक बी जीवचेतन जाके अंतःकरण उपहित हुवा जा विषय कूं प्रकाशै सो विषय ताकूं हि प्रत्यक्ष होवै है अन्य कूं नहिं। यातैं एक के घट प्रत्यक्ष तैं सर्व कूं घट प्रत्यक्ष की आपत्ति नहि। इस रीति से अंतःकरण उपहित रूप से जीव-चेतन घटादि विषय का प्रकाशक है। जब अंतःकरण की वृत्ति विषयदेश मै जावै तब वृत्ति द्वारा अंतःकरण उप-हित जीवचेतन का विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन तैं अभेद अभिव्यक्त होवै है। तहां उपादान होने तैं बिंबरूप ब्रह्मचेतन का तौ घटादि विषय से तादात्म्य प्रथम हि सिद्ध है। विषयप्रकाशक जीवचेतन की वृत्ति द्वारा तासै अभेदा-भिव्यक्ति हुये ताका बी विषय सै तादात्म्य होवै है। यातैं जीवचेतन का विषय से तादात्म्य संबंध वृत्ति का प्रयोजन संभवै है। इस रीति सै विषय प्रकाशक जीवचेतन का घटादि विषय सै तादात्म्य संबंध वृत्ति का प्रयोजन मानै तौ विषय के प्रत्यक्ष मै कल्पित तादात्म्य संबंध हेतु है या सिद्धांत का बी विरोध होवै नहि। यातैं बी उक्त रीति सै तादात्म्य संबंध हि प्रयोजन मान्या चाहिये। इस रीति सै एकदेशी विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन सै अभेदाभिव्यक्ति द्वारा विषय प्रकाशक जीव-चेतन का विषय सै तादात्म्य संबंध वृत्ति का प्रयोजन माने हैं। परंतु एकदेशी के मत मै विषय चेतन से जीव-

चेतन की अभेदाभिव्यक्ति हि वृत्ति का प्रयोजन सिद्ध होवै है। ताका विषय सै तादात्म्य संबंध प्रयोजन सिद्ध होवै नहि। काहे तैं पूर्व कहि रीति सै विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन का विषय सै तादात्म्य संबंध हि अभेदाभिव्यक्ति द्वारा जीवचेतन का संबंध सिद्ध होवै है। औ ब्रह्मचेतन का विषय सै तादात्म्य संबंध वृत्ति विना हि सर्वदा सिद्ध है। ताकूं विषय प्रकाशक जीवचेतन की अभेदाभिव्यक्ति संपादन द्वारा वृत्ति का प्रयोजन कहना संभवै नहि। यातैं द्वाररूप अभेदाभिव्यक्ति हि वृत्ति का प्रयोजन सिद्ध होवै है तादात्म्य संबंध प्रयोजन सिद्ध होवै नहि। इहां यह तात्पर्य है—जीव मै सर्वज्ञतापत्ति शंका के समाधान मै पूर्व तीन पक्ष कहे हैं। तिन मै प्रथम पक्ष विवरणकार का है तामै विषय सै जीवचेतन का विलक्षण संबंध वृत्ति का प्रयोजन कहा है। जीव का उपाधि अंतःकरण है यह द्वितीय पक्ष है तामै जीवचेतन से विषय चेतन की अभेदाभिव्यक्ति प्रयोजन कहा है। तृतीयपक्ष मै आवरण का अभिभव ताका प्रयोजन कहा है। विवरण पक्ष मै संबंध के स्वरूप मै शंका हुये कोई विषय विषयिभाव संबंध कहे हैं। अन्य विषय संयुक्त वृत्ति तादात्म्य संबंध कहे हैं। कोई संयोगज संयोग कहे हैं। एकदेशी अभेदाभिव्यक्ति द्वारा तादात्म्य संबंध कहे हैं। परंतु एक-देशी के मत मै बी पूर्व उक्त रीति सै अभेदाभिव्यक्ति

हि वृत्ति का प्रयोजन सिद्ध होवै है। तादात्म्य संबंध प्रयोजन सिद्ध होवै नहि। यातैं प्रथम द्वितीय पक्ष के भेद का असंभव होने तैं अभेदाभिव्यक्ति द्वारा तादात्म्य संबंध मैं बी विवरणाचार्य का तात्पर्य कहना संभवै नहि। किंतु विषय प्रकाशक जीवचेतन का घटादि विषय सैं व्यंग्यव्यंजकभाव संबंध हि विवरणाचार्य कूं अभिमत है। काहे तैं अंतःकरण अपनी न्याईं स्वसंबंधि घटादिकन कूं बी चेतन की अभिव्यक्ति के योग्य करे है। यह विवरणाचार्य ने कहा है। ताका यह तात्पर्य है—अंतःकरण स्वच्छ द्रव्य होने तैं स्वभाव सैं हि चेतन की अभिव्यक्ति के योग्य है। घटादिक अस्वच्छ द्रव्य हैं यातैं स्वभाव सैं तौ ताके योग्य नहि बी हैं। परंतु जलादि स्वच्छ द्रव्य के संबंध तैं अस्वच्छ कुडयादिक बी प्रतिबिंबग्रहण के योग्य होवै हैं। तैसे वृत्ति के संबंध तैं घटादिक बी स्वसंनिहित जीवचेतन के प्रतिबिंबग्रहण के योग्य होवै हैं। घटादिकन मैं प्रतिबिंबग्रहणरूप व्यंजकता है। जीवचेतन मैं प्रतिबिंब समर्पकतारूप व्यंग्यता है। या प्रकार के व्यंग्यव्यंजकभाव संबंध की सिद्धि वास्ते हि विवरण ग्रंथ मैं वृत्ति का निर्गमन कहा है। विषयदेश मैं निर्गत वृत्ति सैं जीवचेतन औ विषय का उक्त संबंध होवै तब घटादिकन मैं प्रतिबिंबित जीवचेतन तिन कूं प्रकाशे है इस रीति सैं घटादि विषय सैं जीवचेतन का संबंध वृत्ति का प्रयोजन है। या पक्ष मैं मतभेद तैं

संबंध मै विलक्षणता का निरूपण किया। यद्यपि या स्थान मै कोई ग्रंथकार मतभेद तैं संबंध मै विलक्षणता कथन असंगत कहे हैं औ जीव का उपाधि अंतःकरण है या पक्ष मै जीवचेतन सै विषय चेतन की अभेदाभिव्यक्तिवृत्ति का प्रयोजन है तामै बी जीवचेतन का विषय सै संबंध हि ताका प्रयोजन कहे हैं। परंतु प्राचीन लेख मै हि जिज्ञासु कूं श्रद्धा करनी योग्य है। औ परदूषण चिंतन मै प्रयोजन का बी अभाव है। यातैं बी तिन के कथन मै युक्तायुक्त का विचार नहि लिखा। इस रीति सै अविद्या उपहित व्यापक जीवचेतन घटादि विषय का प्रकाशक है। ताका विषय सै संबंध वृत्ति का प्रयोजन है। यह प्रथम पक्ष विवरणकार का है। तामै मतभेद तैं संबंध का निरूपण किया। अब अंतःकरण उपहित परिच्छिन्न जीवचेतन विषय का प्रकाशक है तासै विषय चेतन की अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन है। यह द्वितीय पक्ष है। तामै मतभेद तैं अभेदाभिव्यक्ति का निरूपण करे हैं। द्वितीय पक्ष मै जीवचेतन सै विषयचेतन का अभेदमात्र वृत्ति का प्रयोजन माने धर्मादिगोचर शब्दादि जन्य वृत्ति अंतःकरण मै होवै है। औ धर्माधर्मादिक बी अंतःकरण मै हि रहे हैं। यातैं दोनों उपाधि एकदेश मै होने तैं उपहित चेतन का भेद रहै नहि। यातैं विषय चेतन का जीवचेतन नैं अभेद होने तैं धर्मादिक

प्रत्यक्ष हुये चाहिये। अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन मानै यह दोष नहि। काहे तैं अनावृत विषय चेतन का हि जीवचेतन तैं अभेद प्रत्यक्ष संभवै है। अभेद का प्रत्यक्ष हि अभेदाभिव्यक्ति कहिये है। शब्दादि जन्य परोक्ष वृत्ति तैं अशेष अज्ञान की निवृत्ति होवै नहि। यातैं धर्मादि विषय चेतन अनावृत नहि। याहि तैं विषय चेतन का जीवचेतन तैं अभेद प्रत्यक्ष नहि होने तैं धर्मादिक प्रत्यक्ष होवैं नहि। यातैं अभेदाभिव्यक्ति हि वृत्ति का प्रयोजन मान्या चाहिये। अभेदमात्र प्रयोजन कहना संभवै नहि। परंतु इहां यह शंका होवै है—अखंडाकार वृत्ति सकल उपाधि का निवर्त कहै तासैं तौ जीव ब्रह्म के अभेद की अभिव्यक्ति संभवै है। घटादि गोचरवृत्ति तैं उपाधि की निवृत्ति होवै नहि। यातैं अंतःकरण उपाधिक परिच्छिन्न जीव की विषयावच्छिन्नब्रह्मचेतन तैं अभेदाभिव्यक्ति संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—उपाधि निवृत्ति तैं हि अभेदाभिव्यक्ति होवै यह नियम नहि। काहे तैं तडाक औ केदाररूप उपाधि के होतैं बी कुल्या द्वारा तिन के जल की अभेदाभिव्यक्ति होवै है। तैसे अंतःकरण औ विषयरूप उपाधि के होतैं बी वृत्ति द्वारा उपहित चेतन की अभेदाभिव्यक्ति संभवै है। अन्य शंका। विषय के प्रत्यक्ष मैं तादात्म्य संबंध हेतु है उपादानता के अभाव तैं अंतःकरण उपहित परिच्छिन्न

जीवचेतन का घटादि विषय सै तादात्म्य संभवै नहि। याहि तैं जीवचेतन विषय का प्रकाशक बी नहि संभवै है। जो उपादान होने तैं ब्रह्म चेतन का घटादि विषय से साक्षात् तादात्म्य संबंध है ताकूं हि विषय का प्रकाशक कहैं तौ 'मया घटो ज्ञातः' इस रीति सै जीव मैं घटादि विषय प्रकाशता का अनुभव होवै है ताका विरोध होवैगा। औ पूर्व अंतःकरण उपहित जीव चेतन विषय का प्रकाशक कहा है ताका बी विरोध होवैगा। समाधान यह है—यद्यपि साक्षात् तादात्म्य संबंध होने तैं विषय का प्रकाशक तौ विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन हि कहा चाहिये जीव चेतन प्रकाशक संभवै नहि। तथापि वृत्ति औ वृत्तिवाले का अभेद होवै है। यातैं नेत्रादि इंद्रिय द्वारा निकस के अंतःकरण की वृत्ति विषय देश मै जावै तब अंतःकरण बी विषय देश मै स्थित है याहि तैं तिस काल मै विषय प्रकाशक ब्रह्म चेतन अंतःकरण उपहित जीवरूप होने तैं ब्रह्म चेतनगत विषय प्रकाशकता जीवगत हि है। यातैं 'मया घटो ज्ञातः' या अनुभव का विरोध नहि। याहि तैं अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन माने हैं। औ पूर्वजीव चेतन विषय का प्रकाशक कहा है ताका बी विरोध नहि। इहां यह तात्पर्य है—अविद्या उपाधिक जीव चेतन विषय का प्रकाशक मानै तिन के पक्ष मै तौ जीव मै विषय प्रकाशकता अनुभव के विरोध की शंका

हि होवै नहि। या पक्ष मै विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतनविषय का प्रकाशक है। यातैं पूर्व उक्त प्रकार तैं अनुभव विरोध की शंका होवै है। परंतु पूर्व उक्त रीति सै विषय प्रकाशक ब्रह्मचेतन की जीवचेतन तैं अभेदाभिव्यक्ति मानै विरोध का परिहार होवै है। यातैं अभेदाभिव्यक्ति का अंगीकार सफल है। इस रीति से कितने ग्रंथकार वृत्ति द्वारा विषय औ अंतःकरणरूप उपाधि की एकदेश मै स्थिति तैं उपहित चेतन की अभेदाभिव्यक्ति कहे हैं। औ तिन से अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—अंतःकरण मै प्रतिबिंब जीव है। विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन बिंबरूप ईश्वर है औ लोक मै दर्पणादि उपाधि के होतैं बिंब प्रतिबिंब की अभेदाभिव्यक्तिदृष्ट नहि। यातैं विषय औ अंतःकरणरूप उपाधि होतैं बिंब प्रतिबिंबरूप जीव ईश्वर की उक्तरूप अभेदाभिव्यक्ति संभवै नहि। किंच पूर्व उक्त प्रकार तैं वृत्ति द्वारा विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन कूं जीवरूपता माने तौ उपादानता के अभाव तैं जीव का घटादि विषय सै तादात्म्य संबंध नहि। तैसे जीवरूप होने तैं ब्रह्म का बी तादात्म्य नहि होवैगा। यातैं तिस काल मै विषय प्रकाश-कता के असंभव तैं ब्रह्म सर्वज्ञ नहि होवैगा। या तैं बी उक्त रीति से अभेदाभिव्यक्ति कहना नहि संभवै है। किंतु अंतःकरण की वृत्ति का घटादि विषय सै संबंध होवै तब ताके अग्रभाग मै विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन का

प्रतिबिंब होवै है। तासैं हि विषय का प्रकाश होवै है। वृत्ति औ अंतःकरण का तादात्म्यरूप अभेद है। यातैं तिन मै द्विविध प्रतिबिंब का बी तादात्म्यरूप अभेद होने तैं अभेदाभिव्यक्ति संभवै है। यद्यपि अंतःकरण मै चेतन का प्रतिबिंब प्रमाता है वृत्ति के अग्रभाग मै विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन का प्रतिबिंब प्रमाण चेतन है। उक्त रीति सैं तिन का अभेद माने प्रमातृ प्रमाण प्रमेय चेतन का भेद नहि होवैगा। तथापि उक्त रीति सैं अभेद हुये बी स्वरूप सै तिन का भेद है। यातैं प्रमातृचेतन प्रमाणचेतन प्रमेयचेतन का भेद बी संभवै है। तात्पर्य यह—विषयदेश मै प्राप्त वृत्ति के अग्रभाग मै विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन का प्रतिबिंब हि प्रमाणचेतन है अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप प्रमातृचेतन तैं ताकी अभेदाभिव्यक्ति कहि है। औ बिंब प्रतिबिंब का बी अभेद हि होवै है। यातैं वृत्ति मै प्रतिबिंबरूप प्रमाणचेतन का बिंबरूप विषयचेतन तैं बी भेद संभवै नहि। यातैं प्रमातादिकन का भेद यद्यपि नहि संभवै है। तथापि उक्त रीति सै तिन का तादात्म्यरूप अभेद हुये बी वृत्ति औ अंतःकरण तैसे विषयरूप व्यावर्तक उपाधि विद्यमान हैं। यातैं प्रमातादिकन का भेद बी संभवै है। यातैं सिद्धांत मै चतुर्विध चेतन माने हैं ताका विरोध होवै नहि। औ पूर्वमत मै तौ विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन कूं वृत्ति द्वारा

जीवरूप माने हैं। यातैं प्रमातृचेतन तैं विषयचेतन के भेद के असंभव तैं ताका विरोध होवैगा। यातैं बी पूर्व मत उक्त प्रकार तैं अभेदाभिव्यक्ति समीचीन नहि। किंतु अस्मदुक्त रीति सै हि समीचीन है। यद्यपि विषय के प्रत्यक्ष मै कल्पित तादात्म्य संबंध हेतु सिद्धांत मै माने हैं। पूर्व उक्त प्रकार तैं वृत्ति मै प्रतिबिंब कूं विषय का प्रकाशक माने ताका विरोध होवैगा। काहे तैं उपादान होने तैं विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन का तौ विषय सै तादात्म्य संबंध संभवै है परंतु वृत्ति के अग्रभाग मै ताका प्रतिबिंब घंटादि विषय का उपादान नहि। याहि तैं ताका विषय सै तादात्म्य संबंध संभवै नहि। तथापि बिंब प्रतिबिंब का अभेद माने हैं। यातैं वृत्ति मै प्रतिबिंब का बिंबरूप विषय चेतन तैं अभेद होने तै विषय चेतन का विषय सै तादात्म्य संबंध हि विषय प्रकाशक वृत्ति प्रतिबिंब का संबंध है। यातैं सिद्धांत का विरोध नहि इस रीति सै अन्य ग्रंथकार कार्य कारणरूप वृत्ति औ अंतःकरण के तादात्म्य तैं तिन मै प्रतिबिंबरूप द्विविध चेतन की अभेदाभिव्यक्ति सिद्ध करे हैं। परंतु पूर्वमत मै जो दोष कहा है दर्पणादि उपाधि के होतैं बिंब प्रतिबिंब की अभेदाभिव्यक्ति दृष्ट नहि। तैसे विषय औ अंतःकरणरूप उपाधि होतै वृत्ति द्वारा जीव ब्रह्म की अभेदाभिव्यक्ति संभवै नहि। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं तत्त्वसाक्षात्कार तैं सकल उपाधि

की निवृत्ति द्वारा जीव ब्रह्म की अभेदाभिव्यक्ति होवै है तिस प्रकार की अभेदाभिव्यक्ति मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु या प्रसंग मै तिस प्रकार की अभेदाभिव्यक्ति विवक्षित नहि। किंतु एक पात्रस्थ जल दुग्ध की अभेदाभिव्यक्ति होवै है। तैसे वृत्ति द्वारा विषय अंतःकरणरूप दोनों उपाधि एक देश मै स्थित होने तैं उपहित चेतन की उपचार तैं अभेदाभिव्यक्ति विवक्षित है। या प्रकार की अभेदाभिव्यक्ति व्यावर्तक उपाधि के होतैं बी संभवै हे। यातैं दृष्ट विरोध नहि। काहे तैं दर्पण के होतैं हि 'ममसुखमेव दर्पणे भाति' इस रीति सैं बिंब प्रतिबिंब की अभेदाभिव्यक्ति दृष्ट है। यातैं उपाधि होतैं बी बिंब प्रतिबिंबरूप ईश्वर जीव की वृत्ति द्वारा अभेदाभिव्यक्ति का अंगीकार विरुद्ध नाहि। उक्त रीति सै उपचार तैं अभेदाभिव्यक्ति माने हि या मत मै बी अभेदाभिव्यक्ति संभवै है। काहे तैं कार्य कारणरूप वृत्ति औ अंतःकरण का अत्यंत अभेद संभवै नाहि। याहि तैं तिन मै द्विविध प्रतिबिंब की बी मुख्य अभेदाभिव्यक्ति नहि संभवै है। जो मुख्य अभेदाभिव्यक्ति माने तौ यां मत मै पूर्व उक्त प्रमातादिकन का भेद नहि संभवैगा। यातैं पूर्वमत उक्त रीति सै उपचार तैं हि अभेदाभिव्यक्ति मानी चाहिये। औरं जो कहा वृत्ति द्वारां विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन कूं जीवरूपता माने तिस काल मै विषय संबंध के अभाव तैं

ब्रह्म सर्वज्ञ नहि होवैगा। सो कहना बी संभवै नहि। काहे तैं वृत्ति औ विषय के संबंध काल मै यद्यपि विषय का अधिष्ठान चेतन अंतःकरण उपहित होने तैं जीवरूप होवै है। परंतु तामै जैसे अंतःकरण उपहितत्त्व प्रयुक्त जीवत्व है। तैसे माया उपहितत्त्व प्रयुक्त ईश्वरत्व बी विद्यमान है। यातैं बिंबरूप ईश्वर मै सर्वज्ञता की हानि नहि। जो अंतःकरणादिकन के अधिष्ठान चेतन मै अंतःकरणादि उपहितत्त्व प्रयुक्त जीवत्व के होतैं माया उपहितत्त्व प्रयुक्त ईश्वरत्व नहि मानै तौ तामै अंतःकरणादि उपहितत्त्व प्रयुक्त जीवत्व सदा स्थित है। यातैं ईश्वरत्व के अभाव तैं बिंबरूप ब्रह्म का सदा अंतःकरणादिकन सै संबंध नहि होवैगा। यातैं तिन का द्रष्टा नहि होने तैं तुमारे मत मै बी ब्रह्म मै सदा सर्वज्ञता का अभाव होवैगा। यातैं वृत्ति संबंध काल मै विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन मै अंतःकरण उपहितत्त्व प्रयुक्त जीवत्व की न्याईं माया उपहितत्त्व प्रयुक्त ईश्वरत्व बी मान्या चाहिये। याहि तैं प्रमातृ प्रमेयचेतन का भेद बी संभवै है। सिद्धांत का बी विरोध नहि। यातैं विषयावच्छिन्न चेतन कूं जीवरूप माने प्रमातृ प्रमेय चेतन का भेद संभवै नहि। यह कहना बी संभवै नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार वृत्ति का विषय सै संबंध होवै तब ताके अग्रभाग मै विषय चेतन का प्रतिबिंब होवै है। ताकूं विषय का प्रकाशक मान के

जीवचेतन तै ताकी अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन कहे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह कहे हैं–बिंबरूप विषयावच्छिन्न चेतन हि विषय का प्रकाशक है। वृत्ति मै विषयचेतन का प्रतिबिंब ताका प्रकाशक नहि। काहे तैं विषय के प्रत्यक्ष मै कल्पित तादात्म्यसंबंध हेतु है। विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन का हि विषय सै साक्षात् तादात्म्य संबंध संभवै है। वृत्ति मै ताके प्रतिबिंब का विषय सै साक्षात् तादात्म्य संबंध संभवै नहि। यद्यपि बिंब प्रतिबिंब का अभेद होने तैं बिंबरूप विषय चेतन का संबंध हि ताके प्रतिबिंब का संबंध पूर्व कहा है। यातैं विषय प्रकाशक वृत्ति प्रतिबिंब का बी साक्षात् संबंध संभवै है। तथापि बिंब प्रतिबिंब का अभेद हि होवै तौ बिंब संबंध कूं प्रतिबिंब संबंध कहना संभवै। परंतु बिंब प्रतिबिंब का भेदाभेद दोनों होवै हैं। केवल अभेद होवै नहि। प्रतिबिंब की सत्ता बिंब सै भिन्न नहि। यातैं अभेद है। औ प्रतीति तैं भेद है। यातैं बिंब संबंध कूं प्रतिबिंब संबंध कहना संभवै नहि। याहि तैं वृत्ति मै प्रतिबिंबरूप विषयप्रकाशक चेतन का विषय सै साक्षात् संबंध कहना बी नहि संभवै है। यातैं बिंबरूप विषय चेतन हि विषय का प्रकाशक मान्या चाहिये। वृत्ति के अग्रभाग मै ताका प्रतिबिंब विषय का प्रकाशक नहि। विषयप्रकाशक बिंब चेतन की प्रतिबिंब जीव तैं

अभेदाभिव्यक्ति का प्रकार यह है—विषय चेतन का बिंबरूप सै तो अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप जीव तैं भेद है। यातैं प्रमातृ प्रमेयचेतन का भेद औ ब्रह्म मै सर्वज्ञता संभवै है। वृत्ति द्वारा चेतन मात्र रूप सै दोनों का अभेद होने तैं अभेदाभिव्यक्ति बी संभवै है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार चेतन मात्र रूप सै अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन कहे हैं। परंतु यह पक्ष बी समीचीन नहि। काहे तैं चेतन मात्ररूप सै अभेद वास्तव माने ताकूं वृत्ति का प्रयोजन कहना संभवै नहि। औ बिंब प्रतिबिंब का भेद व्यावहारिक है यातैं चेतन मात्ररूप से तिन का अभेद व्यावहारिक बी कहना नहि संभवै है। काहे तैं समान सत्ताक भेदाभेद का विरोध है एक अधिकरण मै दोनों रहैं नहि। जो चेतन मात्ररूप तैं अभेद कूं प्रातिभासिक कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं वृत्ति द्वारा विषय औ अंतःकरणरूप उपाधिं की एक देश मै स्थिति तैं हि बिंब प्रतिबिंबरूप ईश्वर जीव का प्रातिभासिक अभेद संभवै है। ताकी सिद्धि वास्ते चेतनमात्ररूप तैं तिन का अभेद कहना निष्फल है। इस रीति सै अंतःकरण उपहित जीवचेतन तैं विषय प्रकाशक चेतन की अभेदाभिव्यक्ति के निरूपण मै तीन मत कहे। तिन मै प्रथम मत मै द्वितीयमत उक्त दोषों का उद्धार तौ द्वितीय मत कें निरूपण अवसर मै हि पूर्व किया है। औ द्वितीय मत

तृतीयमत उक्त रीति सै दूषित है। तैसे तृतीयमत बी अनंतर उक्त रीति सै दूषित है। यातैं प्रथम मत हि समीचीन है। इस रीति सै अविद्या मै प्रतिबिंब जीव है ताका घटादि विषय सै विलक्षण संबंध वृत्ति का प्रयोजन है। यह प्रथम पक्ष विवरणकार का है। औ अंतःकरण मै प्रतिबिंब जीव है। तासै विषय प्रकाशक चेतन की अभेदाभिव्यक्ति वृत्ति का प्रयोजन है। यह द्वितीयपक्ष है दोनों पक्षन मै मतभेद तैं संबंध औ अभेदाभिव्यक्ति का निरूपण किया। अविद्या मै प्रतिबिंबरूप व्यापक जीव के आवरण का अभिभव वृत्ति का प्रयोजन है। यह तृतीय पक्ष है। तामै मतभेद तैं आवरणाभिभव के निरूपण वास्ते प्रथम यह शंका होवै है—अज्ञान का नाश हि आवरण का अभिभव कहैं तौ घटज्ञान तैं हि समूल संसार की निवृत्ति हुयी चाहिये। काहे तैं संसार का मूल अज्ञान एक है सो घटज्ञान तैं निवृत्त होय गया औ घटज्ञान तैं समूल संसार की निवृत्ति होवै नहि। यातैं अज्ञान का नाश आवरण का अभिभव कहना संभवै नहि। औ प्रकारांतर तैं बी आवरण का अभिभव कहना नहि संभवै है। यातैं आवरण का अभिभव वृत्ति का प्रयोजन है यह कहना संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं यद्यपि अज्ञान एक हि है सोई विषय चेतन का बी आवरक है। औ अज्ञान का नाश हि आवरण

का अभिभव है। तथापि घटादि गोचर वृत्तिज्ञान तैं संपूर्ण अज्ञान का नाश मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु संपूर्ण अज्ञान का नाश नहि होवै है। किंतु जैसे खद्योत प्रकाश तैं महा अंधकार के एकदेश का नाश होवै है। तैसे घटादि ज्ञान तैं मूलाज्ञान के एकदेश का नाश होवै है। सोई आवरण का अभिभव है। अथवा घटादि ज्ञान तैं कट की न्याई अज्ञान का संवेष्टन वा भीतभट की न्याई अपसरण हि आवरण का अभिभव है। यातैं समूल संसार निवृत्ति की आपत्ति नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार अज्ञान के एकदेश का नाश वा ताका संवेष्टन अथवा अपसरण हि आवरण का अभिभव कहे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार इस रीति सै कहे हैं। इंद्रिय द्वारा निकस के अंतःकरण की वृत्ति का घटादिकन सै संबंध होवै तिस काल मै अज्ञान स्वभाव सै हि विषय चेतन का आवरण करै नहि यहिं आवरण का अभिभव है। यद्यपि पटवेष्टित घट का तासै आवरण हि प्रसिद्ध है अनावरण प्रसिद्ध नहि। तैसे वृत्ति के संबंध काल मै वी विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन आश्रित अज्ञान तैं ताका आवरण हि कहा चाहिये। अनावरण कहना संभवै नहि। तथापि 'अज्ञोऽहं' इस रीति सै जीव चेतन मै अज्ञान प्रतीत होवै है। परंतु अज्ञान ताका आवरण करै नहि। जो जीव चेतन का अज्ञान तैं आवरण माने तौ सर्व व्यवहार का

लोप होवैगा। औ अहमाकार अनुभव मैं प्रकाशमान चेतन साक्षी है। साक्षी मैं आवरण का अंगीकार नहि। यातैं बी जीव चेतन का आवरण कहना संभवै नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—जैसे जीव चेतन के आश्रित अज्ञान ताका आवरण नहि करे है। तैसे विषय चेतन आश्रित अज्ञान बी वृत्ति के संबंध काल मैं ताका अनावरक संभवै है। इस रीति सैं अज्ञान मैं पट तैं विलक्षणता अनुभव सिद्ध होने तैं शंका संभवै नहि। इस रीति सै मूलाज्ञान कूं विषय चेतन का आवरक मानैं तिन के मत-भेद तैं आवरण का अभिभव कहा। औ अन्य ग्रंथकार तौ विषय चेतन का आवरक मूलाज्ञान नहि माने हैं। किंतु शुद्ध चेतन का हि आवरक मूलाज्ञान माने हैं। तिन का यह तात्पर्य है—'घटं न जानामि' इस रीति सै घट चेतन के आवरक अज्ञान मैं घट ज्ञान का विरोध प्रतीत होवै है। 'न जानामि' या वचनगत नकार का विरोधी अर्थ है। यातैं 'घटं न जानामि' यह अनुभव घट ज्ञान के विरोधि विषयक कहा है। औ 'घट ज्ञानेन घटाज्ञानं निवृत्तं' इस रीति सै घट ज्ञान तैं घट चेतन के आवरक अज्ञान की निवृत्ति प्रतीत होवै है। मूलाज्ञान सै घट ज्ञान का विरोध वा ताकी तासै निवृत्ति संभवै नहि। किंतु शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान का हि मूलाज्ञान सै विरोध है। ताहि सै ताकी निवृत्ति होवै है। यातैं मूला-

ज्ञान विषय चेतन का आवरक संभवै नहि। किंतु अवस्था ज्ञान् हि ताका आवरक मान्या चाहिये। घटादि ज्ञान तैं ताकी निवृत्ति हुये बी संसार निवृत्ति की आपत्ति नहि। काहे तैं संसार का मूल अज्ञान निवृत्त हुवा नहि। इस रीति सै मूलाज्ञान की अवस्था विशेष रूप अवस्थाज्ञान हि विषय चेतन का आवरक है। घटादि ज्ञान तैं ताका नाश हि आवरण का अभिभव है। यद्यपि मूलाज्ञान विषय चेतन का आवरक है। या पक्ष मै पूर्व उक्त रीति सै आवरण का अभिभव मानै तौ एकवार ज्ञात घट मै कालांतर मै बी आवरण संभवै है। काहे तैं घटादि ज्ञान तैं आवरण हेतु अज्ञान की निवृत्ति होवै नहि। मूलाज्ञान के एकदेश का नाश आवरण का अभिभव मानै बी महा अंधकार की न्याई अज्ञान का फेर विस्तार संभवै है। यातैं घटगोचर ज्ञानांतर का बी आवरणाभिभव प्रयोजन संभवै है। अवस्थाज्ञान विषयचेतन का आवरक मानै घट-गोचर एक हि ज्ञान तैं ताकी निवृत्ति होय गयी ताके समान विषयक ज्ञानांतर निष्फल होवैंगे। काहे तैं एकवार ज्ञात घट मै हेतु के अभाव तैं कालांतर मै आवरण संभवै नहि। याहि तैं घटगोचर ज्ञानांतर का आवरणाभिभव प्रयोजन बी नहि संभवै है। तथापि घटादि विषय चेतन का आवरक अवस्थाज्ञान एक हि मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु जितने घटगोचर ज्ञान होवैं उतने हि अवस्थाज्ञान

माने हैं यातैं दोष नहि। परंतु ईहां यह शंका होवै है–प्रमाण के अभाव तैं अवस्थाज्ञान कूं अनादि कहना तौ संभवै नहि औ सिद्धांत मैं अज्ञान कूं अनादि मानें हैं। अवस्थाज्ञान कूं सादि माने सिद्धांत का विरोध होवैगा। यातैं अवस्थाज्ञान सादि है यह कहना बी नहि संभवै है। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं–प्रथमाध्याय के तृतीयपाद मैं सूत्रकार भाष्यकार ने श्रुति-युक्ति सै मूलाज्ञान अनादि सिद्ध किया है। यातैं यह अनुमान सिद्ध होवै है–अवस्थाज्ञानं,अनादि,अज्ञानत्वात, मूलाज्ञानवत्। जो अज्ञान के अनादिपनें मैं अज्ञानत्व हेतु नहि मान के मूलाज्ञानत्व कूं हेतु कहैं तौ गौरव होवैगा। यातैं लाघव तैं अज्ञानत्व हि हेतु कहा चाहिये। इस रीति से कितने ग्रंथकार अनुमान प्रमाण तैं अवस्था ज्ञान कूं अनादि सिद्ध करे हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ ताकूं सादि हि सिद्ध करे हैं। तथा हि जैंसे अज्ञान की अवस्था विशेष निद्रा है। काहे तैं आवरण विक्षेप शक्तिमत्ता हि अज्ञान का लक्षण है। जाग्रत् काल के व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य का आवरक निद्रा है। औ स्वप्न के प्रातिभासिक द्रष्टा दृश्य के आकार परिणाम बी निद्रा का हि होवै है। यातैं अज्ञान लक्षण के योग तैं निद्रा अज्ञान की अवस्था विशेष है। तैसे सुषुप्ति काल मैं सुख औ अज्ञान की न्याई अनुभूयमान सुषुप्ति बी अज्ञान की हि अवस्था विशेष

है। यद्यपि सुषुप्ति काल मैं सुखादिकन कूं अनुभूयमान कहना संभवै नहिं काहे तैं 'अहं सुखी' 'अज्ञोऽहं' 'अहं स्वपामि' या प्रकार सैं तिन का अनुभव होवै नहिं। तथापि आत्मा मैं अंतःकरण का संबंध अहमाकार अनुभव का प्रयोजक है। औ सुषुप्तिकाल मै अंतःकरण का लय होय जावे है। यातैं उक्त रीति सैं तौ सुखादिकन का अनुभव यद्यपि नहिं होवै है। परंतु 'सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषं' इस रीति सैं उत्थित कूं सुखादिकन की स्मृति होवै है। ताकी अन्यथा अनुपपत्ति तैं सुषुप्ति काल मैं सुख औ अज्ञान की न्याईं सुषुप्ति का बी साक्षिरूप अनुभव सिद्ध होवै है। औ सुषुप्ति काल मैं इंद्रिय औ अंतःकरण तौ लीन होय जावै हैं। यातैं तिन की अवस्था तौ सुषुप्ति कहि जावै नहिं। परिशेष तैं अज्ञान की हि अवस्था कही चाहिये। इस-रीति सैं निद्रा औ सुषुप्ति मूलाज्ञान की अवस्था विशेष हैं। औ जाग्रत् मैं भोग हेतु कर्मन के उपराम तैं तिन की उत्पत्ति होवै है। यातैं दोनों सादि हैं। तैसे विषयचेतन का आवरक अवस्था ज्ञान बी मूलाज्ञान की अवस्था विशेष होने तैं सादि हि मान्या चाहिये। यातैं यह अनुमान सिद्ध हुवा—'अवस्थाज्ञानं, सादि, मूलाज्ञानावस्था विशेषरूपत्वात, निद्रावत् सुषुप्तिवच्च' इस रीति सैं अवस्थाज्ञान सादि सिद्ध होवै है। औ सिद्धांत

मै तो मूलाज्ञान हि अनादि माने हैं। यातैं अवस्थाज्ञान कूं सादि मानै बी सिद्धांत का विरोध होवै नहि। इस रीति सै अवस्था-ज्ञान किसी के मत मै अनादि है, मतांतर मै सादि है। दोनूं मतन मै घटगोचर जितने ज्ञान होवैं उतने हि घट चेतन के आवरक अवस्थाज्ञान माने हैं। यातैं घटगोचर ज्ञानांतर यद्यपि निष्फल नहि परंतु सादि पक्ष मै तौ घटज्ञान तैं पूर्व घटावरक अज्ञान की तासैं निवृत्ति होवै है। घटज्ञान के अभाव काल मै और अवस्थाज्ञान उत्पन्न होवै है। तासै फेर घट का आवरण होवै है। ताके समान विषयक ज्ञानांतर तैं ताकी निवृत्ति होवै है। यातैं घटगोचर ज्ञानांतर निष्फल नहि। इस रीति सै व्यवस्था संभवै है। परंतु अनादि पक्ष मै यह शंका होवै है—नियामक के अभाव तैं घटगोचर एक ज्ञान तैं एक हि अज्ञान की निवृत्ति कहना तौ संभवै नहि। औ घटगोचर एक ज्ञान तैं एक हि अज्ञान का नाश माने घट का प्रकाश हि नहि होवैगा। काहे तैं घटचेतन के आवरक अज्ञानांतर विद्यमान हैं। जो घटगोचर एक ज्ञान तैं घटावरक सकल अज्ञान व्यक्ति का नाश माने तौ घटगोचर ज्ञानांतर निष्फल होवैंगे। काहे तैं घटावरक अज्ञान समुदाय का प्रथम ज्ञान तैं हि नाश होय गया पीछे उत्पन्न हुये ज्ञानांतर का आवरणाभिभव प्रयोजन संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान

कहे हैं—जैसे न्यायमत मै घटगोचर जितने ज्ञान होवैं तिन के प्रागभाव रूप अज्ञान बी उतने हि होवै हैं। तिन मै एक घट ज्ञान तैं एक हि अज्ञान निवृत्त होवै है अज्ञानांतर के होतैं हि विषय का प्रकाश नैयायिक माने हैं। तैसे सिद्धांत मै बी फलबल तैं एक ज्ञान तैं एक हि अज्ञान की निवृत्ति होवै है। अज्ञानांतर पूर्व की न्याईं स्थित रहे हैं तिन के होतैं बी विषय का प्रकाश संभवै है। स्व समान विषयक ज्ञानांतर तैं अज्ञानांतर की निवृत्ति होवै है। यातैं ज्ञानांतर निष्फल नहि। यद्यपि नैयायिक ज्ञान के प्रागभाव कूं अज्ञान मानें हैं। औ अभाव किसी का आवरण करे नहि। सिद्धांत मै भावरूप अज्ञान विषय का आवरक माने हैं। यातैं प्रागभाव के दृष्टांत तैं आवरक अज्ञान होतैं विषय का प्रकाश कहना संभवै नहि। तथापि सिद्धांत मै अज्ञात रूप से अभिमत वस्तु गोचर संशयादिजनन का सामर्थ्य हि भावरूप अज्ञान मै आवरकता है तिस प्रकार की आवरकता न्यायमत मै अभावरूप अज्ञान मै बी समान है। यातैं प्रागभाव के दृष्टांत तैं आवरक अज्ञानांतर होतैं बी विषय का प्रकाश कहना संभवै है। दोष नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार अज्ञानांतर तैं आवृत विषय का बी अपरोक्ष ज्ञान मान के ज्ञानांतर का आवरणाभिभव प्रयोजन सिद्ध करे हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—यद्यपि अभानापादक आवरण तैं आवृत बी वह्नि

आदिकन का परोक्षज्ञान सिद्धांत मै माने हैं । परंतु आवृत विषय का अपरोक्ष ज्ञान सर्वथा विरुद्ध है। जो न्यायमत मै ज्ञान के प्रागभावांतर तैं आवृत विषय का अपरोक्ष ज्ञान कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं ज्ञान के प्रागभाव मै संशयादिजनन का सामर्थ्यरूप आवरकता माने बी ज्ञान के प्रागभाव मात्र मै उक्त रूप आवरकता संभवै नहि। जो ज्ञान के प्रागभाव मात्र मै संशयादि जनन का सामर्थ्य माने तौ 'अयं स्थाणुः' या निश्चय काल मै बी ताके समान विषयक निश्चयांतर के प्रागभाव विद्यमान हैं। यातैं स्थाणुर्वा पुरुषो वा पुरुष एव वा इस रीति सै पुनः संशयादिक हुये चाहिये। यातैं ज्ञान के प्रागभाव मात्र मैं संशयादि जनन का सामर्थ्य कहना संभवै नाहि। किंतु संशयादि समान विषयक जितने निश्चय ज्ञान होवैं तिन सर्व के सर्व प्रागभाव मिल के संशयादि जनन मै समर्थ कहे चाहिये। 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' या संशय तैं उत्तर स्थाणु की स्थिति पर्यंत स्थाणु गोचर अनंत निश्चय संभवै हैं। तिन सर्व के सर्व प्रागभाव मिल के ताके जनन मै समर्थ हैं। 'अयं स्थाणुः' यह निश्चय उक्त संशय का विरोधी है। तासै स्वप्रागभाव का नाश होवै तिस काल मै सकल निश्चय के सकल प्रागभाव रहैं नहि। याहि तैं पुनः संशयादिक होवैं नहिं। औ स्थाणु का प्रकाश बी संभवै है। काहे तैं संशयादि उत्तरभावी सकल निश्चय के

प्रागभाव का समुदाय हि न्यायमत मै विषय का आवरक है। सो एक निश्चय काल मै रहा नहि। यातैं दृष्टांत के अभाव तैं बी आवृत विषय का अपरोक्ष ज्ञान कहना संभवै नहि। यातैं यह मान्या चाहिये—यद्यपि विषय-गोचर जितने ज्ञान होवैं अवस्था-ज्ञान बी उतने हि हैं। परंतु जो अज्ञान जिस काल मै आवरण करै तिस काल मै उत्पन्न हुये ज्ञान तैं ताका हि नाश होवै है। सकल अज्ञान सर्वदा आवरण करैं नहि। काहे तैं विषय का अप्रकाश हि आवरण का प्रयोजन है सो एक अज्ञानकृत आवरण तैं हि संभवै है। सकल अज्ञान सर्वदा आवरक मानने निष्फल हैं। किंतु एक काल मै एक हि अज्ञान आवरण करे है तिस काल मैं उत्पन्न हुये वृत्तिज्ञान तैं ताका नाश होवै है। वृत्ति के नाश काल मै अज्ञानांतर आवरण करे है ताका समान विषयक ज्ञानांतर तैं नाश होवै है। यातैं ज्ञानांतर निष्फल नहि। यद्यपि एक काल मै एक हि अवस्थाज्ञान आवरक माने सकल अज्ञान सर्वदा आवरक नहि माने तौ प्रथम उत्पन्न हुये घटादि-ज्ञान तैं अनावरक अज्ञानांतर की निवृत्ति नहि होवै है। तैसे ब्रह्मज्ञान तैं बी तिन की निवृत्ति नहि होवैगी। काहे तैं समान विषयक ज्ञानाज्ञान का हि विरोध होवै है। भिन्न विषयक ज्ञानाज्ञान का विरोध होवै नहि। जैसे मूलाज्ञान ब्रह्म चेतन का आवरक है। तैसे अवस्थाज्ञानांतर

बी विषय देश मै ताके आवरक होवैं तौ ब्रह्मज्ञान तैं तिन की निवृत्ति संभवै। तिन कूं अनावरक माने ब्रह्मज्ञान तैं बी तिन की निवृत्ति संभवै नहि यातैं विदेह कैवल्य मै बी स्थिति होने तैं निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष का हि अभाव होवैगा। तथापि जैसे सिद्धांत मै षट् पदार्थ अनादि हैं। तिन मै अज्ञान के संबंधादिकन तैं ब्रह्मज्ञान का साक्षात् विरोध तौ नहि बी है। परंतु संबंधादिकन की स्थिति अज्ञान के अधीन है। यातैं ब्रह्मज्ञान तैं ताकी निवृत्ति हुये संबंधादिक रहैं नहि। तैसे तूलाज्ञान तैं बी साक्षात् तौ यद्यपि ब्रह्मज्ञान का विरोध नहि है। परंतु अनादि पक्ष मै बी मूलाज्ञान की अवस्था विशेष हि तूलाज्ञान माने हैं। यातैं मूलाज्ञान के अधीन हि तूलाज्ञान हैं। ब्रह्मज्ञान तैं मूलाज्ञान की निवृत्ति हुये तिन की बी निवृत्ति संभवै है। यातैं दोष नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार सकल अवस्था-ज्ञान सर्वदा आवरक नहि मान के ज्ञानांतर का आवरणाभिभव प्रयोजन सिद्ध करे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। तम की न्याईं अज्ञान का स्वभाव आवरण करने का है। स्वभाव सै आवरण कर्ता पदार्थ प्रयोजन विना बी आवरण करे है। यातैं स्वभाव से तौ सकल अज्ञान सर्वदा विषय का आवरण करैं हि हैं। परंतु जैसे बहु जन समाकुल देश मै एक के शिर मै वज्रपात होवै तब तासै अन्य बी

भाग जावै हैं। औ सन्निपात की निवृत्ति वास्ते सेवन किये औषध तैं दोषांतर बी दूर होय जावै हैं। तैसे एक घटादि ज्ञान तैं एक अज्ञान का नाश हुये अज्ञानांतर का बी तिरस्कार होवै है। ज्ञान की स्थिति पर्यंत तिन मैं आवरण शक्ति का प्रतिबंध हि अज्ञानांतर का तिरस्कार है। यातैं यह सिद्ध हुवा—सकल अज्ञान स्वस्थिति काल मैं सर्वदा विषय का आवरण करै हैं यह नियम तौ यद्यपि या मत मैं बी नहि संभवै है। काहे तैं घटादि गोचर एक ज्ञान तैं एक अज्ञान का नाश औ अज्ञानांतर होतैं बी तिन का आवरण शक्ति प्रतिबंधरूप तिरस्कार या मत मैं माने हैं। तिस काल मैं अज्ञानांतर आवरक संभवैं नहि। तथापि विषय का ज्ञान अज्ञानांतर मैं आवरण शक्ति का प्रतिबंधक है। प्रतिबंधक होतैं कार्य होवै नहि। यातैं घटादिज्ञान के होतैं तौ अज्ञानांतर आवरण नहि करे हैं। परंतु प्रतिबंधक ज्ञान के नहि होतैं सकल अवस्थाज्ञान सर्वदा विषय का आवरण करे हैं यह नियम संभवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—या मत मैं एक अज्ञान का नाश औ अज्ञानांतर का तिरस्कार हि आवरण का अभिभव है। सो प्रथम ज्ञान की न्याईं ज्ञानांतर तैं बी संभवै है। यातैं ज्ञानांतर निष्फल नहि। इस रीति सै पुरुष भेद तैं वा विस्मरणशील एक हि पुरुष कूं काल भेद तैं घटादि गोचर ज्ञानांतर होवैं तिन का

आवरणाभिभव प्रयोजन कहा। परंतु या स्थान मैं यह शंका होवै है—एक हि काल मैं श्रीकृष्णादि गोचर वृत्तिज्ञान की धारा होवै तहां द्वितीयादि वृत्तिज्ञान का आवरणाभिभव प्रयोजन संभवै नहि। काहे तैं एक अज्ञान का नाश औ अज्ञानांतर का निरस्कार हि आवरण का अभिभव है सो प्रथम ज्ञान तैं हि होय गया। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—धारा स्थल मैं द्वितीयादि वृत्तिज्ञान का अज्ञान नाश प्रयोजन मानै तौ शंका संभवै परंतु अज्ञान का नाश ताका प्रयोजन नहि। किंतु तिरस्कार प्रयोजन है यातैं शंका संभवै नहि। तथा हि—स्वसमान विषयक अज्ञान का ज्ञान तैं नाश होवै है। ज्ञानधारा स्थल मैं आवरक एक अज्ञान का तौ प्रथम ज्ञान तैं हि नाश होय गया औ प्रथम ज्ञान का नाश हुये बी द्वितीयादि वृत्तिज्ञान होतैं अज्ञानांतर आवरण करैं नहि। काहे तैं प्रथम ज्ञान की न्याईं द्वितीयादि वृत्तिज्ञान बी अज्ञानांतर कृत आवरण का प्रतिबंधक हैं। प्रथम ज्ञान की निवृत्ति काल मैं द्वितीयादि वृत्तिज्ञान नहि होवैं तब तौ अज्ञानांतर कृत आवरण संभवै तिन के होतैं आवरण संभवै नहि। यातैं अज्ञान का नाश तौ यद्यपि द्वितीयादि ज्ञान का प्रयोजन नहि बी संभवै है। परंतु प्रदीप तैं अंधकार का तिरस्कार होवै है। या प्रसंग मैं आवरण शक्ति का प्रतिबंध हि तिरस्कार शब्द का अर्थ है। प्रदीप के उपराम हुये

अंधकार पुनः आवरण करे है। परंतु प्रथम प्रदीप के उपराम काल मै प्रदीपांतर उदय होय जावै तौ तिरस्कृत अंधकार पूर्व की न्याईं स्थित रहे है। तैसे 'घटोऽयं' या प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान तैं एक अज्ञान का नाश औ अज्ञानांतर का तिरस्कार होवै है। ताके उपराम हुये तिरस्कृत अज्ञानांतर फेर घट का आवरण करे हैं। जो जिज्ञासादि वश तैं प्रथम ज्ञान के उपराम क्षण मै घटगोचर ज्ञानांतर उत्पन्न होय जावै तब तिरस्कृत अज्ञानांतर पूर्व की न्याईं स्थित रहे हैं यामै विवाद नहि। तैसे धारास्थल मै बी श्रीकृष्णादि गोचर प्रथम ज्ञान तैं एक अज्ञान का नाश अज्ञानांतर का तिरस्कार होवै है ताका नाश हुये बी द्वितीयादि वृत्तिज्ञान तैं तिरस्कृत अज्ञानांतर पूर्व की न्याईं स्थित रहे हैं। यातैं अज्ञानांतर का तिरस्कार द्वितीयादि वृत्ति का प्रयोजन संभवै है। यद्यपि अज्ञानांतर का तिरस्कार बी प्रथम ज्ञान तैं हि सिद्ध है। ताकूं द्वितीयादि वृत्ति ज्ञान का प्रयोजन कहना संभवै नहि। तथापि 'यस्मिन् सति अग्रिमक्षणे यस्य सत्त्वं यद्व्यतिरेके चासत्त्वं तत् तत् साध्यं' अर्थ यह—जाके होतैं अग्रिमक्षण मै जो होवै, जाके नहि होतैं नहि होवै सो ताका साध्य कहिये है। साध्य, कार्य, जन्य, प्रयोजन यह एक हि वस्तु के नाम हैं। यह सादि अनादि साधारण साध्य का लक्षण है। जैसे दंडादिक होतैं उत्तरक्षण मै घटादि कार्य होवै है,

तिन के नहि होतैं होवै नहि। यातैं घटादिक दंडादि जन्य कहिये हैं। औ पाप तैं दुःख होवै है। प्रायश्चित्त तैं पाप निवृत्ति द्वारा दुःख होवै नहि। किंतु प्रायश्चित्त तैं उत्तरक्षण मै दुःख का प्रागभाव रहे है। प्रायश्चित्त के नहि होतैं दुःख होने तैं ताका प्रागभाव रहै नहि। इस रीति सै अनादि बी दुःख प्रागभाव का प्रायश्चित्त तैं संरक्षण होने तैं ताकूं प्रायश्चित्त का साध्य माने हैं। तैसे अज्ञानांतर का तिरस्कार बी यद्यपि प्रथम ज्ञान तैं हि सिद्ध है। तथापि द्वितीयादि वृत्ति होतैं उत्तरक्षण मै अज्ञानांतर का तिरस्कार रहै है। प्रथम ज्ञान के नाश क्षण मै द्वितीयादि वृत्ति नहि होवैं तौ अज्ञानांतरकृत आवरण होने तैं तिन का तिरस्कार रहै नहि। यातैं प्रथम ज्ञान सिद्ध बी अज्ञानांतर का तिरस्कार द्वितीय वृत्ति का प्रयोजन संभवै है। इसी प्रकार तैं द्वितीयादि वृत्ति सिद्ध तिरस्कार तृतीयादि वृत्ति का प्रयोजन जानि लेना। यातैं द्वितीयादि ज्ञान निष्फल नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार प्रथम ज्ञान सिद्ध बी अज्ञानांतर का तिरस्कार द्वितीयादि वृत्ति का प्रयोजन मान के तिन की सफलता सिद्ध करे हैं। औ कोई ग्रंथकार तौ श्रीकृष्णादिकन का दीर्घ काल निरंतर स्फुरण होवै तब पर्यंत एक हि वृत्ति माने हैं। वृत्ति का भेद नहि मानें हैं। या पक्ष मै तौ उक्त शंका हि संभवै नहि। काहे तैं दीर्घ काल निरंतर

श्रीकृष्णादि स्फुरण स्थल मैं वृत्ति का भेद होवै तौ पूर्व उक्त प्रकार तैं द्वितीयादि वृत्ति का आवरणाभिभव प्रयोजन संभवै,नहि यह शंका संभवै। वृत्ति का भेद नहि। यातैं शंका संभवै नहि। परंतु यह पक्ष समीचीन नहि। काहे तैं एक वृत्ति मैं धाराव्यवहार संभवै नहि। औ उक्त स्थल मैं धाराव्यवहार सर्व संमत है। वृत्ति एक माने ताका विरोध होवैगा। किंच श्रीकृष्णादिकन का दीर्घ काल निरंतर स्फुरण होवै तब पर्यंत एक हि वृत्ति माने तौ ध्यान समाधि बी एक वृत्ति रूप हि कहने होवैंगे। यातैं भाष्यकारादिकन ने ध्यान समाधि प्रत्यय प्रवाहरूप कहे हैं ताका विरोध होवैगा। यातैं बी दीर्घ काल निरंतर श्रीकृष्णादि स्फुरण स्थल मैं अनेक हि वृत्ति मानी चाहिये एक वृत्ति नहि। अनेक वृत्ति मानै बी उक्त शंका नहि संभवै है। काहे तैं वृत्तिज्ञान मात्र का आवरणाभिभव प्रयोजन मानै तौ शंका संभवै। परंतु प्रमारूप वृत्तिज्ञान का आवरणाभिभव प्रयोजन माने हैं। धारास्थल मैं द्वितीयादि वृत्तिज्ञान प्रमारूप नहि। यातैं शंका संभवै नहि। तथा हि—'अनधिगता-बाधितार्थ गोचरोऽनुभवः प्रमा' यह प्रमा का लक्षण है। तहां अनुभव कूं प्रमा कहैं तौ भ्रमरूप अनुभव मैं प्रमा लक्षण की अतिव्याप्ति होवैगी ताकी निवृत्ति वास्ते अबाधितार्थ गोचर ज्ञान कूं प्रमा कहैं तौ यथार्थ स्मृति मैं प्रमालक्षण

की अतिव्याप्ति होवैगी ताकी निवृत्ति वास्ते अबाधितार्थ गोचर अनुभव कूं प्रमा कहैं तौ 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति पर्वत अंश मै बी प्रमा हुयी चाहिये। काहे तैं अनुमिति के विषय पर्वत वह्नि दोनों अबाधित हैं यातैं दोनों मै अनुमिति प्रमा हुयी चाहिये। औ पर्वत अंश मै उक्त अनुमिति प्रमा नहि। काहे तैं ज्ञान मै प्रमात्व अप्रमात्व की व्यवस्था अनुभव के अनुसार मानी चाहिये। 'वह्नौ अनुमितिः प्रमाणं' यह अनुभव होवै है। 'पर्वतेऽपि अनुमितिः प्रमाणं' यह अनुभव होवै नहि। यातैं पर्वत अंश मै उक्त अनुमिति प्रमा नहि। अबाधितार्थगोचर अनुभव कूं प्रमा कहैं तौ पर्वत अंश मै बी अनुमिति प्रमा हुयी चाहिये। यातैं अनधिगत अबाधितार्थगोचर अनुभव प्रमा कहा है। अनुमिति तैं पूर्व वह्नि अनधिगत है। पर्वत अनधिगत नहि। यातैं वह्नि अंश मै हि अनुमिति प्रमा है पर्वत अंश मै नहि। किंच वैशेषिकादिक ज्ञान के प्रागभाव कूं अज्ञान माने हैं। 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' 'नीहारेण प्रावृताः' 'अज्ञानेनावृतंज्ञानं' इत्यादि श्रुति स्मृति तैं अज्ञान प्रपंच का परिणामी उपादान औ आवरक सिद्ध है। अभाव किसी का उपादान वा आवरक होवै नहि। यातैं अज्ञान कूं अभावरूप कहना संभवै नहि। तैसे अनुमान तैं बी अभाव सै विलक्षण हि अज्ञान सिद्ध होवै है तथा हि—अज्ञानं, भावरूपं, उपादानत्वात्,

मृदादिवत्। अज्ञानं, नाभावरूपं, आवरकत्वात, मेघादिवत्। यद्यपि ज्ञान के प्रागभाव मै बी संशयादि जनकतारूप आवरकता पूर्व न्यायमत सै कहि है। तथापि अभाव मै आवरकता प्रसिद्ध नहि। मेघादिकभाव पदार्थन मै हि आवरकता प्रसिद्ध है। यातैं बी अज्ञान कूं अभावरूप कहना संभवै नहि। औ उपादानतादिकन की अन्यथा अनुपपत्ति तैं बी अज्ञान भावरूप हि सिद्ध होवै है। इस रीति सै अनुमिति, शाब्द, अर्थापत्तिरूप वृत्तिज्ञान का विषय बी अज्ञान है तौ बी विवरण ग्रंथ मै ताकूं प्रमाज्ञान का अविषय कहा है। ताका यह तात्पर्य है—अज्ञात अबाधितार्थ गोचरज्ञान प्रमा कहिये है। अज्ञान गोचर अनुमिति आदि ज्ञान अज्ञात गोचर नहि। काहे तैं 'अहं अज्ञः' इस रीति सै साक्षिरूप अनुभव तैं अज्ञान का स्वरूप ज्ञात है। यद्यपि अज्ञान कूं साक्षि सिद्ध माने ताकी सिद्धि मै अनुमानादिक व्यर्थ होवैंगे। तथापि अज्ञान का स्वरूप हि साक्षि सिद्ध हैं। ज्ञान के प्रागभाव तैं ताका भेद साक्षि सिद्ध नहि। अनुमानादिकन तैं तासै ताका भेद सिद्ध करिये है। यातैं अनुमानादिक व्यर्थ नहि। इस रीति सै विवरणकार की उक्ति तैं बी अनधिगताबाधितार्थ गोचर अनुभव हि प्रमा सिद्ध होवै है। धारास्थल मै द्वितीयादि वृत्तिज्ञान अज्ञात गोचर नहि। किंतु प्रथम ज्ञान तैं ज्ञातार्थ गोचर हैं। यातैं प्रमा नहि। औ प्रमाज्ञान का हि आवरणाभि-

भत्र प्रयोजन माने हैं। यातैं द्वितीयादि वृत्तिज्ञान तैं आवरण का अभिभव नहि मानै बी दोष नहि। इहां यह तात्पर्य है—अंतःकरण की वृत्तिमात्र अज्ञान का निव्रर्तक मानै उपासना,इच्छा द्वेषादि वृत्ति तैं बी अज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। जो ज्ञानरूप वृत्ति अज्ञान का निवर्तक कहैं तौ उपासनादि वृत्तिज्ञान रूप नहि किंतु क्रियारूप हैं। यातैं तिन सै तौ अज्ञान निवृत्ति की आपत्ति नहि। परंतु धारास्थल मै द्वितीयादिक वृत्ति स्मृति की न्याई ज्ञान रूप हैं। तिन तैं बी अज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। यातैं प्रमारूप वृत्ति अज्ञान का निवर्तक माने हैं। परंतु इहां यह शंका होवै है—परोक्ष प्रमा तैं अज्ञान की निवृत्ति संभवै नहि। काहे तैं वृत्ति के संबंध विना तौ विषयचेतनगत अज्ञान की निवृत्ति संभवै नहि औ अंतर उत्पन्न परोक्ष वृत्ति का स्वर्गादि विषय सै संबंध नहि। यातैं प्रमाज्ञान अज्ञान का निवर्तक है यह नियम बी संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—घटादि विषय का आवरक अज्ञान दो प्रकार का है। एक तौ विषय चेतन के आश्रित है,दूसरा पुरुषाश्रित है। तिन मै रजतादि अध्यास की अन्यथा अनुपपत्ति तैं विषय चेतनाश्रित अज्ञान की सिद्धि होवै है। औ 'विषयमहं न जानामि' या अनुभव तैं पुरुषाश्रित अज्ञान की सिद्धि होवै है। तथा हि—जो पुरुषाश्रित अज्ञान तैं भिन्न विषयचेतनाश्रित अज्ञान

नहि माने तौ पुरुपाश्रित अज्ञान अंतर है ताकूं बाह्य रजतादि अध्यास की उपादानता संभवै नहि। यातैं रजतादि अध्यास की अन्यथा अनुपपत्ति तैं पुरुपाश्रित अज्ञान तैं भिन्न विषय चेतन के आश्रित अज्ञान मान्या चाहिये औ बाह्य विपय चेतन के आश्रित हि अज्ञान माने अंतर पुरुपाश्रित नहि माने ताकूं रजतादि अध्यास की उपादानता तौ संभवै है। परंतु अंतर साक्षिरूप प्रकाश तैं ताका संबंध संभवै नहि। यातैं 'शुक्तिमहं न जानामि' 'रज्जुमहं न जानामि' 'घटमहं न जानामि' इस रीति सै अज्ञान का अनुभव नहि हुवा चाहिये। यातैं विपय चेतनाश्रित अज्ञान तैं भिन्न हि पुरुपाश्रित अज्ञान बी मान्या चाहिये। इस रीति से द्विविध अज्ञान अवश्य मान्या चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा—परोक्षस्थल मै विपय देश मै वृत्ति का निर्गमन होवै नहि। औ वृत्ति के संबंध विना विषय चेतन् गत अज्ञान की निवृत्ति होवै नहि। जो अनिर्गत वृत्ति तैं बी विपयगत अज्ञान की निवृत्ति माने तौ आप्तवाक्य तैं दूरस्थ वृक्ष मै महत् परिमाण का ज्ञान हुये अल्प परिमाण का भ्रम नहि हुवा चाहिये तात्पर्य यह—'दूरे दृश्यमानो वृक्षः सन्निहित वृक्षवत् महान्' या प्रकार के आप्तवचन तैं दूरस्थ वृक्ष मै महत् परिमाण का ज्ञान हुये बी अल्प परिमाण का भ्रम होवै है। परोक्षज्ञान तैं बी विषयगत अज्ञान की निवृत्ति माने

सो नहि हुवा चाहिये। काहे तैं अल्प परिमाण भ्रम का हेतु महत् परिमाण का अज्ञान है सो आप्तवाक्य जन्य ज्ञान तैं निवृत्त होय गया। यातैं उपादान के अभाव तैं भ्रम नहि हुवा चाहिये। यातैं यह मान्या चाहिये–परोक्ष ज्ञान तैं विषयगत अज्ञान की निवृत्ति तौ नहि होवै है। परंतु पुरुषगत अज्ञान की निवृत्ति होवै है। काहे तैं 'शास्त्रार्थं न जानामि' या प्रकार तैं अनुभूत शास्त्रार्थ के अज्ञान की ताके उपदेश तैं अनंतर 'इदानीं शास्त्रार्थाज्ञानं नष्टं' इस रीति सै निवृत्ति का अनुभव होवै है। तहां धर्म ब्रह्म भेद तैं शास्त्रार्थ दो प्रकार का है। तिन मैं धर्मरूप शास्त्रार्थगोचर तौ उपदेशजन्य ज्ञान नियम तैं परोक्ष हि होवै है। अपरोक्ष होवै नहि। काहे तैं धर्म प्रत्यक्ष के योग्य नहि। यातैं धर्मगोचर उपदेश जन्य ज्ञान तैं तौ विषयगत अज्ञान की निवृत्ति प्राप्त हि नहि काहे तैं पूर्व उक्त रीति सै अपरोक्ष ज्ञान तैं हि विषयगत अज्ञान की निवृत्ति होवै है। परोक्ष तैं होवै नहि। जो पुरुषगत अज्ञान की बी तासै निवृत्ति नहि माने तौ निवृत्ति के अनुभव का विरोध होवैगा। यातैं धर्मगोचर उपदेश जन्य ज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान की निवृत्ति मानी चाहिये। ब्रह्मरूप शास्त्रार्थ मै बी उपदेशजन्य ज्ञान प्रथम परोक्ष हि होवै है। तासै हि विषयगत अज्ञान की निवृत्ति माने मननादिकन का विधान व्यर्थ होवैगा।

यातैं ब्रह्मगोचर उपदेशजन्य ज्ञान तैं बी पुरुषगत अज्ञान की हि निवृत्ति मानी चाहिये। परोक्ष ज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान् की निवृत्ति विवरणकारादिकन कूं बी अभिमत है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार द्विविध अवस्थाज्ञान मान के परोक्ष प्रमाज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान की हि निवृत्ति माने हैं। विषयगत अज्ञान की निवृत्ति नहि माने हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ पुरुषगत अज्ञान हि माने हैं। तासै भिन्न विषयगत अज्ञान का खंडन करे हैं। तथा हि—घटादि विषय के आवरण वास्ते पुरुषगत अज्ञान तैं भिन्न विषयगत अज्ञान की सिद्धि कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं जैसे काचादि दोषरूप आवरक नेत्रगत है। तासै बाह्य विषय का आवरण होवै है। तैसे पुरुषगत अज्ञान तैं हि बाह्य घटादि विषय का आवरण संभवै है। ताकी सिद्धि वास्ते पुरुषगत अज्ञान तैं भिन्न विषयगत अज्ञान का अंगीकार निष्फल है। जो रजतादि अध्यास की अनुपपत्ति तैं विषयगत अज्ञान की सिद्धि कहि कार्यदेश मै कारण चाहिये रजतादि रूप कार्य बाह्य शुक्ति आदि देश मै है। कारण अज्ञान पुरुष देश मै अंतर माने रजतादिक ताका परिणाम संभवैं नहि। जो किसी रीति सै बाह्य रजतादिक पुरुषगत अज्ञान का परिणाम माने तौ दूरस्थ वृक्ष मै विपरीत परिणाम का भ्रम नहि हुवा चाहिये। काहे तैं वृक्ष चेतनगत अज्ञान का तौ

अंगीकार हि नहि । औ आप्तवाक्य जन्य परोक्ष ज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान निवृत्त होय गया सो बी संभवै नहि । काहे तैं शुक्ति रजतादिक अज्ञान के परिणाम मानै तौ उक्त रीति सै पुरुषाश्रित अज्ञान तैं भिन्न विषयगत अज्ञान का अंगीकार किया चाहिये । परंतु रजतादिक अज्ञान के परिणाम नहि माने हैं । किंतु जैसे वाचस्पति के मत मै जीवाश्रित अज्ञान का विषय ब्रह्म है । ताका विवर्त हि संपूर्ण प्रपंच है । अज्ञान का परिणाम नहि । तैसे पुरुष गत अवस्थाज्ञान का विषय शुक्ति आदि अवच्छिन्न चेतन है। ताका विवर्त हि शुक्ति रजतादिक हैं अज्ञान के परिणाम नहि । यातैं पुरुषगत अज्ञान तैं भिन्न विषय चेतनगत अज्ञान का अंगीकार निष्फल है । और जो कहा आप्त-वाक्य जन्य ज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान निवृत्त होय गया। विषयचेतनगत अज्ञान बी नहि माने दूरस्थ वृक्ष मै विपरीत परिमाण का भ्रम नहि हुवा चाहिये सो कहना बी संभवै नहि। काहे तैं परोक्ष ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति अनुभव सिद्ध है। तैसे आप्तवाक्य तैं परोक्षज्ञान हुये बी दूरस्थ वृक्ष मै विपरीत परिमाण की उत्पत्ति बी अनुभव सिद्ध है। यातैं यह मान्या चाहिये—विषयावरक पुरुषगत अज्ञान का हि एकदेश आप्त-वाक्य जन्य ज्ञान तैं निवृत्त होवै है । प्रदेशांतर पूर्व की न्याई स्थित रहे है तासै आवृत वृक्षचेतन मै विपरीत परिमाण की उत्पत्ति संभवै है । गौरव होने तैं अज्ञान का

भेद संभवै नहि । या मत मै परोक्ष प्रमाज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान की निवृत्ति तौ पूर्वमत के समान हि है । पूर्वमत मै शुक्ति रजतादिक अज्ञान के परिणाम हैं। यातैं पुरुषगत अज्ञान तैं भिन्न विषयचेतनगत अज्ञान माने हैं । या मत मै रजतादिक अज्ञान के परिणाम नहि । किंतु चेतन का विवर्त मात्र हैं । यातैं पुरुषगत अज्ञान तैं भिन्न विषयगत अज्ञान का अंगीकार नहि । औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—लोक मै घटादिक मृत्तिकादिकन के परिणाम प्रसिद्ध हैं। तैसे शुक्ति रजतादिक बी परिणाम माने चाहिये।प्रातिभासिक रजतादिक शुक्ति आदिकन के परिणाम तौ संभवैं नहि।किंतु शुक्ति आदिकन का अज्ञान होवै तौ रजतादिक होवै हैं। अज्ञान नंहि होवै तौ होवैं नहि । यातैं परिशेष तैं अज्ञान के हि परिणाम माने चाहिये । जो पुरुषगत अज्ञान के परिणाम रजतादिक कहैं तौ संभवै नहि । काहे तैं पुरुषगत अज्ञान अंतर है । रजतादिक बाह्य प्रतीत होवै हैं । जो पुरुषगत अज्ञान हि वृत्ति द्वारा बाह्य निकस के विषय चेतन कूं आश्रयण करे है । ताके परिणाम रजतादिक कहैं तौ क्लिष्ट कल्पना होवैगी । औ निष्क्रिय अज्ञान का वृत्ति द्वारा बाह्य गमन कहना संभवै बी नहि । यातैं बी विषयगत अज्ञान के हि परिणाम रजतादिक माने चाहिये । औ विषय व्याप्त पटादिकन तैं हि घटादि विषय का आवरण प्रसिद्ध है । तैसे विषयगत अज्ञान हि ताका आवरक

मान्या चाहिये। पुरुषगत अज्ञान आवरक कहना संभवै नहि। इस रीति सै विषय चेतनगत अवस्थाज्ञान का अंगीकार आवश्यक है। प्रमाण के अभाव तैं तासै भिन्न पुरुषगत अवस्थाज्ञान का अंगीकार निष्फल है। औ जो पूर्व कहा घटादि विषय का आवरक अज्ञान विषयगत माने अंतःकरण उपहित साक्षी तैं ताका संबंध संभवै नहि तासै प्रकाश नहि हुवा चाहिये। औ विषयदेश मै निर्गमन के अभाव तैं परोक्ष वृत्ति तैं ताकी निवृत्ति नहि हुयी चाहिये सो कहना बी संभवै नहि। काहे तैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का विषय अवस्थाज्ञान मानै तौ साक्षि-चेतन तैं ताका संबंध कहा चाहिये। परंतु मूलाज्ञान ताका विषय है अवस्थाज्ञान विषय नहि। औ मूलाज्ञान का साक्षि तैं संबंध है। यातैं दोष नहि। या मत मै बी शुक्ति रजतादि अध्यास की अनुपपत्ति तैं हि विषयगत अवस्थाज्ञान की सिद्धि होवै है। यातैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का विषय अवस्थाज्ञान नहि मानै बी ताकी असिद्धि की शंका संभवै नहि। जो मूलाज्ञान का विषय ब्रह्म है घटादिक ताका विषय नहि। यातैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का विषय मूलाज्ञान संभवै नहि। किंतु घटादि विषय का आवरक अवस्थाज्ञान हि ताका विषय है। ताका साक्षी तैं संबंध नहि मानै अनुभव की अनुपपत्ति कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं घटादिक

मूलाज्ञान के विषय नहि। यातैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का अविषय मूलाज्ञान कहैं तौ अवस्थाज्ञान का विषय बी घटादि चेतन मात्र है। जड घटादिक ताका बी विषय नहि। यातैं अवस्थाज्ञान बी उक्त अनुभव का विषय नहि होवैगा। जो अवस्थाज्ञान का विषय तौ यद्यपि घटादि अवच्छिन्न चेतन हि है। परंतु तामै घटादि विषय का तादात्म्य होने तैं घटादिक बी ताका विषय संभवै हैं। यातैं अवस्थाज्ञान उक्त अनुभव का विषय कहैं तौ मूलाज्ञान उक्त अनुभव का विषय है या पक्ष मै बी समान हि समाधान है। कांहे तैं मूलाज्ञान का विषय ब्रह्म है तामै घटादिकन का तादात्म्य होने तैं घटादिक बी ताके विषय संभवै हैं। यातैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का विषय मूलाज्ञान संभवै है विरोध नहि। औ विवरणकारादिकन ने 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव तैं मूलाज्ञान की हि सिद्धि कहि है। यातैं बी मूलाज्ञान हि ताका विषय मान्या चाहिये। अवस्थाज्ञान विषय कहना संभवै नहि। जो 'अहं अज्ञः' यह अनुभव हि मूलाज्ञान का साधक विवरणकारादिकन कूं अभिमत है। 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव बी यद्यपि मूलाज्ञान के प्रसंग मै हि कहा है। तथापि जैसे आकाशादिरूप विचित्र कार्य की सिद्धि वास्ते मूलाज्ञान की सिद्धि अपेक्षित है। तैसे शुक्ति

रजतादि अध्यास की सिद्धि वास्ते अवस्थाज्ञान की सिद्धि बी अपेक्षित है। यातैं मूलाज्ञान के प्रकरण मै हि प्रसंग तैं अवस्थाज्ञान की सिद्धि वास्ते विवरणकारादिकन्न का 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का कथन बी विरुद्ध नहि। यातैं अवस्थाज्ञान हि उक्त अनुभव का विषय मान्या चाहिये। मूलाज्ञान ताका विषय संभवै नहि। किंच जैसे 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव तैं अवस्थाज्ञान की सिद्धि होवै है तैसे 'अहं अज्ञः तत्त्वं न जानामि' या अनुभव तैं मूलाज्ञान की बी सिद्धि संभवै है। यातैं बी मूलाज्ञान के प्रकरण मै हि दृष्टांतरूप तैं अवस्थाज्ञान की सिद्धि वास्ते विवरणकारादिकन का उक्त अनुभव का कथन संभवै है। विरोध नहि। यातैं प्रमाण के अभाव तैं "घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव का विषय मूला-ज्ञान संभवै नहि। किंतु उक्त रीति सै अवस्थाज्ञान की सिद्धि वास्ते सोई ताका विषय कहा चाहिये। ताकूं विषय गत माने साक्षी तैं ताका संबंध संभवै नहि। यातैं अनुभव नहि हुवा चाहिये। तात्पर्य यह– 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अवस्थाज्ञान का अनुभव साक्षिरूप है। अवस्थाज्ञान पुरुषगत मानै साक्षिरूप प्रकाश तैं ताका संबंध होने तैं अनुभव संभवै है। बाह्य विषय चेतन ताका आश्रय माने संबंध के अभाव तैं अनुभव संभवै नहि। यातैं पुरुषगत हि अवस्थाज्ञान मान्या चाहिये।

विषयगत कहना संभवै नहि। इस रीति से विवरणादि-कन मै 'अज्ञोऽहं' यह सामान्य अनुभव हि मूलाज्ञान विषयक कहा है। 'घटमहं न जानामि' इत्यादि विशेप अनुभव अवस्थाज्ञान गोचर है। अवस्थाज्ञान कूं विषय गत मानै ताका असंभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं अवस्थाज्ञान अनादि है या पक्ष मै बी मूलाज्ञान की अवस्था विशेष हि अवस्थाज्ञान माने हैं। औ अवस्थावान् सै अवस्था का तादात्म्य होवै है। यातैं यह सिद्ध होवै है— विषय गत अवस्थाज्ञान का साक्षी तैं साक्षात् संबंध तौ यद्यपि नहि संभवै है। तथापि परंपरा संबंध संभवै है। काहे तैं मूलाज्ञान का साक्षी तैं साक्षात् संबंध है ताकी अवस्था विशेप हि विषयगत अवस्थाज्ञान है। ताका बी मूलाज्ञानद्वारा साक्षी तैं संबंध संभवै है। अथवा विषयचेतन अवस्थाज्ञान का आश्रय है ताका साक्षी तैं वास्तव अभेद है। यातैं साक्षी तैं अभिन्न चेतन आश्रितत्व हि विषयगत अवस्था-ज्ञान का साक्षी तैं संबंध है। यातैं अनुभव की अनुपपत्ति नहि। और जो कहा परोक्ष वृत्ति का विषयदेश मै निर्गमन के अभाव तैं तासै विषयगत अज्ञान की निवृत्ति संभवै नहि। यातैं परोक्ष प्रमा मै व्यभिचार होने तैं प्रमाज्ञान अज्ञान का निवर्तक है यह नियम संभवै नहि। सो कहना बी नहि संभवै है। काहे तैं अपरोक्ष ज्ञान तैं हि अज्ञान की निवृत्ति माने हैं या मत मै परोक्ष ज्ञान तैं अज्ञान की

निवृत्ति नहि माने हैं यातैं दोष नहि। तात्पर्य यह—प्रमा मात्र तैं अज्ञान की निवृत्ति का नियम मानै तौ परोक्ष प्रमा मै व्यभिचार दोष होवै। अपरोक्ष प्रमा तैं हि अज्ञान निवृत्ति का नियम मानै दोष नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार परोक्ष प्रमा तैं अज्ञान निवृत्ति नहि मान के अपरोक्ष प्रमा तैं हि अज्ञान निवृत्ति का नियम माने हैं। परंतु विवरण ग्रंथ मै औ ताकी टीका तत्त्वदीपन मै अनुमिति आदि परोक्ष ज्ञान तैं अनुमेय वह्नि आदिकन के अज्ञान की निवृत्ति स्पष्ट कहि है। औ. शास्त्रार्थ के उपदेश तैं अनंतर 'शास्त्रार्थाज्ञानं निवृत्तं' इस रीति सै अज्ञान की निवृत्ति अनुभव सिद्ध है। अनुभवसिद्ध पदार्थ का अपलाप होय सके नहि। यातैं बी परोक्षज्ञान तैं अज्ञान की अनिवृत्ति कहना संभवै नहि। जो संबंधाभाव तैं परोक्षज्ञान तैं विषयगत अज्ञान की निवृत्ति तौ संभवै नहि निवृत्ति अनुभव कूं यथार्थ माने ताका विरोध परिहार वास्ते परोक्षज्ञान तैं पुरुषगत अज्ञान की निवृत्ति हि कहनी होवैगी। यातैं विषयगत अज्ञान तैं भिन्न पुरुषगत अनंत अज्ञान मानने मै-गौरव होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—अस्तिरूप तैं शास्त्रार्थ का निश्चय अज्ञान के अनुभव का प्रतिबंधक है। उपदेश तैं अनंतर ताके होतैं 'शास्त्रार्थं न जानामि' इस रीति से अज्ञान का अनुभव होवै नहि। यातैं 'शास्त्रार्थाज्ञानं निवृत्तं' इस रीति

से उपदेश जन्य परोक्षज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति का भ्रम होवै है । इस रीति से परोक्षज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति अनुभव कूं भ्रमरूप कहैं तौ संभवै नाहि । काहे तैं अस्ति रूप तैं शास्त्रार्थ का निश्चय होवै तासै नास्ति व्यवहार की निवृत्ति नहि माने अस्तिरूप तैं निश्चय कथन हि निष्फल औ व्याहत होवैगा । नास्ति व्यवहार की तासै निवृत्ति माने असत्त्वापादक आवरण की निवृत्ति अवश्य मानी चाहिये । काहे तैं विषय मै अज्ञानकृत आवरण तैं द्विविध व्यवहार होवैहै । असत्त्वापादक आवरण तैं नास्ति व्यवहार होवै है । अभानापादक आवरण तैं न भाति यह व्यवहार होवै है । इस रीति से नास्ति व्यवहार का हेतु असत्त्वा-पादक आवरण है ताकी निवृत्ति विना नास्ति व्यवहार की निवृत्ति कहना संभवै नहि । यातैं अस्तिरूप तैं शास्त्रार्थ के निश्चय तैं अज्ञान की निवृत्ति आवश्यक है । ताकूं अज्ञानानुभव मै प्रतिबंधक मान के परोक्षज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति अनुभव कूं भ्रमरूप कहना संभवै नहि । जो पुरुषगत अज्ञान मानने मै गौरव कहा सो बी नहि संभवै है । काहे तैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव सिद्ध पुरुषगत अज्ञान है । अनुभवानुसारि गौरव दोषकर नहि । यद्यपि विषयगत अज्ञान का बी साक्षी से परंपरा संबंध मान के अनुभव का संभव पूर्व कहा है । तथापि साक्षात् संबंध का संभव हुये परंपरा संबंध मानना अयुक्त

है। या अभिप्राय तैं 'घटमहं न जानामि' इत्यादि अनुभव तैं पुरुषगत अज्ञान की सिद्धि मान के अनुभवानुसारि गौरव अदोषकर कहा है। याहि तैं पुरुषगत अज्ञान मानने मै प्रमाण का अभाव कहना बी संभवै नहि। किंच संबंधाभाव तैं अनिर्गत परोक्षवृत्ति तैं विषयगत अज्ञान की निवृत्ति तौ मानी नहि। पुरुषगत अज्ञान की निवृत्ति बी नहि माने निवृत्ति अनुभव की अनुपपत्ति होवैगी। यातैं बी पुरुषगत अज्ञान मानने मै प्रमाण का अभाव कहना संभवै नहि। याहि तैं ताका अंगीकार निष्फल कहना बी नहि संभवै है। इस रीति से अपरोक्ष प्रमाज्ञान तैं हि अज्ञान की निवृत्ति होवै है, परोक्ष तैं होवै नहि। यह नियम संभवै नहि। यातैं परोक्षापरोक्ष साधारण प्रमाज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति का नियम मान्या चाहिये। परोक्ष प्रमा तैं अशेष अज्ञान की निवृत्ति तौ नहि होवै है। परंतु असत्त्वापादक अज्ञान अंश की निवृत्ति होवै है। यातैं परोक्षापरोक्ष साधारण प्रमा तैं अज्ञान निवृत्ति का नियम कहा है। अविद्या अहंकार सुख दुःखादिकन का ज्ञान साक्षिरूप है सो प्रमा नहि। काहे तैं प्रमाणजन्य ज्ञान वा अनधिगताबाधितार्थगोचर ज्ञान प्रमा कहिये है। साक्षिरूप ज्ञान नित्य है औ अज्ञातगोचर नहि। काहे तैं अविद्या अहंकारादिक अज्ञात नहि जो तिन कूं अज्ञात माने तौ तिन का स्वसत्ता काल मै नियम तैं भान

नहि हुवा चाहिये। श्रौ भान होवै है। यातैं अविद्यादिक अज्ञात नहि इस रीति सै साक्षिरूपज्ञान प्रमा नहि यातैं तासै अज्ञान की निवृत्ति नहि हुये बी दोष नहि। श्रौ जो अविद्यादिकन का साक्षिरूप अनुभव यथार्थ है यातैं प्रमा कहैं तौ उक्त नियम मै तासै भिन्न कहा चाहिये। अब प्रसंग तैं साक्षि का निरूपण करे हैं। पूर्व अहंकार कूं साक्षिभास्य कहने तैं अहं शब्दार्थ जीव तैं साक्षी भिन्न कहा तामै यह शंका होवै है—प्रमाण के अभाव तैं जीव तैं भिन्न साक्षी कहना संभवै नहि। या शंका का कूटस्थ दीप मै यह समाधान कहा है—स्थूल सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठान होने तैं कूटस्थ के अवच्छेदक स्थूल सूक्ष्म शरीर हैं तिन का अपरोक्ष द्रष्टा श्रौ निर्विकार होने तैं कूटस्थ चेतन हि साक्षी कहिये है। यद्यपि निर्विकार श्रौ द्रष्टा एक संभवै नहि। काहे तैं दृष्टि का कर्ता द्रष्टा कहिये है। श्रौ कर्तृत्वादि विकार रहित का नाम निर्विकार है। तथापि जैसे सूर्य प्रकाशरूप हि है प्रकाश का कर्ता नहि तौ बी 'सूर्यः प्रकाशते' इस रीति सै उपचार तैं प्रकाश का कर्ता कहिये है। तैसे दृष्टिरूप हि कूटस्थचेतन उपचार तैं दृष्टि का कर्ता कहिये है यातैं विरोध नहि। यद्यपि निर्विकार अपरोक्ष द्रष्टा कूं साक्षी कहना संभवै नहि। काहे तैं अपरोक्ष द्रष्टा हि साक्षी पद का अर्थ है। यातैं 'उदासीनत्वे सति अपरोक्ष द्रष्टा साक्षी'

इस रीति सै साक्षीलक्षण मै निर्विकारतारूप उदासीनता का प्रवेश संभवै नहि। तथापि लोक मै दो पुरुष विवाद करें होवैं तहां विवाद का अपरोक्ष द्रष्टा श्रौ उदासीन हि साक्षी प्रसिद्ध है। यातैं साक्षी लक्षण मै उदासीन अवश्य कहा चाहिये। उक्त विवाद स्थल मै स्तंभादिक बी उदासीन होवै हैं यातैं अपरोक्ष द्रष्टा कहा है। अनुदासीन बी अपरोक्ष द्रष्टा होवे है। यातैं 'उदासीनत्वे सति' कहा है। यद्यपि स्थूल सूक्ष्म शरीर के भान की अन्यथा अनुपपत्ति तैं साक्षी की सिद्धि कहैं तौ संभवै नहि। काहे-तैं अंतःकरण की वृत्ति तैं हि ताका भान संभवै है। तथापि साक्षी विना केवल वृत्ति तैं शरीरद्वय का भान संभवै नहि। काहे तैं यद्यपि अंतःकरण की वृत्ति दीपादिकन की न्याई प्रकाशरूप तौ हैं परंतु जड होने तैं चेतन के प्रतिबिंब-विना शरीरद्वय का प्रकाशक संभवैं नहि। साक्षिरूप नित्य चेतन मानै ताके प्रतिबिंब द्वारा ताका अनुभवरूप संभवै हैं। तात्पर्य यह—जैसे-अग्नितप्त अयः पिंड तैं अग्निसहित हि विस्फुलिंग उत्पन्न होवै हैं तैसे चेतन के प्रतिबिंब सहित अंतःकरण तैं वृत्ति बी प्रतिबिंब सहित हि होवै हैं। यातैं शरीरादिकन का अनुभवरूप संभवै हैं। या कहने तैं अंतःकरण मै प्रतिबिंब जीव है, बिंब-चेतनरूप कूटस्थ साक्षी है। इस रीति सै जीव तैं साक्षी का भेद कहा। किंच शरीर द्वयगोचर अनेक वृत्ति होवै

हैं तिन के अंतराल मै शरीरद्वय का अस्पष्ट भान होवै है। वृत्तिकाल मै 'कर्ताऽहं' 'स्थूलोऽहं' इस रीति सै स्पष्ट भान होवै है। यह अनुभव सिद्ध है तिन मै स्पष्ट भान वृत्ति तैं माने बी अस्पष्ट भान की सिद्धि वास्ते वृत्तिज्ञान तैं भिन्न साक्षिरूप नित्यचेतन मान्या चाहिये। तात्पर्य यह—अंतराल मै केवल शरीरद्वय का हि अस्पष्ट भान नहि होवै है किंतु वृत्ति का नाश बी भासे है। तैसे वृत्ति की उत्पत्ति औ तिन का भेद बी भासे है। तहां स्व नाशादिकन का स्व सै तौ भान संभवै नहि। औ अनवस्था होने तै वृत्तिगोचर अन्य वृत्ति संभवै नहि। याहि तैं अन्य वृत्ति तैं बी वृत्ति नाशादिकन का भान नहि संभवै है। यातैं वृत्ति नाशादिकन के भान वास्ते बी साक्षिरूप नित्य चेतन मान्या चाहिये। किंच घटादिकन मै प्रकाश संबंध तैं हि संशयादिकन का अभाव प्रसिद्ध है। अहंकारादिकन मै औ तिन के योग्य सुख दुःखादिक धर्मन मै संशयादिक किसी काल मै किसी कूं बी होवैं नहि। अहंकारादिकन मै सदा प्रकाश का संबंध माने विना अनुभव सिद्ध सदा संशयादिकन का अभाव संभवै नहि। यातैं तिन मै सदा प्रकाश का संबंध मान्या चाहिये। जो ज्ञान अनित्य हि माने नित्य ज्ञानरूप साक्षी नहि माने तौ अहंकारादिकन मै सदा प्रकाश संबंध का असंभव होवैगा। काहे तैं उत्पत्ति नाश वाले अनित्य ज्ञान क्रम तैं होवै हैं। औ बहुत स्थान

मै ग्राह्य वस्तुगोचर होवै हैं। यातैं अहंकारादिकन मै अनुभव सिद्ध सदा संशयादि अभाव की अनुपपत्ति होवैगी। यातैं तिन मै सदा संशयादि अभाव की सिद्धि वास्ते तिन का नित्य साक्षिरूप प्रकाश तैं सदा संबंध कहा चाहिये। यातैं बी स्वप्रकाश नित्य साक्षी सिद्ध होवै है। किंच श्रीकृष्णादि-गोचर वृत्ति की धारा होवै तासै उत्तर काल मै 'एतावंतंकालमहं श्रीकृष्णं पश्यन्नेवासं' इस रीति से वृत्ति सहित अहंकार की स्मृति होवै है। औ अनुभव विना स्मृति संभवै नहि। धाराकाल मै अहंकार गोचर वा प्रत्येक वृत्ति गोचर जन्य अनुभव माने धारा का विच्छेद होवैगा। औ इच्छा घटित सामग्री जन्य होने तैं धारा का विच्छेद कहना संभवै नहि। जो अहंकारादि गोचर नित्य साक्षिरूप अनुभव बी नहि माने तौ संस्कार के अभाव तैं स्मृति नहि हुयी चाहिये। यातैं धारा कालीन अहंकारादिगोचर नित्य साक्षिरूप अनुभव मान्या चाहिये। यद्यपि अन्य के अनुभूत की अन्य कूं स्मृति होवै नहि। जो अन्य के अनुभूत की अन्य कूं स्मृति माने तौ चैत्र के अनुभूत की मैत्र कूं स्मृति हुयी चाहिये। औ साक्षी जीव तैं भिन्न है। यातैं धारा कालीन वृत्ति सहित अहंकार का अनुभव साक्षी कूं माने जीव कूं ताका स्मरण नहि हुवा चाहिये। तथापि स्व के अनुभूत की स्व कूं स्मृति होवै है। औ स्व तादात्म्यवाले के अनुभूत की बी स्व कूं स्मृति होवै

है। जीव औ कूटस्थ का तादात्म्य है। यातैं सादि कूटस्थ के अनुभूत की जीव कूं स्मृति संभवै है चैत्र मै मैत्र का तादात्म्य नहि यातैं चैत्र के अनुभूत की मैत्र कूं स्मृति होवै नहि। इस रीति से धारा कालीन अहंकारादि स्मृति की अनुपपत्ति तैं बी तिन का नित्य सादिरूप अनुभव सिद्ध होवै है। जो उक्त रीति सै साक्षी की सिद्धि मान के बी सर्व शरीरन मै साक्षी एक माने तौ साक्षी के अनुभूत की देवदत्त जीव कूं स्मृति होवै है तैसे यज्ञदत्तादिकन कूं बी हुयी चाहिये। काहे तैं देवदत्त जीव का अधिष्ठान साक्षी मै तादात्म्य है तैसे यज्ञदत्तादिकन का बी तादात्म्य है। यातैं तिन कूं बी स्मृति हुयी चाहिये। यातैं सर्व शरीरन मै साक्षी एक नहि। किंतु नाना घटरूप अवच्छेदक के भेद तैं घटाकाश का भेद होवै है। तैसे साक्षी कूटस्थ के अवच्छेदक स्थूल सूक्ष्म शरीर हैं। तिन के भेद तैं साक्षी का बी भेद होने तैं दोष नहि। जो पूर्व उक्त रीति सै जीव तैं कूटस्थ का भेद मान के बी जीव कूं हि साक्षी कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं लोक मै उदासीन हि साक्षी प्रसिद्ध है। औ 'साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च' या श्रुतिगत केवल पद तैं बी उदासीन हि साक्षी सिद्ध होवै है। औं जीव लौकिक वैदिक व्यवहार का कर्ता है यातैं उदासीन द्रष्टा नहि होने तैं साक्षी संभवै नहि। यातैं कूटस्थ हि साक्षी मान्या चाहिये श्रुति मै

'चेता केवलः' इन दोनों पदन तैं साक्षी का लक्षण कहा है। उदासीन बोद्धा तिन का अर्थ है। वैशेषिकादिक आत्मा के ज्ञानादिक गुण माने हैं। निर्गुण कहने तैं तिन के मत का खंडन किया। दिगंबर मध्यम परिमाण सक्रिय आत्मा माने हैं। तिन के मत का निरास निर्गुण पद उत्तर चकार का अर्थ है। 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योभिचाकशीति' यह श्रुति तौ साक्षात् हि कर्मफल भोक्ता जीव तैं उदासीन प्रकाशरूप साक्षी का भेद कहे है। जीव औ कूटस्थ के मध्य मै कूटस्थ तैं अन्य जीव कर्म फल कूं स्वादु जैसे होवै तैसे भोगे है। शरीर कूं अश्वत्थ वृक्ष कहा है यातैं कर्मफल कूं पिप्पल कहा है। पुण्यफल के अभिप्राय तैं कर्मफल भोग कूं स्वादु कहा है। जीव तैं अन्य कूटस्थ कर्मफल के भोग कूं न कर्ता हुवा बुद्धि आदिकन का अपरोक्ष द्रष्टा है। भोक्तृत्व के निषेध तैं कर्तृत्व का बी निषेध होवै है। यातैं 'अनश्नन्नन्योभिचाकशीति' या कहने तैं उदासीन बोद्धा साक्षी सिद्ध होवै है। इस रीति से कूटस्थ दीप मै श्रुति युक्ति तैं जीव भिन्न साक्षी निरूपण किया है यातैं प्रमाणाभाव की शंका संभवै नहि जैसे कूटस्थदीप मै साक्षी जीव तैं भिन्न सिद्ध किया है। तैसे नाटकदीप मै बी नृत्तशालास्थित दीप के दृष्टांत तैं तीनों अवस्था का साक्षी जीव तैं भिन्न हि सिद्ध किया है। तथा हि—जैसे नृत्तशाला मै नृत्त का अभिमानी प्रभु होवै

है ताके समीपवर्ती सभ्य पुरुष होवै हैं नर्त्तकी नृत्त करे है, तालादि धारी ताके अनुसारी होवै हैं। तिन सर्व कूं निर्विकार स्थित हुवा हि दीप प्रकाशे है। तिन के अभाव हुये बी प्रकाशे है। तैसे चिदाभास विशिष्ट अहंकाररूप जीव प्रभु है काहे तैं जैसे प्रभु कूं नृत्त की सकलता विकलता तैं हर्ष विषाद होवै है। तैसे जीव कूं बी विषय भोग की सकलता विकलता तैं हर्ष विषाद होवै है। सकलता विकलता प्रयुक्त हर्ष विषाद तैं रहित होने तैं शब्दादिक विषय-सभ्य पुरुष हैं। नानाविध विकार युक्त होने तैं बुद्धि नर्त्तकी है, ताके अनुसारी होने तैं इंद्रिय तालादि धारी हैं। जाग्रदादिकन मै तिन सर्व का निर्विकार रूप सै प्रकाशक औ सुषुप्ति आदिकन मै तिन के अभाव का प्रकाशक कूटस्थ चेतनरूप साक्षी दीप है। इस रीति सै *नाटक दीप मै जीव तैं भिन्न साक्षी निरूपण किया है।* जैसे जीव तैं साक्षी भिन्न है तैसे कूटस्थदीप मै ईश्वर तैं बी भिन्न हि कहा है। काहे तैं सृष्टि पालनादि व्यापार का कर्ता होने तैं ईश्वर उदासीन नहि। औ ईश्वर परोक्ष है। यातैं जीव के बुद्धि आदिकन का अपरोक्ष द्रष्टारूप साक्षी संभवै नहि। इस रीति सै पंचदशी मै जीव ईश्वर विभाग तैं रहित कूटस्थ चेतन साक्षी कहा है। तैसे तत्त्व प्रदीपिका मै बी ईश्वरत्वादि धर्म रहित चिदात्मा हि साक्षी कहा है। तथा हि— 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'

या श्रुति मै साक्षी कूं केवल औ निर्गुण कहा है माया विशिष्ट परमेश्वर सगुण है औ सृष्टि पालनादि व्यापार का कर्ता है ताकूं केवल औ निर्गुण कहना संभवै नहि। यातैं ईश्वर साक्षी संभवै नहि तैसे हि जीव बी साक्षी नाहि संभवै है। यातैं जीव ईश्वर भाव तैं रहित शुद्ध ब्रह्म हि साक्षी मान्या चाहिये। यद्यपि शुद्ध ब्रह्म व्यापक है ताकूं साक्षी माने तासै सर्व जीवन के सुखादिकन का संबंध है। यातैं देवदत्त कूं स्व सुखादिकन की न्याई जीवांतर के सुखादिकन का बी प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। काहे तैं देवदत्त के सुखादि भासक साक्षी तैं जीवांतर के सुखादिकन का बी संबंध समान है। तथापि अंतःकरण मै प्रतिबिंबरूप सर्व जीवन का अधिष्ठान होने तैं आत्मा शुद्ध ब्रह्म है। याहि तैं सर्व जीवन मै ताका तादात्म्य है यातैं प्रति शरीर जीव भेद तैं ताका भेद होने तैं एक जीव कूं स्वसुखादि प्रत्यक्ष काल मै जीवांतर के सुखादि प्रत्यक्ष की आपत्ति नहि। इस रीति सै पंचदशी आदिक ग्रंथन मै जीव ईश्वर तैं भिन्न साक्षी कहा है। औ कौमुदी ग्रंथ मै तौ यह कहा है—यद्यपि जीव सै तौ साक्षी भिन्न है। तथापि ईश्वर सै भिन्न नहि। काहे तैं 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' यह साक्षी का प्रतिपादक संपूर्ण मंत्र है। तामै देवत्वादिक साक्षी के

विशेषण कहे हैं। औ श्रुति स्मृति मै देवत्वादिक धर्म परमेश्वर के हि प्रसिद्ध हैं अन्य के नहि। यद्यपि हिरण्यगर्भ, इंद्रादिक जीव बी देव कहिये हैं। तथापि मंत्र उक्त अन्य धर्म ईश्वर के असाधारण हैं तिन के सहपठित देवत्व बी ईश्वरगत हि ग्रहण किया चाहिये। या अभिप्राय तैं ईहां देवत्व बी ईश्वर का हि धर्म कहा है। यातैं जीव की प्रवृत्ति निवृत्ति का उदासीन बोद्धा परमेश्वर का रूप विशेष हि साक्षी मान्या चाहिये। यद्यपि अज्ञान अंतःकरणादिकन का अनुभवरूप होने तैं साक्षी जीव के अपरोक्ष है औ सर्वज्ञत्वादि धर्म विशिष्ट ईश्वर नित्य परोक्ष है। यातैं साक्षी ईश्वर का रूप यद्यपि नहि संभवै है तथापि सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ईश्वर कूं साक्षी मानै तौ शंका संभवै। सर्वज्ञत्वादि धर्म रहित ईश्वर का रूप विशेष साक्षी माने हैं। सो जीवगत अज्ञान अंतःकरण सुख दुःखादिकन का भासक होने तैं ताके अपरोक्ष है याहि तैं 'अहं अज्ञः सुखी दुःखी' इत्यादि व्यवहार का निर्वाहक है। यातैं शंका संभवै नहि। परमे मै शिव विष्णु आदि भेद के निषेध वास्ते मंत्र मै ताकूं एक कहा है। बिंबरूप परमेश्वर की हि मूर्ति भेद तैं शिव विष्णु आदि संज्ञा है वास्तव तैं ईश्वर का भेद नहि यह ताका अर्थ है। सो परमेश्वर सर्व भूतन मै वर्ते है। परंतु गूढ होने तैं प्रकाशे नहि। भूतन मै परमात्मा की स्थिति

माने आश्रय के भेद तैं ताका वी भेद होवैगा। या शंका की निवृत्ति वास्ते सर्वव्यापि कहा है। व्यापक आकाश की न्याई जीव तैं परमात्मभेद शंका की निवृत्ति वास्ते सर्वभूतांतरात्मा कहा है। सर्व जीवरूप है यह ताका अर्थ है। कर्म कर्ता जीवरूप कहने तैं परमात्मा मै कर्तृत्व की शंका होवै है। ताकी निवृत्ति वास्ते कर्माध्यक्ष कहा है। जीव कृत कर्मन का साक्षी है तिन का कर्ता नहि यह ताका अर्थ है, औपाधिक भेद तैं जीव परमात्मा के धर्मन का भेद संभवै है। यह तात्पर्यार्थ है। पूर्व सर्व भूतन मै स्थिति कहने तैं परमात्मा तैं भूतन का भेद प्रतीत होवै है। यातैं द्वैत शंका की निवृत्ति वास्ते सर्वभूताधिवास कहा है सर्व-भूतन का अधिष्ठान है यह ताका अर्थ है। कल्पित की सत्ता अधिष्ठान तैं भिन्न होवै नहि। यातैं द्वैत की शंका संभवै नहि। यह तात्पर्यार्थ है। इस रीति सै मंत्र के तीन पादन का अर्थ कहा चतुर्थ पाद का अर्थ पूर्व कहा है। इस रीति सै जाग्रदादिकन मै अंतःकरणादिकन का साक्षी परमेश्वर का रूप विशेष सुषुप्ति आदिकन मै अज्ञान मात्र का साक्षी है। सुषुप्ति मै तासै हि जीव का अभेद श्रुति मै कहा है। मरणकाल मै तासै हि अधिष्ठित हुवा जीव वेदना वश तैं नाना शब्दन कूं कर्ता हुवा शरीर तैं निकसे है यह अन्य श्रुति मै कहा है। इस रीति सै कौमुदी मै साक्षी का ईश्वर मै अंतर्भाव कहा है। तैसे तत्त्वशुद्धि

मै बी साक्षी ईश्वर के अंतर्भूत हि कहा है। तथा हि—जैसे वास्तव तैं शुक्तिरूप हुयी बी इदंता 'इदं रजतं' इस रीति से रजत से अभिन्न प्रतीत होवै है। तैसे साक्षी यद्यपि वास्तव तैं ईश्वर से अभिन्न है। परंतु जीवन का अधिष्ठान होने तैं'अहं सुखमनुभवामि'इस रीति से जीव से अभिन्न प्रतीत होवै है। यातैं जीव के सुखादि व्यवहार मै ताका उपयोग है। इस रीति सै जीव भिन्न साक्षी मै प्रमाणाभाव शंका के समाधान मै पूर्व च्यारि मत कहे। तिन मै पंचदशीकार औ तत्त्वप्रदीपककार के मत मै तौ ईश्वर तैं बी साक्षी भिन्न है। कौमुदीकार औ तत्त्वशुद्धिकार के मत मै ईश्वर तैं भिन्न नहि। किंतु ईश्वर का हि रूप विशेष साक्षी है। परंतु जीव तैं साक्षी का भेद च्यारूं मतन मै प्रमाण सिद्ध है यातैं शंका संभवै नहि। औ कोई ग्रंथकार तौ जीव कूं हि साक्षी माने हैं तासै भिन्न साक्षी नहि माने हैं। तिन का यह तात्पर्य है— लोक मै उदासीन द्रष्टा हि साक्षी प्रसिद्ध है। औ अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव बी उदासीन द्रष्टा है। यातैं असंग उदासीन प्रकाशरूप जीव हि साक्षी मान्या चाहिये। प्रमाण के अभाव तैं तासै भिन्न साक्षी संभवै नहि। औ प्रसिद्ध जीव मै हि साक्षिता का संभव हुये तासै भिन्न साक्षी माने गौरव होवैगा। यातैं बी जीव तैं भिन्न साक्षी कहना नहि संभवै है। यद्यपि लौकिक वैदिक व्यवहार

का कर्ता होने तैं जीव उदासीन नहि याहि तैं ताकूं साक्षी कहना संभवै नहि। तथापि अंतःकरण के तादात्म्य तैं हि जीव मै कर्तृत्वादिकन का आरोप होवै है। अविद्या मैं प्रतिबिंबरूप जीव स्वभाव सैं उदासीन है। यातैं साक्षी संभवै है। जो 'एको देवः' इत्यादि मंत्र तैं ईश्वर का रूप विशेष साक्षी कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं पूर्व अज्ञान अंतःकरणादिकन का अनुभवरूप होने तैं साक्षी जीव के अपरोक्ष कहा है औ ईश्वर परोक्ष है यातैं साक्षी संभवै नहि याहि तैं ताका रूप विशेष बी साक्षी नहि संभवै है जो कारणत्वादि धर्म रहित उदासीन ईश्वर का रूप विशेष अपरोक्ष होने तैं साक्षी कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं जैसे अन्य जीव चेतन जीव के अपरोक्ष नहि। तैसे औपाधिक भेद होने तैं उदासीन बी ईश्वर का रूप विशेष जीव के अपरोक्ष संभवै नहि। इस रीति से मंत्र तैं ईश्वर का रूप विशेष बी साक्षी सिद्ध होय सके नहि। यातैं यह मान्या चाहिये-मंत्र के तीन पादन तैं परमेश्वर के रूप का प्रतिपादन करके चतुर्थ पाद तैं जीव-रूप तैं परमात्मा साक्षी कहा है। यातैं विरोध नहि। यद्यपि 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन्नन्योऽभि चाकशीति' या मंत्र मै जीव तौ कर्मफल का भोक्ता प्रतीत होवै है। परमात्मा उदासीन द्रष्टा साक्षी प्रतीत होवै है। यातैं साक्षी परमात्मरूप मान्या चाहिये। तथापि पूर्व उक्त

प्रकार तैं किसी रीति सै बी परमात्मा अपरोक्ष संभवै नहि। यातैं या मंत्र का बी अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता कर्मफल का भोक्ता है। अविद्या मै प्रतिबिंब जीवरूप तैं परमात्मा साक्षी है। या अर्थ मै हि तात्पर्य मान्या चाहिये। परंतु यह मंत्र के अविरोध का प्रकार मंत्र कूं जीव परमात्मपरता मान के है। औ भाष्यकार ने तौ शारीरक के प्रथमाध्यायगत द्वितीयपाद मै मंत्र का इस रीति सै व्याख्यान किया है—'तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्तीति सत्वं अनश्नन्नन्योभि चाकशीति अनश्नन्नन्योभि पश्यतीतिज्ञः तावेतौ सत्व क्षेत्रज्ञौ' यह उक्त मंत्र का व्याख्यानरूप ब्राह्मणवाक्य है। तामै कर्मफल का भोक्ता अंतःकरण कहा है। औ भोग रहित द्रष्टा क्षेत्रज्ञ कहा है। यातैं 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन्नन्योभि चाकशीति' या मंत्र का यह अर्थ सिद्ध होवै है। अंतःकरण तौ फल का भोक्ता है क्षेत्रज्ञ भोगरहित द्रष्टा है। इस रीति सै ब्राह्मणवाक्य के अनुसार भाष्यकार ने अंतःकरण औ क्षेत्रज्ञपर मंत्र का व्याख्यान किया है। यद्यपि तिसी स्थान मै भाष्यकार ने जीव ईश्वर पर बी मंत्र कहा है। तथापि मंत्र कूं जीव ईश्वर-परता मान के कहा है। यातैं विरोध नहि। तहां अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता तौ कर्ता भोक्ता होने तैं साक्षी संभवै नहि। याहि तैं क्षेत्रज्ञ पद तैं ताका ग्रहण बी नहि संभवै है। यातैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप

जीव पूर्व साक्षी सिद्ध किया है। ताका हि क्षेत्रज्ञ पद तैं ग्रहण किया चाहिये। यातैं असंग उदासीन प्रकाशरूप अविद्या मै प्रतिबिंब जीव साक्षी सिद्ध होवै है। विरोध नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार प्रतिबिंब जीव कूं अविद्या उपहितरूप तैं साक्षी माने हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—यद्यपि साक्षी तौ अविद्या मैं प्रतिबिंबरूप जीव हि है तासै भिन्न साक्षी नहि। परंतु अविद्या उपहितरूप तैं जीव साक्षी नहि। किंतु अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी है। काहे तैं अविद्या उपहितरूप तैं प्रतिबिंब जीव व्यापक है ताकूं साक्षी माने देवदत्त कूं स्वअंतःकरणादिकन का प्रत्यक्ष होवै है। तैसे पुरुषांतर के अंतःकरणादिकन का वी प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। काहे तैं व्यापक जीव तैं स्वअंतःकरणादिकन की न्याईं पुरुषांतर के अंतःकरणादिकन का वी संबंध समान है। यातैं पुरुषांतर के अंतःकरणादिकन का वी देवदत्त कूं प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। जो प्रमातृ भेद तैं व्यवस्था कहैं तात्पर्य यह—देवदत्त प्रमाता तैं पुरुषांतर प्रमाता भिन्न हैं यातैं पुरुषांतर के अंतः-करणादिकन का देवदत्त कूं अप्रत्यक्ष कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं अंतःकरणादिक साक्षिभास्य हैं साक्षी के भेद तैं हि तिन के प्रत्यक्ष की व्यवस्था संभवै है। प्रमातृ भेद तैं नहि। औ अविद्या उपहितरूप तैं प्रतिबिंब जीव का

भेद नहि ताकूं साक्षी माने व्यवस्था संभवै नहि। यातैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी मान्या चाहिये। सर्व शरीरन मै अंतःकरण के भेद तैं साक्षी का भेद होने तैं व्यवस्था संभवै है। यद्यपि प्रतिबिंब जीव कूं अविद्या उपहितरूप तैं साक्षी मानै सुषुप्ति मै बी साक्षी की सत्ता संभवै है। अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी माने सुषुप्ति मै अंतःकरण का लय होय जावै है। यातैं साक्षी का अभाव होवैगा। तथापि सुषुप्ति मै बी सूक्ष्मरूप तैं अंतःकरण विद्यमान है। यातैं अंतःकरण उपहित साक्षी का अभाव नहि। परंतु इहां यह शंका होवै है—अविद्या मै प्रतिबिंब जीव अंतःकरण उपहितरूप तैं प्रमाता होने तैं साक्षी संभवै नहि। ताकूं साक्षी माने प्रमाता हि साक्षी सिद्ध होवैगा। साक्षी औ प्रमाता का भेद नहि होवैगा। औ 'त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् तेभ्यो विलक्षणः साक्षी' इत्यादि श्रुति मै तीनों अवस्था मै साक्षी का सद्भाव कहा है। यातैं सुषुप्ति मै प्रमाता का अभाव हुये बी साक्षी विद्यमान होने तैं तिन का भेद अवश्य कहा चाहिये। किंच 'सुख महमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषं' इस रीति सैं उत्थित कूं अज्ञान औ सुख तैसे सुषुप्ति का स्मरण होवै है। सुषुप्तिकाल मै अज्ञानादिकन का अनुभव साक्षीरूप हि कहना होवैगा। यातैं बी सुषुप्ति मै साक्षी की सत्ता सिद्ध होवै है। यद्यपि

'अहमस्वाप्सं' इस रीति से सुपुप्ति आदिकन की न्याईं अहं पद का अर्थ प्रमाता बी स्मृतिज्ञान का विषय प्रतीत होवै है। यातैं सुपुप्तिकाल मै ताकी बी सत्ता कहि चाहिये। तथापि अनेक श्रुतिवाक्यन मै सुषुप्ति मै प्रमाता का लय कहा है 'सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिपं' या ज्ञान कूं प्रमाता अंश मै बी स्मृतिरूप माने सुपुप्ति मै अज्ञान सुखादिकन की न्याईं ताकी बी सत्ता प्राप्त होने तैं ताका विरोध होवैगा। यातैं प्रमाता अंश मै उक्तज्ञान अनुभवरूप मान्या चाहिये स्मृतिरूप कहना संभवै नहि। इस रीति से सुपुप्ति मै प्रमाता का अभाव है। साक्षी का सद्भाव है। यातैं साक्षी प्रमाता के अभेद के असंभव तैं तिन का भेद हि कहा चाहिये प्रतिबिंब जीव कूं अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी माने भेद कहना संभवै नहि। याहि तैं अविद्या मै प्रतिबिंब जीव कूं अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी कहना बी नहि संभवै है। औ उदासीनता के अभाव तैं बी प्रतिबिंब जीव कूं अंतःकरण उपहितरूप तैं साक्षी कहना नहि संभवै है यातैं अविद्या उपहितरूप तैं हि साक्षी मान्या चाहिये। समाधान यह है—अंतःकरण उपहित कूं प्रमाता माने तौ उक्त शंका संभवै। परंतु अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता है। उपहित साक्षी है। यातैं शंका संभवै नहि। तात्पर्य यह—विशेषण औ उपाधि का भेद सिद्धांत मै माने हैं 'कार्यान्वयित्वे

सति व्यावर्तकत्वं विशेषणत्वं' अर्थ यह—कार्य मै अन्वित हुवा व्यावर्तक होवै सो विशेषण कहिये है। जैसे 'नीलोत्पलमानय'या स्थान मै नीलता उत्पल का विशेषण है। काहे तैं रक्त उत्पलादिकन तैं नील उत्पल का व्यावर्तक है। औ उत्पल द्वारा आनयनरूप कार्य मै नीलता का अन्वय है। ईहां कार्य नाम विधेय का है। यातैं 'यत् काकवत् तत् देवदत्तस्य गृहं' अर्थ यह—जो काकवाला है सो देवदत्त का गृह है। या स्थान मै विधेय होने तैं देवदत्त गृहत्व हि कार्य है। तामै काक का अन्वय नहि। औ गृहांतर तैं व्यावर्तक है तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते कार्य मै अन्वित कहा है। विशेष्य उत्पल बी आनयनरूप कार्य मै अन्वित है। तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते व्यावर्तक कहा है। 'कार्यानन्वयित्वे सति व्यावर्तकत्वे सति कार्यान्वयकाले विद्यमानत्वमुपाधित्वं' अर्थ यह—कार्य मै अनन्वित हुवा औ व्यावर्तक हुवा कार्य मै अन्वय काल मै विद्यमान होवै सो उपाधि कहिये है। जैसे 'लोहित स्फटिकमानय' या स्थान मै जपाकुसुम स्फटिक का उपाधि है। काहे तैं आनयनरूप कार्य मै ताका अन्वय नहि औ अन्य स्फटिक तैं स्वसंनिहित स्फटिक का व्यावर्तक है। तैसे आनयनरूप कार्य मै स्फटिक के अन्वयकाल मै विद्यमान बी है। "व्यावर्तकत्वे सति, कार्यान्वयकाले विद्यमानत्वमुपाधित्वं' इतना हि उपाधि का लक्षण कहैं तौ

विशेषण मै अतिव्याप्ति होवैगी काहे तैं नीलतादि विशेषण व्यावर्तक हुवा आनयनरूप कार्य मै उत्पल के अन्वय काल मै विद्यमान बी होवै है। तात्पर्य यह—नीलतादिकन् मै उत्पलादिकन का विशेषण व्यवहार हि होवै है। उपाधि व्यवहार होवै नहि। औ जपाकुसुमादिकन मै स्फटिकादिकन का उपाधि व्यवहार हि होवै है विशेषण व्यवहार होवै नहि। यातैं विशेषण औ उपाधि का भेद अवश्य होने तैं विशेषणरूप नीलतादिकन मै अतिव्याप्ति के वारण वास्ते कार्य मै अनन्वित कहा है। 'काकवत् गृहं प्रविश' या स्थान मै प्रवेश काल मै उपलक्षणभूत काक का कदाचित् अन्यत्र गमन होवै। औ काकांतर का तिस गृह मै आगमन होवै तहां पश्चात् आगत काकांतर पूर्व स्थित काक की न्याईं गृह का व्यावर्तक होवै नहि। औ प्रवेश मै ताका अन्वय बी नहि। परंतु गृह मै पुरुष के प्रवेश काल मै विद्यमान है। तामै अतिव्याप्ति की निवृत्ति वास्ते उपाधि के लक्षण मै व्यावर्तक कहा है। तिसी स्थल मै उपलक्षणरूप काक मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते कार्यान्वय काल मै विद्यमान कहा है। यद्यपि प्रवेश काल मै कदाचित् उपलक्षण भूत काक हि विद्यमान होवै तामै संपूर्ण उपाधि लक्षण विद्यमान होने तैं अतिव्याप्ति होवै है। तथापि 'कार्यान्वयकाले विद्यमानत्वं' या कहने तैं कार्य

काल मैं नियम तैं विद्यमानता विवक्षित है। उपलक्षणरूप काक कार्यकाल मैं नियम तैं विद्यमान होवै नहि। यातैं दोष नहि। यद्यपि 'लोहित स्फटिकमानय' या वाक्य के श्रवण काल मैं विद्यमान हि जपा कुसुम स्फटिक के आनयन काल मै कदाचित् अविद्यमान बी संभवै है। यातैं जपा कुसुम बी कार्यकाल मैं नियम तैं विद्यमान नहि होने तैं तामै बी उपाधि का उक्त लक्षण संभवै नहि। तथापि अंतःकरण औ कर्ण शष्कुली आदिकन का हि उक्त लक्षण माने हैं। जपा कुसुमादिकन का स्वनिष्ठ धर्मासंजकतारूप प्रसिद्ध हि उपाधि लक्षण कहे हैं। तात्पर्य यह—दर्पण औ कर्ण शष्कुली आदिक स्वउपहित मुखादिकन मैं स्वनिष्ठ धर्म के आसंजक नहि। यद्यपि दर्पणगत श्यामतादिक मुख मैं प्रतीत होवै हैं यातैं दर्पण कूं स्वउपहित मुख मैं स्वनिष्ठ धर्म का अनासंजक कहन संभवै नहि। तथापि बिंब प्रतिबिंब के भेद पक्ष मैं श्यामतादिक प्रतिबिंबगत हि हैं बिंबरूप मुखादिगत नहि। यातैं 'स्वनिष्ठ धर्मासंजकत्वमुपाधित्वं' यह उपाधि का द्वितीय लक्षण है। सो दर्पणादिकन मैं संभवै नहि। जपाकुसुमादिकन मैं प्रथम लक्षण नहि संभवै है। यातैं द्विविध लक्षण आवश्यक होने तैं दोषकर नहि तात्पर्य यह—अनुगत लक्षण का संभव होवै तहां ताका अभावरूप अननुगम दोष होवै है पूर्व उक्त रीति सैं

उपाधि का अनुगत लक्षण संभवै नहि यातैं दोष नहिं। यातैं यह सिद्ध हुवा—एक हि अंतःकरण प्रमाता का विशेषण है। साक्षी का उपाधि है। यातैं साक्षी प्रमाता का भेद संभवैहै। औ अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव अंतःकरण विशिष्ट प्रमातृरूप सै तौ कर्ता भोक्ता होने तैं यद्यपि उदासीन नहि बी है। तथापि अंतःकरण उपहितरूप सै उदासीन होने तैं साक्षी संभवै है। शंका संभवै नहि। इस रीति सै मतभेद तैं साक्षी का निरूपण किया। पूर्व अविद्या अहंकारादिक साक्षिभास्य कहे हैं। तामै यह शंका होवै है—अज्ञान चेतन मात्र का आवरक है तासै साक्षी का बी आवरण अवश्य कहा चाहिये। यातैं आवृत साक्षी तैं अविद्या अहंकारादिकन का भान संभवै नहि। शंकावादी का तात्पर्य यह है—कृत्स्न चेतन के आवरक अज्ञान तैं उक्तरूप साक्षी का आवरण तौ अवर्जनीय है जो साक्षि-गोचर अपरोक्ष वृत्ति तैं आवरण निवृत्ति द्वारा तासै अविद्यादिकन का भान कहैं तौ सिद्धांत मै अविद्यादिक वृत्ति विना केवल साक्षिभास्य माने हैं ताका विरोध होवैगा। औ तृतीय परिच्छेद मै मन कूं करणता का खंडन करैंगे। यातैं साक्षिगोचर अपरोक्ष वृत्ति संभवै बी नहि। किंच घटादिकन कूं वृत्ति द्वारा साक्षी प्रकाशै है। वृत्ति के अभाव काल मै तिन मै संशयादिक बी देखिये हैं। तैसे अविद्या अहंकारादिकन का बी वृत्ति द्वारा साक्षी तैं प्रकाश माने

तिन मै बी कदाचित् संशयादिक हुये चाहिये। औ अविद्यादिकन के होतैं तिन की सत्ता मै संशयादिक कदे बी होवैं नहि। यातैं घटादिकन मै प्रकाश संबंध तैं हि संशयादिकन का अभाव प्रसिद्ध है। तैसे अविद्या अहंकारादिकन मै बी सदा संशयादि निवर्तक सदा प्रकाश संबंध कहा चाहिये। कादाचित्क वृत्ति तैं तिन का सदा भान संभवै नहि। जो सदा भान की सिद्धि वास्ते तिन के प्रकाशक साक्षिगोचर वृत्ति का प्रवाह माने तौ एककाल मैं दो वृत्ति का अंगीकार नहि। यातैं सदा साक्षिगोचर वृत्ति प्रवाह के होतैं घटादिगोचर वृत्ति के अभाव तैं तिन की प्रतीति नहि हुयी चाहिये। यातैं बी साक्षिगोचर अपरोक्ष वृत्ति तैं आवरण निवृत्ति द्वारा अविद्या अहंकारादिक साक्षिभास्य कहने नहि संभवै हैं। किंतु वृत्ति विना साक्षिभास्य कहे चाहिये। औ वृत्ति विना अविद्यादिक साक्षिभास्य संभवैं नहि। काहे तैं साक्षी आवृत है। जो अज्ञान तैं साक्षि चेतन का आवरण नहि माने तौ तासै भिन्न चेतन का बी आवरण नहि होवैगा। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी अविद्या अहंकारादिक साक्षिभास्य कहने संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—जैसे राहु तैं चंद्र-मंडलादिकन का आवरण होवै है। राहु आवृत्त चंद्र मंडलादिकन तैं हि राहु का प्रकाश होवै है। तैसे अविद्या

आवृत साक्षी तैं हि ताका बी प्रकाश संभवै है। शंका संभवै नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार राहु की न्याईं अविद्या कूं स्वावृत प्रकाश तैं प्रकाशित मान के उक्त शंका का समाधान कहे हैं। परंतु यह समाधान समीचीन नहि। काहे तैं राहु की न्याईं स्वावृत प्रकाश तैं अविद्या मात्र के प्रकाश का किसी रीति सै संभव हुये बी अहंकारादिकन का प्रकाश संभवै नहि। तात्पर्य यह—सर्व प्रकार तैं राहु आवृत चंद्रमंडलादिकन तैं स्वावरक राहु का हि प्रकाश प्रसिद्ध है। अन्य वस्तु का प्रकाश प्रसिद्ध नहि। तैसे अविद्या आवृत साक्षी तैं अविद्या का हि प्रकाश होवैगा, अहंकारादिकन का प्रकाश नहि होवैगा। यातैं उक्त शंका का इस रीति सै समाधान कहा चाहिये—सदा प्रकाश संबंध का फल संशयादि निवृत्ति है। पूर्व उक्त रीति से अविद्या अहंकारादिकन के भान मै कादाचित्क वृत्ति ज्ञान का असंभव हुये बी फल सदा अनुभव सिद्ध है। यातैं यह मान्या चाहिये—अविद्या अहंकार सुख दुःखादिकन का प्रकाशक साक्षिचेतन सदा प्रकाशरूप है। तासै भिन्न चेतन का हि आवरक अज्ञान है। साक्षी का आवरक नहि। इस रीति सै अनुभव के अनुसार साक्षिचेतन कूं त्याग के चेतन की आवरकता अज्ञान का स्वभाव मानै हि अनावृत प्रकाशरूप साक्षी के संबंध तैं अविद्यादिकन मै अज्ञान संशय विपर्यय का

अभाव संभवै है। यद्यपि अज्ञान की भावरूपता मैं औ अहंकार की अनात्मता मैं तैसे सुखादिकन की अनात्म धर्मता मैं अज्ञान संशय विपर्यय होवै हैं। यातैं अविद्यादिकन मैं सदा अज्ञानादिकन का अभाव कहना संभवै नहि। तथापि अविद्यादिकन मैं अज्ञानादिक कदे बी होवैं नहि। या कहने तैं अविद्यादिकन की सत्ता मैं अज्ञानादिकन का अभाव विवक्षित है। यातैं विशेषरूप तैं अविद्यादिकन मैं अज्ञानादिक मानै बी दोष नहि। परंतु इहां यह शंका होवै है—साक्षिचेतन कूं अनावृत माने ताके स्वरूपभूत आनंद का बी सदा भान हुवा चाहिये। औ फल के अदर्शन तैं संसार दशा मैं स्वरूपानंद का भान कहना संभवै नहि। जो आत्मा मैं निरुपाधिक प्रेम अनुभव सिद्ध है। काहे तैं पुत्रादिक तौ सुख के साधन होवैं तौ तिन मैं प्रेम होवै है। अन्यथा होवै नहि। यातैं आत्मसुखार्थ होने तैं पुत्रादिकन मैं तौ प्रेम सोपाधिक है। परंतु आत्मा मैं प्रेम अन्यार्थ नहि होने तैं निरुपाधिक है। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' 'तदेतत्प्रेयःपुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा' इत्यादिक श्रुतिवाक्यन तैं बी आत्मा मैं प्रेम अनन्यार्थ होने तैं निरुपाधिक हि सिद्ध होवै है। जो सर्व के अंतर अपरोक्ष चेतन आत्मा है सो पुत्रवित्तादिक सर्व सै अधिक प्रिय है। यह द्वितीय श्रुतिवाक्य का अर्थ है। इस रीति सै

आत्मा मैं निरुपाधिक प्रेम श्रुति औ अनुभव तैं सिद्ध है। औ लोक मै भासमान सुख मैं हि प्रेमप्रसिद्ध है। अभासमान मैं नहि। आत्मा मै दुःख काल मै बी प्राणि मात्र की प्रीति अनुभव सिद्ध है। स्वरूप सुख कूं आवृत माने प्रीति नहि हुयी चाहिये। यातैं स्वरूपानंद का भान अवश्य मान्या चाहिये। विवरण ग्रंथ मैं बी परम प्रेम का अस्पद होने तैं स्वरूपानंद का भान हि सिद्ध किया है। इस रीति सै निरुपाधिक प्रेम तैं संसार दशा मै बी स्वरूपानंद का भान सिद्धांती कहैं तौ संभवै नाहि। काहे तैं संसार दशा मै बी आनंद का भान माने मोक्ष मै संसार तैं विलक्षणता नहि होवैगी। जो संसार दशा मै कल्पित भेद सहित साक्षिरूप आनंद का भान होवै है। भेद रहित ब्रह्मानंद का भान मोक्ष मैं हि होवै है। संसार दशा मै होवै नहि। इस रीति सै संसार तैं मोक्ष मैं विलक्षणता कहैं। तथापि यह पूछा चाहिये—मोक्ष मै भेद रहित आनंद का स्फुरण विशेष है अथवा आनंद मात्र का स्फुरण विशेष है तहां प्रथम पक्ष मै भेदाभावरूप भेदरहितता आनंद सै भिन्न माने ताकूं पुरुषार्थरूप कहना संभवै नहि। काहे तैं सुख वा दुःखाभाव हि पुरुषार्थ है। भेदाभावरूप भेद रहितता सुखरूप वा दुःखाभावरूप नहि। याहि तैं पुरुषार्थरूप नहि। यातैं अपुरुषार्थरूप भेदाभाव के स्फुरण तैं मोक्ष मैं विलक्षणता कथन संभवै नहि। जो कल्पित

भेद का अभावरूप भेद रहितता आनंदरूप माने तौ आनंद का स्फुरण हि मोक्ष मै विशेष सिद्ध होवै है। सो संसार दशा मै बी समान है। यातैं मोक्ष मै विलक्षणता संभवै नहि। जो संसार दशा मै शरीर भेद तैं भिन्न साक्षीरूप आनंद सातिशय है। काहे तैं साक्षिरूप आनंद सुषुप्ति मै बी है। तासै विषय जन्य आनंद मै उत्कृष्टता अनुभव सिद्ध है। औ भेदरहित ब्रह्मानंद निरतिशय है। काहे तैं आनंदवल्ली मै सार्वभौम सै लेके हिरण्यगर्भ के आनंद पर्यंत विषयानंद उत्कर्ष अपकर्ष सहित सातिशय कहा है। एकरूप ब्रह्मानंद उत्कर्ष अपकर्ष सै रहित निरतिशय कहा है। यातैं यह सिद्ध हुवा—साक्षिरूप आनंद हि विषय संबंध तैं अभिव्यक्त हुवा लोक मै विषयानंद कहिये है। संसार दशा मै उत्कर्ष अपकर्ष सहित हि ताका भान होवै है। याहि तैं स्वरूपानंद का भान हुये बी तिस तिस उत्कृष्ट आनंद की इच्छारूप पिशाची करके ग्रस्त होने तैं कृतार्थता होवै नहि। औ मोक्ष मै उत्कर्ष अपकर्ष रहित पूर्ण ब्रह्मानंद का भान होवै है। इस रीति सै सिद्धांती मोक्ष मै विलक्षणता कहैं। तथापि संभवै नहि। काहे तैं साक्षिरूप आनंद विषयानंद औ ब्रह्मानंद का भेद होवै तौ उक्त रीति सै उत्कर्ष अपकर्ष संभवै। परंतु सिद्धांत मै वास्तव तैं आनंद का भेद नहि। यातैं उत्कर्ष अपकर्ष संभवै नहि। यद्यपि तैत्तिरीय श्रुति

आनंद मै उत्कर्ष अपकर्ष कहे है। भेद विना उत्कर्ष अपकर्ष संभवै नहि। यातैं वास्तव भेद नहिं हुये बी आनंद का औपाधिक भेद मान के उत्कर्ष अपकर्ष माने चाहिये। तथापि युक्ति विना श्रुति अर्थ काहि निश्चय होय सके नहि। या अभिप्राय तैं आनंद के भेदाभाव तैं उत्कर्ष अपकर्ष का असंभव पूर्ववादी कहे है। जो करतलादि संबंध विना आलोक की अभिव्यक्ति होवै है। तासै करतल मै अधिक अभिव्यक्ति होवै है। तासै स्फटिक मै अधिक होवै है। दर्पण मै तासै बी अधिक अभिव्यक्ति होवै है। इस रीति से एक हि आलोक मै उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं उत्कर्ष अपकर्ष अनुभव सिद्ध हैं। तैसे वास्तव तैं एक हि आनंद मैं वृत्तिरूप उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं श्रुति उक्त उत्कर्ष अपकर्ष का संभव सिद्धांती कहैं। तथापि नहि संभवै है। काहे तैं ब्रह्मरूप आनंद स्वभाव से हि एक है। औ एकरूप है। तैसे आलोक बी स्वभाव सै हि एक औ एकरूप होवै तौ दृष्टांत संभवै। परंतु नाना किरणों का समुदायरूप होने तैं आलोक एक नहि। औ एकरूप नहि। किंतु नानारूप है। तथा हि—जैसे निम्नस्थान मै जलगमन करै तहां करतलादि संबंध विना जल अल्प होवै है। करतलादि संबंध तैं गति का निरोध हुये अधिक होवै है। तैसे किरणों का समुदायरूप आलोक बी सर्वत्र गमनशील है करतलादि संबंध विना आकाश मै

ताका अस्पष्ट भान होवै है। करतलादि संबंध तैं गति का निरोध होवै तब बहुलीभाव तैं तासै अधिक प्रकाश करतलादिकन मै होवै है। भास्वर दर्पणादि संबंध तैं गति का निरोध हुये आलोक का बहुलीभाव होवै। तब दर्पणादि प्रकाश के मिलने तैं तासे बी अधिक प्रकाश दर्पणादिकन मैं होवै है। इस रीति सै न्यूनाधिक भाव तैं आलोक नानारूप है। एकरूप नाहि। तामै उत्कर्ष अपकर्ष का भान बी उक्त रीति सै हि है। उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं उत्कर्ष अपकर्ष का भान नहि। यातैं दृष्टांत संभवै नहि। जो आलोक मै उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं उत्कर्ष अपकर्ष मान के दृष्टांत का संभव कहैं तौ मोक्ष तैं संसार हि श्रेष्ठ होवैगा। काहे तैं करतलादि संबंध विना आकाश मै आलोक का अपकृष्ट प्रकाश होवै है। तासै करतलादिकन मै अधिक होवै है। तैसे मोक्ष मै सुखाकार वृत्ति के संबंध रहित ब्रह्मानंद का अपकृष्ट हि भान होवैगा। संसार दशा मै वृत्ति संबंध तैं अधिक भान होवैगा। यातैं मोक्ष साधनों मै प्रवृत्ति का ही अभाव होवैगा। औ जो सिद्धांती कहे हैं। जैसे भास मान बी दीपप्रभा तीव्र वायुरूप विक्षेप तैं स्पष्ट भासे नहि ताके निवृत्त हुये स्पष्ट भासे है। तैसे संसार दशा मे आनंद का भान बी होवै है। परंतु मिथ्याज्ञान औ ताके संस्काररूप विक्षेप तैं स्पष्ट नहि भासे है। तात्पर्य यह—अनित्य अशुचि

दुःख अनात्मा मै नित्य शुचि सुख आत्मबुद्धि हि मिथ्याज्ञान है। तासै जाग्रदादिकनं मै भास मान वी आनंद स्पष्ट भासे नहि। ताके संस्कार तैं सुषुप्ति मै प्रकाशमान वी आनंद अपुरुषार्थरूप हि होवै है। काहे तैं जाग्रदादिकन मैं भोग हेतु कर्म तैं संस्कार का उद्बोध होतैं हि सुषुप्ति काल के आनंद अनुभव का त्याग होय जावे है। यातैं अनित्य सुषुप्ति सुख प्रकाश की मुमुक्षु इच्छा करे नहि। इस रीति सै मिथ्याज्ञान औ ताके संस्काररूप विक्षेप तैं संसार दशा मै भासमान वी आनंद अस्पष्ट हि भासे है। मोक्षकाल मै विक्षेप के अभाव तैं स्पष्ट भासे है। यातैं विलक्षणता संभवै है। सिद्धांती का यह कहना वी संभवै नहि। काहे तैं दीप की प्रभा सावयव है तामै तीव्र वायु तैं कितने अवयवन का नाशरूप वा प्रभारूप गत भास्वरत्व का प्रतिबंधरूप विक्षेप होवै है। तासै भासमान वी प्रभा का अस्पष्ट प्रकाश संभवै है। ब्रह्मानंद अवयवगुणादि रहित है ताका संसारदशा मैं विक्षेप दोष तैं अस्पष्ट प्रकाश औ मोक्ष मै ताके अभाव तैं स्पष्ट प्रकाश कहना संभवै नहि। इस रीति सै किसी प्रकार तैं वी मोक्ष मै संसार तैं विलक्षणता नहि संभवै है। यातैं साक्षिरूप आनंद कूं अनावृत कहना संभवै नहि। अद्वैत विद्याचार्य या शंका का यह समाधान कहे हैं—जैसे सर्व सै उत्तम श्वेतरूप का न्यूनाधिक मलिन अनेक दर्पणों मै प्रतिबिंब

होवै तहां स्वल्प मलिन दर्पणगत प्रतिबिंब मै स्वल्प मलिनता का आरोप होवै है। मध्यम मलिन दर्पण मै प्रतिबिंब होवै तामै मध्यम मलिनता का आरोप होवै है। अधिक मलिन दर्पण प्रतिबिंब मै अधिक मलिनता का आरोप होवै है। इस रीति से स्वभाव सै उत्कर्ष अपकर्ष रहित औ निरवयव निर्गुण एकरूप बी श्वेतरूप है। परंतु ताके प्रतिबिंब मै उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं उत्कर्ष अपकर्ष का आरोप होवै है। तैसे आनंद बी स्वभाव सै तौ उत्कर्ष अपकर्ष रहित निरवयव निर्गुण एकरूप हि है। परंतु अंतःकरण वा अविद्या मै आनंद का प्रतिबिंब साक्षिरूप आनंद है। ताहि कूं स्वरूपानंद बी कहे हैं। अनुकूल विषय के संबंध तैं अंतःकरण की वृत्ति होवै तामै आनंद का प्रतिबिंब विषयानंद कहिये है। तात्पर्य यह—पुण्यकर्म फल के सन्मुख होवै तब वृत्ति द्वारा अंतःकरण का अनुकूल विषय से संबंध होवै है। उत्कृष्ट विषय के संबंध तैं अंतःकरणगत सत्त्वगुण का उत्कर्ष होवै है। निकृष्ट विषय के संबंध तैं अपकर्ष होवै है। तासै अनंतर स्वरूपानंद की व्यंजक अंतःकरण की सात्त्विक वृत्ति बी उत्कर्ष अपकर्ष सहित हि होवै हैं। तिन मै आनंद का प्रतिबिंब विषयानंद कहिये है। सो बी वृत्तिरूप उपाधि के उत्कर्ष अपकर्ष तैं उत्कर्ष अपकर्ष सहित हि होवै है। यातैं विषयानंद मै श्रुति अनुभव सिद्ध उत्कर्ष अपकर्ष संभवै है। इस रीति सै संसारदशा मै

भासमान आनंद कल्पित उत्कर्ष अपकर्ष सहित होने तैं सातिशय है। यातैं अपकृष्ट आनंद के अनुभव तैं उत्कृष्ट आनंद की इच्छा होवै है। तासै दुःख साधन मै बी कदाचित् सुख साधन ताका भ्रम होवै है। तासै धर्माधर्म द्वारा संसार की हि प्राप्ति होवै है। कृतार्थता होवै नहि। ब्रह्मज्ञान तैं कार्य सहित अज्ञान की निवृत्ति होवै है। यातैं उत्कर्ष अपकर्ष अध्यास की निवृत्ति तैं कृत कृत्यता होवै है तात्पर्य यह—ज्ञान तैं पूर्व सुख की प्राप्ति औ दुःख के परिहार वास्ते नाना कर्तव्य भासे हैं। ज्ञान तैं संपूर्ण दुःख की निवृत्ति होवै है। औ जैसे सर्व सै उत्तम श्वेतरूप का निर्मल दर्पण मै भान होवै है। तैसे निरतिशय आनंद का भान होवै है। यातैं कर्तव्य के अभाव तैं कृत कृत्यता होवै हैं। 'एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्याद् कृत कृत्यश्च भारत' या गीतावचन तैं बी यहि अर्थ सिद्ध होवै है। गीता-वचन का तात्पर्य यह है—निरतिशय आनंदरूप ब्रह्म के अपरोक्षज्ञान तैं हि विद्वान् कृत कृत्य होवै है ज्ञान विना होवै नहि। यातैं हे अर्जन सर्व कूं त्याग के ज्ञान संपादन कर। इस रीति सै मोक्ष मै संसार तैं महान् विलक्षणता है। यद्यपि ब्रह्मानंद की न्याईं स्वरूपानंद कूं आवृत मान लेवैं तौ बी संसार तैं मोक्ष मै विलक्षणता संभवै है काहे तैं संसारदशा मै स्वरूपानंद आवृत है, मोक्ष मै निरावरण ताका

भान होने तैं विलक्षणता स्पष्ट हि है। तथापि आवृत आनंद मै प्रेम हांवै नहि। औ स्वरूपानंद मै प्रेम श्रुति अनुभव तैं पूर्व सिद्ध किया है। यातैं निरुपाधिक प्रेम का अंस्पद होने तैं साक्षिरूप आनंद अनावृत हि मान्या चाहिये। आवृत कहना संभवै नहि। इस रीति सै अद्वैत विद्याचार्य साक्षिरूप आनंद कूं अनावृत मान के हि संसार तैं मोक्ष मै विलक्षणता सिद्ध करे हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं 'वेदांत वेद्य स्वरूपानंदो मे नास्तिन प्रकाशते' इस रीति सै आनंद मै आवरण अनुभव सिद्ध है। यातैं संसारदशा मै वेदांतवेद्य आनंद आवृत हि मान्या चाहिये अनावृत कहना संभवै नहि। मोक्ष मै आवरण की निवृत्ति तैं ताका स्फुरण होवै है। यातैं विलक्षणता वी अनायास तैं हि सिद्ध होवै है। यद्यपि भासमान आनंद मै हि प्रेम होवै है। अभासमान मै हांवै नहि। स्वरूपानंद कूं आवृत माने तामै प्रेम नहि हुवा चाहिये। तथापि आत्मा मै निरुपाधिक प्रेम अनुभव सिद्ध है औ उक्त रीति सै आवरण बी अनुभव सिद्ध है। यातैं फल वल तैं आवृत बी स्वरूपानंद प्रकाश निरुपाधिक प्रेम का हेतु मान्या चाहिये, तात्पर्य यह—एक हि साक्षी आत्मा आनंदरूप तैं आवृत है, चेतनरूप तैं अनावृत है, अनावृत चेतन प्रकाश हि फलवल तैं आवृत बी स्वरूपानंद मै निरुपाधिक प्रेम का हेतु मान्या चाहिये

विवरणग्रंथ मै परम प्रेम का अस्पद होने तैं स्वरूपानंद का भान कहा है। ताका बी इसी अर्थ मै तात्पर्य संभवै है। यातैं विरोध नहि। यद्यपि चेतन आनंदरूप हि साक्षी आत्मा है। आनंदरूप तैं ताका आवरण माने चेतनरूप तैं बी मान्या चाहिये। यातैं अहंकार सुखादिकन का सदा भान नहि होवैगा। तथापि 'नाहमीश्वरःकिंतु संसारी' यह व्यवहार होवै है। ताके बल तैं वास्तव तैं एक हि चेतन मै जीव ईश्वर दो रूप कल्पित माने हैं। तिन मै जीव मै अज्ञतादिक औ ईश्वर मै तिन का अभाव माने हैं। तैसे 'अहं सुखी' इत्यादि 'ज्ञानमानंदो न भवति' इस रीति सै अहंकारादि भासक ज्ञान का आनंद तैं भेदव्यवहार होवै है। ताके बल तैं चेतन औ आनंद दो रूप अनादि सिद्ध कल्पित माने चाहिये। औ फलबल तैं आनंद मै आवरण चेतन मै ताका अभाव बी मान्या चाहिये। विरोध नहि। औ जीवत्वादिकन की न्याईं चेतनत्वादिरूप भेद अज्ञान कल्पित है यातैं अद्वैत की बी हानि नहि। यद्यपि आनंद वास्तव तैं चेतन प्रकाशरूप हि है। यातैं प्रकाशरूप आनंद मै आवरण कहना संभवै नहि। तथापि स्वरूपप्रकाश आवरण का विरोधी नहि। यातैं प्रकाशमान बी आनंद मै आवरण कहना विरुद्ध नहि। औ आप्त उपदेश तैं अनंतर 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इस रीति सै प्रकाशमान हि आप्त उक्त अर्थ मै आवरण अनुभव सिद्ध है। यातैं बी

प्रकाशमान आनंद मै आवरण का अंगीकार संभवै है। शंका। 'श्रीकृष्ण एव वेदांतवेद्यः परमात्मा दुर्विज्ञेयोऽयमकृतात्मभिः' या प्रकार का आप्त वक्ता उपदेश करै तासै अनंतर मंद को वाक्यार्थ बोध तौ होवै नहि। उलटा 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इस रीति से अज्ञान का अनुभव होवै है। तहां 'आप्त वाक्यत्वात् त्वद्वाक्यस्य अस्ति कश्चिदर्थः इति जानामि विशेषं तु न जानामि' यह व्यवहार मंद के होवै है तासै सामान्यरूप तैं ज्ञात आप्त उक्त अर्थ हि विशेषावरक अज्ञान का विशेषण प्रतीत होवै है। तात्पर्य यह—'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' या अनुभव मै अज्ञान तौ विशेष्यरूप तैं भासे है। सामान्यरूप तैं आप्त उक्त अर्थ अज्ञान का विशेषण भासे है उक्त व्यवहार तैं सामान्यरूप तैं आप्त उक्त अर्थ ज्ञात होने तैं स्वावरक अज्ञान का विशेषण तौ कहना संभवै नहि किंतु विशेषावरक अज्ञान का हि विशेषण कहना होवैगा। यातैं यह सिद्ध हुवा—'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' या अनुभव मै सामान्यरूप तैं आप्त उक्त अर्थ अज्ञान का विशेषणरूप तैं प्रकाशमान है सो अज्ञानकृत आवरण का विषय नहि। विशेषरूप तैं आवरण का विषय है। सो प्रकाशमान नहि। यातैं 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' या अनुभव तैं प्रकाशमान मै आवरण सिद्ध होय सके नहि। समाधान। सामान्यरूप तैं आप्त उक्त अर्थ विशेषावरक अज्ञान का

विशेषण प्रतीत होवै है । या कहने तैं विशेषावरक अज्ञान का सामान्याकार विशिष्टरूप तैं भान सिद्ध होवै है । तात्पर्य यह—'श्रीकृष्ण एव वेदांतवेद्यः परमात्मा दुर्विज्ञेयोऽयमकृतात्मभिः' या आप्त उक्त अर्थ मै दो अंश हैं तिन मै आप्त उक्त अर्थांतर मै बी विद्यमान होने तैं आप्तोक्तार्थत्व तौ सामान्य अंश है । श्रीकृष्ण के स्वरूप-मात्र मै वृत्ति होने तैं वेदांत वेद्यत्वादि विशेष अंश है । विशेष अंश के आवरक अज्ञान का सामान्य अंश विशिष्ट रूप तैं भान होवै है । या कहने तैं अन्य के आवरक अज्ञान का अन्य विशिष्टरूप तैं भान मानना होवै है यातैं 'घटं न जानामि' इस रीति सै अनुभूयमान अज्ञान का पट बी विषय हुआ चाहिये जो सामान्य अंश तैं विशेष अंश का भेद तौ यद्यपि घट तैं पट भेद के समान हि है । परंतु विशेष अंश के आवरक अज्ञान का सामान्य अंश विशिष्ट रूप तैं भान होवै तामै सामान्य विशेष भाव नियामक कहैं तौ घट पट का सामान्य विशेष भाव नहि । यातैं 'घटं न जानामि' या रीति सै अनुभूयमान अज्ञान की पट मै तौ विषयता की आपत्ति नहि । परंतु व्याप्य व्यापक भाव तैं भिन्न तौ सामान्य विशेष भाव का निरूपण होय सके नहि किंतु विशेष अंश औ सामान्य अंश व्याप्य व्यापकरूप हि कहने होवैंगे । जो व्याप्य के आवरक अज्ञान का व्यापक विशिष्टरूप तैं भान माने तौ धूमावरक

अज्ञान का 'वह्निं न जानामि' इस रीति से वह्नि विशिष्टरूप तैं अनुभव हुवा चाहिये। यातैं यह मान्या चाहिये अज्ञान गोचर अनुभव मै जो पदार्थ अज्ञान का विशेषण भासै सोई आवरण का विषय है। 'घटं न जानामि, पटं न जानामि' इत्यादिक अनंत अनुभव अज्ञान गोचर हैं तिन मै अज्ञान के विशेषण घटादिक हि आवरण का विषय हैं। तैसे 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' या अनुभव मै बी सामान्यरूप तैं आप्त उक्त अर्थ अज्ञान का विशेषण है सोई आवरण का विषय मान्या चाहिये उक्त अनुभव मै भासमान अज्ञानकृत आवरण का विशेष अंश विषय कहना संभवै नहि। यद्यपि विशिष्ट ज्ञान मै विशेषण ज्ञान कारण माने हैं। विशेषण कूं आवृत माने अज्ञान गोचर विशिष्ट अनुभव नहि हुवा चाहिये। तथापि जन्य विशिष्ट अनुभव मै हि विशेषण ज्ञान की अपेक्षा होवै है। 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इत्यादि अज्ञान गोचर विशिष्ट अनुभव नित्य-साक्षिरूप होने तैं तामै विशेषण ज्ञान की अपेक्षा नहि। यातैं विशेषण मै आवरण का अंगीकार दोषकर नहि। यद्यपि 'घटं न जानामि' इत्यादि विशिष्ट अनुभव साक्षिरूप है। विशेषण घटादिक औ विशेष्य अज्ञान दोनूं ताका विषय हैं। यातैं प्रकाशमान विशेषण मै आवरण कहना विरुद्ध है। तथापि साक्षिरूप प्रकाश आवरण का अविरोधी पूर्व कहा है। यातैं विरोध

नहि। इस रीति सै अन्य के आवरक अज्ञान का अन्य विशिष्टरूप तैं भान संभवै नहि। यातैं अज्ञान गोचर अनुभव मै जा वस्तु करके विशिष्ट अज्ञान का भान होवै सोई आवृत मान्या चाहिये। 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' या अनुभव मै सामान्य अंश करके विशिष्ट अज्ञान भासे है औ सामान्यरूप तैं आस उक्त अर्थ अज्ञान का विशेषण रूप तैं प्रकाशमान पूर्व सिद्ध किया है। यातैं सामान्यरूप तैं प्रकाशमान बी आस उक्त अर्थ मै अज्ञानकृत आवरण सिद्ध होवै है। तैसे स्वरूप प्रकाश तैं प्रकाशमान हि आनंद मै आवरण का अंगीकार संभवै है। शंका संभवै नहि। यद्यपि विषय के संबंध तैं आनंद का विशेष भान होवै है। आनंद कूं आवृत माने सो नहि हुवा चाहिये। तथापि अज्ञान स्वभाव सै हि साक्षी का आवरण नहि करे है। तैसे सुखाकार वृत्ति काल मै आनंद का बी आवरण करे नहि। यहि वृत्तिकृत विषयानंद के आवरण का अभिभव है। यातैं विषय संबंध काल मै आनंद का विशेषरूप तैं भान संभवै है। औ जैसे प्रभात मै आलोक का न्यूनाधिक भाव सै संचार होवै है। तासै न्यूनाधिक भाव सै हि अंधकार का अभिभव होवै है। तासै अनंतर पदार्थन का प्रकाश बी न्यूनाधिक भाव मै हि होवै है। तैसे पुण्यवश तैं उत्कृष्ट अपकृष्ट विषय का संबंध होवै तासै सुखाकार वृत्ति बी उत्कर्ष अपकर्ष सहित

हि होवै हैं। तिनसैं आवरण का अभिभव बी न्यूनाधिक भावसैं हि होवै है। तासैं अनंतर न्यूनाधिक भाव सैं हि आनंद का भान होवै है। एकरूप सैं नहि यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि वास्तव तैं आनंद एक हि है। परंतु उपाधि भेद तैं ताका भेद होने तैं स्वरूपानंद औ विषयानंद का तैसे विषयानंद का परस्पर बी भेद सिद्ध होवै है। तहां ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति हुये निरावरण आनंद स्वरूपानंद कहिये है। अज्ञान काल मैं वृत्ति संबंध तैं भासमान आनंद विषयानंद कहिये है। तैसे वृत्तिरूप उपाधि के भेद तैं बी आनंद का भेद होने तैं विषयानंद का परस्पर भेद बी संभवै है। इस रीति सैं स्वरूपानंद के आवरण अनावरण मैं तौ ग्रंथकारन का मत भेद है। अद्वैत विद्याचार्यादिक संसारदशा मैं स्वरूपानंद कूं अनावृत माने हैं। अन्य ग्रंथकार आवृत माने हैं। परंतु निरावरण साक्षिचेतन तैं वृत्ति विना अहंकारादिकन का भान दोनूं मतन मैं समान है। यातैं अपरोक्ष वृत्ति तैं आवरण निवृत्तिद्वारा अहंकारादिक साक्षिभास्य माने केवल साक्षिभास्य सिद्धांत का विरोध होवैगा। यह शंका संभवै नहि। परंतु प्रकारांतर तैं सिद्धांत विरोध की शंका पूर्ववादी करे है। तथा हि—यद्यपि अहंकारादिकन का प्रकाशक साक्षी निरावरण है। यातैं आवरण की निवृत्ति वास्ते तौ अहंकारादिगोचर वृत्ति की अपेक्षा नहि बी होवै है परंतु

स्मृति की सिद्धि वास्ते ताकी अपेक्षा होवै है। काहे तैं अहंकारादिकन का साक्षिरूप अनुभव नित्य है ताका नाश होवै नहि। यातैं अहंकारादिक वृत्ति द्वारा साक्षिभास्य नहि माने संस्कार के असंभव तैं तिन की स्मृति नहि हुयी चाहिये। जो संस्कार द्वारा स्मृति की सिद्धि वास्ते अहंकारादि गोचर वृत्ति माने तौ अहंकारादिक वृत्ति विना साक्षिभास्य सिद्धांत मै माने हैं। ताका विरोध होवैगा। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—अहंकारावच्छिन्न साक्षी तैं ताका सदा भान होवै है। तैसे घटादि गोचर वृत्ति अवच्छिन्न साक्षी तैं बी अहंकार का भान होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि स्वरूप सै तौ साक्षिरूप अनुभव नित्य है परंतु घटादि गोचर वृत्ति उपहित रूप तैं अनित्य है। ताके नाश तैं घटादिकन की न्याईं अहंकारादि गोचर संस्कार बी संभवै है। अहंकारादि गोचर वृत्ति की अपेक्षा नहि होने तैं सिद्धांत का विरोध नहि। यद्यपि घटादि गोचर वृत्ति चेतन तैं हि घटादिगोचर संस्कार की उत्पत्ति देखिये है। अन्यगोचर वृत्ति चेतन तैं अन्यगोचर संस्कार माने वह्नि गोचर वृत्ति चेतन तैं जल के बी संस्कार हुये चाहिये। यातैं स्वगोचर वृत्ति तैं हि स्वगोचर संस्कार का नियम होने तैं घटादिगोचर वृत्ति तैं अहंकारादि गोचर संस्कार की उत्पत्ति कहना संभवै नहि। तथापि स्वगोचर वृत्ति

तैं हि स्वगोचर संस्कार का नियम माने वृत्ति गोचर संस्कार के असंभव तैं ताकी स्मृति नहि हुयी चाहिये। काहे तैं वृत्ति गोचर अन्य वृत्ति माने प्रथम वृत्ति गोचर द्वितीय वृत्ति द्वितीय गोचर तृतीय चतुर्थी आदिक मानने मै अनवस्था होवैगी। जो अज्ञात हि तृतीयादि वृत्ति का नाश माने तौ तिन मै संशयादिक हुये चाहिये औ जिस ज्ञान की सत्ता निश्चित होवै ताके हि विषय की सत्ता निश्चित होवै है। ज्ञान मै संशयादिक होवैं तहां विषय मै अवश्य संशयादिक होवै हैं। यातैं घटादि गोचर वृत्ति के होतैं हि 'मया इदं ज्ञायते न वा' इस रीति सै कदाचित् संशयादिक हुये चाहिये। वृत्ति नाश तैं अनंतर 'मया इदं ज्ञातं न वा' इस रीति सै हुये चाहिये। यातैं अज्ञात वृत्ति का नाश कहना संभवै नहि। वृत्ति गोचर अन्य वृत्ति माने अनवस्था अवश्य होवैगी। या रीति सै हि ग्रंथकारों ने अनुव्यवसाय का खंडन किया है। यातैं स्वगोचर वृत्ति सै हि स्वगोचर संस्कार होवैं यह नियम नहि। किंतु 'यद्वृत्ति चैतन्ये यावंतः पदार्थाः प्रकाशंते तद्वृत्या तावत्सु पदार्थेषु संस्काराधानं' अर्थ यह—जा वृत्ति चेतन मै जितने पदार्थ भासैं ता वृत्ति सै तिन पदार्थन के संस्कार होवै हैं। यह नियम है। वह्नि गोचर वृत्ति चेतन मै जल का भान होवै नहि। यातैं वह्नि गोचर वृत्ति सै जल के संस्कार की आपत्ति नहि।

आलोकाकार वृत्ति चेतन मै आकाश का भान माने हैं। यातैं आलोक गोचर वृत्ति अवच्छिन्न चेतन तैं आकाश के संस्कार होवै हैं। तैसे घटादि गोचर वृत्ति चेतन मै अहंकार का भान होवै है। तासै हि अहंकार गोचर संस्कार संभवै है। वृत्ति का अंगीकार निष्फल है। इहां यह तात्पर्य है—घटादि वृत्ति चेतन तैं घटादिकन का भान तौ निर्विवाद है। तासै हि अहंकार का वी भान पूर्व कहा है। औ जैसे तप्त अयःपिंड तैं विस्फुलिंग उत्पन्न होवै हैं। स्व-स्वावच्छिन्न वह्नि तैं तिन का प्रकाश होवे है। तैसे ज्ञान सुख दुःख इच्छा द्वेषादिक जितनी अंतःकरण की वृत्ति होवैं तिन सर्व का स्व स्वावच्छिन्न साक्षी तैं भान होवै है। यातैं उक्त नियम तैं ज्ञान सुखादि गोचर संस्कार वी संभवै हैं। जो कूटस्थ-दीप मै 'घटैकाकार धीस्था चित् घटमेवावभासयेत्। घटस्य ज्ञातता ब्रह्मचैतन्येनावभास्यते' अर्थ यह—घट के आकार की न्याई हि आकार है जिस बुद्धि वृत्ति का तामै चेतन का आभासरूप घट ज्ञान घट कूं हि प्रकाशे है विषयता संबंध तैं घट निष्ठ ज्ञान का प्रकाश विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन तैं होवै है। या वचन तैं घटादि वृत्ति चेतन तैं घटादि मात्र का भान कहा है। वृत्तिज्ञान का भान विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन तैं कहा है। औ तत्त्व प्रदीपिका मै निरवच्छिन्न शुद्ध चेतनरूप नित्य साक्षी तैं ज्ञान इच्छादिकन का भान

कहा है। दोनूं पक्षन मै ज्ञानादि भासक चेतन नित्य है ताका नाश नहि होने तैं संस्कार का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं वृत्तिज्ञान का भासक विषयावच्छिन्न ब्रह्मचेतन है या पक्ष मै वृत्तिज्ञान का अपरोक्ष ज्ञानरूप हि ब्रह्म चेतन माने हैं। तैसे तत्त्वप्रदीपिकाकार के मत मै वी निरवच्छिन्न चेतन ज्ञान इच्छादिकन का अपरोक्ष-ज्ञानरूप हि माने हैं। श्रौ अपरोक्ष ज्ञान का विषय सै तादात्म्य संबंध नियम तैं होवै है। यातैं दोनूं मतन मै विषयभूत ज्ञानादि वृत्ति विशिष्टरूप तैं द्विविध चेतन का नाश होने तैं संस्कार संभवै है। दोष नहि। इस रीति सै ग्रंथकारों ने ज्ञान सुखादि वृत्ति सहित अहंकार की स्मृति वास्ते तौ संस्कार का संभव कहा है। परंतु अज्ञान की स्मृति वास्ते ताका संभव नहि कहा। श्रौ घटादि ज्ञान तैं अनंतर 'घटं नाज्ञासिषं' इस रीति से अज्ञान की बी स्मृति होवै है। यातैं अज्ञान के नाश तैं ताके प्रकाशक चेतन का नाश मान के अज्ञानगोचर संस्कार का बी संभव कहा चाहिये। जो वक्ष्यमाण रीति सै अहंकारादि-गोचर संस्कार का संभव वृत्ति द्वारा मानै तौ अज्ञानगोचर बी अविद्या वृत्ति मान के संस्कार का संभव होय सके है। यातैं स्मृति की अनुपपत्ति नहि। इस रीति सैं कितने ग्रंथकार स्वगोचर वृत्ति तैं हि स्वगोचर संस्कार होवै हैं। या नियम कूं नहि मान के बी अहंकारादिगोचर संस्कार

का संभव कहे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ नियम कूं मान के हि यह कहे हैं—जैसे सुषुप्ति मै अज्ञान सुखादि-गोचर अविद्या की वृत्ति माने हैं। तैसे अहंकारादिगोचर बी अविद्या की वृत्ति संभवै है। या मत मै अंतःकरण की ज्ञान सुखादि वृत्तिगोचर बी अविद्या की वृत्ति माने हैं। परंतु अविद्या वृत्तिगोचर अन्य वृत्ति नहि माने हैं। यातैं अनवस्था होवै नहि। औ अज्ञान अहंकारादिक वृत्ति विना साक्षिभास्य हैं। या कहने तैं अंतःकरण की ज्ञानरूप वृत्ति का निषेध विवक्षित है। यातैं अज्ञानादिगोचर अविद्या वृत्ति मानै बी सिद्धांत का विरोध नहि। इस रीति सै किंत ने ग्रंथकार ज्ञान सुखादि धर्म सहित अहंकारगोचर अविद्या की वृत्ति मान के संस्कार का संभव कहे हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार ज्ञान सुखादि वृत्तिगोचर तौ अविद्या की हि वृत्ति माने हैं। अहंकारगोचर अविद्या की वृत्ति नहि माने हैं। किंतु अंतःकरण की हि वृत्ति माने हैं। काहे तैं अंतःकरण की वृत्ति तैं संस्कार का संभव होवै तहां अविद्या की वृत्ति माननी युक्त नहि। तात्पर्य यह—घटादि ज्ञानरूप वृत्तिगोचर अंतःकरण की वृत्ति मानै अनवस्था दोष पूर्व कहा है। तैसे मन कूं करणता के अभाव तैं सुख दुःखादि गोचर अंतःकरण की वृत्ति ज्ञान रूप तौ संभवै नहि क्रियारूप माने ताके संस्कार वास्ते अन्य वृत्ति मानने मै बी अनवस्था होवैगी। इस रीति सै ज्ञान

सुख दुःख इच्छा द्वेषादि गोचर अंतःकरण की वृत्ति माननेमै अनवस्था दोष होवै है। सो दोष अहंकार गोचर अंतःकरण की वृत्ति माननेमै होवै नहि। काहे तैं अहमाकार वृत्ति गोचर बी अंतःकरण की हि वृत्ति मानै तौ अनवस्था होवै। परंतु वृत्तिगोचर अविद्या की वृत्ति माने हैं। तामै अन्य वृत्ति का अंगीकार नहि। यातैं दोष नहि। यद्यपि अंतःकरण की वृत्ति का विषय माने अहंकार साक्षिभास्य नहि होवैगा। तथापि अंतःकरण की ज्ञानरूप वृत्ति का विषय माने तब तौ अहंकार साक्षिभास्य नहि बी संभवै। काहे तैं अंतःकरण की ज्ञानरूप वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षी भासै सो साक्षिभास्य नहि कहिये है। परंतु अहंकार गोचर अंतःकरण की वृत्तिज्ञान के करण जन्य नहि। काहे तैं अहंकार गोचर वृत्ति नेत्रादि इंद्रिय जन्य तौ संभवै नहि। तैसे लिंगादि ज्ञान विना बी होवै है। यातैं अनुमानादि जन्य बी नहि संभवै है औ मन वृत्तिज्ञान का उपादान है। यातैं करणता के अभाव तैं अहमाकार वृत्ति मनोजन्य बी नहि संभवै है। इस रीति सै अहमाकार वृत्ति ज्ञान के करणजन्य नहि याहि तैं ज्ञानरूप नहि। किंतु उपासनादि वृत्ति की न्याईं क्रियारूप है या मत मै 'स एवाहं' यह प्रतिभिज्ञा बी अहं अंश मै क्रियारूप है। औ तत्ता अंश मै संस्कार जन्य होने तैं ज्ञानरूप है। तात्पर्य यह—'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति वह्नि अंश मै

परोक्ष औ पर्वत अंश मै अपरोक्ष सिद्धांत मै माने हैं। औ 'रक्तः पटः' इत्यादि ज्ञान संसर्ग अंश मै अप्रमा औ पटादि अंश मै प्रमा नैयायिक बी माने हैं। तैसे 'स एवाहं' यह प्रत्यभिज्ञा बी अंश भेद तैं ज्ञान क्रियारूप संभवै है। इस रीति से अहंकारगोचर अंतःकरण की वृत्ति क्रियारूप है ज्ञानरूप नहि। यातैं अंतःकरण की वृत्ति का विषय माने अहंकार साक्षिभास्य नहि होवैगा। यह शंका संभवै नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार अहंकार गोचर वृत्ति क्रिया-रूप माने के अहं अंश मै प्रत्यभिज्ञा बी क्रियारूप हि माने हैं। औ तिन से अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। 'मामहं जानामि' इस रीति सै अहमाकार वृत्ति मै ज्ञान-रूपता अनुभव सिद्ध होने तैं ताकूं क्रियारूप कहना संभवै नहि। जो करण के अभाव तैं ज्ञानरूपता का असंभव कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं अहमाकार वृत्ति मै ज्ञान-रूपता अनुभव सिद्ध है। ताका अपलाप तौ होय सके नहि। यातैं नेत्रादिक बाह्य इंद्रिय औ अनुमानादिक तौ यद्यपि ताके करण नहि बी संभवै हैं। परंतु अंतर इंद्रिय मन करण मान्या चाहिये। याहि तैं ताका विषय अहं पदार्थ बी केवल साक्षिभास्य नहि। काहे तैं अंतःकरण की ज्ञानरूप वृत्ति अनुपहित साक्षी हि केवल साक्षी कहिये है। किंतु ज्ञान सुखादि अंतःकरण की वृत्ति सहित अज्ञान हि या मत मै केवल साक्षिभास्य है। यद्यपि मन कूं इंद्रिय

माने नेत्रादिकन की न्याईं ताकूं प्रमाण कहा चाहिये। औ प्रमा का करण प्रमाण कहिये है। अनधिगत अबाधितार्थगोचर अनुभव प्रमा कहिये है। मन का विषय अहं पदार्थरूप जीव अनावृत साक्षिचेतन मै अध्यस्त होने तैं अज्ञात नहि। यातैं अहमाकार ज्ञान प्रमा नहि होने तैं मन कूं प्रमाण कहना संभवै नहि याहि तैं ताकूं इंद्रिय कहना बी नहि संभवै है। तथापि यथार्थ अनुभव वा अबाधितार्थ गोचर अनुभव कूं बी प्रमा माने हैं। यातैं अहमाकार ज्ञान प्रमा होने तैं ताका करण मन प्रमाण संभवै है। याहि तैं ताकूं इंद्रिय कहना बी संभवै है शंका संभवै नहि इस रीति सै अहमाकार वृत्ति ज्ञानरूप है। तैसे 'स एवाहं' यह प्रत्यभिज्ञा अहं अंश मै बी ज्ञानरूप हि मानी चाहिये। काहे तैं विज्ञान वादी आत्मा कूं बी क्षणिक माने हैं। द्वितीयाध्याय के द्वितीय पाद मै तिन के खंडन मै सूत्रकार ने यह कहा है 'अनुस्मृतेश्च' अर्थ यह–अनुस्मृति नाम प्रत्यभिज्ञा का है या सूत्र के व्याख्यान मै भाष्यकार ने यह कहा है–'य एवाहं पूर्वेद्युरद्राक्षं स एवाहमद्य स्मरामि' यह प्रत्यभिज्ञा होवै है। तासै दर्शन स्मरण का कर्ता एक स्थायी आत्मा सिद्ध होवै है। यातैं आत्मा कूं क्षणिक कहना संभवै नहि। इस रीति सै सूत्रकार भाष्यकार ने प्रत्यभिज्ञारूप प्रमाण तैं अहंपद का अर्थ अंतःकरण उपहित जीव चेतन स्थायी सिद्ध किया

है। ज्ञानरूप वृत्ति कूं हि प्रमाण कहना संभवै है। क्रियारूप वृत्ति कूं प्रमाण कहना संभवै नहि। प्रत्यभिज्ञा कूं अहं अंश मै क्रियारूप माने सूत्र भाष्य का विरोध होवैगा। यातैं प्रत्यभिज्ञा अहं अंश मै बी ज्ञानरूप मानी चाहिये। इस रीति सै या मत मै अहमाकार वृत्ति की न्याई प्रत्यभिज्ञा अहं अंश मै बी ज्ञानरूप है औ उक्त रीति सै दोनों प्रमा हैं। यातैं अविद्या अहंकारादिगोचर सादिरूप अनुभव तैं भिन्न प्रमा ज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति का नियम पूर्व कहा है। द्विविध प्रमा मै, ताका व्यभिचार होवै है। काहे तैं ज्ञातार्थगोचर होने तैं द्विविध प्रमा तैं अज्ञान की निवृत्ति होवै नहि। यातैं अज्ञात गोचर वृत्ति तैं अज्ञान निवृत्ति का नियम कहा चाहिये। उक्त द्विविध वृत्ति अज्ञातगोचर नहि। यातैं व्यभिचार नहि। परंतु यह शंका होवै है— शुक्ति रजतादि अध्यास तैं पूर्व इदमाकार वृत्ति होवै है। तासै अज्ञान की निवृत्ति नहि माने तामै उक्त नियम का व्यभिचार होवैगा। अज्ञान की निवृत्ति माने उपादान के अभाव तैं अध्यास नहि हुवा चाहिये। या शंका का कोई आचार्य यह समाधान कहे हैं—अधिष्ठान का सामान्यरूप तैं ज्ञान सामान्य अंश के हि अज्ञान का निवर्तक है। विशेष अंश के अज्ञान का निवर्तक नहि। औ विशेष अंश का अज्ञान हि अध्यास का हेतु है। काहे तैं शुक्तित्वादि रूप विशेष अंश का अज्ञान होवै तौ रजतादि

अध्यास होवै है। विशेष अंश का अज्ञान नहि होवै अध्यास होवै नहि। यह अनुभव सिद्ध है। यातैं यह सिद्ध हुवा—इदमाकार वृत्ति तैं सामान्य अंश का अज्ञान निवृत्त होवै है। यातैं व्यभिचार दोष नहि। औ विशेष अंश अज्ञान तैं आवृत है। यातैं अध्यास की अनुपपत्ति बी नहि।' यद्यपि अधिष्ठान औ अध्यस्त नियम तैं एक ज्ञान का विषय होवै हैं। 'सविलासाज्ञान विषयत्वमधिष्ठानत्वं' अर्थ यह—कार्य के सहित अज्ञान का विषय होवै सो अधिष्ठान कहिये है। विशेष अंश कूं अज्ञान तैं आवृत माने सोई अधिष्ठान कहा चाहिये। सामान्य अंश अधिष्ठान संभवै नहिं। यातैं 'शुक्ति रजतं' ऐसा भ्रम का आकार हुवा चाहिये। 'इदं रजतं' ऐसा आकार नहि हुवा चाहिये। तथापि सविलास अज्ञान का विषय होने तैं हि विशेष अंश अधिष्ठान है। सामान्य अंश आधार है। 'अध्यस्त भिन्नत्वे सति अध्यस्ताभिन्नत्वेन प्रतीयते इति आधारः' अर्थ यह—अध्यस्त सै भिन्न हुवा तासै अभिन्न प्रतीत होवै सो आधार कहिये है। अध्यस्त बी अध्यस्त सै अभिन्न प्रतीत होवै है। परंतु अध्यस्त तासै भिन्न नहि। यातैं अध्यस्त सै भिन्न कहा है। अध्यस्त रजतादिकन सै भिन्न घटादिक बी हैं। यातैं अध्यस्त सै अभिन्न कहा है। अधिष्ठान का बी अध्यस्त सै तादात्म्यरूप अभेद होवै है। परंतु अधिष्ठान अध्यस्त सै अभिन्न होय

के प्रतीत होवै नहि। यातैं अध्यस्त सै अभिन्न प्रतीत कहा है। इस रीति से संक्षेप शारीरक मै अधिष्ठान सै आधार का भेद कहा है। या मत मै अधिष्ठान अध्यस्त एक ज्ञान का विषय नहि। किंतु आधार अध्यस्त ताका विषय हैं। यातैं 'शुक्ति रजतं' इस रीति सै भ्रम के आकार की आपत्ति नहि। इस रीति से कित ने आचार्य आधार अध्यस्त कूं एक भ्रम ज्ञान का विषय मान के विशेष अंश का अज्ञान अध्यास का हेतु कहे हैं। औ तिन सै अन्य आचार्य तौ यह कहे हैं—पंचपादिका विवरणादिकन मै अधिष्ठान अध्यस्त एक भ्रम ज्ञान का विषय सिद्ध किये हैं आधार अध्यस्त कूं भ्रम का विषय माने ताका विरोध होवैगा। औ 'इदं रजतं' इस रीति से सामान्य अंश हि अध्यस्त सै अभिन्न होय के भ्रम मै भासे है। यातैं अधिष्ठान होने तैं ताका अज्ञान हि अध्यास का हेतु मान्या चाहिये। विशेष अंश का भ्रम मै भान होवै नहि। यातैं अधिष्ठानता के असंभव तैं ताका अज्ञान अध्यास का हेतु नहि। जो अन्वय व्यतिरेक तैं विशेष अंश का अज्ञान अध्यास का हेतु कहा सो संभवै नहि। काहे तैं उक्त रीति से अध्यास का हेतु तौ सामान्य अंश का अज्ञान हि है, विशेष अंश का अज्ञान ताका हेतु नहि। यातैं यह मान्या चाहिये—विशेष अंश का ज्ञान अध्यास का प्रतिबंधक है। ताके अभाव तैं अध्यास

होवै है। ताके होतैं होवै नहि। इस रीति से उक्त अन्वय व्यतिरेक तैं बी प्रतिबंधकाभाव हि अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। विशेष अंश का अज्ञान हेतु सिद्ध होवै नहि। यद्यपि सामान्य अंश का अज्ञान अध्यास का हेतु माने इदमाकार वृत्ति तैं ताकी निवृत्ति कहना संभवै नहि। यातैं अज्ञातार्थ गोचर वृत्ति अज्ञान का निवर्तक है या नियम का व्यभिचार होवैगा। जो इदमाकार वृत्ति तैं अज्ञान की निवृत्ति माने तौ उपादान के अभाव तैं अध्यास नहि हुवा चाहिये। तथापि सर्वरूप तैं अधिष्ठान का ज्ञान हुये बी जल प्रतिबिंबित वृक्ष के अग्रभाग मै अधोदेशस्थत्व भ्रम होवै है। तात्पर्य यह– रजतादि अध्यास तैं पूर्व सर्वरूप तैं अधिष्ठान का ज्ञान होवै नहि। किंतु सामान्यरूप तैं ज्ञात औ विशेषरूप तैं अज्ञात अधिष्ठान मै रजतादि अध्यास होवै है। तहां तौ सामान्य अंश का अज्ञान निवृत हुये बी विशेष अंश का अज्ञान अध्यास का हेतु प्राप्त है। परंतु प्रतिबिंब भ्रम· स्थल मै तासै पूर्व हि'जले वृक्षो नास्ति ऊर्द्धाग्र एवायं वृक्षः' इस रीति से सर्वरूप तैं अधिष्ठान का ज्ञान हुये बी अध्यास होवै है। यातैं विशेष अंश का अज्ञान अध्यास का हेतु कहना संभवै नहि। किंतु अधिष्ठान ज्ञान तैं आवरण शक्ति विशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति होवै है। विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान अंश निवृत्त होवै नहि। सोई अध्यास का हेतु कहना होवैगा। औ जीवन मुक्त विद्वान् कूं देहादि

प्रपंच का प्रतिभास होवै है। तहां बी ब्रह्म तत्त्व के साक्षात्कार तैं आवरण मात्र की निवृत्ति औ विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान अंश की अनुवृत्ति कहनी होवैगी। तैसे इदमाकार वृत्ति तैं बी आवरण शक्ति विशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति होवै है। यातैं उक्त नियम का व्यभिचार नहि। औ विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान का अंश निवृत्त होवै नहि। यातैं अध्यास बी संभवै है। इस रीति सै रजतादि अध्यास तैं पूर्व इदमाकार वृत्ति होवै तासै कित ने आचार्य इदंता के अज्ञान की निवृत्ति माने हैं। अन्य आवरण मात्र की निवृत्ति माने हैं। यातैं अज्ञात गोचर वृत्ति आवरण का निवर्तक है। या नियम की तामै व्यभिचार शंका संभवै नहि। औ कवितार्किक चक्रवर्ति नृसिंह भट्टोपाध्याय तौ यह कहे हैं—रजतादि अध्यास तैं पूर्व इदमाकार वृत्ति हि होवै नहि। तामै व्यभिचार की शंका औ समाधान तौ अत्यंत दूर हैं। तथा हि—अध्यास तैं पूर्व इदमाकार वृत्ति अनुभव सिद्ध है। किंवा अध्यासरूप कार्य की अन्यथा अनुपपत्ति तैं ताकी कल्पना होवै है। अथवा कारण के होतैं कार्य अवश्य होवै है। यातैं दुष्ट इंद्रिय संयोगरूप कारण तैं इदमाकार वृत्ति की कल्पना होवै है। तहां प्रथम पक्ष तौ संभवै नहि। काहे तैं इदमाकार एक ज्ञान प्रथम होवै है। पश्चात् 'इदं रजतं' इस रीति सै द्वितीय ज्ञान होवै है। यह

अनुभव होवै नहि। तैसे द्वितीय पक्ष बी नहि संभवै है। काहे तैं अध्यास का कारण धर्मि ज्ञान होवै तौ ताकी अनुपपत्ति तैं ताकी कल्पना संभवै। परंतु प्रमाण के अभाव तैं धर्मि ज्ञान अध्यास का कारण नहि। उलटा इंद्रिय संयोग तैं अध्यास होवै है। ताके नहि होतैं होवै नहि। या अन्वय व्यतिरेक तैं दुष्ट इंद्रिय संयोग हि अध्यास का कारण सिद्ध होवै है। धर्मि ज्ञान कारण सिद्ध होवै नहि। अध्यास तैं पूर्व अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान होवै ताकूं धर्मि ज्ञान कहे हैं। जो अहंकारादि अध्यास मै औ स्वप्न प्रपंच के अध्यास मै इंद्रिय संयोग का व्यभिचार है। यातैं उक्त अन्वय व्यतिरेक तैं धर्मि ज्ञान हि अध्यास का हेतु सिद्ध करैं। तात्पर्य यह—यद्यपि पूर्व उक्त अन्वय व्यतिरेक तैं दुष्ट इंद्रिय संयोग अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। तथापि अहंकारादि अध्यास मै। औ स्वप्न प्रपंच के अध्यास मै ताका व्यभिचार है। काहे तैं द्विविध अध्यास का अधिष्ठान साक्षिचेतन है। तासै इंद्रिय संयोग संभवै नहि। यातैं संयोग कारणता ग्राहक अन्वय व्यतिरेक तैं ताका कार्य धर्मि ज्ञान अध्यास का हेतु मान्या चाहिये। रजतादि अध्यास का अधिष्ठान चेतन आवृत है। इदमाकार वृत्ति तैं ताका स्फुरण होवै है। अहंकारादि अध्यास का औ स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान साक्षि चेतन अनावृत है। ताका स्वयं प्रकाशरूप तैं स्फुरण सिद्ध है। यातैं अधिष्ठान

स्फुरणरूप तैं धर्मिज्ञान का व्यभिचार नहि। इस रीति सै धर्मिज्ञान वादी उक्त अन्वयव्यतिरेक तैं धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध करैं। तथापि घटादि अध्यास मै व्यभिचार होने तैं संभवै नहि। तथा हि—घटादि अध्यास का अधिष्ठान ब्रह्म नीरूप है। अध्यास तैं पूर्व ताका चाक्षुपज्ञान संभवै नहि। यातैं वृत्तिकृत अधिष्ठान का स्फुरण तहां नहि संभवै है। औ स्वरूप प्रकाश आवृत है। यातैं स्वयं प्रकाशरूप तैं बी अधिष्ठान का स्फुरण कहना संभवै नहि। जो ऐसे कहैं—अनावृत प्रकाशरूप धर्मिज्ञान हि अध्यास का हेतु मानै तौ घटादि अध्यास स्थल मै अधिष्ठान प्रकाश आवृत है। यातैं व्यभिचार होवै। परंतु आवृत होवै अथवा अनावृत होवै लाघव तैं अधिष्ठान का प्रकाश मात्र अध्यास का हेतु है। 'सन् घटः' 'सन् पटः' इत्यादि अध्यास होवै ताका अधिष्ठान सत्‌रूप ब्रह्म स्वप्रकाश है। यातैं अधिष्ठान प्रकाश मात्र का तहां बी व्यभिचार नहि। यह कहना बी संभवै नहि। काहे तैं आवृत प्रकाश बी अध्यास का हेतु माने इंद्रियसंयोग तैं पूर्व बी शुक्ति आदि अवच्छिन्न चेतनरूप आवृत अधिष्ठान प्रकाश विद्यमान है। यातैं रजतादि अध्यास हुवा चाहिये। जो अंकुर सामान्य मै बीज सामान्य हेतु है। आम्रादि अंकुर विशेष मै बीज विशेष हेतु है। तैसे अध्यास सामान्य मै तौ आवृत अनावृत साधारण अधिष्ठान का प्रकाश सामान्य

हेतु है। परंतु पंचपादिका विवरणादिकन मै प्रातिभासिका-ध्यास दोषादि कारण त्रय जन्य सिद्ध किया है। यातैं प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत अधिष्ठान प्रकाश हेतु मान्या चाहिये। यातैं पूर्व जिस अन्वय व्यतिरेक तैं इंद्रिय संयोग कारण कहा है तासै हि प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का अपरोक्ष ज्ञान हेतु सिद्ध होवै है। यातैं इंद्रिय संयोग विना रजतादि अध्यास की आपत्ति नहि। इस रीति सै धर्मिज्ञान वादी प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का अनावृत प्रकाश हेतु कहैं तौ रजतादि अध्यास मै तौ दोष का वारण संभवै है। परंतु सकल प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु संभवै नहि। काहे तैं शंख मै पीतिमा का औ कूपजल मै नीलिमा का अध्यास होवै तहां रूप विना केवल शंखादि द्रव्य का चाक्षुप प्रत्यक्ष माने तौ वायु आदिकन का बी चाक्षुष प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। शुक्लरूप विशिष्ट का प्रत्यक्ष माने अध्यास नहि हुवा चाहिये। कल्पितरूप विशिष्ट शंखादिकन का प्रत्यक्ष अध्यासरूप हि है। ताकूं अध्यास का हेतु धर्मि ज्ञान कहना संभवै नहि। जो पीत शंखादि अध्यास तैं भिन्न प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का प्रत्यक्ष हेतु कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं पूर्व उक्त प्रकार तैं पीत शंखादि अध्यास मै अधिष्ठान का प्रत्यक्ष तौ हेतु संभवै नहि। दुष्ट इंद्रिय संयोग बी हेतु नहि माने तासै

विना बी अध्यास हुआ चाहिये। जो सदा अध्यासापत्ति के परिहार वास्ते पीत शंखादि अध्यास मै दुष्ट इंद्रिय संयोग हेतु माने। औ शुक्ति रजतादि अध्यास मै अधि-ष्ठान का प्रत्यक्ष हेतु माने तौ गौरव होवैगा। यातैं लाघव तैं प्रातिभासिकाध्यास मात्र मै इंद्रिय संयोग हेतु मान्या चाहिये। इहां यह निष्कर्ष है—धर्मि ज्ञान वाद मै आवृत प्रकाश हि अध्यास का हेतु माने इंद्रिय संयोग विना बी रजतादि अध्यास हुवा चाहिये। यातैं अध्यास सामान्य मै प्रकाश सामान्य औ प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु माने हैं। रजतादि अध्यास का अधिष्ठान प्रकाश सदा अनावृत नहि। यातैं इंद्रिय संयोग विना रजतादि अध्यास की आपत्ति तौ नाहि होवै है परंतु पूर्व उक्त रीति सै पीत शंखादि अध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु नहि संभवै है। यातैं तामै दुष्ट इंद्रिय संयोग कारण कहा है तासै हि रजतादि अध्यास बी कादाचित्क संभवै है। सामान्य विशेष रूप तैं अधिष्ठान का प्रकाश अध्यास का हेतु सिद्ध होय सके नाहि। परंतु या स्थान मै धर्मि ज्ञान वादी की यह शंका है—रजतादि अध्यास बी दुष्ट इंद्रिय संयोग मात्र तैं कहैं तौ शुक्ति आदिकन की न्याईं इंगालादिकन मै बी दुष्ट इंद्रिय संयोग तैं रजतादि अध्यास हुवा चाहिये। यातैं रजतादि अध्यास मै सादृश्य ज्ञान हेतु मान्या चाहिये। शुक्ति आदिकन मै रजतादिकन का

हेतु है। परंतु पंचपादिका विवरणादिकन मै प्रातिभासिकाध्यास दोषादि कारण त्रय जन्य सिद्ध किया है। यातैं प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत अधिष्ठान प्रकाश हेतु मान्या चाहिये। यातैं पूर्व जिस अन्वय व्यतिरेक तैं इंद्रिय संयोग कारण कहा है तासै हि प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का अपरोक्ष ज्ञान हेतु सिद्ध होवै है। यातैं इंद्रिय संयोग विना रजतादि अध्यास की आपत्ति नहि। इस रीति सै धर्मिज्ञान वादी प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का अनावृत प्रकाश हेतु कहैं तौ रजतादि अध्यास मै तौ दोष का वारण संभवै है। परंतु सकल प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु संभवै नहि। काहे तैं शंख मै पीतिमा का औ कूपजल मै नीलिमा का अध्यास होवै तहां रूप विना केवल शंखादि द्रव्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष माने तौ वायु आदिकन का बी चाक्षुष प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। शुक्लरूप विशिष्ट का प्रत्यक्ष माने अध्यास नहि हुवा चाहिये। कल्पितरूप विशिष्ट शंखादिकन का प्रत्यक्ष अध्यासरूप हि है। ताकूं अध्यास का हेतु धर्मि ज्ञान कहना संभवै नहि। जो पीत शंखादि अध्यास तैं भिन्न प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान का प्रत्यक्ष हेतु कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं पूर्व उक्त प्रकार तैं पीत शंखादि अध्यास मै अधिष्ठान का प्रत्यक्ष तौ हेतु संभवै नहि। दुष्ट इंद्रिय संयोग वी हेतु नहि माने तासै

विना बी अध्यास हुवा चाहिये। जो सदा अध्यासापत्ति के परिहार वास्ते पीत शंखादि अध्यास मै दुष्ट इंद्रिय संयोग हेतु माने। औ शुक्ति रजतादि अध्यास मै अधि- ष्ठान का प्रत्यक्ष हेतु माने तौ गौरव होवैगा। यातैं लाघव तैं प्रातिभासिकाध्यास मात्र मै इंद्रिय संयोग हेतु मान्या चाहिये। इहां यह निष्कर्ष है—धर्मि ज्ञान वाद मै आवृत प्रकाश हि अध्यास का हेतु माने इंद्रिय संयोग विना बी रजतादि अध्यास हुवा चाहिये। यातैं अध्यास सामान्य मै प्रकाश सामान्य औ प्रातिभासिकाध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु माने हैं। रजतादि अध्यास का अधिष्ठान प्रकाश सदा अनावृत नहि। यातैं इंद्रिय संयोग विना रजतादि अध्यास की आपत्ति तौ नाहि होवै है परंतु पूर्व उक्त रीति से पीत शंखादि अध्यास मै अनावृत प्रकाश हेतु नहि संभवै है। यातैं तामै दुष्ट इंद्रिय संयोग कारण कहा है तासै हि रजतादि अध्यास बी कादाचित्क संभवै है। सामान्य विशेष रूप तैं अधिष्ठान का प्रकाश अध्यास का हेतु सिद्ध होय सके नहि। परंतु या स्थान मै धर्मि ज्ञान वादी की यह शंका है—रजतादि अध्यास बी दुष्ट इंद्रिय संयोग मात्र तैं कहैं तौ शुक्ति आदिकन की न्याईं इंगालादिकन मै बी दुष्ट इंद्रिय संयोग तैं रजतादि अध्यास हुवा चाहिये। यातैं रजतादि अध्यास मै सादृश्य ज्ञान हेतु मान्या चाहिये। शुक्ति आदिकन मै रजतादिकन का

सादृश्य ज्ञान तैं अध्यास होवै है ताके अभाव तैं इंगालादिकन मै होवै नहि। जो सादृश्य का ज्ञान रजतादि अध्यास का हेतु नहि मान के स्वरूप सै हि सादृश्य कूं हेतु माने तौ सादृश्य के अभाव तैं इंगालादिकन मै तौ रजतादि अध्यास की आपत्ति नहि होवै है परंतु दूरस्थ पुरुष कूं विसदृश समुद्र जल मै नीलशिला का भ्रम होवै है सो नहि हुवा चाहिये। काहे तैं जल मै नीलशिलातल का स्वरूप सै सादृश्य है नहि। सादृश्य का ज्ञान हेतु मानै भ्रमरूप सादृश्य ज्ञान तहां बी संभवै है। यातैं भ्रम प्रमा साधारण सादृश्य ज्ञान अध्यास का हेतु मान्या चाहिये। सादृश्यज्ञान बी धर्मिज्ञान हि है। काहे तैं अधिष्ठान मै अध्यस्त का समान धर्म हि सादृश्य है। ताके ज्ञान कूं धर्मिज्ञान कहना संभवै है। यातैं सादृश्य विशिष्ट धर्मि· ज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। जो धर्मिज्ञान कारण माने तौ बी ताकी सामग्री दुष्ट इंद्रिय संयोग तौ अवश्य हि मानना होवै है। यातैं जहां सादृश्य ज्ञान कारण मान्या है तहां बी ताकी सामग्री हि अध्यास का हेतु मानी चाहिये। सादृश्य ज्ञान हेतु नहि। इस रीति सैं उपाध्याय का अनुसारी कहै तौ संभवै नहि। काहे तैं धर्मिज्ञान वाद मै धर्मिज्ञान तैं रजतादि विषय की उत्पत्ति माने हैं। सादृश्य ज्ञान की सामग्री अध्यास का हेतु माने दुष्ट इंद्रिय संयोग तैं रजतादि अर्थ की उत्पत्ति कहनी होवैगी सो संभवै

नहि। काहे तैं इंद्रियसंयोग तैं ज्ञान की उत्पत्ति हि प्रसिद्ध है। विषय की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहि। श्रौ सादृश्य ज्ञान की सामग्री की अपेक्षा तैं सादृश्यज्ञान कूं कारण मानै लाघव है। यातैं बी धर्मिज्ञान हि अध्यास का हेतु मान्या चाहिये। जो जल मै श्रौ मुक्ताफल मै नीलता के सादृश्य का अभाव समान है। तौ बी निर्मल सुवर्ण पात्रस्थ स्वच्छजल मै हि नीलता का अध्यास होवै है। मुक्ताफल मै होवै नहि। तहां श्रौर तौ कोई हेतु कहना संभवै नहि। जलादि वस्तु का स्वभाव हि हेतु कहना होवैगा। स्वभाव सै हि जल मै नीलता का अध्यास होवै है। मुक्ताफल मै होवै नहि। तैसे स्वभाव तैं हि शुक्ति आदिकन मै रजतादि अध्यास होवै है। इंगालादिकन मै होवै नहि। सादृश्य ज्ञान हेतु मानना निष्फल है। इस रीति से उपाध्याय का अनुसारी वस्तु स्वभाव तैं व्यवस्था मान के सादृश्य विशिष्ट धर्मिज्ञान का निषेध करै तथापि नहि संभवै है। काहे तैं जहां अन्य गति नहि संभवै तहां वस्तु का स्वभाव हेतु मानना होवै है। श्रौ पुंडरीकाकार कर्तित पट खंड मै पुंडरीकाध्यास होवै है। अकर्तित मै होवै नहि। तहां अन्वय व्यतिरेक तैं सादृश्य ज्ञान हेतु सिद्ध है। तैसे शुक्ति रजतादि अध्यास मै बी सादृश्य विशिष्ट धर्मिज्ञान हेतु मांन्या चाहिये वस्तु का स्वभाव हेतु संभवै नहि। इस रीति सै सादृश्य ज्ञान मै

हेतुता साधन द्वारा धर्मि ज्ञान मै अध्यास हेतुता की शंका धर्मि ज्ञान वादी करे हैं उपाध्याय के अनुसारी ताका यह समाधान कहे हैं—पूर्व उक्त रीति सै सादृश्य ज्ञान· रूप तैं धर्मि ज्ञान अध्यास का हेतु माने बी विशेष ज्ञान तैं प्रति बद्ध्य अध्यास मै हि हेतु कह्या चाहिये। पीत शंखादि अध्यास विशेष ज्ञान तैं अप्रतिबद्ध्य है। काहे तैं 'पीतत्वाभावव्याप्य शंखत्ववान् शंखः' 'नीलत्वाभाव व्याप्य जलत्ववत् जलं' इस रीति सै विशेष ज्ञान हुये बी शंखादिकन मै पीततादि अध्यास होवै है। तामै सादृश्य ज्ञान हेतु संभवै नहि। काहे तैं शंखादिकन मै पीतता· दिकन का सादृश्य नहि। औ पुंडरीकाध्यास की न्याईं सादृश्य ज्ञान का अन्वय व्यतिरेक बी नहि। यातैं भ्रमरूप बी सादृश्य ज्ञान हेतु नहि संभवै है। रजतादि अध्यास विशेष ज्ञान तैं प्रतिबद्ध्य है। औ प्रतिबंधक ज्ञान की सामग्री नियम तैं प्रतिबंधक होवै है। प्रतिबंधक की सामग्री कूं प्रतिबंधक कहैं तौ दाह के प्रतिबंधक मणि आदिक हैं तिन की सामग्री बी दाह का प्रतिबंधक हुयी चाहिये। यातैं ज्ञान कहा है। मणि आदिक प्रति· बंधक ज्ञानरूप नहि। यातैं दोप नहि। ज्ञान की सामग्री कूं हि प्रतिबंधक कहैं तौ धर्मि ज्ञान की सामग्री दुष्ट इंद्रिय संयोग बी अध्यास का प्रतिबंधक हुवा चाहिये। यातैं प्रतिबंधक ज्ञान कहा है। धर्मि ज्ञान अध्यास का

हेतु है प्रतिबंधक नहि। यातैं दोष नहि। पर्वत मै वह्नि के अभाव का ज्ञान अनुमिति का साक्षात् प्रतिबंधक है। वह्नि अभाव के व्याप्य जलादिकन का ज्ञान प्रतिबंधक ज्ञान की सामग्री है। सो बी अनुमिति का प्रतिबंधक है। तैसे रजतादि अध्यास का प्रतिबंधक विशेष ज्ञान है। ताकी सामग्री बी ताका प्रतिबंधक अवश्य कहि चाहिये। तासै हि सर्व व्यवस्था संभवै है। सादृश्य ज्ञान हेतु मानना निष्फल हैं। तथा हि—इंगालादिकन मै नील-तादि विशेष का ज्ञान रजतादि अध्यास का प्रतिबंधक है। ताकी सामग्री नेत्र संयुक्त तादात्म्य संबंध है सो बी रजतादि अध्यास का प्रतिबंधक है। नील भाग त्रिकोणादि व्यापि नेत्र संयोग विशेष ज्ञान की सामग्री है। ताके होतैं शुक्ति आदिकन मै रजतादि अध्यास होवै नहि। सदृश भाग मात्र तैं नेत्र संयोग विशेष ज्ञान की सामग्री नहि। यातैं अध्यास होवै है। यद्यपि शुक्तित्व विशिष्ट शुक्ति का ज्ञान बी विशेष ज्ञान है। ताकी सामग्री नेत्र संयुक्त तादात्म्य संबंध है। सो सदृश भाग मात्र तैं नेत्र संयोग काल मै बी विद्यमान है। यातैं अध्यास नहि हुवा चाहिये। सादृश्य ज्ञान कारण मानै यह दोष नहि। काहे तैं प्रतिबंधक रहित सामग्री तैं हि कार्य होवै है। सादृश्य ज्ञानरूप दोष शुक्तित्व ग्राहक सामग्री का प्रति-बंधक है ताके होतैं शुक्तित्व विशिष्ट शुक्ति का ज्ञान होवै

रूप तैं हि ताका कारण है। कवितार्किक धर्मिज्ञान मैं कारणता के भय तैं कहुं बी सादृश्य ज्ञान कारण नहि माने हैं। किंतु धर्मिज्ञान वादी जहां सादृश्य ज्ञान कारण माने हैं तहां सारे विशेष ग्राहक सामग्री के अभाव तैं अध्यास सिद्ध करे हैं। तामैं धर्मिज्ञान वादी की यह शंका है—विशेष ग्राहक सामग्री के अभाव तैं हि अध्यास माने·सादृश्य ज्ञान हेतु नहि माने तौ अंधकार मैं कररपृष्ट लोह शकल मैं रजताध्यास हुवा चाहिये। काहे तैं लोह शकल के नीलरूप का ज्ञान रजताध्यास का प्रतिबंधक है ताकी सामग्री आलोक संयोगादिकन का तहां अभाव है। यातैं विशेष ग्राहक सामग्री के अभाव तैं अध्यास हुवा चाहिये। या शंका का यह समाधान है—कररपृष्ट लोह शकल मैं रजताध्यास बी हुवा चाहिये अथवा रजताध्यास हि हुवा चाहिये। अध्यासांतर नहि हुवा चाहिये। जो प्रथम पक्ष कहैं तौ संभवै बी है। काहे तैं अंधकार मैं कररपृष्ट लोह शकल· मैं ताम्रादि अध्यास की न्याईं रजताध्यास बी संभवै है। परंतु द्वितीय पक्ष संभवै नहि। काहे तैं नीलतारूप विशेष का ग्राहक सामग्री आलोक संयोगादिक हैं। ताके अभाव तैं रजताध्यास धर्मिज्ञान वादी ने कहा है। तैसे ताम्रादि अध्यास बी हुवा चाहिये। काहे तैं कररपृष्ट लोह शकल मैं नीलतादि विशेष ग्राहक सामग्री का अभाव ताम्रादि अध्यास साधारण है। ताका

व्यावर्तक नहि। यातैं रजताध्यास की न्याईं ताम्रादि अध्यास बी संभवै है। औ कहूं करस्पृष्ट लोह शकल मै 'किमिदं रजतं किं वा ताम्रं' 'अथवा सुवर्णशकलादि', इस रीति से संशय हि होवै है। कदाचित् रजतप्राय कोश-गृहादिकन मै रजताध्यास हि होवै है। परंतु अंधकार मै करस्पृष्ट लोह शकल मै नियम तैं रजताध्यास होवै नहि। यद्यपि अंधकार मै करस्पृष्ट लोह शकल मै कदाचित् रजताध्यास नहि बी होवै है। धर्मिज्ञान वाद मै तौ सादृश्य ज्ञानरूप कारण के अभाव तैं अध्यास का अभाव संभवै है। परंतु उपाध्याय के मत मै तहां बी विशेष ग्राहक सामग्री का अभाव विद्यमान है। यातैं अध्यास का अभाव संभवै नहि। तथापि कदाचित् समीप शुक्ति आदिकन मै सादृश्य ज्ञान हुये बी करण दोषादि अभाव तैं रजतादि अध्यास का अभाव धर्मिज्ञान वादी माने हैं। तैसे हमारे मत मै बी कदाचित् अध्यास का अभाव दोषकर नहि। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी धर्मिज्ञान अध्यास का कारण सिद्ध होय सके नहि। यातैं अध्यासरूप कार्य की अनुपपत्ति तैं ताकी कल्पना होवै है। यह द्वितीय पक्ष बी संभवै नहि। अध्यास तैं पूर्व धर्मिज्ञान अनुभव सिद्ध है। यह प्रथम पक्ष है। ताका निषेध पूर्व किया है। अप्रतिबद्ध इंद्रिय संयोगरूप कारण तैं ताकी कल्पना होवै है। यह तृतीय पक्ष बी नहि संभवै है। काहे तैं अन्यत्र

व्यासंग रहित दुष्ट इंद्रियसंयोग तैं अंतःकरण की वृत्ति होवै ताका विषय स्वसमान कालीन मिथ्या रजतादिक हैं। यातैं भ्रांतिरूप होने तैं अध्यास का हेतु संभवै नहि। जो इंद्रिय संबंध के अभाव तैं प्रातिभासिक रजतादिक ऐंद्रियक वृत्ति के विषय नहि। तैसे दुष्ट इंद्रिय संयोग जन्य बी नहि। काहे तैं इंद्रिय संयोग तैं ज्ञान की उत्पत्ति हि प्रसिद्ध है। रजतादि अर्थ की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहि। किंतु अविद्या मै क्षोभ द्वारा इदमाकार वृत्ति तैं अध्यस्त की उत्पत्ति होवै है। तामै अभिव्यक्त साक्षी तैं ताका प्रकाश होवै है। इदमाकार वृत्ति चक्षुजन्य है। यातैं परंपरा तैं चक्षु की अपेक्षा होने तैं अध्यस्त रजतादिकन मै चाक्षुषता अनुभव बी संभवै है। विरोध नहि। इहां यह ज्ञातव्य है—'चक्षुषा रजतं पश्यामि' इत्यादि अनुभव का विषय रजतादि निष्ट चाक्षुष ज्ञान की विषयता है। उपाध्याय के मत मै तौ अध्यस्त रजतादिक ऐंद्रियक वृत्ति के विषय हैं। यातैं चाक्षुषता अनुभव के विरोध की शंका हि होवै नहि। धर्मिज्ञान वाद मै अध्यस्त कूं ऐंद्रियक नहि माने हैं। यातैं चाक्षुषता अनुभव के विरोध की शंका होवै है। परंतु इदमाकार चाक्षुष वृत्ति मै अभिव्यक्त साक्षी तैं अध्यस्त रजतादिकन का प्रकाश माने हैं। यातैं परंपरा तैं चक्षु की अपेक्षा होने तैं विरोध शंका का परिहार संभवै है। यद्यपि 'चक्षुषा रजतं पश्यामि' इत्यादि

अनुभव का विषय रजतादिनिष्ठ चाक्षुष वृत्ति की विषयता है। रजतादिकन मै वृत्ति चेतन की विषयता ताका विषय नहि। यातैं इदमाकार चाक्षुष वृत्ति मै अभिव्यक्त साक्षी का विषय होने तैं रजतादिकन मै परंपरा तैं चक्षु की अपेक्षा तैं चाक्षुषता अनुभव का अविरोध कहना संभवै नहि। तथापि परंपरा तैं चक्षु उपयोग कहने का यह तात्पर्य है—जैसे शुक्ति की इदंता का रजत मे संसर्गारोप होवै है। तैसे ताकी चाक्षुषता का बी तामै संसर्गारोप होवै है। सामान्यरूप तैं शुक्ति मै चक्षु की विषयता विना रजतादिकन मै चाक्षुषता के संसर्ग का आरोप संभवैं नहि। यातैं अपने मै आरोपणीय जो सामान्यरूप तैं शुक्ति निष्ठ चाक्षुषता का संसर्ग ताकी सिद्धि वास्ते चक्षु की अपेक्षा हि रजतादिकन मै परंपरा तैं चक्षु उपयोग कथन का अर्थ सिद्ध होने तैं दोष नहि। इस रीति सै रजतादि अध्यास मै परंपरा तैं चक्षुं की अपेक्षा मान के चाक्षुषता अनुभव के अविरोध तैं ऐंद्रियक वृत्ति का निषेध धर्मिज्ञान वादी करैं तौ बी पीत शंखाध्यास मै *परंपरा तैं बी चक्षु की अपेक्षा संभवै नहि।* *काहे तैं धर्मि-*ज्ञान वाद मै अधिष्ठान हि चाक्षुष वृत्ति का विषय है। अध्यस्त ताका विषय नहि। तहां रजतादि अध्यास मै तौ आरोपणीय चाक्षुषता संसर्ग मै उपयोगी अधिष्ठान की चाक्षुषता संभवै है। परंतु पीत शंखाध्यास मै अधि-

ष्ठान की चाक्षुषता संभवै नहि। काहे तैं रूप विना केवल शंख का तौ चाक्षुष प्रत्यक्ष संभवै नहि। शुक्लरूप विशिष्ट का चाक्षुष प्रत्यक्ष माने पीतताध्यास नहि हुवा चाहिये। औ अध्यस्त मै ऐंद्रियक वृत्ति की विषयता मानी नहि। यातैं कल्पितरूप विशिष्ट शंख का चाक्षुप प्रत्यक्ष बी नहि संभवै है। जो जपाकुसुम मै अनुभूयमान रक्तता का स्फटिक मै आरोप होवै है। तैसे नेत्र की रश्मि द्वारा निकस के पित्तद्रव्य शंख देश मै प्राप्त होवै है। ताका सदोष नेत्र तैं हि प्रत्यक्ष होवै है। निर्दोष तैं होवै नहि। यातैं अन्य कूं ताके प्रत्यक्ष की आपत्ति नहि तामै अनुभूयमान पीतिमा का शंख मै संसर्गारोप होवै है। यातैं 'पीत शंखं चक्षुषा पश्यामि' इस रीति सै पीतताध्यास मै चाक्षुषता व्यवहार संभवै है। विरोध नहि। इस रीति सै अनुभूयमानारोप मै किसी प्रकार तैं चक्षु की अपेक्षा मान के चाक्षुषता अनुभव को संभव धर्मिज्ञान वादी कहैं तौ बी स्मर्यमाणारोप मै सर्वथा ताकी अपेक्षा संभवै नहि। काहे तैं रात्रि मै रक्त वस्त्र मै नीलता का अध्यास होवै है। तहां वस्त्र का आधार रात्रि अंधकार युक्त होवै तहां तौ रक्त वस्त्र मै नीलताध्यास अनुभूयमानारोप बी संभवै है। परंतु पूर्णमासी की रात्रिस्थ रक्त वस्त्र मै तैसे धवल भूमिस्थ निर्मल जल मै औ आकाश मै नीलताध्यास स्मर्यमाणारोप है। तहां नीलरूप विशिष्ट अधिष्ठान गोचर

चाक्षुष वृत्ति का अनंगीकार होने तैं किसी प्रकार तैं बी चक्षु की अपेक्षा संभवै नहि। यातैं 'नीलवस्त्रं चक्षुषा-पश्यामि' इत्यादि अनुभव का विरोध होवैगा। किंच पंचपादिका मै यह कहा है—जन्मांतर के संस्कार तैं बालक कूं मधुर मै तिक्तता का अध्यास होवै है। तहां तिक्तताध्यास मै संस्कार मात्र हेतु माने तिक्तताध्यास स्मृतिरूप होवैगा। यातैं संस्कार सहित रसन इंद्रिय हेतु मान्या चाहिये। तिक्तताध्यास का अधिष्ठान दुग्धादि मधुर द्रव्य है। ताभै तौ रसन इंद्रिय की योग्यता हि नहि। अध्यस्त तिक्त रस मै बी योग्यता नहि माने पंचपादिका उक्ति का विरोध होवैगा। यातैं स्वरूप सै अध्यस्त तिक्त रस मै रासन वृत्ति की विषयता मानी चाहिये। तैसे अध्यस्त वस्तु मात्र मै ऐंद्रियक वृत्ति की विषयता मानी चाहिये। ताकूं साक्षिभास्य कहना संभवै नहि। काहे तैं अध्यस्त कूं साक्षिभास्य माने रक्त वस्त्रादिकन मै नीलता-ध्यास होवै तहां रूप विना केवल अधिष्ठान गोचर तौ चाक्षुष वृत्ति संभवै नाहि। औ नीलरूप विशिष्ट वस्त्रादि गोचर वृत्ति मानी नहि। यातैं विषय चेतन की अनभि-व्यक्ति तैं अधिष्ठान अध्यस्त का भान हि नहि होवैगा। यातैं अधिष्ठान इंद्रिय के संबंध तैं अधिष्ठान गोचर चाक्षुष वृत्ति होवै है। ताका विषय अध्यस्त नीलरूप मान्या चाहिये। परंतु चाक्षुष अध्यास होवै तहां तौ अधिष्ठान

अध्यस्त मै एक वृत्ति की विषयता सै अध्यस्त मै चाक्षुपता संभवै है। तिक्तरसाध्यास मै पंचपादिका उक्त रासनता एक वृत्ति की विषयता सै संभवै नहि। काहे तैं अधिष्ठान औ अध्यस्त एक इंद्रिय ग्राह्य नहि। किंतु मधुरदुग्ध का प्रकाश त्वाच वृत्ति तैं होवै है। दुग्ध औ रसन के संयोग तैं तिक्तरस का अध्यास होवै तिसी काल मै तिक्तरस मात्र गोचर रासन वृत्ति होवै है। यातैं तिक्तरस मै रासनता संभवै है। जो तिक्तरस गोचर रासन वृत्ति नहि माने किंतु त्वाच वृत्ति मै अभिव्यक्त साक्षी तैं हि तिक्तरस का प्रकाश माने तौ 'तिक्तरसं रसनेंद्रियेण अनुभवामि' इस रीति सै तिक्तरस मै रासनता का अनुभव होवै है ताका असंभव होवैगा। काहे तैं रजतादि अध्यास मै तौ धर्मिमात्र गोचर इदमाकार वृत्तिद्वारा नेत्र का उपयोग संभवै है। दुग्धादि मधुर द्रव्य रसन इंद्रिय के योग्य नहि। यातैं तिक्त रसाध्यास मै परंपरा तैं बी रसन का उपयोग संभवै नहि। इस रीति सै तिक्तरस मै रासन वृत्ति की विषयता मान के रासनता अनुभव का संभव कहा है। तैसे रजतादिकन मै बी चाक्षुप वृत्ति की विषयता मान के हि चाक्षुषता अनुभव का संभव कहा चाहिये। अधिष्ठान की चाक्षुपता का तिन मै संबंध ताका विषय संभवै नहि। जो धर्मिज्ञान वादी ऐसे कहैं—शाब्द प्रत्यक्ष तैं भिन्न जन्य प्रत्यक्ष मात्र मै विषय इंद्रिय का

संनिकर्ष कारण है। यह नियम है। साक्षीरूप नित्य प्रत्यक्ष मैं व्यभिचार वारण वास्ते जन्य कहा है। शाब्द प्रत्यक्ष मैं ताके वारण वास्ते तासै भिन्न कहा है। औ अध्यस्त रजतादिकन सै इंद्रिय का संबंध है नहि। इंद्रिय संबंध विना रजतादिकन कूं चाक्षुष वृत्ति का विषय माने नियम का भंग होवैगा। यातैं अधिष्ठानगत चाक्षुषता का रजतादिकन मैं संबंध हि 'चक्षुषा रजतं पश्यामि' इत्यादि अनुभव का विषय मान्या चाहिये। चाक्षुष वृत्ति की विषयता ताका विषय नहि। यह कहना बी संभवै नहि। काहे तैं षट्प्रकार का लौकिक संनिकर्ष है। अलौकिक संनिकर्ष तीन प्रकार का है। तिन मैं अनुगत संनिकर्षत्वधर्म का निरूपण होवै तौ उक्त नियम संभवै। अनुगत संनिकर्षत्व का निरूपण होय सके नहि। यातैं नियम संभवै नाहि। किंच रजतादिकन सै इंद्रिय संबंध के नहि हुये बी 'चक्षुषा रजतं पश्यामि' 'नीलं जलं पश्यामि' इस रीति सै तिन मैं चाक्षुषता का अनुभव होवै है। प्रकारांतर सै ताकी सिद्धि संभवै नहि। प्रातिभासिक विषय मैं बी उक्त नियम माने रजतादिकन मैं चाक्षुषता अनुभव का विरोध होवैगा यातैं उक्त नियम का व्यावहारिक विषय मैं हि संकोच मान्या चाहिये प्रातिभासिक विषय मैं नियम संभवै नहि। जो व्यावहारिक विषय मैं नियम का संकोच मानै प्रत्यक्ष

प्रमा मै हि विषय इंद्रिय का संनिकर्ष कारण है। भ्रम प्रत्यक्ष मै नहि। इस रीति सै बी नियम का संकोच संभवै है। यातैं अन्यथाख्यातिवाद की प्राप्ति कहैं तात्पर्य यह—नैयायिक देशांतरस्थ रजतादिक भ्रम प्रत्यक्ष का विषय माने हैं। तामै अनिर्वचनीय ख्याति वादी यह शंका करे हैं—इंद्रिय संबंध के अभाव तैं देशांतरस्थ रजतादिकन का पुरोवर्ति देश मै प्रत्यक्ष संभवै नहि। यातैं अनिर्वचनीय रजतादिकन की उत्पत्ति मानी चाहिये। उक्त नियम का व्यावहारिक विषय मै संकोच माने नैयायिकन कूं यह सुलभ समाधान मिले है—जैसे सिद्धांत मै शाब्द प्रत्यक्ष तैं भिन्न जन्य प्रत्यक्ष मात्र मै विषय इंद्रिय का संनिकर्ष कारण है। या नियम का व्यावहारिक विषय मै संकोच माने हैं। तैसे हमारे मत मै बी प्रत्यक्ष प्रमा मै हि विषय इंद्रिय का संनिकर्ष कारण है। भ्रम प्रत्यक्ष मै नहि। इस रीति सै नियम का संकोच संभवै है। यातैं बाधक के अभाव तैं अन्यथाख्याति वाद संभवै है। इस रीति सै व्यावहारिक विषय मै नियम का संकोच मानै अन्यथा ख्यातिवाद की प्राप्ति कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं पूर्व उक्त रीति सै भ्रम रूप प्रत्यक्ष मै इंद्रिय संबंध की हेतुता नहि हुये बी अन्यथा ख्याति वाद की प्राप्ति होवै नहि। काहे तैं अर्थ की अपरोक्षता मै इंद्रिय संबंध हेतु होवै तौ उक्त रीति सै

अन्यथाख्याति वाद की प्राप्ति होवै। परंतु विषय की प्रत्यक्षता मै इंद्रिय संबंध हेतु नहि। किंतु स्वव्यवहारानुकूल चेतन तैं अभिन्न विषय प्रत्यक्ष कहिये है-यह तृतीय परिच्छेद मै कहैंगे। यातैं विषय की प्रत्यक्षता मै अभिव्यक्त चेतन तैं अभेद हेतु है। औ देशांतरस्थ रजतादिकन का अभिव्यक्तचेतन तैं अभेद है नहि यातैं अपरोक्षता के असंभव तैं पुरोवर्ति देश मै हि अनिर्वचनीय रजतादिकन की उत्पत्ति मानी चाहिये। अन्यथा ख्यातिवाद की प्राप्ति होवै नहि। तैसे अत्यंत असत् रजतादिक माने बी अपरोक्षता नहि संभवै है। सत् माने बाध नहि हुवा चाहिये। क्षणिकविज्ञान रूप माने क्षण मात्र सै अधिक काल रजतादिकन की स्थिति नहि हुयी चाहिये। अख्याति वादी के मत मै बी इदंतारूप तैं रज्जु आदिकन का सामान्यज्ञान प्रत्यक्ष है। सर्पादिकन की स्मृति होवै है। पुरोवर्ति देश मै तिन का प्रत्यक्ष होवै नहि। यातैं रज्जु आदिकन तैं भय पलायनादिक नहि हुये चाहिये। औ रज्जुत्वादि विशेष के दर्शन तैं अनंतर रज्जु आदिकन मै मिथ्या सर्पादिकन की प्रतीति होती भयी। इसरीति सै बाध होवै है। सो नहि हुवा चाहिये 'अयंसर्पः' इत्यादि ज्ञान मै एकत्व की प्रतीति होवै है सो नहि हुयी चाहिये। अंतः करण मै प्रत्यक्ष औ स्मृतिरूप दो ज्ञान एक काल मै संभवैं बी नहि। यातैं अख्याति

ख्यादी का मत बी असंगत होने तैं भ्रम के विषय रजतादिक अनिर्वचनीय हि सिद्ध होवै हैं। औ पूर्व विवर्त लक्षण के निरूपण मै उत्पत्ति नाशवाला होने तैं घटादि कार्य अनिर्वचनीय सिद्ध किया है। तैसे शुक्ति रजतादिक बी उत्पत्ति नाशवाले हैं। यातैं बी अनिर्वचनीय हि माने चाहिये। इस रीति से दोष के अभाव तैं व्यावहारिक विषय मै हि उक्त नियम का संकोच मान्या चाहिये। प्रातिभासिक विषय मै नियम संभवै नहि। याहि तैं इंद्रिय संबंध विना रजतादिक चाक्षुष वृत्ति के विषय मानै नियम का भंगरूप दोष बी होवै नहि। और जो अधिष्ठान इंद्रिय के संबंध तैं अध्यस्त गोचर चाक्षुष वृत्ति मानने मै दोष कहे हैं। शुक्ति मै सम काल हि रंग रजत का चाक्षुष प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। काहे तैं यद्यपि रंग का अध्यास कालांतर मै होवै है। तथापि रंग रजत का आश्रय एक शुक्ति है तासै नेत्रसंयोग जन्यवृत्ति रजत कूं विषय करे है। तिसी वृत्ति का विषय कालांतर भावि रंग बी हुवा चाहिये। काहे तैं वृत्ति मै रजताश्रय संयोग जन्यत्व है। तैसे रंगाश्रय संयोग जन्यत्व बी है। यातैं रजत की न्याईं रंग बी ताका विषय हुवा चाहिये। यातैं अधिष्ठान इंद्रिय संबंध तैं अध्यस्त गोचर वृत्ति नहि होवै है। किंतु सादृश्य ज्ञान तैं मानी चाहिये। सादृश्य ज्ञान बी दोषरूप तैं औ धर्मिज्ञान रूप तैं अध्यास का

कारण है । अध्यस्त रजतादिक साक्षिभास्य हैं। इस रीति सैं धर्मिज्ञान वादी अधिष्ठान इंद्रिय संबंध तैं अध्यस्त गोचर चाक्षुषवृत्ति मानने मै दोष कह कर सादृश्य ज्ञान मै हेतुता की सिद्धि द्वारा अध्यस्त कूं साक्षिभास्य सिद्ध करे हैं। परंतु विचार करैं तौ धर्मिज्ञान वाद मै बी यह दोष समान है । काहे तैं चाकचिक्य रूप सादृश्य का ज्ञान रंग रजताध्यास मै साधारण हेतु है । यातैं रजताध्यास काल मै हि रंग का बी अध्यास हुवा चाहिये। जो धर्मिज्ञान वादी ऐसे कहैं—यद्यपि दृश्यमान. सादृश्यरूप विषय दोष तौ रंग रजत के अध्यास मै साधारण हेतु है। तथापि रजताध्यास काल मै रंग मै रागरूप पुरुष दोष है नहि । औ रजत मै राग है । यातैं शुक्ति मै रजत का हि अध्यास होवै है। रंग का अध्यास होवै नहि, इस रीति सै रजताध्यास काल मै रंग के अध्यास का असंभव धर्मिज्ञान वादी कहैं तौ हमारे मत मै बी तुल्य हि समाधान है । काहे तैं सारी सामग्री होवै. तब कार्य होवै है । रजताध्यास की सारी सामग्री विद्यमान है । यातैं शुक्ति मै रजत की हि उत्पत्ति होवै है । अधिष्ठान इंद्रिय के संबंध तैं उत्पन्न हुवा वृत्ति ज्ञान बी ताकूं हि विषय करे है। रंग मै रागादिरूप पुरुष दोष के अभाव तैं रंगाध्यास की सारी सामग्री है नहि यातैं रंग की उत्पत्ति होवै नहि । वृत्तिज्ञान बी ताकूं विषय नहि करे

है। इस रीति सै प्रमाण के अभाव तैं धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु संभवै नहि। यातैं इंद्रिय संबंध तैं रजतादि विशिष्ट धर्मिगोचर एक हि वृत्ति होवै है तासै पूर्व इदमाकार वृत्ति होवै नहि। तामै अज्ञान निवर्तकत्व के भावाभाव का विचार निर्विषय है। यह उपाध्याय का मत है। सो समीचीन नहि। काहे तैं अन्वय व्यतिरेक तैं दुष्ट इंद्रिय संयोग अध्यास का हेतु उपाध्याय ने कहा है। तासै हि धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। प्रमाण का अभाव कहना संभवै नहि। तथा हि--अहंकारादि अध्यास मै औ स्वप्नाध्यास मै इंद्रिय संयोग कारण नहि संभवै है। याहि तैं लाघव तैं प्रातिभासिकाध्यास मात्र मै इंद्रिय संयोग कारण है। यह कहना संभवै नहि। अभिव्यक्त अधिष्ठान प्रकाश बी कारण नहि माने स्वप्नादि अध्यास अपरोक्ष नहि होवैगा। जो अपरोक्षता की सिद्धि वास्ते स्वप्नादि अध्यास मै अभिव्यक्त अधिष्ठान का प्रकाश हेतु मान के बाह्य प्रातिभासिकाध्यास मै दुष्ट इंद्रिय संयोग हेतु माने तौ गौरव होवैगा। यातैं लाघव तैं प्रातिभासिकाध्यास मात्र मै अनावृत अधिष्ठान प्रकाश हेतु मान्या चाहिये। स्वप्नादि अध्यास का अधिष्ठान साक्षि चेतन स्वभाव सै हि अनावृत है। बाह्य प्रातिभासिकाध्यास मै अधिष्ठान चेतन का अभिव्यंजक वृत्ति है। ताका जनक होने तैं दुष्ट इंद्रियसंयोग बी व्यर्थ नहि यातैं

प्रातिभासिकाध्यास मैं अभिव्यक्त अधिष्ठान प्रकाश रूप धर्मिज्ञान हेतु संभवै है। जो पीत शंखादि अध्यास मैं धर्मिज्ञान का व्यभिचार कहा सो संभवै नहि। काहे तैं जैसे रजतादि अध्यास तैं पूर्व शुक्ति आदि द्रव्य का ग्रहण हुये वी दोषवश तैं शुक्तित्वादिकन का ग्रहण होवै नहि तैसे पीतिमादि अध्यास तैं पूर्व द्रव्यमात्र रूप तैं शंखादिकन का ग्रहण औ दोषवश तैं इंद्रिय संबद्ध वी शुक्ल रूप मात्र का अग्रहण संभवै है यातैं शुक्लरूप कूं त्याग के शंखादि धर्मिमात्र गोचर चाक्षुष प्रत्यक्ष का अंगीकार संभवै है वायु आदिकन के चाक्षुष प्रत्यक्ष की आपत्ति नहि काहे तैं नीरूप द्रव्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष मानै तौ तिन के चाक्षुष प्रत्यक्ष की आपत्ति होवै परंतु दोषवश तैं उद्भूत रूप विशिष्ट हि शंखादिकन के शुक्लरूप का अग्रहण मात्र माने हैं यातैं दोष नहि औ जो शुक्लरूप विशिष्ट हि शंखादिकन का ग्रहण मानलेवैं तौ वी पीतिमादि अध्यास की अनुपपत्ति नहि काहे तैं दोष वश तैं शुक्ल रूपगत शुक्लत्वग्रहण के प्रतिबंधमात्र तैं वी अध्यास संभवै है यातैं प्रतिभासिकाध्यास मात्र मैं अभिव्यक्त अधिष्ठान प्रकाशरूप धर्मिज्ञान हेतु संभवै है व्यभिचार दोष नहि इस रीति सै धर्मिज्ञान की कारणता मैं संयोग कारणता ग्राहक अन्वय व्यतिरेक हि प्रमाण है। तासैं धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। प्रमाण का अभाव कथन असं-

गत है। तैसे अध्यास विशेष मैं सादृश्य ज्ञान द्वारा बी धर्मिज्ञान अध्यास का कारण सिद्ध होवै है। तथा हि– प्रतिबंधक ज्ञान की सामग्री प्रतिबंधक होवै है। तासै हि व्यवस्था मान के सादृश्य ज्ञान मैं कारणता का असंभव उपाध्याय ने कहा है। सो संभवै नहि। काहे तैं समुद्रजल मैं नील शिलातल का अध्यास होवै तहां शुक्लरूप औ जलराशित्वादिक जलगत विशेष है। नेत्र संयुक्त तादात्म्य औ तरंगादि प्रत्यक्ष विशेष ग्राहक सामग्री है। समुद्र जल मैं नीलता का भ्रम औ दूरत्व दोष ताका प्रतिबंधक है। प्रतिबंधक रहित द्विविध सामग्री के होतैं अध्यास होवै नहि। यातैं नीलशिला अध्यास स्थल मैं अप्रतिबद्ध विशेष दर्शन की सामग्री का अभाव चाहिये। उक्त द्विविध प्रतिबंधक होतैं तासै रहित द्विविध सामग्री का अभाव विद्यमान है। यातैं नील शिलातल का अध्यास तौ संभवै है। परंतु दूर मैं नील शिला अध्यास तैं अनंतर समीप प्राप्त पुरुष के यह व्यवहार होवै है। 'अस्मिन् जलधिजले मम दूरे नैल्य नैश्चल्यादि साम्येन नील शिलातलत्व भ्रम आसीत् इदानीं स निवृत्तः' विशेष ग्राहक सामग्री के अभाव मात्र तैं अध्यास माने सादृश्य ज्ञान कारण नहि माने ताका विरोध होवेगा। यातैं जल मैं नीलता भ्रम तैं नीलशिलातल का सादृश्य ज्ञान होवै तासै नील शिलाध्यासे मान्या चाहिये। बहुत क्या कहैं

जहां सदृश मै भ्रम होवै तहां सारे हि 'सादृश्य दोषात् मम पूर्वमन्यथा भ्रम आसीत्, इदानीं स निवृत्तः' यह व्यवहार लोक मै होवै है। यातैं अध्यास विशेष मै दोष रूप तैं सादृश्यज्ञान हेतु मान्या चाहिये। पूर्व सदृशभाग मात्र तैं इंद्रिय संयोग होवै तिस काल मै बी नेत्र संयुक्त तादात्म्यरूप शुक्तित्व ग्राहक सामग्री विद्यमान है। धर्मि-ज्ञान वाद मै दोषरूप तैं सादृश्य ज्ञान ताके प्रतिबंध द्वारा अध्यास का हेतु कहा है। तामै उपाध्याय ने यह दोष कहा है। समीप प्राप्त पुरुष कूं सादृश्य दर्शन के विद्यमान होतैं हि शुक्तित्व का ज्ञान होवै है। यातैं व्यभिचार होने तैं सादृश्य ज्ञान शुक्तित्व ग्राहक सामग्री का प्रतिबंधक संभवै नहि। किंतु दूरत्वादि दोष हि ताके प्रतिबंध द्वारा अध्यास का हेतु मान्या चाहिये। परंतु उपाध्याय के मत मै बी यह दोष समान है। काहे तैं दूरस्थ कूं बी कदाचित् शुक्तित्व प्रमा होवै है। तैसे रजत रागी कूं बी समीप शुक्ति दर्शन होवै है। यातैं व्यभिचार होने तैं दूरत्वादिक बी शुक्तित्व ग्राहक सामग्री के प्रतिबंध द्वारा अध्यास के हेतु नहि होवैंगे। जो कदाचित् किसी अध्यास व्यक्ति मै विशेष ग्राहक सामग्री के प्रतिबंध द्वारा दूरत्वादिक हेतु होवै हैं। यातैं दोषरूप तैं अध्यास के हेतु कहैं तो सादृश्य ज्ञानरूप दोष तैं हि 'सेयं दीपज्वाला' इत्यादि भ्रम अनुभव सिद्ध है। तैसे रजतादि अध्यास मै बी सादृश्य ज्ञान बी

दोषरूप तैं अवश्य कारण मान्या चाहिये। सादृश्यज्ञान मै दोषरूप तें भ्रम की हेतुता भाष्यकार कूं बी संमत है। यातैं ताका निषेध बनै नहि इस रीति सै सादृश्यज्ञान-रूप तैं बी धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध होवै है। किंच अधिष्ठान इंद्रिय के संबंध तैं अध्यस्त की उत्पत्ति औ ताका ज्ञान उपाध्याय माने हैं। तहां अन्य के संबंध तैं अन्यगोचर ज्ञान मानने मै गौरव होवै है। यद्यपि अधिष्ठान औ अध्यस्त का तादात्म्य होवै है। तथापि अध्यस्त सै अधिष्ठान अन्य है। ताके संबंध तैं अध्यस्त गोचर वृत्ति माने गौरव स्पष्ट हि है। तैसे विषय इंद्रिय के संबंध तैं ज्ञान की उत्पत्ति हि प्रसिद्ध है। अर्थ की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहि। तासै रजतादि अर्थ की उत्पत्ति मानने मै बी अप्रसिद्ध की कल्पनारूप गौरव स्पष्ट हि है। यातैं अधिष्ठान इंद्रिय के संबंध तैं अध्यस्तरजतादि गोचर चाक्षुप वृत्ति मान के 'चक्षुषा रजतं पश्यामि' इस रीति सै तिन मै चाक्षुपता अनुभव का संभव होय सके नहि किंतु पूर्व उक्त रीति सै परंपरा तैं चक्षु का उपयोग मान के हि रजतादिकन मै ताका संभव कहा चाहिये। तैसे रजतादि अर्थ की उत्पत्ति बी धर्मिज्ञान तैं हि मानी चाहिये। दुष्ट इंद्रिय संयोग तैं ताकी उत्पत्ति कहना संभवै नहि। जो स्वर्यमाणा रोप मै परंपरा तैं बी चक्षु के उपयोग का असंभव कहा। नीलरूप विशिष्ट अधिष्ठान गोचर चाक्षुप वृत्ति का

अंगीकार नहि। यातैं रक्त वस्त्रादिकन मैं नीलताध्यास होवै तहां किसी रीति सैं बी चक्षु की अपेक्षा संभवै नहि। सो बी संभवै नहि। काहे तैं रक्त वस्त्रादिकन मैं नीलताध्यास होवै तासैं पूर्व बी वस्त्रादिरूप धर्मिमात्र गोचर चाक्षुष वृत्ति संभवै है। परंतु इतना भेद है—नीलताध्यास तैं पूर्व वस्त्रगोचर औ धवल भूमिस्थ निर्मलजल गोचर-तौ चाक्षुष वृत्ति होवै है। औ आकाश का ज्ञान आलोकाकार चाक्षुषवृत्ति मैं अभिव्यक्त साक्षिरूप है। यातैं 'नील वस्त्रं चक्षुषा पश्यामि' इत्यादि चाक्षुषता अनुभव का विरोध नहि। और जो पंचपादिका मैं जन्मांतर के संस्कार तैं बालक कूं मधुर मैं तिक्तताध्यास कहा है तासैं अध्यस्त कूं ऐंद्रियक वृत्ति का विषय सिद्ध किया। सो बी नहि संभवै है। काहे तैं पंचपादिका विवरणादिकन मै दोष संस्कार अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान प्रातिभासिक पदार्थ की उत्पत्ति मैं हि हेतु प्रसिद्ध हैं। यातैं पंचपादिका मैं जन्मांतर के संस्कार तैं तिक्तरस की उत्पति हि विवक्षित है। संस्कार सहकृत रसन इंद्रिय तैं तिक्तरस का साक्षात्कार विवक्षित नहि। यातैं पंचपादिका ग्रंथ तैं तिक्तरस मै ऐंद्रियकता सिद्ध होय सके नहि। स्वरूप सैं अध्यस्त तिक्तरस मै रासनता अनुभव भ्रमरूप है। मधुर दुग्धाकार त्वाच वृत्ति होवै है। तामै अभिव्यक्त साक्षी तैं हि तिक्तरस का प्रकाश

संभवै है। यातैं रसन इंद्रिय की अपेक्षा नहि मानै बी दोष नहि। जो तिक्तताध्यास स्थल मै ताकी अपेक्षा मान लेवैं तौ बी अध्यस्यमान तिक्तरस मै ऐंद्रियकता सिद्ध होवै नहि। काहे तैं तिक्तताध्यास का अधिष्ठान दुग्धादि-निष्ठ मधुर रस है। पंचपादिका मै बी मधुरपद मधुररस पर हि है रसन इंद्रिय तैं ताका ग्रहण होवै है परंतु दोष-वश तैं मधुररसत्व जाति का ग्रहण होवै नहि। यातैं तिक्तता-ध्यास बी संभवै है। रसन इंद्रिय जन्य ज्ञान की विषयता-रूप रासनता अधिष्ठानरूप मधुररस मै है। ताके संबंध का तिक्तरस मै आरोप होवै है। यातैं अपने मै आरोपणीय जो अधिष्ठान गत रासनता का संबंध ताकी सिद्धि वास्ते तिक्तरस कूं रसन इंद्रिय की अपेक्षा होने तैं तामै रासनता अनुभव संभवै है। तिक्तरस मै रासन वृत्ति की विषयता सिद्ध होय सके नहि। यातैं प्राचीन आचार्य उक्त अध्यस्त कूं साक्षिभास्यता निरपवाद है। औ जो संयोग सै आदि लेके लौकिकालौकिक भेद तै नव विध संनिकर्ष है। तामै अनुगत संनिकर्षत्व धर्म का निरूपण होय सके नहि। यातैं शाब्दप्रत्यक्ष तैं भिन्न जन्य प्रत्यक्षमात्र मै विषय इंद्रिय का संनिकर्ष कारण है। या नियम का असंभव कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं संयोगादि अन्यतमत्व हि अनुगत संनिकर्षत्व संभवै है। तात्पर्य यह— संयोगादि नवविध संनिकर्ष प्रतियोगिक नवभेद

संयोगादि भिन्न वस्तु मात्र मै रहे हैं। संयोगादिकन मै रहैं नहिं। यातैं संयोगादि भेद नव का अभाववत्व हि संयोगादि अन्यतमत्व सिद्ध होवै है सोई अनुगत संनिकर्षत्व है। यातैं इंद्रिय संबंध विना अध्यस्त कूं ऐंद्रियक वृत्ति का विषय माने नियम का विरोध दुर्वार है। और जो कहा प्रातिभासिक रजतादिकन कूं ऐंद्रियक नहि माने 'चक्षुषारजतं पश्यामि' इत्यादि अनुभव का विरोध होवैगा। यातैं इंद्रिय संबंध विना बी तिन कूं ऐंद्रियक मान के व्यावहारिक विषय मै नियम का संकोच मान्या चाहिये। सो बी नहि संभवै है। काहे तैं स्वप्नपदार्थन मै ऐंद्रियकता का अभाव श्रुति सिद्ध है। तौ बी 'चक्षुषा करिणं पश्यामि' इस रीति सै ऐंद्रियकता का अनुभव भ्रमरूप होवै है। तैसे रजतादिकन कूं ऐंद्रियक नहि-मानै बी ऐंद्रियकता अनुभव भ्रमरूप संभवै है। यातैं नियम का संकोच संभवै नहि। इस रीति सै धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु सिद्ध हुवा। यातैं रजतादि अध्यास तैं पूर्व इदमाकार प्रमा वृत्ति मानी चाहिये। अज्ञातगोचर वृत्ति आवरण का निवर्तक है। या नियम का तामै व्यभिचार की शंका औ समाधानरूप विचार सविषय हि है। निर्विषय नहि। धर्मिज्ञान वाद मै बी दो पक्ष हैं। बहुत ग्रंथकार तौ अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास के भेद तैं द्विविध अध्यास मान के इदमाकार वृत्ति तैं भिन्न अध्यस्ताकार अविद्या की

वृत्ति माने हैं। कोई ग्रंथकार इदमाकार एक हि वृत्ति माने हैं। तासै भिन्न अध्यस्ताकार वृत्ति नहि माने हैं। तिन का यह तात्पर्य है—यद्यपि धर्मिज्ञान अध्यास का कारण है। यातैं इदमाकार वृत्ति तौ मानी चाहिये। परंतु तासै भिन्न अध्यस्ताकार वृत्ति माननी व्यर्थ है। तथा हि अध्यस्त के भान वास्ते इदमाकार वृत्ति तैं भिन्न अध्यस्ताकार वृत्ति माने तौ संभवै नहि। काहे तैं इदमाकार वृत्ति चेतन का अध्यस्त सै संबंध होने तैं तासै हि ताका भान संभवै है, अध्यस्ताकार वृत्ति का अंगीकार निष्फल है। यद्यपि इदमाकार वृत्ति मै अभिव्यक्त साक्षी का अध्यस्त सै संबंध है। यातैं साक्षी तैं अध्यस्त का प्रकाश माने तौ अधिष्ठान के विशेष अंश तैं बी साक्षी का संबंध विद्यमान है ताका बी तासै प्रकाश हुवा चाहिये। तथापि स्व संबंधी अनावृत पदार्थ का हि साक्षी तैं प्रकाश होवै है अधिष्ठान का विशेष अंश अनावृत नहि। यातैं साक्षी के संबंधी बी विशेष अंश की तासै प्रकाश की आपत्ति नहि जो इदमाकार प्रमा वृत्ति मै अभिव्यक्त साक्षी तैं अध्यस्त का प्रकाश मानने मै भ्रमत्व प्रमात्व का संकर दोष कहे हैं। सो बी संभवै नहि। काहे तैं भ्रमत्व प्रमात्व दोनूं धर्म एक ज्ञान मै मानै तौ संकर होवै। परंतु इदमाकार प्रमा वृत्ति का धर्म प्रमात्व है, भ्रमत्व धर्म या मत मै साक्षिरूप ज्ञान का है। याहि तैं भ्रम ज्ञान

की अप्रसिद्धिरूप दोष बी नहि। इस रीति सै इदमाकार वृत्ति चेतन तैं हि अध्यस्त का भान संभवै है। ताके भान वास्ते अध्यस्त गोचर वृत्ति का अंगीकार निष्फल है। जो संस्कार की उत्पत्ति वास्ते वृत्ति का अंगीकार करैं। तथापि नहि संभवै है। काहे तैं शुक्ति रजतादिक साक्षिभास्य हैं। साक्षी स्वरूप से यद्यपि नित्य है, तथापि स्वाभिव्यंजक इदमाकार वृत्ति उपहितरूप तैं अनित्य है। वृत्ति के नाश तैं ताका नाश होने तैं रजतादि गोचर संस्कार संभवै है। यातैं संस्कार की उत्पत्ति वास्ते बी इदमाकार वृत्ति तैं भिन्न अध्यस्ताकार अविद्या वृत्ति का अंगीकार निष्फल है। जो अन्यगोचर वृत्ति तैं अन्य गोचर संस्कार का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं जा वृत्ति चेतन मै जितने पदार्थ भासैं ता वृत्ति सैं तिन पदार्थन के संस्कार होवै हैं। यह पूर्व कहा है। यातैं दोष नहि। इस रीति सै अन्य गोचर वृत्ति तैं बी स्व गोचर संस्कार मानै तिन के मत मै इदमाकार एक हि ज्ञान होवै है। अध्यस्त गोचर द्वितीय ज्ञान होवै नहि। जो स्वगोचर वृत्ति तैं हि स्वगोचर संस्कार माने हैं तिन के मत मै अध्यस्तगोचर द्वितीय वृत्ति बी होवै है। तिन मै बी कोई यह कहे हैं—अध्यास का कारण इदमाकार एक वृत्ति प्रथम होवै है। पश्चात् 'इदं रजतं' यह द्वितीय वृत्ति अध्यस्त रजत गोचर होवै है। परंतु

इदंता गोचर हुयी हि अध्यस्त गोचर होवै है। केवल अध्यस्त गोचर होवै नहि। काहे तैं 'इदं रजतं जानामि' इस रीति सै द्वितीय वृत्ति मै उभय पदार्थ गोचरता अनुभव सिद्ध है। तिन सै अन्य ग्रंथकार द्वितीय वृत्ति अध्यस्त मात्र गोचर माने हैं इदंता गोचर नहि माने हैं। तथा हि—जैसे शुक्तिचेतनस्थ अविद्या का रजताकार परिणाम होवै है। तैसे इदमाकार वृत्ति चेतनस्थ अविद्या का रजत गोचर ज्ञानाकार परिणाम होवै है। काहे तैं रजत की न्याईं ताके ज्ञान का बी बाध अनुभव सिद्ध है। यातैं रजत का ज्ञान बी प्रातिभासिक हि मान्या चाहिये। व्यावहारिक कहना संभवै नहि। ज्ञानाभास का विषय बी रजतमात्र है। इदंता ताका विषय नहि। प्रत्यक्ष अनुमानादिक ज्ञान के करण प्रसिद्ध हैं। तिन सै अजन्य होने तैं रजतज्ञान कूं ज्ञानाभास कहे हैं। यद्यपि रजत-मात्र ज्ञानाभास का विषय माने 'रजतं जानामि' इस रीति सै तामै रजतमात्र-विषयकत्व हि भास्या चाहिये। 'इदं रजतं जानामि' इस रीति सै इदं पदार्थ विषयकत्व नहि भास्या चाहिये। तथापि जैसे शुक्ति की इदंता का संबंध रजत मै उपजे है तैसे भ्रमज्ञान का अधिष्ठान इदमाकार वृत्ति है। तामै इदं पदार्थ विषयकत्व है। ताका अनिर्वचनीय संबंध भ्रमज्ञान मै उपजे है। यातैं भ्रम का विषय इदंता नहि मानै बी 'इदं रजतं जानामि'

इस रीति सैं भ्रमज्ञान मैं इदं पदार्थ विषयकत्व का भान संभवै है। विरोध नहि। यद्यपि रजत की न्याईं रजत मैं इदंता का संबंध बी अध्यस्त है यातैं रजत गोचर ज्ञाना भास का विषय मान्या चाहिये। औ संबंधी के भान विना संबंध का भान होवै नहि। यातैं इदंता बी ताका विषय अवश्य मानी चाहिये। रजतमात्र ज्ञानाभास का विषय कहना संभवै नहि। तथापि स्वभासित संबंधी का संबंध स्व मैं भासे है। औ स्व तादात्म्यवाले तैं भासित संबंधी का संबंध बी स्व मैं भासे है। जैसे 'रूपी घटः' याज्ञान तैं भासित संबंधी रूप है ताका घट मैं संबंध 'रूपी घटः' या ज्ञान मैं भासै है। तैसे ज्ञानाभास के तादात्म्यवाला इदमाकार ज्ञान है तासै भासित संबंधी इदंता है ताका रजत मैं संबंध ज्ञानाभास मैं भासे है। यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि भ्रम मैं तौ इदंता का भान नहि होवै है। तथापि अधिष्ठान होने तैं भ्रम के तादात्म्यवाला इदमाकार ज्ञान है तासै भासित इदंता के संबंध का भ्रम मैं भान संभवै है। दोष नहि। यद्यपि विवरणकार ने अधिष्ठान अध्यस्त नियम तैं एक ज्ञान के विषय कहे हैं। इदमाकार वृत्ति तैं भिन्न अध्यस्त मात्र गोचर अविद्या की वृत्ति माने ताका विरोध होवैगा। तथापि विवरणकार ने हि अध्यस्त मात्र गोचर अविद्या वृत्ति मानी है। यातैं अधिष्ठान अध्यस्त एक ज्ञान के हि विषय होवै हैं। या नियम मैं ज्ञान पद

वृत्तिज्ञान पर नहि। किंतु साक्षि पर मान्या चाहिये। यातैं वृत्ति का भेद हुये बी इदमाकार वृत्ति मै अभिव्यक्त एक साक्षी का विषय अधिष्ठान अध्यस्त संभवै हैं, विरोध नहि। इस रीति सै उपाध्याय के मत मै अध्यास तैं पूर्व इदमाकार वृत्ति का अंगीकार नहि। यातैं अज्ञात गोचर वृत्ति आवरण का निवर्तक है। या नियम के व्यभिचार की शंका हि होवै नहि। धर्मिज्ञान वाद मै शंका होवै है। मतभेद तैं ताका समाधान पूर्व कहा है। धर्मिज्ञान वाद मै हि अध्यास स्थल मै कोई एक हि वृत्ति माने हैं। अन्य अध्यस्त गोचर द्वितीय वृत्ति बी माने हैं। ज्ञानद्वयपक्ष मै बी कोई अध्यस्त रजतादि विशिष्ट धर्मि गोचर द्वितीय वृत्ति माने हैं। अन्य अध्यस्त मात्र गोचर माने हैं ताका प्रकार कहा। पूर्व विषय देश मै वृत्ति का निर्गमन कहा है। तामै यह शंका होवै है—जैसे अधिष्ठान अध्यस्त का भान साक्षी तैं कहा है तैसे सकल पदार्थन का साक्षी तैं हि भान संभवै है। वृत्ति का अंगीकार हि निष्फल है विषय देश मै ताका निर्गमन तौ अत्यंत दूर है। जो विषय का अनुभव केवल साक्षिरूप माने साक्षी नित्य है। यातैं संस्कार द्वारा स्मृति का असंभव होवैगा। औ घटादिज्ञान मै इंद्रिय का अन्वयव्यतिरेक देखिये है नित्य साक्षिरूप ज्ञान मै ताका बी असंभव होवैगा। यातैं वृत्ति मानी चाहिये। तथापि ताका निर्गमन मानना

निष्फल है। काहे तैं परोक्ष वह्नि आदिकन का प्रकाश अनिर्गत वृत्ति चेतन तैं होवै है। तैसे घटादिकन का प्रकाश बी अनिर्गत वृत्ति चेतन तैं हि संभवै है।"जो परोक्षापरोक्ष ज्ञान मै विलक्षणता अनुभव सिद्ध है। अपरोक्षस्थल मै बी वृत्ति का निर्गमन नहि मानै ताका असंभव कहैं, तथापि संभवै नहि। काहे तैं शाब्दज्ञान औ अनुमितिज्ञान मै शब्द अनुमान रूप करण विशेष प्रयुक्त शाब्दत्व अनुमितित्व रूप विलक्षणता है। तैसे इंद्रियजन्य ज्ञान अपरोक्ष है। अनुमानादिजन्य परोक्ष है। इस रीति सै करण विशेष प्रयुक्त हि विलक्षणता संभवै है। यातैं परोक्षापरोक्ष ज्ञान मै विलक्षणता की सिद्धि वास्ते बी वृत्ति का निर्गमन कहना संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं--प्रत्यक्ष स्थल मै विषय चेतन हि घटादि विषय का प्रकाशक है, जीव चेतन ताका प्रकाशक नहि। काहे तैं अधिष्ठान होने तैं विषय चेतन का विषय सै साक्षात् तादात्म्य संबंध है उपादानता के अभाव तैं जीव चेतन का साक्षात् तादात्म्य संबंध नहि। औ तादात्म्य संबंध संभवै तहां स्वरूप संबंध मानना अयुक्त है। तैसे साक्षात् संबंध संभवै तहां परंपरा संबंध मानना बी युक्त नहि। यातैं विषय चेतन हि विषय का प्रकाशक मान्या चाहिये। जीव चेतन प्रकाशक संभवै नहि। औ विषयावच्छिन्न

ब्रह्म चेतन आवृत है। यातैं ताकी अभिव्यक्ति वास्ते वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। यद्यपि उक्त युक्ति तैं परोक्षस्थल मैं बी विषय चेतन हि विषय का प्रकाशक सिद्ध होवै है। तहां बी वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। तथापि निर्गत वृत्ति का विषय तैं संबंध होवै है। व्यवहित वह्नि आदिकन तैं वृत्ति का संबंध संभवै नहि। औ प्रत्यक्ष स्थल मै वृत्ति निर्गमन मै इंद्रिय रूप द्वार अन्वय व्यतिरेक तैं सिद्ध है। तैसे परोक्षस्थल मै द्वार प्रतीत होवै नहि। यातैं बी वृत्ति का निर्गमन संभवै नहि। औ वृत्ति निर्गमन विना आवृत विषय चेतन तैं विषय का प्रकाश संभवै नहि। यातैं परोक्षस्थल मै अनिर्गत वृत्ति चेतन हि स्वरूप संबंध तैं विषय का प्रकाशक मान्या चाहिये। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार उक्त युक्ति तैं वृत्ति का निर्गमन सिद्ध करे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह युक्ति कहे हैं—चेतन के साक्षात् तादात्म्य संबंध तैं हि अहंकार सुखादिकन मै अपरोक्षता प्रसिद्ध है। तैसे घटादिकन मै बी चेतन के साक्षात् तादात्म्य संबंध तैं हि अपरोक्षता मानी चाहिये। विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन का हि घटादि विषय सै साक्षात् तादात्म्य संभवै है। जीव चेतन का साक्षात् तादात्म्य संभवै नहि। यातैं विषयावच्छिन्न ब्रह्म चेतन हि घटादि विषय का प्रकाशक होने तैं ताकी अभिव्यक्ति वास्ते वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। अपर ग्रंथकार

यह कहे हैं—श्रुत अनुमित पदार्थ से प्रत्यक्ष पदार्थ मै स्पष्टता अनुभव सिद्ध है। काहे तैं रसाल माधुर्यादिकन का अनेक वार आप्तवक्ता उपदेश करै तौ वी जिज्ञासा निवृत्त होवै नहि तहां स्पष्टता के अभाव तैं हि जिज्ञासा की अनुवृत्ति कहि चाहिये। औ प्रत्यक्ष वस्तु मै जिज्ञासा रहै नहि। तामै स्पष्टता हि ताका निवर्तक कहि चाहिये। औ अनावृत स्वप्रकाशक चेतन के तादात्म्य तैं हि प्रत्यक्ष ग्राह्य वस्तु मै स्पष्टता होवै है। काहे तैं सुखादिकन मै अनावृत स्वभासक साक्षिचेतन के तादात्म्य तैं स्पष्टता अनुभव सिद्ध है। मनन निदिध्यासन तैं पूर्व महावाक्य जन्य वृत्ति ज्ञान तैं अज्ञान निवृत्त होवै नहि। यातैं अनावृत स्वप्रकाशक चेतन के तादात्म्याभाव तैं ब्रह्म मै स्पष्टता नहि होवै है। मननादिकन तैं उत्तर अज्ञान निवृत्त होवै तब स्पष्टता होवै है। इस रीति से अन्वय व्यतिरेक तैं आवरण की निवृत्ति हि स्पष्टता का साधक है। यातैं प्रत्यक्ष स्थल मै ताकी निवृत्ति वास्ते वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। इस रीति सै वृत्ति निर्गमन शंका के समाधान मै तीन मत कहे हैं। तिन मै विषय चेतनस्थ अज्ञान की निवृत्ति वास्ते हि वृत्ति का निर्गमन सिद्ध होवै है। तामै पुनः यह शंका होवै है—वृत्ति का निर्गमन संभवै नहि। काहे तैं निर्गमन नहि मानने मै सिद्धांती यह दोष कहे हैं। निर्गत वृत्ति का विषय चेतन

तैं संबंध होने तैं ज्ञानाज्ञानका आश्रय विषय एक संभवै है। वृत्ति का निर्गमन नहि माने विषय हि एक संभवै है आश्रय एक संभवै नहि। औ ज्ञानाज्ञान के विरोध का साधक समानाश्रय विषयत्व है। समान विषयत्व मात्र ताका साधक नहि। जो समान विषयत्व मात्र ज्ञानाज्ञान के विरोध का साधक माने तौ देवदत्त के घट ज्ञान तैं यज्ञदत्त का घटाज्ञान बी निवृत्त हुवा चाहिये। काहे तैं देवदत्त के घटज्ञान का औ यज्ञदत्त के घटाज्ञान का विषय एक घट है। इस रीति सै वृत्ति निर्गमन माने विना समानाश्रय विषयत्व की असिद्धि तैं अन्य के ज्ञान तैं अन्याज्ञान निवृत्ति की आपत्तिरूप दोष होवैगा। यातैं समानाश्रय विषयत्व की सिद्धि वास्ते वृत्ति का निर्गमन सिद्धांती माने हैं। परंतु विचार करैं तौ विरोध का साधक समानाश्रय विषयत्व मान के वृत्ति का निर्गमन माने बी दोष को उद्धार होयं सके नहि। काहे तैं यज्ञदत्त के घटाज्ञान का आश्रय घटावच्छिन्न चेतन है। तामै देवदत्त के घटज्ञान रूप वृत्ति की निर्गमन द्वारा स्थिति होवै तब आश्रय विषय एक होने तैं देवदत्त के घट ज्ञान तैं यज्ञदत्त के घटाज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। यातैं समानाश्रय विषयत्व बी ज्ञानाज्ञान के विरोध का साधक नहि संभवै है। किंतु 'यदज्ञानं यं पुरुषं प्रति यद्विषयावरकं तत् तदीय तद्विषयकज्ञाननिवर्त्यं' अर्थ यह—जो

अज्ञान जिस पुरुष के प्रति जा विषय का आवरक होवै सो ताके ता वस्तु गोचर ज्ञान तैं निवृत्त होवै है। इस रीति सै विरोध का प्रयोजक कह्या चाहिये। या प्रयोजक मै वृत्ति निर्गमन की अपेक्षा नहि। काहे तैं वृत्ति निर्गमन विना बी यज्ञदत्त के प्रतिघटावरक अज्ञान की ताके ज्ञान तैं हि निवृत्ति होवै है। देवदत्त के ज्ञान तैं नहि। यातैं वृत्ति का निर्गमन संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—वृत्ति का निर्गमन नहि माने ज्ञानाज्ञान के विरोध का प्रयोजक हि निरूपण होय सके नहि काहे तैं समान विषयत्व वा समानाश्रय विषयत्व प्रयोजक मानने मै दोष कह्या है तैसे तृतीय प्रयोजक माने बी परोक्षज्ञान तैं बी विषयगत अज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। यातैं अज्ञान के आश्रय चेतन तैं जाका संबंध होवै ता ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति होवै है। इस रीति सै तृतीय नियम मै अज्ञान निवर्तक ज्ञान का विशेषण कह्या चाहिये। मूलाज्ञान का आश्रय ब्रह्म है तासै महावाक्यजन्य ज्ञान का संबंध होवै है। यातैं महावाक्यजन्य ज्ञान तैं मूलाज्ञान की निवृत्ति संभवै है। यद्यपि ब्रह्म सर्व का उपादान है औ उपादान से कार्य का संबंध होवै है। यातैं अवांतर वाक्यजन्य ज्ञान का बी ब्रह्म सै संबंध होने तैं तासै बी मूलाज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। यद्यपि अवांतर वाक्यजन्यज्ञान तैं बी असत्त्वापादक

अज्ञान अंश का तौ नाश होवै है। परंतु अभानापादक अज्ञान अंश का बी नाश हुवा चाहिये। तथापि प्रमाण की महिमा तैं जा ज्ञान का अज्ञान के आश्रय चेतन तैं संबंध होवै ता ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति होवै है। अवांतर वाक्यजन्य ज्ञान का ब्रह्म सैं संबंध प्रमाण महिमा तैं नहि। किंतु विषय की महिमा तैं है। यातैं तासै अज्ञान निवृत्ति की आपत्ति नहि। तैसे ऐंद्रियक वृत्ति बी प्रमाण की महिमा तैं विषय चेतन तैं संबंधवाली होवै हैं। यातैं तिन सै बी अज्ञान की निवृत्ति संभवै है। यातैं ज्ञानाज्ञान के विरोध का यह प्रयोजक सिद्ध हुवा- 'यदज्ञानं यं पुरुषं प्रतियद्विषयावरकं तत् तदीय तद्विषयकेन प्रमाणमहिम्ना तदज्ञानाश्रयचैतन्य संसृष्ट ज्ञानेन निवर्त्यं' अर्थ यह—जो अज्ञान जिस पुरुष के प्रति जा विषय का आवरक होवै सो ताके ता विषय गोचर औ प्रमाण महिमा तैं तिस अज्ञान के आश्रय चेतन तैं संबंधवाले ज्ञान तैं निवृत्त होवै है। घटादि विषय चेतन मैं ताके आवरक अनंत अज्ञान हैं। तिन मैं कोई देवदत्त के प्रति घटादि विषय के आवरक हैं। कोई यज्ञदत्तादिकन के प्रति ताके आवरक हैं। इस रीति से एक एक विषय मैं अनंत अज्ञान हैं। तिन मै जो अज्ञान देवदत्त के प्रति घट का आवरक है। सो घट गोचर औ इंद्रियरूप प्रमाण की महिमा तैं स्वाश्रय घट चेतन तैं संबंध वाले देवदत्त

के ज्ञान तैं निवृत्त होवै है। यहि रीति सर्वत्र जानि लेनी। इस रीति से घटादि विषय चेतन अज्ञान का आश्रय है तासैं संबंध विना वृत्तिज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति संभवै नहि। यातैं ज्ञानाज्ञान के विरोध की सिद्धि वास्ते वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। इस रीति सैं कित ने ग्रंथकार ज्ञानाज्ञान के विरोध की सिद्धि वास्ते वृत्ति का निर्गमन सिद्ध करे हैं। ताहि मै अन्य ग्रंथकार हेतु यह कहे हैं—ज्ञान तैं विषयगत अज्ञान की निवृत्ति का ग्रहण अन्वयव्यतिरेक तैं होवै है। तहां समानाधिकरण ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति मानै लाघव है। व्यधिकरण ज्ञान तैं ताकी निवृत्ति माने गौरव होवैगा। औ वृत्ति निर्गमन विना ज्ञानाज्ञान का सामानाधिकरण्य संभवै नहि। यातैं वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। इहां यह तात्पर्य है—अज्ञान विषय चेतनगत है। औ प्रतियोगी के अधिकरण मै हि ताकी निवृत्ति प्रसिद्ध है। यातैं अज्ञान की निवृत्तिरूप ज्ञान का कार्य बी विषय चेतन गत हि मान्या चाहिये। औ कार्य कारण का बी बहुत स्थान मै समानाधिकरण हि होवै है। यातैं अज्ञान निवृत्तिरूप कार्य का इंद्रिय द्वारा कारण ज्ञान तैं सामानाधिकरण्य का संभव हुये ताका त्याग बनै नहि। यातैं वृत्ति का निर्गमन सिद्ध होवै है। अपर ग्रंथकार यह कहे हैं—अन्यत्र विद्यमान आलोक तैं अन्यत्र विद्यमान अंधकार की निवृत्ति होवै नहि। किंतु समानाधिकरण हि तम-प्रकाश का निवर्त्य निवर्तकभाव दृष्ट है। तैसे समान-

धिकरण हि ज्ञानाज्ञान का विरोध कहा चाहिये। अज्ञान के आश्रय घटादि चेतन तैं वृत्ति के संबंध विना ज्ञानाज्ञान का सामानाधिकरण्य संभवै नहि। यातैं विषय देश मै वृत्ति का निर्गमन मान्या चाहिये। इस रीति सै अनिर्गत वृत्ति तैं बी विषय चेतनस्थ अज्ञान की निवृत्ति संभवै है। यातैं ताका निर्गमन मानना निष्फल है। या शंका का वृत्ति निर्गमन विना ताकी निवृत्ति नहि संभवै है। यातैं वृत्ति निर्गमन का अंगीकार सफल है। यह समाधान कहा। औ कितने ग्रंथकार तौ अज्ञान की निवृत्ति वास्ते वृत्ति का निर्गमन नहि मान के बी चिदुपराग वास्ते वा विषय प्रकाशक ब्रह्म चेतन तैं प्रमातृचेतन की अभेदाभिव्यक्ति वास्ते ताका निर्गमन सिद्ध करे हैं। अविद्या मै प्रतिबिंब रूप जीव चेतन का विषय तैं संबंध हि चिदुपराग शब्द का अर्थ है। चिदुपराग औ अभेदाभिव्यक्ति का प्रकार पूर्व विस्तार सै निरूपण किया है। यातैं इहां विस्तार लिखा नहि। जीव ब्रह्म के अभेद मै प्रमाण वेदांतवाक्य हैं। यातैं विषय प्रकाशक ब्रह्म चेतन तैं प्रमातृचेतनरूप जीव के अभेद मै प्रमाणाभाव की शंका संभवै नहि॥

इति सिद्धांत दिग्दर्शने प्रथमः परिच्छेदः।

श्रीगणेशाय नमः

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

—·*—

श्लोक—प्रथमे हि परिच्छेदे तात्पर्यात्तन्निरूपितः।
शास्त्रस्य प्रथमे प्रोक्तो वेदांतानां समन्वयः ॥१॥
शारीरकस्य चाध्याये द्वितीये संप्रकीर्तितः।
अविरोधोप्यन्नादीनां सत्वत्र सन्निरूप्यते ॥२॥

श्लोकन का अर्थ स्पष्ट है तात्पर्य यह है—प्रथम परिच्छेद मैं उत्पत्ति स्थिति लयकारणत्व ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा है। सो संक्षेप शारीरकानुसारिमत मैं तत्पद लक्ष्यार्थ-रूप शुद्ध ब्रह्म का लक्षण है विवरण के अनुसारिमत मैं तत्पदवाच्यार्थ रूप ईश्वर का लक्षण है तासै तत्पद के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ का निरूपण किया। तासै अनंतर जीव का स्वरूप औ साक्षी के निरूपण तैं त्वं पद के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ का निरूपण किया। औ तत् त्वं पद के लक्ष्यार्थ के निरूपण तैं तिन के अभेद रूप वाक्यार्थ का निरूपण बी अर्थ सै सिद्ध होवै है। काहे तैं तत् त्वं पद के लक्ष्यार्थ सै तिन का अभेद रूप वाक्यार्थ न्यारा नहि। यातैं जीवाभिन्न निर्विशेष ब्रह्म मैं वेदांत-वाक्यन का तात्पर्य शारीरक शास्त्र के प्रथमाध्याय का अर्थ है। प्रथम परिच्छेद मैं ताका तात्पर्य तैं निरूपण

सिद्ध हुवा। वेदांतवाक्यन के तात्पर्य का प्रत्यक्षादि प्रमाणांतर सै अविरोध द्वितीयाध्याय का अर्थ है। अब ताके निरूपण वास्ते द्वितीय परिच्छेद का आरंभ करे हैं। तहां प्रथम यह शंका होवै है—प्रत्यक्षादि विरोध तैं अद्वितीय ब्रह्म मै वेदांतवाक्यन का तात्पर्य संभवै नहि। शंकावादी का तात्पर्य यह है—द्वैतप्रपंच प्रत्यक्षादि प्रमाण तैं सिद्ध है। तासै ब्रह्म की अद्वितीयता बाधित है। बाधित अर्थ मै वेदांतवाक्यन का तात्पर्य माने वेदांत-वाक्य अप्रमाण होवैंगे। समाधान यह है—पूर्व विवर्त लक्षण के निरूपण मै युक्ति तैं प्रपंच मिथ्या सिद्ध किया है। औ'वाचारंभणं विकारो नाम धेयं' इत्यादि श्रुति तैं बी मिथ्या ही सिद्ध होवै है। मिथ्या प्रपंच तैं वास्तव अद्वितीयता का बाध होवै नहि। यातैं अबाधित अद्वितीय ब्रह्म मै वेदांतवाक्यन का तात्पर्य संभवै है। अप्रमाणता की शंका संभवै नहि। विकार कहिये घटादि कार्य वाचा कहिये घटादि शब्द तैं आरंभणं कहिये व्यवहार करिये है। दुर्निरूप होने तैं विकार वास्तव नहि। यातैं नाम धेयं कहिये कार्य कारण का भेद व्यवहार नाम मात्र है। यह श्रुतिवाक्य का अर्थ है। इस रीति सै द्वैत ग्राहि प्रत्यक्षादि विरोध तैं अद्वैत श्रुति के बाध की शंका हुये, द्वैत मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति युक्ति विरोध तैं प्रत्यक्षादिकन का हि मिथ्यार्थ बोधकता रूप

बाध कहा। तामै पुनः यह आक्षेप होवै है—'घटःसन् पटः सन्' इस रीति सै घटादि प्रपंच की सत्ता प्रत्यक्षादि-सिद्ध है। यातैं श्रुति युक्ति तैं प्रपंच मिथ्या सिद्ध होय सके नहि। याहि तैं मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति युक्ति तैं प्रत्यक्षादिकन का बाध बी संभवै नहि। किंतु प्रपंच सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्षादि विरोध तैं श्रुति युक्ति का हि बाध मान्या चाहिये। या आक्षेप का तत्त्वशुद्धिकार यह समाधान कहे हैं—घट पटादिक वा तिन की सत्ता प्रत्यक्षादिकन का विषय मानै तौ शंका संभवै। परंतु घटादिकन मै अनुगत सत्‌रूप अधिष्ठान ब्रह्म हि प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय है। घटादिक वा तिन की सत्ता ताका विषय नहि। यातैं शंका संभवै नहि। इस रीति सै सत्‌रूप ब्रह्म प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय मानै केवल प्रत्यक्षादिकन का अविरोध हि फल नहि होवै है। किंतु प्रत्यक्षादिक अद्वितीय सत्‌रूप ब्रह्म की सिद्धि के अनुकूल होवै हैं। अन्य शंका--सत्‌रूप ब्रह्म हि प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय माने घटादिक ताका विषय नहि माने तौ सत् ऐसा हि प्रत्यक्ष ज्ञान का आकार हुवा चाहिये। घटः सन् ऐसा आकार नहि हुवा चाहिये। किंच सत्‌रूप ब्रह्म स्वप्रकाश है ताके प्रकाश वास्ते तौ इंद्रिय की अपेक्षा संभवै नहि। औ घटः सन् इत्यादि प्रत्यक्ष ज्ञान मै अन्वय व्यतिरेक तैं इंद्रिय कारण प्रसिद्ध हैं। प्रत्यक्ष का विषय

घटादिक नहि माने ताका विरोध होवैगा। यातैं बी सत्-रूप ब्रह्म हि प्रत्यक्षादि प्रमाणका विषय है यह कहना संभवै नहि। समाधान यह है—जैसे भ्रमस्थल मै अधिष्ठान की इदंता का प्रत्यक्ष तैं ग्रहण होवै है। ताके ज्ञान मै हि अन्वयव्यतिरेक तैं इंद्रिय कारण हैं। अध्यस्त रजतादि-कन का भान साक्षी तैं होवै है। या मत मै भ्रमज्ञान साक्षीरूप हि है। यातैं भ्रम की अप्रसिद्धिरूप दोष नहि तैसे सर्वत्र सत्रूप अधिष्ठान ब्रह्म का हि प्रत्यक्ष तैं ग्रहण होवै है। औ ब्रह्म यद्यपि स्वप्रकाश है तथापि आवृत है। वृत्तिज्ञान तैं ताके आवरण की निवृत्ति होवै है। तामै अन्वयव्यतिरेक तैं इंद्रिय कारण हैं। तिसी वृत्ति मै आरुढ साक्षी तैं घटादिकन का भान होवै है। यातैं 'घटः सन्' ऐसा भ्रम का आकार बी संभवै है। शंका संभवै नहि। परंतु सिद्धांती के एकदेशी की पूर्व उक्त शंका मान के यह समाधान कहा है। जो उक्त शंका भेदवादी की होवै तौ बी संभवै नहि। काहे तैं घटादिकन मै औ तिन की सत्ता मै प्रत्यक्ष कूं प्रमाण तौ सिद्धांती नहि बी माने हैं। परंतु साक्षीरूप प्रत्यक्षज्ञान मै घटादिकन का भान माने हैं। यातैं 'घटःसन्' ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान का आकार संभवै है। औ साक्षी की अभि-व्यंजक वृत्ति है। तामै इंद्रिय का अन्वयव्यतिरेक बी संभवै है। शंका संभवै नहि। परंतु इहां भेदवादी यह

शंका करे हैं—'नेदं रजतं' इस रीति सै शुक्तिरजतादिकन का बाध देखिये है। यातैं तिन का भान तौ भ्रांति रूप कहना संभवै है। परंतु घटादि द्वैत का बाध प्रसिद्ध नहि। यातैं ताका भान भ्रांति रूप कहना संभवै नहि। यह शंका बी नहि संभवै है। काहे तैं प्रत्यक्ष बाध की अप्रसिद्धि कहैं तौ संभवै बी है। परंतु श्रौतबाध की अप्रसिद्धि कहना संभवै नहि। काहे तैं 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक श्रुति वाक्य दृश्य मात्र का ब्रह्म मै निषेध करे हैं तैसे विवर्त लक्षण के निरूपण मै पूर्व युक्ति कहि हैं। तिन तैं घटादि द्वैत का मिथ्यात्व निश्चय हि यौक्तिक बाध कहिये है। ताकी बी अप्रसिद्धि कहना नहि संभवै है। प्रत्यक्ष बाध बी विद्वानों के प्रसिद्ध है। यातैं घटादिद्वैत का भान भ्रांति रूप कहना संभवै है। दोष नहि। इस रीति सै तत्त्व शुद्धिकार के मत मै सत्रूप ब्रह्म हि प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय है। घटादि द्वैत प्रपंच ताका विषय नहि। यातैं प्रत्यक्षादि प्रमाण निर्विशेष सत्रूप ब्रह्म. गोचर होने तैं अद्वैत सिद्धि के अनुकूल हि हैं विरुद्ध नहि। घटादिकन मैं चाक्षुषतादि प्रतीति बी स्वप्न की न्याईं भ्रमरूप है। यातैं मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका संभवै नहि। औ न्यायसुधाकार तौ यह कहे हैं 'चक्षुषा घटं पश्यामि' 'वह्निमनुमिनोमि' इस रीति सै घटादिकन मै चाक्षुषतादि प्रतीति होवै है। तान्

भ्रमरूप नहि मान के घटादिकन मै प्रत्यक्षादि प्रमाण की विषयता मान लेवैं तौ बी प्रपंच मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका नहि संभवै है। काहे तैं घटादिकन मै ब्रह्म सत्ता सै भिन्न सत्ता प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय मानै तौ विरोध की शंका होवै। परंतु अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता का संबंध हि 'सन् घटः' इत्यादि ज्ञान का विषय है। घटादिकन मै पृथक् सत्ता प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय नहि। यातैं शंका संभवै नहि जो ऐसे कहैं 'सन् घटः' इत्यादि प्रत्यय का विषय अधिष्ठान की सत्ता का संबंध मानें तौ 'नीलो घटः' इत्यादि प्रतीति का विषय बी घटादिकन मै अधिष्ठान गत नीलिमादिकन का संबंध मान्या चाहिये। यातैं ब्रह्म मै रूपादि गुणन की प्राप्ति होवैगी। यह कहना संभवै नहि। काहे तैं- 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुति मै सत्रूप ब्रह्म प्रपंच का उपादान कहा है। तहां कूटस्थ होने तैं ब्रह्म परिणामी उपादान तौ नहि बी संभवै है। परंतु जैसे शुक्ति आदिक रजतादिकन के अधिष्ठान रूप उपादान हैं। तैसे अधिष्ठान रूप उपादान संभवै है। विरोध नहि औ सत्रूप अधिष्ठान ब्रह्म के संबंध तैं हि 'सन् घटः' इत्यादि प्रतीति का संभव हुये घटादिकन मै पृथक् सत्ता माने गौरव होवैगा। यातैं घटादिकन मै प्रतीयमान सत्ता तौ अधिष्ठान ब्रह्म सत्ता सै भिन्न नहि। परंतु 'अशब्दम-

स्पर्शमरूपं' इत्यादिक श्रुतिवाक्य ब्रह्म मै रूपादिक गुणन का निषेध करे हैं। तैसे 'न चक्षुषा गृह्यते' इत्यादिक श्रुतिवचन नेत्रादि इंद्रियन की विषयता का निषेध करे हैं। ब्रह्म मै रूपादिक माने तिन का विरोध होवैगा। तैसे घटादिकन की न्याई ब्रह्म अनित्य होवैगा। यातैं नीलादिक गुण घटादिकन मै हि माने चाहिये। ब्रह्म मै तिन की प्राप्ति होवै नहि। इस रीति सै घटादिकन मै प्रतीयमान सत्ता ब्रह्मरूप मानै श्रुति युक्ति अनुकूल हैं। नीलादिक गुण ब्रह्म मै मानने श्रुति युक्ति विरुद्ध हैं। यातैं ब्रह्म ...गुण प्राप्ति की शंका संभवै नाहि। इस रीति ...ार के मत मै घटादिकन मै प्रतीयमान ...ा तैं भिन्न नहि। यातैं प्रपंच मिथ्यात्व ...युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका निरव... ...औ संक्षेप शारीरककार तौ यह कहे ...न मै प्रतीयमान सत्ता ब्रह्मसत्ता तैं भिन्न ...तौ बी विरोध की शंका संभवै नाहि। ...ानधिगत अबाधित अर्थ का बोधक होवै सो ...हिये है। जड मात्र के बोधक होने तैं प्रत्यक्षादिक ...ाहि। किंतु प्रमाणाभास हैं। यातैं मिथ्यात्व ...श्रुति युक्ति मै विरोध शंका का अवकाश नाहि। ...यह—अज्ञात का ज्ञापक हि प्रमाण होवै है। ...दिकन का विषय घटादिक यद्यपि व्यवहार दशा

मै अबाधित तौ हैं । तथापि अज्ञात नहि । काहे तैं आवरण माने विना जाका प्रकाश प्राप्त होवै औ प्रकाश होवै नहि तामै आवरण का अंगीकार सफल है । जैसे ब्रह्म मै अज्ञानकृत आवरण नहि मानै स्वप्रकाश होने तैं ताका भान हुवा चाहिये । औ होवै नहि । यातैं ब्रह्म मै अज्ञानकृत आवरण का अंगीकार सफल है। घटादिक जड पदार्थन मै आवरण नहि मानै तौ बी तिन के प्रकाश की प्राप्ति नहि । काहे तैं अप्रकाशरूप घटादिकन का आवरण विना हि स्वरूप तैं अभान सिद्ध है । यातैं तिन मै अज्ञानकृत आवरण का अंगीकार निष्फल है। इस रीति से ब्रह्म हि अज्ञात है। घटादिक अज्ञात नहि। यातैं अज्ञात अबाधित ब्रह्म के बोधक होने तैं वेदांत-वाक्य हि प्रमाण हैं । प्रत्यक्षादिक प्रमाण नहि। प्रमाज्ञान की विषयता रूप प्रमेयता बी ब्रह्म मै हि है। जड घटादि-कन मै नहि । याहि तैं 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' यह श्रुति बी अज्ञात होने तैं ब्रह्मात्मा मै हि प्रमेयता का नियम करे है । श्रुतिगत द्रष्टव्य पद तैं दर्शन का विधान नहि। काहे तैं पुरुष प्रयत्नसाध्य क्रिया मै हि विधि संभवै है। प्रमाणाधीन दर्शन मै विधि संभवै नहि । किंतु आत्मा. दर्शन के योग्य है । इस रीति से अज्ञात होनें तैं आत्मा मै हि प्रमेयता उचित है । अन्य मै नहि । यह नियम करिये है । इस रीति सै संक्षेप शारीरकाचार्य के मत मै

प्रत्यक्षादिकन का विषय जड पदार्थ अज्ञात नहि। यातैं प्रत्यक्षादिक प्रमाण नहि किंतु प्रमाणाभास हैं। तिन का विरोध बी अविरोध हि है। औ कोई ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। जड पदार्थन मै अज्ञातता मान के जड गोचर प्रत्यक्षादिकन कूं प्रमाण मान लेवैं तौ बी प्रपंच मिथ्यात्व बोधक श्रुति युक्ति मै विरोध की शंका नहि संभवै है। काहे तैं प्रत्यक्षादि ग्राह्य घटादि सत्ता प्रपंच मिथ्यात्व सै विरुद्ध होवै तौ विरोध की शंका संभवै। परंतु घटादिकन की सत्ता मिथ्यात्व से विरुद्ध नहि। यातैं शंका संभवै नहि। तथा हि—'सन् घटःसन् पटः' इस रीति सै घटादिकन मै अनुगत प्रतीति होवै है तासै तिन मै जातिरूप हि सत्ता सिद्ध होवै है। अथवा 'इह इदानीं घटोऽस्ति' इस रीति सै घटादिकन मै देश काल के संबंध की प्रतीति होवै है तासै देश काल का संबंध हि तिन की सत्ता सिद्ध होवै है। तात्पर्य यह—'इह इदानीं घटः' यह प्रतीति घटादिकन मै प्रतीयमान देशकाल के संबंध कूं हि सत्तारूप तैं विषय करे है। अथवा 'घटो नास्ति' इस रीति सै घट की सत्ता का निषेध करैं तौ घट के स्वरूप का हि निषेध प्रतीत होवै है तासै घट का स्वरूप हि घट की सत्ता सिद्ध होवै है। घटादि स्वरूप तैं भिन्न सत्ता सिद्ध होवै नहि। इस रीति सै तीन प्रकार की सत्ता प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय है। सो

मिथ्यात्व सै विरुद्ध नहि । काहे तैं तुच्छ से विलक्षण प्रपंच का स्वरूप सिद्धांत मै माने हैं। यातैं विरोध के अभाव तैं घटादिकन का स्वरूप वा तिन मै देश काल का संबंध औ जाति आदिक मिथ्यात्व वादी बी माने हैं । परंतु 'नेहनानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुति विरोध तैं जाति आदिकन कूं अबाध्य नहि माने हैं। औ अबाध्यत्वरूप सत्यत्व हि मिथ्यात्व का विरोधी है। सो प्रत्यक्ष का विषय संभवै नहि। काहे तैं वर्तमान वस्तु का हि प्रत्यक्ष तैं ग्रहण होवै है। अतीत अनागत का ग्रहण होवै नहि। यातैं 'काल त्रयेपि नास्य बाधः' इस रीति से कालत्रयाबाध्यत्व-रूप वस्तु सत्ता प्रत्यक्ष का विषय संभवै नहि । यातैं मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै विरोध शंका निर्मूल है। इस रीति से कित ने ग्रंथकार अबाध्यत्वरूप सत्यत्व प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय नहि मान के मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै विरोध शंका का परिहार करे हैं। औ तिन से अन्य ग्रंथकार तौ अबाध्यत्वरूप सत्यत्व हि प्रत्यक्षादि-कन का विषय मान के बी विरोध का परिहार इस रीति से करे हैं—'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यं' या श्रुति मै प्रपंच की सत्ता तैं ब्रह्म की सत्ता उत्कृष्ट प्रतीत होवै है। प्रपंच की सत्ता निकृष्ट प्रतीत होवै है तथा हि—प्रपंच का विधारक होने तैं सूत्रात्मारूप प्राण प्रधान है ताका ग्रहण संपूर्ण प्रपंच के उपलक्षणार्थ है। यातैं प्रपंच की

सत्ता सापेक्ष है, परमात्मा निरपेक्ष सत्य है। यह श्रुति का अर्थ सिद्ध होवै है। इस रीति सै श्रुति वाक्य तैं प्रपंच की सत्ता निकृष्ट है। तासै ब्रह्म की सत्ता उत्कृष्ट प्रतीत होवै है। औ 'विष्णुशर्मा राजराजः' इस रीति सै प्रयोग होवै तहां पालकत्वरूप नियंतृत्व हि राजत्व है। विष्णुशर्म-कर्तृक पालन अधिक देश विषयक होने तैं तामै इतर राजा की अपेक्षा सै उत्कर्ष प्रतीत होवै है। इतर राज-कर्तृक पालन अल्पदेश विषयक होने तैं तिन मै निकर्ष प्रतीत होवै है। तहां पालनगत अधिक न्यून देश विषयकत्व रूप हि उत्कर्ष अपकर्ष सिद्ध होवै हैं। तैसे नारायण का पुत्र मन्मथ सुंदर है ताकी अपेक्षा तैं श्रीराम अति सुंदर है या अभिप्राय तैं 'मन्मथमन्मथः श्रीरामः' या प्रकार का प्रयोग होवै तहां उत्कृष्ट रूपादि-मत्ता हि सुंदरता है। अति उत्कृष्ट रूपादिमत्ता अति सुंदरता है। या स्थान मै बी सुंदरता मै उत्कर्ष अपकर्ष प्रतीत होवै हैं। यह दोनों प्रकार के उत्कर्ष अपकर्ष अबाध्यत्वरूप सत्यत्व मैं नहि संभवै हैं। काहे तैं पालकत्व सुंदरतादिक भावरूप हैं। यातैं तिन मै तौ अधिक न्यूनदेश विषयकत्वादिरूप उत्कर्ष अपकर्ष संभवै हैं। परंतु सत्यत्व बाधाभावरूप है तामै उक्त विध उत्कर्ष अपकर्ष संभवैं नहि। ब्रह्म की न्यांई प्रपंच की सत्ता बी कालत्रयाबाध्यत्वरूप माने श्रुति उक्त उत्कर्ष अपकर्ष

का असंभव होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—प्रपंच की सत्ता व्यवहार दशा मै अबाध्यत्व रूप है। यातैं निकृष्ट है। ब्रह्म सत्ता सर्वदा अबाध्यत्वरूप है। यातैं उत्कृष्ट है। या प्रकार तैं सत्ता का भेद मानै उत्कर्ष अपकर्ष संभवै हैं। औ व्यवहार दशा मै अबाध्यत्वरूप सत्ता मिथ्यात्व सै विरुद्ध नहि। यातैं प्रत्यक्षादि ग्राह्य प्रपंच की सत्ता मिथ्यात्व से अविरुद्ध होने तैं मिथ्यात्वसाधक श्रुति युक्ति मै विरोध शंका संभवै नहि। जो ऐसे कहैं ब्रह्म प्रपंच दोनों मै हि कालत्रयाबाध्यत्वरूप सत्ता मान लेवैं तौ बी श्रुति उक्त उत्कर्ष अपकर्ष का असंभव नहि। काहे तैं ब्रह्म की सत्ता श्रुति प्रमाण गम्य होने तैं उत्कृष्ट है। लौकिक प्रमाणगम्य होने तैं कालत्रयाबाध्यत्वरूप बी प्रपंच की सत्ता निकृष्ट है। या प्रकार तैं उत्कर्ष अपकर्ष संभवै हैं। यातैं श्रुति उक्त उत्कर्ष अपकर्ष की अनुपपत्ति तैं प्रत्यक्षादि ग्राह्य प्रपंच सत्ता व्यवहार दशा मै अबाध्यत्वरूप है। ताका मिथ्यात्व सै विरोध नहि होने तैं मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका संभवै नहि। यह कहना संभवै नहि। किंतु प्रत्यक्षादि ग्राह्य सत्ता बी कालत्रयाबाध्यत्वरूप है। यातैं मिथ्यात्व सै विरुद्ध होने तैं प्रपंच मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै विरोध की शंका दुर्वार है। शंकावादी का यह कहना संभवै नहि। काहे तैं प्रपंच की सत्ता बी कालत्रयाबाध्यत्वरूप माने 'प्राणा वै सत्यं' या

श्रुति गत सत्य शब्द तैं कालत्रयाबाध्यत्वरूप हि प्रपंच सत्ता का प्रतिपादन कहना होवैगा। श्री 'नेह नानास्ति किंचन' 'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्' इत्यादिक अनेक श्रुति वाक्य प्रपंच कूं मिथ्या कहे हैं। तैसे 'तरति शोकमात्मवित्' 'विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः' 'भूयश्चान्ते विश्व-माया निवृत्तिः' इत्यादिक श्रुतिवचन ज्ञान तैं प्रपंच का बाध कहे हैं। यातैं श्रुतिवाक्यन का परस्पर विरोध होवैगा इस रीति से परस्पर विरोध होने तैं श्रुति वाक्य अप्रमाण होवैंगे। श्रौ अविरोध तैं श्रुति वाक्यनकी प्रमाणता का संभव हुये तिन कूं अप्रमाण कहना संभवै नहि। यातैं प्रपंच की सत्ता बी कालत्रयाबाध्यत्वरूप है यह कहना संभवै नहि। किंतु उक्त रीति सै व्यावहारिक हि मानी चाहिये। याहि तैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्व मै शंकावादी उक्त रीति सै उत्कर्ष अपकर्ष बी नहि संभवै हैं। किंतु सिद्धांत उक्त रीति से हि माने चाहिये। यातैं प्रपंच की सत्ता मिथ्यात्व सै विरुद्ध नहि होने तैं मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका संभवै नहि। इस रीति सै प्रपंच सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्षादि विरोध शंका के समाधान मै पूर्व पांच मत कहे हैं। तिन मै प्रत्यक्षादि ग्राह्य सत्ता मिथ्यात्व मै विरुद्ध नहि। यातैं मिथ्यात्व साधक श्रुति युक्ति मै प्रत्यक्षादि विरोध शंका निरालंबन है। यह समाधान का प्रकार समान हि है। श्रौ अपर ग्रंथकार तौ

तैं कल्पित हि निश्चित होवै हैं। यातैं आत्मा मै साक्षित्व की अनुपपत्ति नहि। या प्रकार तैं शिष्यन कूं शास्त्रार्थ का बोधन कर्ता हुवा आचार्य कल्याण साधन धर्म सै प्रच्युत होवै नहि। इस रीति सै अनेक स्थल मै प्रत्यक्ष दृष्ट का बी बाध होने तैं प्रत्यक्षादिकन मै सर्वत्र अप्रामाण्यरूप दोष की शंका होवै है। यातैं आत्मा मै कर्तृत्वादि प्रत्यक्ष बी दोष शंका कलंकित होने तैं साक्षित्व प्रतिपादक निर्दोष श्रुति तैं ताका बाध नारद स्मृति मै कहा है। तैसे 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक अनेक श्रुति वाक्य प्रपंच कूं मिथ्या कहे हैं। औ प्रत्यक्षादिकन तैं प्रपंच सत्य प्रतीत होवै है। परंतु प्रत्यक्षादिक अप्रामाण्यरूप दोष शंका कलंकित हैं। यातैं प्रत्यक्षादि सिद्ध बी प्रपंच की सत्ता ब्रह्म सत्ता की न्याईं वास्तव है अथवा काल्पनिक है। यह विचार करना युक्त है। तासै अनंतर दोष शंका कलंकित प्रत्यक्षादिकन का निर्दोष मिथ्यात्व श्रुति तैं बाध निश्चय संभवै है। यातैं श्रुति युक्ति तैं प्रपंच मिथ्या सिद्ध होवै है। 'प्राबल्यमागमस्यैव जात्या तेषु त्रिषु स्मृतं' या मनुवचन मै बी प्रत्यक्षादिकन तैं श्रुति की प्रबलता हि कहि है। प्रत्यक्ष अनुमान आगम इन तीन प्रमाणन के मध्य मै आगमत्व रूप तैं आगम की हि प्रबलता वैदिक पुरुषन मै प्रसिद्ध है। यह ताका अर्थ है। जो जिस वेदार्थ का वेद तैं हि ज्ञान होवै तामै श्रुति प्रबलता का प्रति-

यह कहे हैं—कालत्रयाबाध्यत्वरूपसत्ता मिथ्यात्व सै विरुद्ध है। ताकूं प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय मान के ताकूं मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति युक्ति का विरोधी मान लेवैं तौ बी मिथ्यात्व सिद्धि का असंभव नहि। काहे तैं प्रत्यक्षादि लौकिक प्रमाण दोष शंका कलंकित है। निर्दोष श्रुति प्रमाण तैं ताका बाध संभवै है। तथा हि—'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुति मै आत्मा कूं साक्षी कहा है। तामै यह पूर्व पक्ष होवै है—'अहं करोमि' इत्यादि प्रत्यक्ष तैं आत्मा मै कर्तृत्वादिक धर्म प्रतीत होवै हैं। यातैं बोद्धा हुवा बी आत्मा उदासीन नहि होने तैं साक्षी संभवै नहि। या पूर्व पक्ष का नारदस्मृति मै यह समाधान कहा है—

श्लोक—तलवद्दृश्यते व्योम खद्योतोहव्यवाडिव।
न तलं विद्यते व्योम्नि न खद्योतो हुताशनः ॥१॥
तस्मात्प्रत्यक्षदृष्टेऽपि युक्तमर्थे परीक्षितुम्।
परीक्ष्य ज्ञापयन्नर्थान्न धर्मात्परिहीयते ॥२॥

श्लोकन का भाव यह है—'अहं करोमि' इत्यादि प्रत्यक्षमात्र तैं आत्मा मै कर्तृत्वादिक धर्म वास्तव मानने उचित नहि। काहे तैं आकाश मै इंद्र नील मणिमय कटाहाकारता औ खद्योत मै अग्निरूपता प्रत्यक्ष दृष्ट बी है। परंतु ताका बाध लोक मै प्रसिद्ध है। यातैं प्रत्यक्ष दृष्ट बी आत्मा मै कर्तृत्वादिक धर्म चेतनता की न्याईं वास्तव हैं अथवा कल्पित हैं। इस रीति सै सम्यक् विचार करके श्रुति युक्ति

तैं कल्पित हि निश्चित होवै हैं। यातैं आत्मा मै साक्षित्व की अनुपपत्ति नहि। या प्रकार तैं शिष्यन कूं शास्त्रार्थ का बोधन कर्ता हुवा आचार्य कल्याण साधन धर्म सै प्रच्युत होवै नहि। इस रीति सै अनेक स्थल मै प्रत्यक्ष दृष्ट का बी बाध होने तैं प्रत्यक्षादिकन मै सर्वत्र अप्रामाण्यरूप दोष की शंका होवै है। यातैं आत्मा मै कर्तृत्वादि प्रत्यक्ष बी दोष शंका कलंकित होने तैं साक्षित्व प्रतिपादक निर्दोष श्रुति तैं ताका बाध नारद स्मृति मै कहा है। तैसे 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक अनेक श्रुति वाक्य प्रपंच कूं मिथ्या कहे हैं। औ प्रत्यक्षादिकन तैं प्रपंच सत्य प्रतीत होवै है। परंतु प्रत्यक्षादिक अप्रामाण्यरूप दोष शंका कलंकित हैं। यातैं प्रत्यक्षादि सिद्ध बी प्रपंच की सत्ता ब्रह्म सत्ता की न्याई वास्तव है अथवा काल्पनिक है। यह विचार करना युक्त है। तासै अनंतर दोष शंका कलंकित प्रत्यक्षादिकन का निर्दोष मिथ्यात्व श्रुति तैं बाध निश्चय संभवै है। यातैं श्रुति युक्ति तैं प्रपंच मिथ्या सिद्ध होवै है। 'प्राबल्यमागमस्यैव जात्या तेषु त्रिषु स्मृतं' या मनुवचन मै बी प्रत्यक्षादिकन तैं श्रुति की प्रबलता हि कहि है। प्रत्यक्ष अनुमान आगम इन तीन प्रमाणन के मध्य मै आगमत्व रूप तैं आगम की हि प्रबलता वैदिक पुरुषन मै प्रसिद्ध है। यह ताका अर्थ है। जो जिस वेदार्थ का वेद तैं हि ज्ञान होवै तामै श्रुति प्रबलता का प्रति-

पादक मनुवचन कहैं। तात्पर्य यह—यज्ञादिकन मै स्वर्गादि साधनता का वेद तैं हि ज्ञान होवै है। प्रमाणांतर तैं होवै नहि तामै हि श्रुति प्रबलता का प्रतिपादक मनुवचन है। मिथ्यात्व की सिद्धि तौ सिद्धांत मै अनुमानादिकन तैं बी माने हैं। यातैं मिथ्यात्व वेदैक वेद्य नहि होने तैं तामै श्रुति प्रबलता मै मनुवचन की प्रमाणता का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं यज्ञादिकन मै स्वर्ग साधनतादिक वेदैक वेद्य हैं। तिन मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका हि होवै नहि। तिन मै श्रुति प्रबलता का प्रतिपादक माने वचन निष्फल होवैगा। यातैं जिस वेदार्थ मै प्रत्यक्षादि विरोध की शंका होवै तामै हि श्रुति प्रबलता का प्रतिपादक मनुवचन मान्या चाहिये। तात्पर्य यह—जिस अर्थ मै श्रुति औ लौकिक प्रमाण का विरोध प्राप्त होवै तिस अर्थ मै दोनों कूं तौ प्रमाणता संभवै नहि। एक का बाध कह्या चाहिये। औ प्रबल तैं दुर्बल का बाध होवै है। यातैं दोनों मै कौन प्रबल है, या प्रकार की अपेक्षा हुये—श्रुति की प्रबलता का प्रतिपादक मनुवचन मानै अपेक्षित अर्थ का समर्पक होने तैं वचन सफल होवै है। यातैं मिथ्यात्व रूप वेदार्थ मै हि श्रुति प्रबलता का प्रतिपादक मनुवचन मान्या चाहिये। इस रीति सै मनुवचन तैं बी प्रपंचसत्ताग्राहिप्रत्यक्षादिकन का मिथ्यात्व प्रतिपादक

श्रुति तैं बाध सिद्ध होवै है। किंच आकाश मै नीलता का प्रत्यक्ष होवै है ताका प्रत्यक्षादिकन सै तौ बाध कहा जावै नहि। किंतु आकाश मै एक शब्द गुण प्रतिपादक शास्त्र तैं हि बाध कहना होवैगा। तैसे मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति तैं बी प्रपंच सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष का बाध संभवै है। जो रूप गुण नियम तैं व्याप्य वृत्ति है। यातैं नीलता आकाश के एकदेशवृत्ति है यह कहना तौ संभवै नहि। औ आकाश मै समीप नीलता की उपलब्धि होवै नहि। यातैं समीप नीलता का अभाव निश्चय हुये आकाश मै दूर बी नीलता नहि है। नीलता बुद्धि दूरत्व दोषजन्य है। यह निश्चय होवै है। तासै नीलता प्रत्यक्ष का बाध संभवै है। इस रीति सै शास्त्र विना यौक्तिक निश्चय तैं हि आकाश मै नीलता प्रत्यक्ष का बाध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं समीप मै विद्यमान हुवा बी हिमरूप आवरणप्रतीत होवै नहि। दूर मै वृक्षादिकन का आवरकरूप तैं प्रतीत होवै है। तहां समीप मै ताकी अप्रतीति समीपता दोष तैं है। तैसे आकाश मै सर्वत्र विद्यमान हुवा बी नीलरूप दूर मै प्रतीत होवै है। समीप मै प्रतीत होवै नहि। समीप मै ताकी अप्रतीति समीपता दोष तैं है। यह निश्चय बी संभवै है। औ आकाश मै दूर नीलता का अनुभव होवै है। समीप मै होवै नहि। यातैं नीलता अव्याप्य वृत्ति है। यह निश्चय बी संभवै है।

या द्विविध निश्चय के होतैं उक्त निश्चय हि संभवै नहि। तासै नीलता प्रत्यक्ष का बाध तौ अत्यंत दूर है यातैं शास्त्र विना यौक्तिक निश्चय तैं आकाश मै नीलता प्रत्यक्ष का बाधक हूंना संभवै नहि। जो दूरस्थ पुरुष कूं जहां भूमि संनिहित आकाश प्रदेश मै नीलता बुद्धि होवै तहां हि समीपप्राप्त तिसी पुरुष कूं नीलता के अभाव का प्रत्यक्ष होवै है। तासै नीलता बुद्धि का बाध कहूँ तथापि नहि संभवै है। काहे तैं भूमि संनिहित आकाश प्रदेश मै नीलता होवै तौ समीप बी प्रतीत हुयी चाहिये औ समीप नीलता प्रतीत होवै नहि। यातैं भूमि संनिहित आकाश प्रदेश मै कहूं बी नीलता नहि। किंतु उपरिस्थित हि अभ्र नक्षत्रादिक दूरत्व दोष तैं भूमि संनिहित भासे हैं। तैसे आकाश मै उपरिस्थित हि नीलता दूरत्व दोष तैं भूमि संनिहित प्रतीत होवै है। यह निश्चय बी संभवै है। ताके होतैं उक्त प्रत्यक्ष तैं बी नीलता प्रत्यक्ष का बाध संभवै नहि। तात्पर्य यह— भूमि संनिहित आकाश प्रदेश मै नीलता होवै तौ अभाव प्रत्यक्ष तैं ताका बाध संभवै। उपरिस्थित नीलता का भूमि संनिहित आकाश प्रदेश मै अभाव प्रत्यक्ष तैं बाध संभवै नहि। इस रीति सै आकाश मै नीलता प्रत्यक्ष का प्रत्यक्षादिकन तैं बाध के असंभवपूर्वक शास्त्र तैं बाध सिद्ध हुवा। तैसे प्रपंच मै सत्ता प्रत्यक्ष का बी श्रुतिरूप

शास्त्र तैं बाध संभवै है। किंच पृथिवी आदिकन मै गंधादिक गुण परस्पर संकीर्ण प्रतीत होवै हैं तहां बी श्लोक–उपलभ्याप्सु चेद्गंधं केचिद्ब्रुयुरनैपुणाः।

पृथिव्यामेव तं विद्यादपो वायुं च संश्रितम्॥ १ ॥

'रसोजलमात्रगुणः, रूपं तेजोमात्रगुणः,स्पर्शो वायुमात्र गुणः,शब्दः आकाशमात्र गुणः'इत्यादि व्यवस्थाप्रतिपादक शास्त्र तैं हि प्रत्यक्ष का बाध कहना होवैगा। जल औ वायु मै गंध कूं देख के कोई अनिपुण पुरुष तिन मै गंध स्वाभाविक कहैं सो तिन का कथन समीचीन नहि। किंतु जल औ वायु आश्रित गंध तिन के अंतरगत पृथिवी मै हि जाने। यह श्लोक का अर्थ है। अनंतर वाक्यन का अर्थ स्पष्ट है। तैसे पृथिवी आदिकन मै रसादिक बी स्वाभाविक नहि। किंतु तिन के अंतरगत जलादिकन मै हि जाने। यद्यपि जल मै पुष्पादिरूप पार्थिव द्रव्य का संबंध होवै तौ गंध की प्रतीति होवै है। पार्थिव द्रव्य के संबंध विना होवै नहि। इस रीति से शास्त्र विना बी अन्वयव्यतिरेक तैं हि गंध पृथिवीमात्र का गुण है। यह निश्चय होय सके है। तथापि जहां जलाशयादिकन मै प्रथम से लेके हि गंध की प्रतीति होवै तहां अन्वय-व्यतिरेक तैं बी गंध पृथिवी मात्र का गुण है। यह निश्चय होय सके नहि। उलटा जल मै हि गंध कहूं स्वाभाविक है,कहूं औपाधिक है। यह कल्पना हि संभवै है। यातैं

जलादिकन मै गंधादि प्रत्यक्ष का बी शास्त्र विना बाध संभवै नहि। किंतु शास्त्र तैं हि बाध कहा चाहिये। तैसे श्रुतिरूप शास्त्र तैं प्रपंच सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष का बाध संभवै है। जो पृथिवी आदिक बहुत स्थान मै परस्पर संसृष्ट हि होवै हैं। यातैं अन्य के गुण का अन्य मै बी भान संभवै है। यातैं जलादिकन मै गंधादि प्रत्यक्ष तिन मै स्वगुण गोचर होने तैं प्रमारूप है अथवा परगुण गोचर होने तैं अप्रमारूप है। इस रीति से अप्रामाण्यरूप दोष शंका कलंकित होने तैं ताका तौ शास्त्र तैं बाध संभवै है। परंतु प्रपंच सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष अप्रमाण्य शंका शून्य है। यातैं ताका शास्त्र तैं बाध संभवै नहि। इस रीति से श्रुति तैं प्रपंच सत्ता गोचर प्रत्यक्ष के बाध का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं कार्य औ उपादन का तादात्म्य संबंध होवै है। औ ब्रह्म प्रपंच का उपादान श्रुति सिद्ध है। यातैं ब्रह्म औ प्रपंच का तादात्म्य होने तैं ब्रह्म धर्म सत्ता की प्रपंच मै प्रतीति संभवै है। यातैं प्रपंच मै सत्ताग्राहि प्रत्यक्ष बी तामै ब्रह्म सत्ता गोचर होने तैं भ्रांति रूप है। अथवा प्रपंच की स्वाभाविक सत्तागोचर होने तैं प्रमारूप है। इस रीति से अप्रामाण्य शंका कलंकित हि है। तासै रहित नहि। यातैं

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

या वचन उक्त प्रकार तैं ताका बाध संभवै है। तात्पर्य यह— अस्ति घटः, भाति घटः, प्रियो घटः। इस रीति सै घट मै सत् चित् आनंद का अनुभव होवै है। प्रिय शब्द आनंद मै हि मुख्य है। यातैं प्रिय शब्द तैं आनंद का अनुभव कहना संभवै है। इसी प्रकार तैं पटादिकन मै बी सत् चित् आनंद का अनुभव जानि लेना। घट शब्दादि नाम है। कंबुग्रीवादि आकारवस्तुरूप है। इस रीति से संपूर्ण प्रपंच पांच अंशरूप प्रतीत होवै है। यद्यपि 'दुःखं प्रियं' यह अनुभव होवै नहि। यातैं संपूर्ण प्रपंच मै पांच अंशन की प्रतीति कहना संभवै नहि। तथापि शत्रु के दुःख मै प्रिय अनुभव बी होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—ब्रह्म सत् चित् आनंद रूप श्रुति सिद्ध है। यातैं सर्वत्र अनुगत सत् चित् आनंदरूप वस्तु ब्रह्म हि है औ प्रपंच बी नाम रूप मात्र श्रुति सिद्ध है। यातैं नाम रूपात्मक अंश द्वय प्रपंच है। इस रीति सै प्रपंच मै सत्ताग्राहि प्रत्यक्षता मै स्वाभाविक सत्ता गोचर नहि। किंतु अधिष्ठान होने तैं प्रपंच मै अनुगत ब्रह्म सत्ता गोचर है। या प्रकार की व्यवस्था हि प्रपंच मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति तैं प्रत्यक्ष का बाध कहिये है। इस रीति सै आगम की अपेक्षा तैं स्वाभाविक प्रबलता का प्रत्यक्ष मै निषेध किया। तहां यह शंका होवै है—यद्यपि दोष शंका कलंकित होने तैं प्रत्यक्ष मै स्वाभाविक प्रबलता तौ नहि,

संभवै है। तथापि उपजीव्यता प्रयुक्त प्रबलता संभवै है। तथा हि—वर्णपद वाक्य रूप हि शब्द है ताके प्रत्यक्ष विना शाब्दबोध होवै नहि। यातैं श्रुतिजन्य मिथ्यात्वबोध मै शब्द का प्रत्यक्ष कारण है। कारण कूं हि उपजीव्य कहे हैं। श्रुति तैं प्रत्यक्ष मात्र का बाध माने शब्द के प्रत्यक्ष का बी बाध होने तैं उपजीव्य विरोध होवैगा। समाधान यह है—प्रत्यक्षमात्र का श्रुति तैं बाध मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु प्रपंच मै सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्ष का श्रुति तैं बाध पूर्व कहा है। प्रपंच के अंतरगत हि शब्द है तामै बी सत्यत्व अंश के प्रत्यक्ष का हि श्रुति तैं बाध होवै है। शब्दस्वरूप अंश के प्रत्यक्ष का बाध होवै नहि। यातैं दोष नहि। तात्पर्य यह—श्रोत्र इंद्रिय-जन्य शब्द का प्रत्यक्ष शब्द के स्वरूप कूं औ तामै सत्यत्व कूं विषय करे है। श्रुति जन्य मिथ्यात्व बोध मै शब्द के स्वरूपांश का प्रत्यक्ष हि उपजीव्य है। ताके सत्यत्वांश का प्रत्यक्ष उपजीव्य नहि। काहे तैं कल्पित शब्द तैं बी शाब्दबोध संभवै है। यातैं शाब्दबोध वास्ते शब्द का सत्यत्व अपेक्षित नहि। औ शब्द मै सत्यत्वांश के प्रत्यक्ष का हि मिथ्यात्व श्रुति तैं विरोध है। ताका हि श्रुति बाध करे है। शब्द के स्वरूपांश का प्रत्यक्ष उपजीव्य है। ताका श्रुति तैं विरोध नहि। याहि तैं ताका श्रुति बाध करै नहि। यातैं उपजीव्य विरोध की शंका

संभवै नहि। पूर्व मनु आदि वचन तैं आगममात्र की प्रत्यक्ष तैं प्रबलता कहि है। तासैं श्रुतिमात्र की प्रबलता सिद्ध होवै है। तामै यह आक्षेप होवै है—'यजमानः प्रस्तरः' या श्रुति वाक्य मै प्रत्यक्ष विरोध के परिहार वास्ते यजमान शब्द की प्रस्तर मै गौणी वृत्ति माने हैं। प्रस्तर नाम दर्भमुष्टिका है श्रुतिमात्र कूं प्रत्यक्ष तैं प्रबल माने ताका विरोध होवैगा। तथा हि—'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि स्थल मै पदन के सामानाधिकरण्य तैं पदार्थन का अभेद प्रसिद्ध है। यातैं पदन के सामानाधिकरण्य तैं हि 'सिंहो देवदत्तः' या वाक्य तैं देवदत्त मै सिंह का अभेद प्रतीत होवै है। सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। यातैं प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते शूरतादि सिंह के समान गुणवाला देवदत्त है तामै सिंह पद की गौणी वृत्ति माने हैं। तैसे 'यजमानः प्रस्तरः' या वाक्य मै बी पदन के सामानाधिकरण्य तैं प्रस्तर मै यजमान का अभेद प्रतीत होवै है। सो प्रत्यक्ष विरुद्ध होने तैं प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते हि क्रतुनिर्वर्तकत्वरूप यजमान के समान गुणवाला प्रस्तर है। तामै यजमान पद की गौणी वृत्ति माने हैं। प्रत्यक्ष तैं श्रुति मात्र की प्रबलता माने सो असंगत होवैगी। काहे तैं प्रपंच सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्ष का विरोध हुये बी ताका बाध करके प्रबल मिथ्यात्व श्रुति तैं प्रपंच मै मिथ्यात्व की सिद्धि कहि है। तैसे प्रस्तर मै यजमान भेद ग्राहि प्रत्यक्ष का विरोध हुये

बी ताका बाध करके 'यजमानः प्रस्तरः' या प्रबल श्रुति-वाक्य तैं प्रस्तर मैं यजमानाभेद की सिद्धि संभवै है। भामती निबंध मैं वाचस्पतिमिश्र ने या आक्षेप का यह समाधान कहा है—श्रुति मात्र कूं प्रत्यक्ष तैं प्रबल मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु श्रुतिमात्र प्रत्यक्ष तैं प्रबल नहि। किंतु तात्पर्यवती श्रुति प्रत्यक्ष तैं प्रबल है। 'यजमानः प्रस्तरः' यह अर्थवाद वाक्य है। औ अर्थवाद वाक्यन का फलाभाव तैं स्वार्थ मैं तात्पर्य होवै नहि। किंतु विधेययज्ञादिकन की स्तुति मैं तिन का तात्पर्य होवै है। जो स्वार्थ तैसे स्तुति दोनों मैं अर्थवाद वाक्यन का तात्पर्य मानै तौ गौरव होवैगा। यातैं बी स्वार्थ मैं तिन का तात्पर्य नहि संभवै है। किंच अर्थवाद वाक्यन की स्तुति मैं लक्षणा होवै है। स्वज्ञाप्य के संबंध विना लक्षणा संभवै नहि। यातैं द्रव्यदेवतादि रूप तिन-के अर्थ का लक्ष्य स्तुति सै संबंध कहा चाहिये। औ गंगापद की तीर मैं लक्षणा होवै तहां देवनदी का प्रवाह द्वार है। तैसे स्तुति मैं लक्षणा होवै तहां बी अर्थवाद वाक्यन का अर्थ द्वार है। यातैं स्वज्ञाप्य के संबंध का संभव होने तैं अर्थवाद वाक्यन की स्तुति मैं लक्षणा तौ संभवै है। परंतु लक्षणास्थल मैं द्वाररूप अर्थ मैं वाक्य का तात्पर्य प्रसिद्ध नहि। औ वाक्यार्थ मैं तात्पर्यवाले पदन का वाक्यार्थबोध मैं द्वार रूप स्मारित पदार्थन मैं

तात्पर्य नहि होवै है। तैसे अर्थवाद वाक्यन का बी स्तुति मै द्वाररूप स्वार्थ मै तात्पर्य संभवै नहि। इस रीति सै या मत मै 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादि अर्थवाद वाक्यन का यजमान प्रस्तर के अभेदादिरूप स्वार्थ मै तात्पर्य नहि। शारीरक शास्त्र के प्रथमाध्याय गत तृतीय पाद मै 'वज्रहस्तः पुरंदरः'इत्यादि अर्थवाद वाक्यन तैं देवता विग्रहादिकन की सिद्धि कहि है सो बी या मत मै तात्पर्य विना हि होवै है। औ स्वार्थ मै तात्पर्य रहित श्रुति वाक्य प्रत्यक्ष तैं प्रबल नहि। यातैं 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादि अर्थवाद वाक्यन की प्रत्यक्ष तैं प्रबलता संभवै नहि। किंतु तिन तैं प्रत्यक्ष हि प्रबल है। यातैं ताके विरोध के परिहार वास्ते तिन मै तौ गौणी आदि वृत्ति का अंगीकार असंगत नहि। परंतु प्रपंच मिथ्यात्व बोधक श्रुति का स्वार्थ मै तात्पर्य षट्लिंगन तैं निश्चित है। यातैं प्रबल होने तैं तासै प्रपंच सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष का हि बाध होवै है। प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते मिथ्यात्व श्रुति मै अन्य वृत्ति का आश्रयण होवै नहि। इस रीति सै वाचस्पतिमिश्र के मत मै तात्पर्यवत्ता श्रुति प्रबलता मै हेतु है। तात्पर्य सहित श्रुति तैं प्रत्यक्ष का बाध होवै है। स्वार्थ मै तात्पर्य रहित श्रुति तैं प्रत्यक्ष प्रबल होने तैं तासै श्रुति का बाध होवै है। पूर्व उक्त प्रकार तैं प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते गौणी आदि वृत्ति का अंगीकार हि श्रुति का प्रत्यक्ष तैं बाध

है। औ विवरण के अनुसारी तौ यह कहे हैं—श्रुति प्रब-
लता मै तात्पर्यवत्ता हेतु नहि। काहे तैं 'तत्त्वमसि'
इत्यादि वाक्यन का जीव ब्रह्म के अभेद मै तात्पर्य है बी
तौ बी त्वं पद के वाच्यार्थ का तत् पद वाच्यार्थ से अभेद
प्रत्यक्ष विरुद्ध है। यातैं प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते विशेष्य
चेतनमात्र मै दोनों पदन की लक्षणा माने हैं। तात्पर्य-
वत्ता श्रुति प्रबलता का हेतु माने ताका अंगीकार
निष्फल होवैगा। काहे तैं प्रत्यक्ष का विरोध हुये बी
स्वार्थ मै तात्पर्यवाले प्रबल श्रुति वाक्यन तैं
ताका बाध करके वाच्यार्थन का अभेद संभवै है। जो पूर्व
विधेय यज्ञादिकन की स्तुति अर्थवाद वाक्यन का लक्ष्य-
है। तामै द्वाररूप स्वार्थ मै तिन का तात्पर्य नहि। यातैं
'वज्रहस्तः पुरंदरः' इत्यादि वाक्यन तैं बी तात्पर्य विना
देवता विग्रहादिकन की सिद्धि कहि सो संभवै नहि।
काहे तैं जा अर्थ मै तात्पर्य होवै तामै हि वेदवाक्य प्रमा
के जनक होवै हैं। यह नियम है। यातैं तात्पर्य माने
विना अर्थवाद वाक्यन तैं देवता विग्रहादिकन की सिद्धि
हि नहि होवैगी। यातैं स्वार्थ मै तिन का तात्पर्य तौ
अवश्य मान्या चाहिये। परंतु देवता विग्रहादिरूप
स्वार्थ गोचर प्रमा की जनकता मात्र तैं अर्थवादवाक्यन
की सफलता होवै नहि। यातैं विधेय यज्ञादिकन का
स्तावकरूप तैं विधि वाक्यन से तिन की एक वाक्यता

अंगीकार करिये है। अर्थवाद वाक्यन की विधि वाक्यन तैं वाक्यैक वाक्यता है पदैक वाक्यता नहिं। देवता का विग्रहादिकन सै संसर्ग अवांतर संसर्ग है। ताकी उप-स्थिति के जनक होने तैं 'वज्रहस्तः पुरंदरः' इत्यादिक अर्थ वाद वाक्य भावापन्न हैं। तिन की विधिवाक्यन तैं एक वाक्यता वाक्यैक वाक्यता शब्द का अर्थ है। औ वाक्यन का वाक्यार्थ मै तात्पर्य अवश्य होवै है। यातैं विधिसंबंध तैं पूर्व शब्द मर्यादा तैं अर्थवाद वाक्यन तैं देवता का विग्रहादिकन सै संसर्ग रूप अर्थ प्रतीत होवै है। तामै अर्थवाद वाक्यन का तात्पर्य तौ अवश्य मान्या चाहिये। परंतु स्वार्थ मै तिन का अवांतर तात्पर्य है। महा तात्पर्य नहिं। विधेय यज्ञादिकन की स्तुति मै महा तात्पर्य है। औ जो लक्षणास्थल मै द्वाररूप अर्थ मै तात्पर्य होवै नहि। औ वाक्यार्थ मै तात्पर्यवाले पदन का वाक्यार्थ बोध मै द्वाररूप पदार्थन मै तात्पर्य नाहि होवै है। तैसे स्तुति मै द्वार रूप स्वार्थ मै अर्थवाद वाक्यन के तात्पर्य का असंभव कहा सो बी नहि संभवै है। काहे तैं पदार्थ की उपस्थिति का जनक पद कहिये है। गंगादि शब्दन की तीरादिकन मै लक्षणा होवै तहां प्रवाहादिक द्वाररूप पदार्थ हैं। तिन की उपस्थिति का जनक होने तैं गंगादिक शब्दपद हैं। 'गंगायां ग्रामः' इत्यादि वाक्य तैं तिन की एक वाक्यता पदैक वाक्यता कहिये है। तैसे 'घटमानय'

इत्यादि वाक्यन तैं घटादि शब्दन की बी पदैक-वाक्यता जानि लेनि। औ पदैकवाक्यता मै अवांतर तात्पर्य का अंगीकार नहि। काहे तैं वाक्यार्थ की न्याइं पदार्थन मै अपूर्वता होवै नहि। यातैं उक्त स्थल मै तौ अवांतर तात्पर्य यद्यपि नहि बी संभवै है। परंतु अर्थ-वाद वाक्यन की विधिवाक्यन तैं वाक्यैकवाक्यता पूर्व कहि है। यातैं स्तुति मै द्वाररूप स्वार्थ मै तिन का अवां-तर तात्पर्य संभवै है, इस रीति से न्यायनिर्णय मै विवरणाचार्य ने तात्पर्य के विषय मै हि वेद कूं प्रमा की जनकताका नियम सिद्ध किया है। यातैं 'वज्र-हस्तः पुरंदरः' इत्यादि अर्थवाद वाक्यन का स्वार्थ मै तात्पर्य सिद्ध होवै है। तात्पर्य विना तिन से देवता विग्रहादिकन की सिद्धि कहना असंगत है। तैसे 'यज-मानः प्रस्तरः' या अर्थवाद वाक्य का बी पूर्व उक्त रीति सै यजमान प्रस्तर के अभेद रूप स्वार्थ मै तात्पर्य प्राप्त होवै है। ताका प्रत्यक्ष तैं बाध कहा चाहिये। काहे तैं प्रत्यक्ष तैं ताका बाध माने विना भेदग्राहि प्रत्यक्ष निर्विषय होवैगा। यातैं तात्पर्यवत्ता श्रुतिप्रबलता का हेतु संभवै नहि। किंतु निर्दोषत्व परत्व आगमत्व हि श्रुति प्रबलता मै हेतु माने चाहिये। तात्पर्य यह—श्रुति प्रमाण निर्दोष है। प्रत्यक्षादिक दोष शंका कलंकित हैं। प्रत्यक्षादिक पूर्व हैं। श्रुति पर है। या स्थान मै प्रथम प्रवृत्त होवै सो पूर्व कहिये है।

पश्चात् प्रवृत्त होवै सो पर कहिये है। यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा। औ—'प्राबल्यमागमस्यैव जात्या तेषु त्रिषु स्मृतं' या मनुवचन मै आगमत्व बी श्रुतिप्रबलता मै हेतु कहा है। यातैं निर्दोषत्वादि हेतु तैं उत्सर्ग सै तौ प्रत्यक्षादिकन तैं श्रुति हि प्रबल है। तात्पर्य यह—श्रुति औ प्रत्यक्षादिकन का विरोध होवै तहां बाधक तौ श्रुति हि होवै है। परंतु श्रुति बाधितप्रत्यक्षादिकन मै निर्विषयतारूप *निरवकाशता प्राप्त होवै तहां सावकाश निरवकाश के मध्य* मै निरवकाश प्रबल होवै है। यातैं निरवकाश प्रत्यक्षादिकन तैं श्रुति का हि बाध होवै है। तथा हि—'यजमानः प्रस्तरः' यह श्रुतिवाक्य यजमान प्रस्तर का अभेद प्रतिपादन करे है। औ तिन का भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है। यातैं श्रुति औ प्रत्यक्ष का विरोध हुये निर्दोषत्वादि हेतु तैं बाधक तौ श्रुति हि होवै है। परंतु श्रुति बाधित भेद प्रत्यक्ष सर्वथा निरवकाश होवै है। तथा हि—भेद प्रत्यक्ष का विषय प्रस्तर मै यजमान का प्रातिभासिक भेद कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं शुक्ति रजतादिकन का तौ ब्रह्मज्ञान तैं पूर्व हि बाध होवै है। औ तिन सै योग्य अर्थक्रिया होवै नहि। यातैं प्रातिभासिक संभवै हैं। परंतु प्रस्तर मै यजमान के भेद का ब्रह्मज्ञान तैं पूर्व बाध होवै नहि। औ तासै योग्य अर्थ क्रिया होवै है। यातैं प्रातिभासिक संभवै नहि। जो 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिक अद्वैतप्रतिपादक

श्रुति औ द्वैतग्राहि प्रत्यक्ष का विरोध होवै तहां श्रुति का विषय पारमार्थिक अद्वैत है। व्यावहारिक द्वैत प्रत्यक्ष का विषय है। इस रीति सै व्यवस्था माने हैं। तैसे 'यजमानः प्रस्तरः' या श्रुति का विषय वास्तव अभेद है। यजमान प्रस्तर का व्यावहारिक भेद प्रत्यक्ष का विषय है। इसरीति सै व्यवस्था मान के प्रत्यक्ष कूं सावकाश कहैं। तथापि संभवै नहि। काहे तैं उपक्रम उपसंहारादि लिंगन तैं अनेक श्रुति वाक्य ब्रह्म भिन्न सर्व कूं मिथ्या कहे हैं। 'यजमानः प्रस्तरः' या एक अर्थवाद वाक्य तैं प्रस्तर मै यजमान के वास्तव अभेद का प्रतिपादन माने तिन का विरोध होवैगा। याहि तैं यजमान प्रस्तर का वास्तव भेद प्रत्यक्ष का विषय है। तिन का व्यावहारिक अभेद श्रुति का विषय है। यह कहना बी संभवै नहि। जो यजमान प्रस्तर का व्यावहारिक अभेद श्रुति का विषय है श्रुति बाधित भेद प्रत्यक्ष का विषय बी तिन का व्यावहारिक भेद मान के प्रत्यक्ष कूं सावकाश कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं समान सत्ताक भेदाभेद एक मै संभवैं नहि। जो यजमान प्रस्तर का प्रातिभासिक अभेद श्रुति का विषय मान के तिनका व्यावहारिक भेद प्रत्यक्ष का विषय कहैं। तथापि संभवै नहि। काहे तैं शुक्ति मै रजत का अभेद प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। यातैं प्रातिभासिक माने हैं। प्रस्तर मै यजमान का अभेद प्रत्यक्ष प्रतीत होवै नहि।

यातैं प्रातिभासिक अभेदश्रुति का विषय कहना संभवै नाहि। इस रीति सै प्रस्तर मै यजमान का किसी प्रकार का भेद बी प्रत्यक्ष का विषय मान के व्यवस्था संभवै नहि । यातैं 'यजमानः प्रस्तरः' या श्रुतिबाधित भेद प्रत्यक्ष मै सर्वथा निर्विषयतारूप निरवकाशता प्राप्त होवै है। तैसे 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्य अल्पज्ञतादि धर्म विशिष्ट जीव का सर्वज्ञतादि विशिष्ट ब्रह्म सै सार्वकालिक अभेद प्रतिपादन करे हैं। ताके अनुसार जीव मै सदा सर्वज्ञतादि माने तामै अल्पज्ञतादि ग्राहि प्रत्यक्ष निर्विषय होवैगा। औ प्रत्यक्षज्ञान निर्विषय संभवै नहि। यातैं श्रुतिबाधित बी अल्पज्ञतादि ग्राहि प्रत्यक्ष का किसी प्रकार तैं योग्य विषय समर्पण द्वारा संभव कहा चाहिये। या कारण तैं हि अद्वैत प्रतिपादक श्रुति औ द्वैतग्राहि प्रत्यक्षादिकन का विरोध हुये पूर्व उक्त प्रकार तैं प्रबल अद्वैतश्रुति तैं प्रत्यक्षादिकन का बाध तौ होवै है। परंतु प्रत्यक्षज्ञान निर्विषय संभवै नहि । यातैं प्रत्यक्षादिकन मै व्यावहारिक प्रमाणता सिद्धांत मै माने हैं। काहे तैं अद्वैतश्रुतिविरोध तैं पारमार्थिक द्वैत तौ प्रत्यक्षादिकन का विषय संभवै नहि। यातैं व्यावहारिक द्वैतरूप विषय समर्पण द्वारा प्रत्यक्षादिक व्यावहारिक प्रमाण माने चाहिये। इस रीति से अद्वैतश्रुति बाधित प्रत्यक्षादिकन मै व्यावहारिक प्रमाणता का सिद्धांत मै अंगीकार होने तैं प्रत्यक्ष-

ज्ञान मै निर्विषयतारूप निरवकाशता सिद्धांत संमत नहि। बहुत क्या कहैं 'नेदं रजतं' या सर्व प्रसिद्ध प्रत्यक्ष तें बाधित बी शुक्ति मै रजत प्रत्यक्ष है। परंतु 'इदं रजतं' इस रीति सै इदं पदार्थ मै रजत के तादात्म्य का अनुभव होवै है। रजत कूं देशांतरस्थ वा अन्तर विज्ञानरूप अथवा असत् माने ताका विरोध होवैगा। काहे तैं देशांतरस्थादि रजत का इदं पदार्थ मै तादात्म्य संभवै नहि। यातैं शुक्ति मै तादात्म्यापन्नरजत मान के सिद्धांत मै शुक्ति रजत प्रत्यक्ष का उपपादन करे हैं। तात्पर्य यह — घटादिद्वैत का प्रत्यक्ष अद्वैत श्रुति बाधित है। ताकूं निर्विषय मानने मै सर्व व्यवहार का उच्छेद हि बाधक है। तैसे शुक्ति रजतादि प्रत्यक्ष कूं निर्विषय मानने मै और तौ कोई बाधक नहि बी है काहे तैं शून्यवादी असत् रजतादिकन का बी भान माने हैं। परंतु प्रत्यक्षज्ञान निर्विषय संभवै नहि। यातैं तत्काल उत्पन्न रजतादिक ताका विषय सिद्धांत मै माने हैं। यातैं यह सिद्ध हुवा—श्रुति बाधित प्रत्यक्ष मै निर्विषयतारूप निरवकाशता प्राप्त होवै। तहां श्रुति का तासै बाध युक्त है। औ सिद्धांत संमत है। प्रस्तर मै यजमान का भेद ग्राहिप्रत्यक्ष औ जीव मै अल्पज्ञतादि संसार धर्मन का प्रत्यक्ष पूर्वउक्त प्रकार तैं श्रुति बाधित होने तैं अत्यंत निरवकाश प्राप्त होवै है। यातैं निरवकाश द्विविध प्रत्यक्ष तैं

द्विविध श्रुति का बाध मान्या चाहिये । बाध का प्रकार यह है—प्रस्तर मैं यजमान का लोक प्रसिद्ध भेदप्रत्यक्ष का विषय है। 'यजमानः प्रस्तरः' या श्रुति का विषय तिन का गौण अभेद है। या प्रकार की व्यवस्था मान के मुख्य अभेद रूप श्रुति अर्थ कूं त्याग के गौण अभेद की कल्पना हि उक्त श्रुति का भेदग्राहि प्रत्यक्ष तैं बाध है। तैसे अंतःकरण विशिष्ट जीव मैं अल्पज्ञतादि संसार धर्म प्रत्यक्ष का विषय हैं। अन्तःकरण कूं त्याग के चेतन मात्र का उदासीन तत् पदार्थ सै अभेद महावाक्यन का विषय है। यह व्यवस्था मान के विशेष्य चेतन मात्र के अभेद मैं महा वाक्यन का संकोच हि संसार धर्म ग्राहि-प्रत्यक्ष तैं तिन का बाध है। इस रीति सै निरवकाश प्रत्यक्ष तैं श्रुति का बाध कहा। अब उत्सर्ग सै श्रुतिप्रब-लता दिखावे हैं 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि प्रबल मिथ्यात्व श्रुति तैं प्रपंच सत्यत्व ग्राहिप्रत्यक्ष का बाध होवै। तहां प्रत्यक्ष सावकाश संभवै है। यातैं तासै गौण अर्थ कल्पनादि रूप श्रुति का बाध होवै नहि। तात्पर्य यह — द्वैत मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुति औ प्रपंच सत्यत्व ग्राहिप्रत्यक्ष का विरोध होवै तहां श्रुतिबाधित बी प्रत्यक्ष निरवकाश नहि। किन्तु कल्पित द्वैतगत जाति आदिरूप सत्ता गोचर होने तैं सावकाश है। यातैं श्रुति तैं प्रत्यक्ष का हि बाध होवै है। प्रत्यक्ष तैं श्रुति का बाध होवै

नहि । यातैं उत्सर्ग तैं श्रुति प्रबलता सिद्ध होवै है। यद्यपि बहुल स्थान मै बाधक होवै तामै उत्सर्ग तैं प्रबलता कहि चाहिये काहे तैं ' उत्सर्गः प्रायो वादः ''अर्थ यह—बहुलता सै कथन का नाम उत्सर्ग है । प्रत्यक्ष तैं श्रुति के बाध मै अनेक दृष्टांत पूर्व कहे हैं । यातैं अनेक स्थान मै बाधक होने तैं प्रत्यक्ष मै हि उत्सर्ग तैं प्रबलता कहि चाहिये । श्रुति तैं प्रत्यक्ष के बाध मै एक हि दृष्टांत कहा है । यातैं श्रुति मै उत्सर्ग तैं प्रबलता कथन संभवै नहि । तथापि शास्त्र तैं प्रत्यक्ष के बाध मै बी अनेक उदाहरण पूर्व कहे हैं । यातैं श्रुतिरूप शास्त्र मै हि उत्सर्ग तैं प्रबलता मानी चाहिये । इस रीति सै उत्सर्ग तैं श्रुतिकी प्रबलता मानै सर्व व्यवस्था संभवै है। तात्पर्य यह—श्रुति प्रबलता मै तात्पर्यवत्ता हेतु माने तात्पर्य के विषय बी जीव ब्रह्म के अभेदादिकन का प्रत्यक्ष तैं बाधरूप अव्यवस्था प्राप्त होवै है । काहे तैं वाच्यार्थन का अभेद प्रत्यक्ष बाधित है । तैसे उत्सर्ग तैं श्रुतिप्रबलता पक्ष मै अव्यवस्था उपलब्ध होवै नहि । यातैं उत्सर्ग तैं श्रुति प्रबलता पक्ष हि समीचीन है । श्रुतिप्रबलता मै तात्पर्यवत्ता हेतु है। यह पक्ष समीचीन नहि । यातैं परत्वादि हेतु तैं श्रुतिमात्र की प्रबलता माने 'यजमानः प्रस्तरः' या वाक्य तैं बी यजमान प्रस्तर के अभेद की सिद्धि हुयी चाहिये । यह शंका संभवै नहि—पूर्व श्रुति मात्र की प्रबलता मै

निर्दोषत्व, परत्व, मनुवचन उक्त आगमत्व, यह तीन हेतु कहे हैं। तिन मै परत्व कहने तैं यह अर्थ विवक्षित है—जैसे प्रथम प्रवृत्त होने तैं शुक्ति मै रजत प्रत्यक्ष पूर्व है। 'नेदं रजतं किंतु शुक्तिरेषा' यह आप्तवक्ता का उपदेश पश्चात् प्रवृत्त होवै है। यातैं पर होने तैं प्रवल है। तासै शुक्ति मै रजत प्रत्यक्ष का बाध होवै है। तैसे अनादि अविद्याजन्य होने तैं प्रपंच मै सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्ष पूर्व है। साधन संपत्ति तैं अनंतर प्रवृत्त होने तैं मिथ्यात्व श्रुति का उपदेश पर है। यातैं प्रबल होने तैं तासै प्रपंच मै सत्ता प्रत्यक्ष का बाध संभवै है। यद्यपि आप्त उपदेश-जन्य ज्ञान तैं शुक्ति मै रजत प्रत्यक्ष का बाध हुये बी तामै निर्विषयतारूप निरवकाशता प्राप्त होवै नहि। काहे तैं प्रातिभासिक रजत ताका विषय सिद्धांत मै माने हैं। परंतु मिथ्यात्व श्रुति तैं द्वैत सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्ष का बाध हुये ताका अन्य विषय संभवै नाहि। तात्पर्य यह—द्वैत प्रपंच मै प्रतीयमान सत्ता का श्रुति तैं बाध होवै है। तामै अन्य सत्ता का अभाव है। यातैं द्वैत सत्यत्व ग्राहि प्रत्यक्ष मै निर्विषयतारूप निरवकाशता प्राप्त होने तैं दृष्टांत विषम है। तथापि द्वैत प्रपंच मै पारमार्थिक सत्ता का हि श्रुति बाध करे है। व्यावहारिक सत्ता का बाध करे नहि। यातैं व्यावहारिक सत्तारूप विषय का संभव होने तैं सत्ता प्रत्यक्ष मै बी निर्विषयतारूप निरवकाशता प्राप्त होवै

नहि। अथवा एक सत्ता वाद मै द्वैतसत्ता ग्राहिप्रत्यक्ष का विषय घटादिद्वैत की सत्ता नहि। काहे तैं ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है। घटादिद्वैत की सत्ता व्यावहारिक है। शुक्ति रजतादिकन की प्रातिभासिक सत्ता है। इस रीति सै त्रिविध सत्ता पक्ष मै तौ सत्ता प्रत्यक्ष का विषय व्यावहारिक सत्ता है। यह कहना संभवै है। परंतु एक सत्ता पक्ष मै व्यावहारिक सत्ता ताका विषय कहना संभवै नहि। किंतु सर्व प्रत्यय वेद्य ब्रह्म सत्ता हि प्रत्यक्ष का विषय संभवै है। तात्पर्य यह—'घटः सन् : पटः सन्' इस रीति सै घटादिकन मै सर्वत्र सत् प्रतीति की विषयता प्रसिद्ध है। यातैं संपूर्ण प्रपंच की सत्ता सर्व प्रत्यय वेद्य है। ताका ब्रह्म सत्ता सै भेद माने कल्पना गौरव होवैगा। यातैं सर्वाधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सै अभेद हि मान्या चाहिये। इस रीति सै सर्व प्रत्यय वेद्य ब्रह्म सत्तारूप विषय का संभव होने तैं द्वैत सत्यत्व ग्राहिप्रत्यक्ष सावकाश संभवै है। यातैं दृष्टांत विषम नहि। समान विषय मै स्वविरोधी पूर्व का पर तैं बाध होवै है। या अर्थ मै और बी अनेक दृष्टांत ग्रंथकारों ने कहे हैं। परंतु सो दृष्टांत कर्म कांडादि विषय के हैं। औ कठिन हैं। यातैं लिखे नहि। परंतु पर तैं पूर्व के बाध मै हेतु यह कहे हैं श्लोक—

पूर्वं परमजातत्वादबाधित्वैव जायते।
परस्यानन्यथोत्पादान्नाद्याबाधेन संभवः॥

श्लोक का अर्थ यह है—पूर्व की उत्पत्ति काल मै पर उत्पन्न नहि हुवा। यातैं पूर्व की उत्पत्ति तौ पर के बाध विना हि होवै है। परंतु पर की उत्पत्ति पूर्व के बाध विना होवै नहि। यातैं पर तैं पूर्व का बाध अवश्य होवै है। जैसे उक्त दृष्टांत मै शुक्ति मै रजतप्रत्यक्ष की उत्पत्ति काल मै आप्तउपदेशजन्य ज्ञान उत्पन्न नहि हुवा। यातैं ताकी उत्पत्ति तौ ताके बाध विना हि होवै है। परंतु आप्त-उपदेशजन्य ज्ञान की उत्पत्ति शुक्ति रजत प्रत्यक्ष के बाध विना होवै नहि। यातैं तासै ताका अवश्य बाध होवै है। पूर्व उक्त दार्ष्टांतिक मै बी यही रीति जानि लेनी। तासै मिथ्यात्व श्रुतिजन्य बोध तैं प्रपंच सत्यत्व-ग्राहि प्रत्यक्ष का बाध बी अवश्य होवै है। इस रीति सै विवरण के अनुसारी उत्सर्ग तैं श्रुति प्रबलता मान के व्यवस्था सिद्ध करे हैं। परंतु श्रुति प्रबलता मै तात्पर्य-वत्ता हेतु मानने मै जो दोष कहा तत्त्वमसि आदि वाक्यन का जीव ब्रह्म के अभेद मै तात्पर्य हुये बी वाच्यार्थन का अभेद प्रत्यक्ष विरुद्ध है। यातैं तात्पर्य का अनादर करके *प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते विशेष्य चेतन मात्र मै लक्षणा* माने हैं। तात्पर्यवत्ता श्रुति प्रबलता का हेतु माने ताका अंगीकार निष्फल होवैगा। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं 'तमेवैकं जानथ आत्मानं' 'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति' 'एकधैवानुद्रष्टव्यं' इत्यादिक अनेक श्रुतिवाक्य मोक्ष

साधन महावाक्यार्थज्ञान मै अखंड एकरस वस्तु मात्र गोचरता का नियम करे हैं। यातैं महावाक्यन का अखंड एकरस चेतनरूप वस्तु मात्र के बोधन मै तात्पर्य मान्या चाहिये। औ लक्षणा माने विना अखंड एकरस वस्तु मात्र के बोधन मै महावाक्यन के तात्पर्य का निर्वाह होवै नहि। यातैं तिन मै लक्षणा का अंगीकार तौ तात्पर्य के अनुसार हि है। ताका अनादर करके प्रत्यक्ष विरोधपरिहार वास्ते महावाक्यन मै लक्षणा का अंगीकार नहि। परंतु चेतन मात्र मै पदन की लक्षणा मान के महावाक्यन तैं वाक्यार्थ बोध मानै प्रत्यक्ष विरोध का बी परिहार होय जावे है। यातैं प्रत्यक्ष विरोध परिहार वास्ते महावाक्यन मै लक्षणा है। यह व्यवहार ग्रंथन मै है। हे मुमुक्षु जनो जिस आत्मा मै संपूर्ण प्रपंच अध्यस्त है तिस एक रस आत्मा कूं हि जानो। परमात्मा कूं हि साक्षात्कार करकें विद्वान् मृत्युपदवाच्य संसार कूं निवृत्त करे है। शास्त्र आचार्य के उपदेश तैं अनंतर एक रूप तैं हि आत्मतत्त्व द्रष्टव्य है। यह श्रुति वाक्यन का अर्थ है। इस रीति सै तात्पर्य के अनुसार हि महावाक्यन मै लक्षणा का अंगीकार है। यातैं तात्पर्यवत्ता श्रुति प्रबलता का हेतु संभवै है दोष नहि। और जो कहा अर्थवाद वाक्यन की विधिवाक्यन तैं वाक्यैकवाक्यता है। औ वाक्यन का वाक्यार्थ मै तात्पर्य

सामान्य तैं सिद्ध है। यातैं 'वज्रहस्तः पुरंदरः' इत्यादि अर्थवाद वाक्यन का वी देवता का विग्रहादिकन सै संसर्गरूप अवांतर संसर्ग मै अवांतर तात्पर्य सिद्ध होवै है। तैसे 'यजमानः प्रस्तरः' या अर्थवाद वाक्य का वी यजमान प्रस्तर के अभेद मै तात्पर्य प्राप्त होवै है। ताका भेदग्राहि प्रत्यक्ष तैं बाध कहा चाहिये। यातैं श्रुति-प्रबलता मै तात्पर्यवत्ता हेतु संभवै नहि। सो कहना वी नहि संभवै है। काहे तैं स्तुति मै द्वाररूप स्वार्थ मै अर्थवाद वाक्यन का अवांतर तात्पर्य माने वी श्रुति प्रबलता मै तात्पर्य कूं हेतुता की हानि नहि। काहे तैं 'यजमानः प्रस्तरः' या अर्थवादवाक्य का वी उक्त रीति सै यजमान प्रस्तर के अभेद मै अवांतर तात्पर्य हि प्राप्त होवै है। ताका भेद प्रत्यक्ष तैं बाध होवै है। यातैं अवांतर तात्पर्य तौ श्रुति प्रबलता का हेतु नहि वी संभवै है। परंतु महातात्पर्य ताका हेतु संभवै है। औ मिथ्यात्व प्रतिपादक श्रुतिवाक्यन का प्रपंच मिथ्यात्व मै महातात्पर्य है। यातैं द्वैत सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष का मिथ्यात्व श्रुति तैं बाध संभवै है। इस रीति सै वाचस्पतिमिश्र के मत मै तात्पर्यवत्ता श्रुति प्रबलता का हेतु है। विवरणानुसारि मत मै स्वभाव सै हि श्रुति प्रबल है। प्रत्यक्षादिक दुर्बल हैं। सर्वथा 'यजमानः प्रस्तरः' या श्रुतिवाक्य मै प्रत्यक्षविरोध परिहार वास्ते यजमान शब्द की प्रस्तर

मै गौणीवृत्ति संभवै है। शंका संभवै नहि। परंतु ईहां यह शंका होवै है—यद्यपि पूर्वउक्त प्रकार तैं स्वभाव सैं तौ प्रत्यक्ष प्रबल नहि बी संभवै है। तथापि उपजीव्य होने तैं प्रत्यक्ष हि प्रबल मान्या चाहिये। श्रुति प्रबल संभवै नहि। यद्यपि रजत प्रत्यक्ष पूर्व है आप्तउपदेश पर है ताका तासै बाध होवै है। तैसे द्वैत सत्यत्वग्राहि प्रत्यक्ष पूर्व है। मिथ्यात्व श्रुति का उपदेश पर है। यातैं ताका तासै बाध पूर्व कहा है। तथापि रजत प्रत्यक्ष आप्त-उपदेश का उपजीव्य नहि। यातैं दृष्टांत मै तौ पर तैं पूर्व का बाध संभवै है। परंतु वर्ण पदादिरूप शब्द द्वैत के अंतरगत है ताका प्रत्यक्ष मिथ्यात्व श्रुति का उपजीव्य है। औ 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुतिवाक्यन का अर्थ द्वैत मिथ्यात्व है। सो शब्द के स्वरूपग्राहि प्रत्यक्ष तैं विरुद्ध है। यातैं स्वविरुद्ध मिथ्यात्व का अवोधकत्व-रूप श्रुति का हि तासै बाध मानना युक्त है। श्रुति सैं शब्दस्वरूपग्राहि प्रत्यक्ष का बाध मानना युक्त नहि। यद्यपि शब्द मै सत्यत्व अंश के प्रत्यक्ष का मिथ्यात्व श्रुति तैं बाध होवै है। सो उपजीव्य नहि। शब्द के स्वरूपांश का प्रत्यक्ष उपजीव्य है। ताका श्रुति तैं बाध होवै नहि। इस रीति सै उपजीव्य विरोध शंका का समाधान पूर्व कहा है। यातैं पुनः शंका संभवै नहि। तथापि 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुति तैं प्रपंच की सत्ता मात्र का निषेध

होवै तौ उक्त समाधान संभवै। परंतु प्रपंच का स्वरूप सैं अभाव श्रुति बोधन करे है। यातैं शब्दस्वरूप का हि अभाव होने तैं उपजीव्य विरोध दुर्वार है। ब्रह्मभिन्न किंचित् बी वस्तु ब्रह्म मैं नाहि है। यह श्रुति का अर्थ है। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—वृष-मानय इत्यादि वाक्य का श्रवणदोष तैं वृषभमानय इत्यादि रूप सै श्रवण करै ताकूं बी शाब्दप्रमा होवै है। वृष वृषभ पर्याय शब्द हैं तहां शब्द का स्वरूप कारण माने शाब्दबोध नहि हुवा चाहिये। काहे तैं 'वृषभ-मानय' या शब्द के स्वरूप का तहां अभाव है। यातैं प्रपंच कूं सत्य मानै तिन के मत मैं बी भ्रम प्रमा साधारण हि शब्द का प्रत्यक्ष शाब्दबोध मै कारण कहा चाहिये। औ हमारे मत मै तौ निषेधश्रुति रूप प्रमाण तैं सर्वत्र भ्रम-रूप हि प्रत्यक्ष कारण है। यातैं श्रुतिजन्य मिथ्यात्व बोध मै शब्द का स्वरूप कारण नहि होने तैं उपजीव्य विरोध नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार स्वरूप सै हि प्रपंच का निषेध मान के उपजीव्य विरोध शंका का समाधान कहे हैं। परंतु या मत मै उक्त रीति सै प्रत्यक्ष-ज्ञान मात्र शाब्दबोध मै कारण सिद्ध होवै है। ताका विषय वर्ण पदादि शब्द का स्वरूप कारण सिद्ध होवै नहि। सो असंगत है। काहे तैं प्रत्यक्षज्ञान निर्विषय संभवै नहि। यातैं प्रत्यक्षज्ञान कारण माने ताका विषय शब्द-

स्वरूप बी शाब्दबोध मै अवश्य कारण मान्या चाहिये। यातैं उपजीव्य विरोध शंका का उक्त समाधान समीचीन नहि। किंतु अन्य ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—अयोग्य शब्द तैं शाब्दबोध होवै नहि। यातैं शब्द की योग्यता अवश्य कारण मानी चाहिये। तैसे वर्ण पदादि शब्द का स्वरूप बी अवश्य कारण मान्या चाहिये। तात्पर्य यह—जैसे शाब्दबोध रूप कार्य की अनुपपत्ति तैं योग्यता औ शब्द के स्वरूप की सिद्धि होवै है। तैसे जलाहरणादि कार्य की अनुपपत्ति तैं घटादिकन का स्वरूप बी सिद्ध होवै है। यद्यपि ब्रह्मभिन्न संपूर्ण प्रपंच माने विषय के सहित प्रत्यक्षादिक उपजीव्य होने तैं उपजीव्य विरोध होवैगा। तथापि जैसे निषेधवाक्यन तैं प्रपंच मै सत्यत्व का निषेध मानै तिन के मत मै निषेध श्रुति अर्थ सै अविरुद्ध प्रपंच के स्वरूप का अंगीकार होवै है। यह मत आगे स्पष्ट होवैगा। तैसे हमारे मत मै बी निषेध श्रुति के अर्थ सै अविरुद्ध प्रपंच-स्वरूप का अंगीकार होने तैं उप-जीव्य विरोध नहि। तथा हि—असत् सै विलक्षण प्रपंच का स्वरूप नहि माने प्रत्यक्षादिक व्यावहारिक प्रमाण निर्विषय होवैंगे। यातैं 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुति यद्यपि स्वरूप सै हि प्रपंच का निषेध करे है। तथापि तासै अविरुद्ध व्यावहारिक प्रपंच का स्वरूप बी मान्या चाहिये। यद्यपि प्रतियोगी औ अभाव का विरोध

प्रसिद्ध है। यातैं ब्रह्म मै स्वरूप सै प्रपंच का निषेध माने प्रपंच की स्थिति कहना संभवै नहि तथापि जैसे न्यायमत मै भूतलादिकन मै घटादिकन का अत्यंताभाव होवै ताका तौ प्रतियोगी सैं विरोध है। परंतु वृक्ष मै कपिसंयोग औ ताका अभाव दोनों प्रतीत होवै हैं। यातैं संयोगाभाव कूं प्रतियोगिस्थिति का विरोधी नहि माने हैं। तैसे निषेधवाक्य प्रपंच का निषेध करे हैं। औ प्रपंच बी प्रत्यक्षादि सिद्ध है। यातैं प्रपंचाभाव बी प्रतियोगिस्थिति का अविरोधी मान्या चाहिये। औ हमारे मत मै तौ 'नेदं रजतं' या बाध प्रत्यक्ष तैं शुक्ति मै रजत का, त्रैकालिक अभाव सिद्ध है। 'इदं रजतं' या प्रतीति तैं रजत का बी अंगीकार है। तैसे निषेधवाक्यन तैं ब्रह्म मै प्रपंच का त्रैकालिक अभाव सिद्ध होवै है। प्रत्यक्षादि प्रमाण तैं प्रपंच बी मान्या चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा— कल्पितपदार्थ का अभाव अधिष्ठान सै भिन्न अधिकरण मै तौ सदा प्रतियोगिस्थिति का विरोधी है। परंतु अधिष्ठान मै कुछ काल पर्यंत प्रतियोगिस्थिति का विरोधी नहि। इस रीति सै अनिर्वचनीय प्रपंच के स्वरूप का अंगीकार होने तैं स्वरूप सै प्रपंच का निषेध माने शशशृंगादिकन की न्याईं प्रपंच असत् हुवा चाहिये। यह शंका बी संभवै नहि। जो ऐसे कहैं—सर्व देशकाल संबंधिनिषेध का प्रतियोगी होवै सो असत् कहिये है। अध्यस्त-

प्रपंच का अधिष्ठान सै भिन्न देशकाल मै तौ स्वरूप सै निषेध सिद्ध हि है। अधिष्ठान मै बी स्वरूप सै निषेध माने सर्व देशकाल संबंधि निषेध का प्रतियोगी होने तैं प्रपंच असत् हि सिद्ध होवैगा। यह कहना संभवै नहि। काहे तैं सर्वदेश काल का प्रत्यक्ष संभवै नहि। याहि तैं सर्वदेश काल संबंधि निषेध प्रतियोगित्वरूप असव् लक्षण मै प्रत्यक्ष तौ प्रमाण कहना संभवै नहि औ 'शशशृंगादिकं सर्वदेश काल संबंधि निषेध प्रतियोगि' या प्रकार का शास्त्रवचन उपलब्ध होवै नहि। यातैं शास्त्र बी तामै प्रमाण कहना नहि संभवै है। किंतु 'शशशृंगादिकं, सर्वदेश काल संबंधि निषेध प्रतियोगि, निःस्वरूपत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटादिकं'। यह अनुमान हि असवल्लक्षण की सिद्धि मै प्रमाण कहना होवैगा। औ साध्य तैं हेतु की प्रतीति प्रथम होवै है। यातैं प्रथम प्रतीत होने तैं निःस्वरूपत्व हि असत् का लक्षण कहा चाहिये। सर्वदेश काल संबंधि निषेध प्रतियोगित्व ताका लक्षण कहना संभवै नहि। औ सिद्धांत मै प्रपंच कूं स्वरूपवान् माने हैं। यातैं प्रपंच असत् सिद्ध होय सके नहि। इस रीति सै कितने ग्रंथकार पूर्वमत की न्याई प्रपंच का निषेध तौ स्वरूप सै हि माने हैं। परंतु निषेधश्रुति अर्थ सै अविरुद्ध प्रपंचस्वरूप का अंगीकार करके उपजीव्य विरोधशंका का समाधान कहे हैं। औ तिन सै अन्य

ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। स्वरूप सै प्रपंच के निषेध कूं प्रपंच स्वरूप का प्रतिक्षेपक माने प्रत्यक्षादि विरोध होवैगा। काहे तैं प्रपंच का स्वरूप प्रत्यक्षादि सिद्ध है। स्वरूप का प्रतिक्षेपक नहि माने घटस्वरूप का अप्रतिक्षेपकनिषेध घट का निषेध कहना नहि संभवै है तैसे प्रपंचस्वरूप के अप्रतिक्षेपक निषेध कूं प्रपंच का निषेध कहना संभवै नहि। तात्पर्य यह—अभाव के अधिकरण मात्र मै प्रतियोगी की स्थिति संभवै नहि। यातैं प्रपंच के अधिकरण ब्रह्म मै ताका अभाव निषेधश्रुति का विषय है। यह कहना संभवै नहि। इस रीति सै स्वरूप सै प्रपंच के निषेध मै श्रुति का तात्पर्य नहि। किंतु प्रपंचरूप धर्मी मै सत्यत्व धर्म के निषेध मै तात्पर्य है। यद्यपि ब्रह्म मै प्रपंच का स्वरूप प्रत्यक्षादि सिद्ध है। यातैं स्वरूप से प्रपंच निषेध मै श्रुति तात्पर्य का असंभव कहा। तैसे प्रपंच मै सत्यत्व बी प्रत्यक्षादि सिद्ध होने तैं ताके निषेध मै बी श्रुति का तात्पर्य कहना संभवै नहि। तथापि अनेक श्रुतिवाक्य तात्पर्य तैं प्रपंच मै सत्यत्व का निषेध करे हैं। यातैं प्रत्यक्षादिग्राह्य प्रपंच की सत्ता ब्रह्मसत्ता की न्याईं पारमार्थिक तौ कहि जावै नहि। किंतु व्यावहारिक हि कहनी होवैगी। यातैं प्रपंच मै व्यावहारिक सत्यत्व का तौ निषेध नहि बी संभवै है। परंतु पारमार्थिक सत्यत्व का निषेध संभवै है। परंतु इहां यह शंका होवै है—अप्राप्त का निषेध

होवै नहि। औ पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म की है। प्रपंच मै ताकी प्राप्ति नहि 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि वाक्यन तैं पारमार्थिक सत्ता का निषेध माने अप्राप्त का निषेध होवैगा। व्यावहारिक सत्ता की प्रपंच मै प्राप्ति है। प्रत्यक्षादि विरोध तैं ताका निषेध संभवै नहि यातैं प्रपंच मै सत्यत्व का निषेध बनै नहि समाधान यह है—प्रातिभासिक रजत के अधिकरण शुक्ति मै कल्पित रजत का अभाव या मत मै नहि माने हैं। यातैं 'नेदं रजतं' या बाध प्रत्यक्ष का विषय प्रातिभासिक रजत का अभाव तौ कहना संभवै नहि। किंतु सत्य रजत का अभाव हि ताका विषय कहा चाहिये। या कारण तैं हि 'नेदं रजतं किंतु कांताकरस्थं' 'नेयं मदीया गौः किंतु सैव' 'नात्र वर्तमानश्चैत्रः किंतु अपवरके' इस रीति से शुक्ति आदिकन मै निषेध किये रजतादिकन की कांताकरादिकन मै सत्ता प्रतीत होवै है। औ शुक्ति मै प्रकारांतर से तौ सत्य रजत की प्राप्ति संभवै नहि। किंतु रजताभास की प्रतीति हि ताकी प्राप्ति होने तैं ताका निषेध होवै है। तैसे प्रपंच मै सत्ताभास की प्रतीति हि पारमार्थिक सत्ता की प्राप्ति होने तैं ताका निषेध संभवै है। इस रीति से त्रिविध सत्तावाद मै प्रपंच मै पारमार्थिक सत्ता की प्राप्ति के संभव द्वारा अप्राप्त निषेधशंका का परिहार कहा। औ एक सत्तावादी ग्रंथकार तौ यह कहे हैं। जैसे 'मृद् घटः' यह प्रतीति

मृदंश मै मृत्तिका गोचर है। तासै हि घटादिकन मै मृद् व्यवहार होवै है। औ 'इदं रजतं' यह प्रतीति इदंता अंश मै शुक्तिगोचर है। रजतगोचर नहि। काहे तैं कल्पित रजत मै व्यावहारिक देश काल का संबंधरूप इदंता संभवै नहि। शुक्ति मै इदंता की प्रतीति तैं हि रजत मै इदंता व्यवहार होवै है। तैसे 'सन् घटः' इत्यादि प्रतीति सत्ता अंश मै सत्रूप ब्रह्म गोचर है। ब्रह्म मै सत्ता की प्रतीति तैं हि घटादिकन मै तैसे शुक्ति रजतादिकन मै सर्वत्र सत्वव्यवहार होवै है। प्रपंच मै सत्ता की प्रतीति होवै नहि। यातैं प्रमाण के अभाव तैं तामै सत्ताभास की कल्पना संभवै नहि। याहि तैं ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है। घटादि प्रपंच की व्यावहारिक सत्ता है। शुक्ति रजतादिकन की सत्ता प्रातिभासिक है। इस रीति से त्रिविधसत्ता का अंगीकार बी नहि संभवै है। किंतु एक ब्रह्मसत्ता हि सर्वत्र मानी चाहिये। यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि सत्ता की प्रतीति तौ ब्रह्म मै हि होवै है. प्रपंच मै सत्ता प्रतीत होवै नहि परंतु ब्रह्म औ प्रपंच का तादात्म्य होने तैं तिन का भेद प्रतीत होवै नहि। यातैं ब्रह्म मै सत्ता की प्रतीति हि प्रपंच मै ताकी प्राप्ति होने तैं अप्राप्त सत्ता के निषेध की शंका संभवै नहि। औ वर्ण पदादिरूप शब्द का प्रत्यक्ष श्रुतिजन्य मिथ्यात्वबोध मै उपजीव्य है। या मत मै विषय के सहित ताका अंगीकार है। निषेध श्रुति-

वाक्यन तैं ताका बाध होवै नहि । काहे तैं निषेधवाक्य प्रपंच मै सत्ता का हि निषेध करे हैं। प्रपंच के स्वरूप का निषेध करैं नहि। यातैं उपजीव्य विरोध बी होवै नहि। यद्यपि घटादि प्रपंच मै ब्रह्मसत्ता तैं हि सत्त्वव्यवहार संभवै है। यातैं तामै पृथक् सत्ताभास नहि माने हैं। तैसे कांताकरादिकन मै स्थित रजत सै भिन्न रजताभास बी नहि मान्या चाहिये। काहे तैं प्रपंच मै सत्ताभास के मानने मै प्रमाण का अभाव पूर्व कहा है औ गौरव बी होवै है। तैसे शुक्ति मै रजताभास मानने मै बी गौरवादि दोष समान है। यातैं सिद्धांत मै अनिर्वचनीय रजतादिकन का अंगीकार असंगत होवैगा। तथापि अभिव्यक्त चेतन सै जाका तादात्म्य होवै सो विषय अपरोक्ष संभवै है। कांताकरादिकन मै स्थित व्यवहित रजतादिकन का अभिव्यक्त चेतन सै तादात्म्य नहि। यातैं अपरोक्षता की अनुपपत्ति तैं अनिर्वचनीय रजतादिक सिद्धांत मै माने हैं। औ प्रमाणमूलक गौरव दोषकर होवै नहि। यातैं शंका संभवै नहि। इस रीति सै उपजीव्य विरोध शंका के समाधान मै च्यारि मत कहे हैं। तिन मै दो मत अंत मै कहे हैं। तिन मै बी उपजीव्य विरोध शंका के समाधान का प्रकार तौ समान हि है। काहे तैं श्रुतिजन्य मिथ्यात्व बोध मै वर्ण पदादिरूप शब्द का प्रत्यक्ष उपजीव्य है। दोनों मतन मै विषय के सहित ताका अंगीकार है। परंतु

अप्राप्त निषेध शंका के समाधान मै विलक्षणता है। किसी के मत मै व्यावहारिक सत्ता की प्रतीति हि प्रपंच मै पारमार्थिक सत्ता की प्राप्ति है। मतांतर मै अधिष्ठान ब्रह्मगत पारमार्थिक सत्ता की प्रतीति हि तामै ताकी प्राप्ति है। औ दो मत आदि मै कहे हैं। तिन मै बी शाब्दबोध मै तथा अन्य व्यवहार मै सर्वत्र भ्रमरूप प्रत्यक्ष हि कारण है। श्रुतिजन्य मिथ्यात्व बोध मै शब्द का स्वरूप कारण नहि। यातैं निषेधवाक्यन तैं प्रपंच का स्वरूप सै निषेध मानै बी उपजीव्य विरोध नहि। यह मत प्रथम कहा है। या मत मै निर्विषय प्रत्यक्ष ज्ञान का असंभवादि दोष हैं। यातैं शाब्दबोध मै योग्यताविशिष्ट शब्द कारण होने तैं शाब्दबोधरूप कार्य तैं योग्यताविशिष्ट शब्द का स्वरूप सिद्ध होवै है। तैसे जलाहरणादि कार्य तैं घटादिकन का स्वरूप बी सिद्ध होवै है। इस रीति सै ब्रह्मभिन्न संपूर्ण प्रपंच मानै बी 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि निषेधश्रुतिवाक्यन सै अविरुद्ध प्रपंचस्वरूप का अंगीकार होने तैं उपजीव्य विरोध नहि। यह दूसरा मत कहा है। या मत मै बी प्रथम मत की न्याईं प्रपंच का निषेध तौ स्वरूप तैं हि माने हैं। परंतु कल्पित प्रतियोगिक अभाव का अधिष्ठान मै कुछ काल पर्यंत प्रतियोगिस्थिति सै विरोध नहि माने हैं। यातैं ब्रह्म मै कल्पित प्रपंच औ ताका निषेध दोनों एक काल मै स्थित होने तैं प्रपंचस्वरूप के अप्रतिक्षेप

तैं उपजीव्य विरोध होवै नहि। परंतु या मत मैं जो यह दोष कहा है—'भूतले घटो नास्ति' या निषेध कूं घट के स्वरूप का अपलापक नहि माने ताकूं घट का निषेध कहना संभवै नहि। तैसे 'नेह नानास्ति किंचन' यह स्वरूप सै प्रपंच का निषेध है। ताकूं प्रपंच के स्वरूप का अपलापक नहि माने प्रपंच का निषेध कहना नहि संभवैगा। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं निषेध मै प्रतियोगिस्वरूप की अपलापकता अनपलापकता अनुभव के अनुसार मानी चाहिये। भूतल मै घट का निषेध प्रतियोगी के स्वरूप का अपलापक अनुभव सिद्ध है। वृक्ष मै कपिसंयोग का निषेध औ मुखदर्पण की संनिधिकाल मै दर्पण मै मुख का निषेध प्रतियोगी के स्वरूप का अपलापक अनुभव सिद्ध नहि। तैसे 'नेह नानास्ति किंचन' यह प्रपंच का निषेध बी ताके स्वरूप का अनपलापक संभवै है। औ सूक्ष्मविचार करैं तौ प्रपंच के निषेध मै प्रपंचस्वरूप के अपलापकता की शंका हि संभवै नहि। काहे तैं निषेध नाम अभाव का है। प्रतियोगी के समान सत्तावाला अभाव हि प्रतियोगिस्वरूप का अपलापक होवै है। विषम सत्तावाला अभाव प्रतियोगी के स्वरूप का अपलापक होवै नहि। औ ब्रह्म मै प्रपंच का अभाव पारमार्थिक है। सो ब्रह्मरूप है प्रपंच व्यावहारिक वा प्रातिभासिक है। यातैं दर्पण मै मुख का निषेध मुखदर्पण के वियोग पर्यंत

मुखस्वरूप का अपलापक नहि होवै है। तैसे प्रारब्ध की निवृत्ति पर्यंत पारमार्थिक प्रपंचाभाव तैं असत् विलक्षण प्रपंचस्वरूप का अनपलाप संभवै है। इस रीति से प्रपंच के अधिकरण ब्रह्म मै ताका अभाव निषेधश्रुति वाक्यन का विषय संभवै है। विरोध नहि। परंतु इहां यह शंका होवै है। जैसे अपरोक्षता की सिद्धि वास्ते शुक्ति मै रजताभास की उत्पत्ति पूर्व कहि है। तैसे प्रतिबिंब भ्रम-स्थल मै बी ग्रीवास्थमुख से भिन्न मुखाभास की उत्पत्ति दर्पण मै मानी चाहिये। काहे तैं बिंब प्रतिबिंब के अभेद-वाद मै ग्रींवास्थमुख हिं प्रतिबिंब है मुख से प्रतिबिंब भिन्न नहि औ ताका नासिकादि प्रदेश मै तौ इंद्रिय संबंध के संभव तैं प्रत्यक्ष संभवै बी है। परंतु नयनगोलक लला-टादि प्रदेश मै इंद्रिय संबंध के अभाव तैं प्रत्यक्ष संभवै नहि। औ प्रतिबिंब भ्रम मै नयनगोलकादिक बी अपरोक्ष प्रतीत होवै हैं। दर्पण मै मुखाभास की उत्पत्ति नहि माने मुखादिकन के प्रतिबिंब का सर्वरूप तैं प्रत्यक्ष नहि होवैगा। जो ताके प्रत्यक्ष की सिद्धि वास्ते बिंब से भिन्न मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति माने तौ ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव बी तासै भिन्न हि कहना होवैगा। यातैं घटादिकन की न्याईं मिथ्या होने तैं ताका ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष हि नहि संभवैगा। काहे तैं मिथ्या जीव की मोक्ष मै स्थिति संभवै नहि। या शंका का विवरण के अनुसारी

यह समाधान कहे हैं—दर्पणादिकन मैं मुखादिकन का प्रतिबिंब मिथ्या होवै तौ ताके दृष्टांत तैं मिथ्या जीव मैं ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष की अनुपपत्ति की शंका संभवै परंतु दर्पणादिकन मैं मुखादिकन का प्रतिबिंब मिथ्या नहि यातैं शंका संभवै नहि तथा हि—यद्यपि मुखग्रीवास्थ हि है। दर्पणस्थ नहि। औ 'दर्पणे मुखं भाति' इस रीति सै मुख का प्रतिबिंब दर्पणस्थ प्रतीत होवै है। तैसे बिंब प्रतिबिंब के अभेद पक्ष मै आप हि अपने अभिमुख संभवै नहि। मुख का प्रतिबिंब ग्रीवास्थमुख के सन्मुख प्रतीत होवै है। तैसे बिंब प्रतिबिंब का भेद स्पष्ट प्रतीत होवै है। यातैं अनुभव के अनुसार दर्पणादि उपाधि मैं मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति मानी चाहिये। तथापि धर्मिकल्पना तैं अनेक धर्मकल्पना मै बी लाघव माने हैं। धर्मिकल्पना मै गौरव माने हैं। यातैं मुखदर्पण की संनिधिरूप दोष तैं ग्रीवास्थ मुख मै दर्पणस्थत्व प्रत्यङ् मुखत्व बिंब भिन्नत्वादिक धर्मन की हि कल्पना मानी चाहिये। दर्पण मैं मुखाभासरूप धर्मी की उत्पत्ति कहना संभवै नहि। जो 'दर्पणे मुखं नास्ति' इस रीति सै दर्पण मै प्रतिबिंब का बाध होवै है। मुखाभासरूप धर्मी की उत्पत्ति माने बिना बाध संभवै नहि यातैं मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं 'दर्पणे मुखं नास्ति' यह प्रतिबिंब के स्वरूप का बाध होवै तौ दर्पण मै मुखाभासरूप धर्मी की

उत्पत्ति कहना संभवै परंतु दर्पणस्थत्वरूप मुख के संसर्ग मात्र का बाध है। प्रतिबिंब के स्वरूप का बाध नहि। यातैं बाध प्रत्यक्ष तैं बी दर्पणस्थत्वरूप संसर्ग हि मिथ्या सिद्ध होवै है। प्रतिबिंब का स्वरूप मिथ्या सिद्ध होवै नहि। जो शुक्ति रजत की न्याईं प्रतिबिंब कूं स्वरूप सै मिथ्या माने तौ 'नेदं रजतं' इस रीति सै रजत का स्वरूप सै बाध होवै है। तैसे 'नेदं मुखं' इस रीति सै प्रतिबिंब का बी स्वरूप सै हि बाध हुवा चाहिये। 'दर्पणे मुखं नास्ति' इस रीति सै दर्पणस्थत्वरूप संसर्ग मात्र का बाध नहि हुवा चाहिये। औ 'दर्पणे मम मुखं भाति' इस रीति सै बिंब मुख सै प्रतिबिंब का अभेद प्रतीत होवै है। प्रतिबिंब कूं स्वरूप सै मिथ्या माने सो नहि हुवा चाहिये यातैं बी बिंब प्रतिबिंब का भेद मात्र कल्पित सिद्ध होवै है। स्वरूप सै प्रतिबिंब सत्य सिद्ध होवै है। इस रीति सै दर्पणादिकन मै मुखादिकन का प्रतिबिंब तिन सै अभिन्न होने तैं सत्यसिद्ध होवै है। तैसे ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव बी तासै अभिन्न होने तैं सत्य हि सिद्ध होवै है। घटादिकन की न्याईं मिथ्या सिद्ध होवै नहि। यातैं ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष का असंभव नहि। औ जो बिंब प्रतिबिंब के अभेदपक्ष मै दोष कहा—प्रतिबिंबत्वादि धर्माध्यास का अधिष्ठान ग्रीवास्थमुख है। तासै नयनगोलकादि प्रदेश मै इंद्रिय का संबंध संभवै नहि। यातैं

सर्वरूप सै प्रतिबिंब का प्रत्यक्ष नहि होवैगा। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं नयनगोलकादि प्रदेश मै इंद्रिय-संबंध तैं प्रतिबिंब का प्रत्यक्ष मानै तौ दोष होवै परंतु दर्पणादि उपाधि तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि सै बिंब का ग्रहण माने हैं प्रतिबिंबकर्त्ता से अभेद है यातैं बिंब की न्याई ताका बी ग्रहण होवै है। तात्पर्य यह—नेत्र की रश्मि-गोलक सै निकस के दर्पणादि उपाधि कूं प्राप्त होवै हैं। तासै प्रतिहत होय के बिंबरूप मुखादिकन सै तिनका संबंध होवै है। तासै अनंतर अभिमुख पुरुषांतर के मुखसाक्षात्कार की न्याई स्वग्रीवास्थ मुख का सर्वरूप सै साक्षात्कार होवै तब तासे अभिन्न प्रतिबिंब का बी सर्वरूप सै साक्षात्कार होने तैं दोष नहि। यद्यपि हस्तादिकन तैं प्रतिहत नेत्र-रश्मि का गोलक द्वारा शरीर के अंतर प्रवेश हि प्रसिद्ध है बाह्य पदार्थ से संबंध प्रसिद्ध नहि। प्रतिबिंबाध्यास-स्थल मै उपाधि तैं प्रतिहत रश्मि का बिंब मुखादिकन सै संबंध माने अप्रसिद्ध की कल्पना होवैगी। तथापि इंद्रिय के असंबंधि पदार्थ का चाक्षुष प्रतिबिंब होवै नहि। चक्षु-जन्य ज्ञान का विषय प्रतिबिंब चाक्षुप प्रतिबिंब कहिये है जो इंद्रियासंबंधी का बी चाक्षुप प्रतिबिंब माने तौ व्यवहित का बी चाक्षुष प्रतिबिंब हुवा चाहिये। बहुत क्या कहैं परमाणु औ वायु का बी चाक्षुष प्रतिबिंब हुवा चाहिये। यातैं प्रतिबिंब की उत्पत्ति माने तिन के मत मै बी बिंब

इंद्रिय का संबंध चाक्षुष प्रतिबिंबाध्यास मै अवश्य हेतु कहा चाहिये। ग्रीवास्थ मुखादिकन सै और प्रकार सै तौ इंद्रिय का संबंध कहना संभवै नहि। पूर्व उक्त प्रकार तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि का हि संबंध कहना होवैगा। यातैं उभय संमत होने तैं अप्रसिद्धि दोष नहि। जो जा द्रव्य मै महत्व औ उद्भूतरूप तैसे व्यवधान का अभाव होवै ताका हि चाक्षुप प्रतिबिंब होवै है। अन्य का नहि। यह नियम है। यातैं प्रतिबिंबाध्यास मै बिंब इंद्रिय के संबंध कूं हेतुता माने विना हि कुड्यादि व्यवहित मुखादिकन के तैसे परमाणु औ वायु के चाक्षुप प्रतिबिंब की आपत्ति का परिहार कहैं तात्पर्य यह—चाक्षुष प्रतिबिंबाध्यास मै बिंब इंद्रिय का संबंध हेतु नहि मानै व्यवहितादिकन के चाक्षुप प्रतिबिंब की बी आपत्ति होवै है व्यवधान का अभाव हेतु है यातैं व्यवहित मुखादिकन के चाक्षुप प्रतिबिंब की आपत्ति का तैसे महत्व औ उद्भूतरूप कारण है यातैं परमाणु औ वायु के चाक्षुप प्रतिबिंब की आपत्ति का परिहार कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं महान् औ उद्भूतरूपवाले द्रव्य का चाक्षुष प्रतिबिंब होवै है। या कहने तैं द्रव्यगत महत्व औ उद्भूतरूप प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै बी कारण सिद्ध होवै हैं। सो असंगत है। काहे तैं द्रव्य के चाक्षुप प्रत्यक्ष मैं हि तिन कूं कारणता प्रसिद्ध है। प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै कारणता प्रसिद्ध

नहि। तैसे अव्यवहित का प्रतिबिंब कहने तैं प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै कुड्यादिक साक्षात् प्रतिबंधक सिद्ध होवै हैं। सो बी असंगत है। काहे तैं घटादि प्रत्यक्ष मैं इंद्रियसंबंध के विघटन द्वारा हि कुड्यादिक प्रतिबंधक प्रसिद्ध हैं। साक्षात् प्रतिबंधक प्रसिद्ध नहि। तात्पर्य यह--द्रव्यगत महत्व औ उद्भूतरूप द्रव्य के चाक्षुष प्रत्यक्ष मै कारण प्रसिद्ध हैं। तैसे कुड्यादिक इंद्रिय संबंध के विघटन द्वारा बाह्यवस्तु गोचर साक्षात्कार के प्रतिबंधक प्रसिद्ध हैं। औ बिंब प्रतिबिंब के अभेदपक्ष मै तौ बिंब का चाक्षुष प्रत्यक्ष हि प्रतिबिंब का चाक्षुष प्रत्यक्ष है। यातैं बिंबरूप मुखादिगत महत्वादिकन मै मुखादि प्रत्यक्ष की कारणता प्रसिद्ध है। प्रतिबिंब के प्रत्यक्ष मै बी सोई माननी होवै है। प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै अप्रसिद्ध कारणता महत्वादिकन मै माननी होवै नहि। यातैं लाघव है। मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति पक्ष मै बिंब इंद्रिय का संबंध ताकी उत्पत्ति मै हेतु नहि माने हैं। यातैं वायु औ परमाणु का बी चाक्षुष प्रतिबिंब हुवा चाहिये। ताके वारण वास्ते बिंबरूप द्रव्यगत महत्वादिक स्वाश्रयगोचर चाक्षुषप्रत्यक्ष के हेतु हैं। तैसे स्वाश्रय द्रव्य के प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै बी हेतु मानने होवै हैं। यातैं अक्लृप्त की कल्पनारूप गौरव होवै है। तैसे बिंब प्रतिबिंब के अभेदपक्ष मै प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब से संबंध माने हैं।

यातैं प्रतिबिंब के प्रत्यक्ष मै बी बिंब इंद्रिय के संबंध कूं हेतुता विद्यमान है। यातैं घटादिगोचर चाक्षुषप्रत्यक्ष मै इंद्रियके संबंध विघटन द्वारा कुड्यादिक प्रतिबंधक हैं। तैसे प्रतिबिंब के चाक्षुपप्रत्यक्ष मै बी इंद्रिय संबंध के विघटन द्वारा हि प्रतिबंधक मानने होवै हैं। घटादि-प्रत्यक्ष मै कुड्यादिकन कूं साक्षात् प्रतिबंधकता अप्रसिद्ध है। प्रतिबिंबाध्यास मै ताका अंगीकार होवै नहि। यातैं लाघव है। औ मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति पक्ष मै प्रति-हत नेत्ररश्मि का बिंब सै संबंध हेतु नहि मने हैं। यातैं प्रतिबिंब भ्रमस्थल मै कुड्यादिकन कूं संबंध की विघटकता तौ कहि जावै नहि। किंतु व्यवहित का प्रतिबिंब वारण वास्ते तिन कूं प्रतिबिंबाध्यास की साक्षात् प्रतिबंधकता हि कहनी होवैगी। यातैं उक्त प्रकार का हि गौरव होवैगा। औ प्रतिबिंबाध्यास मै कुड्यादिक साक्षात् प्रतिबंधक हैं। तैसे घटादि प्रत्यक्ष मै बी इंद्रिय संबंध की विघटकता विना साक्षात् हि प्रतिबंधक संभवै हैं। यातैं इंद्रिय संबंध मात्र मै कारणता का लोप होवैगा। यातैं गौरवादि दोप के परिहार वास्ते प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब मुखादिकन सै संबंध अवश्य मान्या चाहिये। किंच अध्यास मात्र मै दोप, संप्रयोग, संस्कार कारण हैं। प्रतिबिंबाध्यासस्थल मै मुख दर्पणादिकन की संनिधिरूप दोप औ मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति पक्ष मै दर्पणादि अधिष्ठान का

सामान्य ज्ञानरूप संप्रयोग का तौ संभव है। परंतु पूर्व अनुभव विना संस्कार संभवै नहि। यातैं कल्पित प्रतिबिंब के सजातीय मुखादिकन का पूर्व कदाचित् अनुभव मान्या चाहिये। औ इंद्रिय के संबंध विना अनुभव होवै नहि। यातैं मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति पक्ष मैं बी प्रतिहत नेत्ररश्मि का मुखादिकन सै कदाचित् संबंध मान्या चाहिये। जो प्रतिहत नेत्ररश्मि का संबंध नहि मानै बी ग्रीवास्थमुख के नासिकादि प्रदेश मैं नेत्र का संबंध होवै है। तासैं हि अनुभव द्वारा संस्कार का संभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं नासिकादि अनुभवजन्य संस्कार तैं नासिकादिकन का हि प्रतिबिंबाध्यास संभवै है। नयनगोलक ललाटादिकन का प्रतिबिंबाध्यास संभवै नहि। औ तटाक के तटस्थवृक्ष पर समारूढ पुरुप कबी देखा नहि। ताका तटाकजल मैं प्रतिबिंबाध्यास होवै तहां किसी प्रकार तैं बी पूर्व अनुभव कहा जावै नहि। प्रतिहत नेत्ररश्मि के संबंध तैं हि अनुभव द्वारा संस्कार का संभव कहना होवैगा। तैसे सर्वत्र प्रतिहत नेत्ररश्मि संबंध तैं हि अनुभव द्वारा संस्कार का संभव मान्या चाहिये। इस रीति सै उपाधि प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब तैं संबंध आवश्यक होने तैं तासै अभिन्न प्रतिबिंब का सर्वरूप सै प्रत्यक्ष संभवै हैं दोप संभवै नहि। परंतु या पक्ष मै यह दोप कहे हैं—दर्पणादिकन तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब तैं

संबंध माने शिलादिकन तैं प्रतिहत का बी मान्या चाहिये। तासै अनंतर बिंब का प्रत्यक्ष हुवा चाहिये। औ स्वच्छ दर्पण तैं प्रतिहतरश्मि का ग्रीवास्थमुख सै संबंध माने हैं। तैसे मलिन दर्पण तैं प्रतिहत का बी मान्या चाहिये। याहि तैं स्वच्छ दर्पण की न्याईं मलिन दर्पण मै बी सकलांग गोचर मुखादि प्रतिबिंब का साक्षात्कार हुवा चाहिये। साक्षात् सूर्य के दर्शन मै नेत्ररश्मि का प्रतिरोध होवै है। तैसे उपाधि तैं प्रतिहतरश्मि का बी ताके दर्शन मै प्रतिरोध हुवा चाहिये। जलादिकन तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि की बिंबदेश मै प्राप्ति माने तौ संबंधाभाव तैं तिनके अंतर्गत सिक्तादिकन का प्रत्यक्ष नहि हुवा चाहिये। तैसे प्रतिहतनेत्ररश्मि की बिंबदेश मै प्राप्ति माने तौ दर्पणादिकन तैं प्रतिहतनेत्ररश्मि के संबंध तैं पृष्ठभाग तैं व्यवहित पदार्थ का बी तिन मै प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। इस रीति सै उपाधि प्रतिहतनेत्ररश्मि का बिंब सै संबंध मानने मै दोष कहे हैं। परंतु दृष्ट के अनुसार पदार्थ के स्वभाव की कल्पना होने तैं दोष संभवै नहि। तथा हि—दर्पणादिकन मै मुखादिकन का प्रतिबिंब दृष्ट है। शिलादिकन मै दृष्ट नहि। यातैं दर्पणादिकन तैं प्रतिहतनेत्ररश्मि का हि बिंब तैं संबंध होवै है। शिलादिकन सै प्रतिहतरश्मि का संबंध होवै नहि। यह दृष्ट के अनुसार कल्पना है। औ स्वच्छ दर्पण की न्याईं मलिन दर्पण तैं प्रतिहत-

नेत्ररश्मि का बी बिंब सै संबंध तौ होवै है। परंतु मलिन उपाधि के संबंधरूप दोष तैं तामैं सकलांग गोचर मुखादि प्रतिबिंब का साक्षात्कार होवै नहि। उक्त दोष के अभाव तैं स्वच्छ मै होवै है। औ साक्षात् सूर्यदर्शन मै हि ताके तेज सै नेत्ररश्मि का प्रतिरोध होवै है। उपाधि तैं प्रतिहत-रश्मि का प्रतिरोध होवै नहि। जलादि संबंध तैं कोई नेत्र की रश्मि प्रतिहत होय के बिंब कूं प्राप्त होवै हैं। कोई तिन के अंतर्गत सिक्तादिकन कूं ग्रहण करे हैं। यह बी दृष्ट के अनुसार हि कल्पना है। काहे तैं जलादि उपाधि मै सूर्यादिकन का प्रतिबिंब दृष्ट है तैसे तिन के अंतर्गत सिक्तादिक बी दृष्ट हैं। औ पृष्ठभाग तैं व्यवहित पदार्थ का प्रतिबिंब दृष्ट नहि। यातैं शरीर के अवयव तहां प्रतिहतनेत्ररश्मि संबंध के विघटक हैं। इस रीति सै फल बल तैं पदार्थ के स्वभाव की कल्पना होने तैं दोष नहि। इस रीति सै विवरण के अनुसारी बिंब प्रतिबिंब के भेद के निराकरण पूर्वक तिन का अभेद सिद्ध करे हैं। औ विद्यारण्यस्वामी आदिक पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेद तैं त्रिविध जीव माने हैं। औ प्रतिबिंब कूं मिथ्या माने हैं। अद्वैतविद्याकार तिन का यह तात्पर्य कहे हैं—जैसे शुक्ति रजत स्वहस्तगत सत्यरजत सै भिन्न औ ताके सदृश प्रतीत होवै है। यातैं तासै भिन्न मिथ्या माने हैं तैसे चैत्र स्वमुख कूं दर्पण मै देखै

तब ताके समीपस्थ पुरुष चैत्रमुख कूं ग्रीवा मै देखे हैं। मुख के प्रतिबिंब कूं दर्पण मै तासै भिन्न औ ताके सदृश संशयविपर्यय से रहित देखे हैं। यातैं बिंबरूप मुख से भिन्न औ स्वरूप से मिथ्या मान्या चाहिये। जो 'दर्पणे मम मुखं भाति' इस रीति सै बिंब प्रतिबिंब का अभेद प्रतीत होवै है। बिंबरूप मुख सै भिन्न मिथ्या प्रतिबिंब मानै ताका विरोध कहैं। तौ संभवै नहि। काहे तैं बिंब प्रतिबिंब का भेद स्पष्ट प्रतीत होवै है। तिन मै द्वित्व संख्या प्रतीत होवै है। बिंब मै प्राङ्मुखत्व ग्रीवास्थत्व स्वतंत्रतादिक प्रतीत होवै हैं। प्रतिबिंब मै प्रत्यङ्मुखत्व दर्पणस्थत्व परतंत्रतादिक प्रतीत होवै हैं। बिंब प्रतिबिंब का अभेद माने ताका विरोध होवैगा। यातैं तिन का अभेद तौ संभवै नहि याहि तैं 'दर्पणे मम मुखं भाति' यह अभेदव्यवहार बी मुख्य नहि संभवै है किंतु जैसे अपने छायामुख मै 'मम मुखं' इस रीति सैं गौण अभेदव्यवहार होवै है। तैसे 'दर्पणे मम मुखं.' यह अभेदव्यवहार बी गौण हि मान्या चाहिये। जो 'दर्पणे मम मुखं भाति' 'मम मुखं मलिनं भाति, मम मुखं दीर्घं भाति, मम मुखं ह्रस्वं भाति, मुखं ग्रीवास्थमेव न दर्पणादौ' इस रीति से अभेदगोचर अनुभव बी अनेक होवै हैं। यातैं बिंब प्रतिबिंब के अभेदव्यवहार कूं मुंख्य औ कल्पित भेद-विषयक होने तैं तिन के भेद व्यवहार कूं गौण कहैं तथापि

संभवै नहि। काहे तैं प्रतिबिंब गोचर प्रवृत्ति आदिक लोक मै प्रसिद्ध हैं। जलाशयादिकन मै भयंकर प्रतिबिंब कूं देखि कै बालक भाग जावै हैं। प्रीतिकर मनोहर प्रतिबिंब कूं देखि के ग्रहण की इच्छा तैं ताके समीप जावे हैं। यह वार्ता कर्णामृताचार्य ने बी कहि है श्लोक–

रत्नस्थले जानुचरः कुमारः संक्रान्तमात्मीय मुखारविन्दम्।
आदातुकामस्तदलाभखेदाद्विलोक्य धात्री वदनं रुरोद॥

अर्थ यह—जानुसंचारी श्रीकृष्ण कुमार नानाविध कुंडलादिभूषित निरवधि सुंदर गोपीजन मनोहर ब्रह्मादिक बी सदा जाकी वांछा करे हैं। ऐसे अपने मुखारविंद कूं निर्मल रत्नमय स्थान मै प्रतिबिंबित देखि कै लोकसिद्ध बालचेष्टा के अनुसार ताके ग्रहण की इच्छा तैं चिरकाल हस्तव्यापार कूं करके बी जब ताका लाभ न हुवा तब ताके अलाभजन्य खेद तैं धात्री के मुख की तरफ देखि के तुमने ग्रहण करके यह मुझे दिया चाहिये। या अभिप्राय तैं मुक्तकंठ रोदन कर्ता भया। या प्रकार की बालप्रवृत्ति आदिक सर्व के अनुभव सिद्ध हैं। सो बिंब तैं प्रतिबिंब के भेदज्ञान विना संभवै नहि। यातैं अभेदव्यवहार हि गौण मान्या चाहिये। भेदव्यवहार कूं गौण कहना संभवै नहि। जो बिंब प्रतिबिंब का वास्तव भेद हि होवै तौ परीक्षक पुरुषन कूं भेद का निर्णय अवश्य होवैगा। यातैं स्वमुखगत विशेष के ज्ञान वास्ते दर्पणादिकन के

ग्रहण मै तिन की प्रवृत्ति नहि हुयी चाहिये। औ प्रवृत्ति होवै है। यातैं प्रतिबिंब का बिंब तैं अभेद निश्चय कहा चाहिये। इस रीति सै भेदज्ञान की न्याई अभेदज्ञान बी अर्थक्रिया पर्यंत कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं बिंब प्रतिबिंब के भेद मै युक्ति पूर्व कहि हैं। तिन तैं परीक्षक पुरुषन कूं भेदज्ञान तौ होवै है। परंतु प्रतिबिंब नियम तैं बिंब के समान आकारवाला होवै है। या निश्चय तैं दर्पणादि ग्रहण मै तिन की प्रवृत्ति संभवै है। अभेदज्ञान की आवश्यकता नहि। औ जो पूर्व कहा—'दर्पणे मुखं नास्ति' यह दर्पणस्थलादि रूप संसर्ग मात्र का बाध है। स्वरूप सै प्रतिबिंब का बाध नहि। सो कहना बी संभवै नहि। काहे तैं 'दर्पणे मुखं नास्ति' यह संसर्ग मात्र का बाध कहैं तौ 'नेदं रजतं' यह बी इदं पदार्थ मै रजत के तादात्म्य मात्र का बाध है। स्वरूप सै रजत का बाध नहि। यह कहना बी संभवै है। यातैं सिद्धांत मै शुक्ति रजतादिक अनिर्वचनीय नहि सिद्ध होवैंगे। जो इदं पदार्थ मै रजत के तादात्म्य मात्र का अध्यास होवै स्वरूप सै रजंत का अध्यास नहि होवै तौ 'नेदं रजतं' यह तादात्म्य मात्र का बाध कहना संभवै। परंतु 'इदं रजतं' यह रजत के तादात्म्य का हि अध्यास नहि। किंतु तादात्म्य संबंध तैं रजत का अध्यास है। यातैं 'नेदं रजतं' यह रजत के तादात्म्य मात्र का बाध

नहि। किंतु तादात्म्य संबंध तैं रजत का हि बाध कहैं तौ 'दर्पणे मुखं' यह बी दर्पण मै मुख के संसर्ग मात्र का अध्यास नहि। किंतु दर्पणस्थत्व विशिष्ट मुख का अध्यास है । यातैं 'दर्पणे मुखं नास्ति' यह संबंधविशिष्ट मुख का हि बाध है । संसर्ग मात्र का बाध नहि । यह तुल्य हि समाधान है। यातैं 'दर्पणे मुखं नास्ति' यह दर्पणस्थत्व-रूप संसर्ग मात्र का बाध कहना संभवै नहि । याहि तैं धर्मकल्पना तैं धर्मिकल्पना मै गौरव कहना बी नहि संभवै है। काहे तैं. बाध प्रत्यक्ष तैं शुक्ति रजत की न्याइं प्रतिबिंबरूप धर्मी बी कल्पित सिद्ध होवै है। प्रमाण-मूलक गौरव दोपकर नहि । किंच ग्रीवास्थमुख मै दर्पणस्थत्वादिक धर्मन का हि अध्यास माने धर्मी का अध्यास नहि माने तौ स्वनेत्र के गोलकादिकन का प्रतिबिंब भ्रम होवै तहां संबंध के अभाव तैं नयनगोल-कादिरूप बिंब का अपरोक्ष संभवै नहि । याहि तैं प्रतिबिंब का बी अपरोक्ष नहि संभवैगा । दर्पणादिकन मै प्रतिबिंब-रूप धर्मी की उत्पत्ति मानै अपरोक्ष संभवै है । यातैं बी प्रतिबिंबरूप धर्मिकल्पना मै गौरव दोप नहि। जो प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब तैं संबंध मान के अपरोक्षता का संभव कहैं तौ अनेक प्रकार का दृष्टविरोध प्राप्त होवैगा। तथा हि—जलसंबंध तैं नेत्र की कोई रश्मि प्रतिहत नहि होय के ताके अंतर्गत सिक्तादिकन कूं विपय करे हैं। कोई

प्रतिहत होय के सूर्य कूं प्राप्त होवै हैं। यह दृष्टविरुद्ध है। काहे तैं सूर्य की किरणा सकल नेत्ररश्मि का प्रतिघातक हैं। तिन का पराभव करके प्रतिहत नेत्ररश्मि सूर्य मंडल कूं प्राप्त होवै हैं। यह दृष्टविरुद्ध हि है। किंच साक्षात् चंद्रदर्शन तैं नेत्र मै शीतलता दृष्ट है। बिंब प्रतिबिंब के अभेद पक्ष मै चंद्र के प्रतिबिंब का दर्शन होवै तिस काल मै बी चंद्रबिंब तैं नेत्र का संबंध विद्यमान है। यातैं शीतलता मानी चाहिये। सो बी दृष्ट विरुद्ध है। काहे तैं अधोमुख हुवा पुरुष जलाशयादिकन मै चंद्र प्रतिबिंब कूं निरंतर देखै तिस काल मै नेत्र मै शीतलता दृष्ट नहि। किंच जलसंबंध तैं नेत्ररश्मि का प्रतिघात माने शिलादि संबंध सै तौ अवश्य मान्या चाहिये। प्रतिहत नेत्ररश्मि का नयनगोलकादिकन सै संबंध मान्या चाहिये। संबंध सै तिन का प्रत्यक्ष बी मान्या चाहिये। सो बी दृष्टविरुद्ध है। काहे तैं शिलादिकन सै नेत्र के संबंध काल मै नयनगोलकादिकन का प्रत्यक्ष दृष्ट नहि। जो दोष तैं प्रत्यक्ष का प्रतिबंध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं शुक्ति रजतादि भ्रम होवै तहां दोष तैं विशेष अंश के ज्ञान का हि प्रतिबंध दृष्ट है। सामान्य अंश के ज्ञान का प्रतिबंध दृष्ट नहि। यातैं शिलादि संबंध काल मै सामान्य मुखत्वादिरूप तैं हि स्वमुख का साक्षात्कार हुवा चाहिये। इस रीति सै बिंब प्रतिबिंब का

अभेदवाद दृष्ट विरुद्ध है। मिथ्या प्रतिबिंब की उपपत्ति पक्ष मै किंचित् बी दृष्ट विरोध होवै नहि। तथा हि—जो या पक्ष मै पूर्व अक्लृप्त की कल्पनारूप गौरव कहा द्रव्य-गत महत्व औ उद्भूतरूप द्रव्य के चाक्षुप प्रत्यक्ष मै हि कारण प्रसिद्ध हैं। स्वाश्रयद्रव्य के प्रतिबिंबाध्यास मै हेतु प्रसिद्ध नहि। तामै तिन कूं हेतु मानना अक्लृप्त कल्पना है। तैसे कुड्यादिक इंद्रिय संबंध के विघटन द्वारा हि घटादिप्रत्यक्ष के प्रतिबंधक प्रसिद्ध हैं। साक्षात् प्रतिबंधक प्रसिद्ध नहि। प्रतिबिंबाध्यास की उत्पत्ति मै तिन कूं साक्षात् प्रतिबंधक मानना बी अप्रसिद्ध की हि कल्पना है। सो संभवै नहि। काहे तैं अंतर सुखादि प्रत्यक्ष की हेतुता हि मन मै प्रसिद्ध है। बाह्यपदार्थ के प्रत्यक्ष की हेतुता प्रसिद्ध नहि। परंतु फल बल तैं आकाश गोचर प्रत्यक्ष की हेतुता बी माने हैं। तैसे द्रव्यगत मह-त्वादिक यद्यपि स्वाश्रयगोचर साक्षात्कार के हि कारण प्रसिद्ध हैं। स्वाश्रयद्रव्य के प्रतिबिंबाध्यास मै कारण प्रसिद्ध नहि। तथापि जा द्रव्य मै महत्व औ उद्भूतरूप होवैं चाक्षुप प्रतिबिंब बी ताका हि दृष्ट है। अन्य का नहि। यातैं फल बल तैं स्वाश्रय द्रव्य के प्रतिबिंब मै बी कारण मानै अप्रसिद्ध दोष नहि। औ स्वाकार वृत्ति सै स्वकी हि अपरोक्षता प्रसिद्ध है। अन्याकार वृत्ति सै अन्य की अपरोक्षता प्रसिद्ध नहि। परंतु फल बल तैं हि आलोका-

कार चाक्षुपवृत्ति सै आकाश की बी अपरोक्षता माने हैं। तैसे कुड्यादिक यद्यपि व्यवहित वस्तु के साक्षात्कार मै इंद्रिय संबंध के विघटन द्वारा हि प्रतिबंधक प्रसिद्ध हैं। काहे तैं जैसे त्वगिंद्रिय विषय कूं प्राप्त होय के हि घटादि विषय के प्रत्यक्ष का हेतु दृष्ट है। तैसे नेत्रादिक बी स्व-विषय कूं प्राप्त होय के हि ताके साक्षात्कार के हेतु माने चाहिये। औ विषय सै इंद्रिय का संबंध हि प्राप्ति है। यातैं व्यवहित वस्तु के साक्षात्कार मै संबंध विघटन द्वारा हि कुड्यादिक प्रतिबंधक सिद्ध होवै हैं। याहि तैं प्रति-बिंबाध्यास की उत्पत्ति मै कुड्यादिक साक्षात् प्रतिबंधक माने घटादि प्रत्यक्ष मै बी साक्षात् प्रतिबंधक होने तैं इंद्रिय संबंध मात्र मै कारणता का लोप होवैगा। यह कहना बी संभवै नहि। इस रीति से व्यवहित वस्तु के प्रत्यक्ष मै संबंध विघटन द्वारा कुड्यादिक प्रतिबंधक प्रसिद्ध हैं। तैसे प्रति बिंबाध्यास की उत्पत्ति मै बी संबंध विघटन द्वारा हि प्रतिबंधक माने व्यवहित का बी प्रतिबिंब हुवा चाहिये। काहे तैं मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्तिपक्ष मै इंद्रिय संबंध हेतु नहि माने हैं। याहि तैं कुड्यादिक संबंध विघटन द्वारा प्रतिबंधक कहने बी नहि संभवै हैं। साक्षात् बी प्रतिबंधक नहि माने व्यवहित का बी प्रतिबिंब अवश्य हुवा चाहिये। औ अव्यवहित पदार्थ का हि प्रति-बिंब दृष्ट है। व्यवहित का दृष्ट नहि। यातैं फलबल

तैं व्यवहित वस्तु के प्रति बिंबाध्यास मैं कुड्यादिक साक्षात्
प्रतिबंधक मानै बी अप्रसिद्धि दोष नहि। इस रीति
सैं मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति मैं बिंबरूप द्रव्यगत
अव्यवहितत्व, महत्व, उद्भूतरूप हेतु हैं। यातैं प्रतिहत
नेत्ररश्मि का बिंब सैं संबंध नहि माने व्यवहित पदार्थ का,
तैसे परमाणु औ वायु का बी चाक्षुष प्रतिबिंब भ्रम हुवा
चाहिये। यह कहना बी नहि संभवै है। उलटा प्रतिहत
नेत्ररश्मि का बिंब तैं संबंध माने हि व्यवहितादिकन का
प्रतिबिंब हुवा चाहिये। तथा हि—साक्षात् सूर्य के दर्शन
वास्ते ताके सन्मुख नेत्र का प्रक्षेप होवै है। प्रतिबिंबरूप
सूर्य के दर्शन वास्ते नेत्रप्रक्षेप की अपेक्षा नहि। किंतु
अधोमुख हुवा पुरुष जल कूं देखै तब तासैं प्रतिहत नेत्र
की रश्मि ऊपरि जाय के आकाशस्थ सूर्य कूं विषय करे
हैं। औ अपने पार्श्वस्थ पुरुष के दर्शन वास्ते नेत्र का तिर्यक्
प्रक्षेप होवै है। दर्पण मैं स्वमुख के प्रतिबिंब कूं देखै
तिस काल मैं पार्श्वस्थ पुरुष के प्रतिबिंब की बी प्रतीति
होवै है। तामैं नेत्र के तिर्यक् प्रक्षेप की अपेक्षा नहि।
किंतु दर्पण तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि हि पार्श्वस्थ पुरुष कूं
विषय करे हैं। औ बिंब का प्रत्यक्ष हि प्रतिबिंब का प्रत्यक्ष
है। यातैं नेत्र के तिर्यक् प्रक्षेप विना हि पार्श्वस्थ पुरुष के
प्रतिबिंब की प्रतीति संभवै है। इस रीति सैं जहां बिंब
होवै तहां हि प्रतिहत नेत्ररश्मि का गमन माने हैं। सन्मुख

प्रतिहत नेत्ररश्मि का पुनः शरीर के अंतर हि होवै यह नियम नहि माने हैं। यातैं पृष्ठभाग सै हित पदार्थ का बी ताके सन्मुख नेत्र प्रक्षेप विना हि तिहत नेत्ररश्मि के संबंध तैं दर्पणादिकन मैं अवश्य प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। औ मलिन दर्पण मैं गौर मुख का श्याम प्रतिबिंब होवै तहां प्रतिबिंब के चाक्षुप प्रत्यक्ष मैं मुखगत गौररूप का उपयोग तौ कहना संभवै नहि। किंतु आरोपित पीतरूप विशिष्ट शंख का चाक्षुप प्रत्यक्ष होवै है। तैसे आरोपित श्यामरूप विशिष्ट हि बिंब मुख का चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम कहना होवैगा। तैसे दर्पणगत श्यामता विशिष्ट वायु आदिकन का बी चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। काहे तैं आरोपित नीलता-विशिष्ट नीरूप बी आकाश का चाक्षुप प्रत्यक्ष माने हैं। तैसे आरोपित श्यामताविशिष्ट नीरूप वायु आदिकन का बी चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम संभवै है। इस रीति सै प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब तैं संबंध माने पृष्ठभाग सै व्यवहित पदार्थ का तैसे नीरूप वायु आदिकन का बी चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। और जो प्रतिहत नेत्र का बिंब तैं संबंध नहि मानने मैं दोष कहा। इंद्रिय के संबंध विना पदार्थ का अनुभव होवै नहि। यातैं कल्पित प्रति-बिंब के सजातीय मुखादिक हैं। तिन का पूर्व अनुभव के अभाव तैं अध्यास के कारण संस्कार का असंभव होवैगा।

सो बी नहि संभवै है। काहे तैं पुरुष सामान्य के अनुभव तैं संस्कार होवै तासै हि पूर्व अननुभूत पुरुष का बी स्वप्न मै अध्यास होवै है। तैसे मुख सामान्य के अनुभवजन्य संस्कार तैं हि दर्पण मै मुख विशेष का प्रति बिंबाध्यास संभवै है। प्रतिहत नेत्ररश्मि का बिंब तैं संबंध मानना निष्फल है। परंतु इतना भेद है—स्वप्न मै शुभाशुभ का हेतु अदृष्ट है। तासै पुरुष विशेष का अध्यास होवै है। प्रतिबिंबाध्यास स्थल मै मुखविशेष के प्रतिबिंबाध्यास मै बिंब उपाधि का संबंध हेतु है। यातैं पुरुष सामान्य के अनुभवजन्य संस्कार तैं स्वप्न मै अनियत हि पुरुष का अध्यास होवै है। तैसे मुखसामान्य के अनुभव तैं संस्कार होवै तासै प्रति बिंबाध्यास माने चैत्रमुख औ दर्पण के संबंध तैं अनियत हि मुख का प्रति बिंबाध्यास हुवा चाहिये। नियम तैं चैत्रमुख का हि प्रति बिंबाध्यास नहि हुवा चाहिये। यह शंका संभवै नहि। और जो पूर्व शंकावादी ने कहा है। स्वरूप सै प्रतिबिंब मिथ्या माने ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव बी मिथ्या हि मानना होवैगा। यातैं ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष का हि अभाव होवैगा। सो बी संभवै नहि। काहे तैं त्रिविध जीववाद मै यद्यपि प्रति बिंबरूप जीव मिथ्या है। तथापि देह द्वयावच्छिन्न कूटस्थ चेतनरूप पारमार्थिक जीव सत्य है। ताका ब्रह्मभावापत्तिरूप मोक्ष संभवै है। यातैं बिंब तैं भिन्न प्रति-

बिंबस्वरूप सै मिथ्या है। यह पक्ष निर्दोष है। इस रीति सै बिंब सै भिन्न प्रतिबिंब मिथ्या सिद्ध हुवा, औ कोई ग्रंथकार तौ बिंब सै भिन्न प्रतिबिंब कूं छायारूप मान के सत्य कहे हैं। सो असंगत है। काहे तैं शरीरादिकन तैं आलोक के निरोध तैं छाया होवै है। सो अंधकाररूप होने तैं ताका नियम तैं नीलरूप हि होवै है। रूपांतर होवै नहि। औ प्रतिबिंब का रूप नील हि होवै यह नियम नहि। किंतु श्वेत पदार्थ का प्रतिबिंब श्वेत हि होवै है। रक्त का रक्त हि होवै है। पीत पदार्थ का पीत हि प्रतिबिंब होवै है। नील का नील हि होवै है। औ नेत्रादिकन की छाया हि होवै नहि। तिन के प्रतिबिंब कूं तौ छायारूप कहना सर्वथा असंगत है। यातैं बी प्रतिबिंब कूं छायारूपता कथन असंगत है। और जो अंधकार की न्याईं प्रतिबिंब कूं द्रव्यांतर रूप मान के सत्य सिद्ध करे हैं सो बी असंगत है। काहे तैं शुक्ति रजत की न्याईं प्रतिबिंब का बाध होवै है यातैं सत्यसिद्ध होवै नहि। किंच प्रतिबिंब मैं रूप परिमाण प्रत्यङ् मुखत्वादिक धर्म प्रतीत होवै हैं। ताकूं द्रव्यांतररूप मान के तामैं रूपादिक नहि माने द्रव्यांतररूप मानना निष्फल होवैगा। प्रतिबिंब मैं रूपादिक माने ताकूं सत्य कहना संभवै नहि। काहे तैं एक हि अल्प परिमाणवाले दर्पण मै महत् परिमाणवाले अनेक मुखन के अनेक प्रतिबिंब युगपत् असंकीर्ण

प्रतीत होवै हैं। तात्पर्य यह—एक बी विशाल दर्पण मै तौ अनेक प्रतिबिंब असंकीर्ण स्थित होय सके हैं। अल्प परिमाणवाले अनेक दर्पण होवैं तहां बी एक एक दर्पण मै एक एक प्रतिबिंब की असंकीर्ण स्थिति संभवै है। अल्प परिमाणवाले एक दर्पण मै बी क्रम तैं अनेक प्रतिबिंब असंकीर्ण स्थित होय सके हैं। परंतु अल्प परिमाणवाले एकं दर्पण मैं महत् परिमाणवाले अनेक प्रतिबिंब युगपत् असंकीर्ण स्थित होय सकैं नहि। औ मिथ्या प्रतिबिंब पक्ष मै तौ यह दोष नहि। काहे तैं स्वप्न मै स्वल्पनाडिदेश मै महत् परिमाणवाले अनेक मिथ्या गज रथादिक युगपत् असंकीर्ण प्रतीत होवै हैं। तैसे अल्प परिमाणवाले दर्पण मै बी विशाल अनेक प्रतिबिंबन की युगपत् प्रतीति संभवै है। औ पूर्व की न्याईं अविकृत हि दर्पण मै निम्नोन्नत अनेकविध अवयववाले सत्य द्रव्यांतररूप प्रतिबिंब की उत्पत्ति कहना सर्वथा विरुद्ध है। किंच एक हि दर्पण मै सित रक्त पीतादि अनेकविध वर्णादि युक्त अनेक प्रतिबिंब प्रतीत होवै हैं। तिन की उत्पत्ति मै दर्पण के मध्य ताके संनिहित तिस प्रकार का कारण प्रतीत होवै नहि। तात्पर्य यह—दर्पण के समान वर्णवाले हि प्रतिबिंब होवैं तब तौ दर्पण मै तादृश वर्ण युक्त कारण का संभव बी होवै। परंतु दर्पण के रूप तैं विलक्षण नाना रूपवाले प्रतिबिंब प्रतीत होवै हैं। औ बिंबरूप मुखादिकन मै तौ यद्यपि सित पीत

रक्तादि अनेकविध वर्णादिक हैं बी परंतु कार्यदेश मै कारण चाहिये। कार्य प्रतिबिंब दर्पण के अंतर ताके पृष्ठ भाग मै संनिहित प्रतीत होवै हैं। तिन का कारण बी तहां हि हुवा चाहिये। मुखादिक बिंब तिन के अग्रभाग मै बाह्य प्रतीत होवै हैं। यातैं निमित्त तौ संभवैं बी हैं। परंतु उपादान संभवैं नहि। यातैं सामग्री के अभाव तैं बी सत्य द्रव्यांतररूप प्रतिबिंब की उत्पत्ति कहना संभवै नहिं। इस रीति सै युक्ति विरोध तैं औ प्रमाण के अभाव तैं बी बिंब सै भिन्न प्रतिबिंब सत्यत्ववाद असंगत है। मिथ्या प्रतिबिंब पक्ष हि समीचीन है। इस रीति सै अद्वैत विद्याकार विद्यारण्यस्वामी आदिकन के तात्पर्य निरूपण मै प्रतिबिंब कूं स्वरूप सै मिथ्या सिद्ध करे हैं। परंतु बिंब प्रतिबिंब के अभेदपक्ष मै जो दोष कहे हैं बिंब प्रतिबिंब का भेद प्रतीत होवै है। तिन मै द्वित्वादिक प्रतीत होवै हैं। अभेदपक्ष मै ताका विरोध होवैगा। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं जैसे नेत्रदोष तैं एक हि चन्द्रमा मै भेद सहित द्वित्वादिकन का भ्रम होवै है। तैसे बिंब उपाधि की संनिधिरूप दोष तैं मुखादिक बिंब मै भेदसहित द्वित्वादिकन की प्रतीति भ्रमरूप संभवै है। याहि तैं सादृश्य प्रतीति बी भ्रमरूप हि है। तासै बी बिंब सै भिन्न प्रतिबिंबस्वरूप सै मिथ्या सिद्ध होवै नहि यातैं 'दर्पणे मम मुखं भाति' इत्यादि अभेदव्यवहार कूं गौण कहना संभवै नहि किंतु मुख्य

हि मान्या चाहिये । जो प्रतिबिंब गोचर बालप्रवृत्ति आदिकन तैं भेदव्यवहार कूं मुख्य सिद्ध किया सो बी नहि संभवै है। काहे तैं बिंब मै दर्पणादिस्थल भ्रम तैं हि बालप्रवृत्ति आदिक संभवै हैं। यातैं परीक्षक प्रवृत्ति की अन्यथासिद्धि पूर्व कहि है। तैसे बालप्रवृत्ति आदिक बी अन्यथा हि सिद्ध होय सके हैं। तिन सैं बी भेद-व्यवहार मुख्य सिद्ध होय सके नहि । उलटा अभेद गोचर अनुभव पूर्व अनेक कहे हैं। और लाघव तैं बी अभेदव्यवहार हि मुख्य सिद्ध होवै है । किंच मुखादिक-बिंब तैं प्रतिबिंब का भेद भ्रम होवै है। स्वभाव सै तिन का सदा अभेद है। तैसे जीव ब्रह्म का भेद भ्रम सिद्ध है। तिन का अभेद स्वाभाविक है। इस रीति सै लौकिक बिंब प्रतिबिंब का अभेद मानै वैदिक जीव ब्रह्म के अभेद मै अनुकूल युक्ति मिले है। औ प्रतिबिंब जीव का हि ब्रह्म सै अभेद संभव हुये तासै भिन्न पारमार्थिक जीव का अंगीकार गौरवग्रस्त है। यातैं बी बिंब प्रतिबिंब का अभेद स्वाभाविक हि मान्या चाहिये।

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥
यथा ह्ययंज्योतिरात्मा विवस्वानपोभिन्नाबहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा ॥

इत्यादि श्रुतिवाक्यन का बी बिंब प्रतिबिंब के अभेद

मै हि तात्पर्य है। काहे तैं स्वाभाव सै एक हि चंद्रादिकन मै नानात्व औपाधिक है। तैसे चेतन आत्मा स्वभाव सै एक है। तामै औपाधिक नानात्व है। यह श्रुतिवाक्यन का अर्थ सिद्ध होवै है। सो बिंब प्रतिबिंब के भेदपक्ष मै संभवै नहि। काहे तैं भेदपक्ष मै बिंब एक है। प्रतिबिंब नाना हैं। यह सिद्ध होवै है। एक मै हि औपाधिक नानात्व सिद्ध होवै नहि। बिंब प्रतिबिंब के अभेदपक्ष मै एक मै औपाधिक नानात्व स्पष्ट हि सिद्ध होवै है। या कारण तैं हि भामति निबंधादिकन मै बहुत स्थान मै यह कहा है—यद्यपि जीव ईश्वर का वास्तव सै अभेद हि है। तथापि लौकिक बिंब प्रतिबिंब की न्याई कल्पितभेद होने तैं तिन के धर्मन की व्यवस्था संभवै है। यातैं अभेदपक्ष हि समीचीन है। विद्यारंण्य स्वामी आदिकन ने बिंब प्रतिबिंब का भेद मान के स्वरूप सै मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति कहि है। सो मंद अधिकारी के वास्ते कहि है। काहे तैं धर्मी के भेदस्थल मै हि विरुद्ध धर्मन का असंकर लोक मै प्रसिद्ध है। धर्मी के अभेदस्थल मै प्रसिद्ध नहि। यातैं कर्तृत्व भोक्तृत्वादि संसार का आश्रय मिथ्या चिदाभास है। सत् चित् आनंदरूप आत्मा असंग होने तैं ताका आश्रय नहि। या प्रक्रिया तैं मंद अधिकारी कूं अनायास तैं बोध होवै है। तैसे ब्रह्म का प्रतिबिंब होने तैं आत्मा स्वभाव सै तौ ब्रह्म-

रूप हि है। अंतःकरण के संबंध तैं तामै संसार है। या प्रक्रिया तैं होवै नहि। यातैं अनायास तैं मंद कूं बोध होवै या अभिप्राय तैं पंचदशी आदिक ग्रंथन मै धार्मिभेद की सिद्धि वास्ते मिथ्या प्रतिबिंब की उत्पत्ति कहि है। यातैं विरोध नहि। और जो कहा सूर्य की किरणा सकल नेत्ररश्मि का प्रतिघातक हैं। जल तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि तिन का पराभव करके तिन के अंतर्गत सूर्यमंडल कूं प्राप्त होवै हैं। यह कहना दृष्ट विरुद्ध है। सो बी संभवै नहि। काहे तैं जैसे स्वभाव से सूर्य की, किरणा तृणादिकन का दाह नहि करे हैं। सूर्यकांतमणि तैं प्रतिहत हुयी करे हैं। तैसे स्वभाव सै तौ नेत्र की रश्मि सूर्यकिरणा का पराभव नहि करे हैं। परंतु जलादि उपाधि तैं प्रतिहत हुयी करे हैं। यह दृष्ट के अनुसार कल्पना संभवै है। यातैं विरोध नहि। और जो कहा चंद्रप्रतिबिंब के दर्शनकाल मै बी चंद्रमा सै नेत्र का संबंध विद्यमान है। यातैं नेत्र मै शीतलता हुयी चाहिये। सो बी नहि संभवै है। काहे तैं चंद्रमा के संबंध तैं नेत्र मै शीतलता मानै तब तौ प्रतिबिंब दर्शनकाल मै बी शीतलता हुयी चाहिये। परंतु चंद्रकिरणा के निरंतर संबंध तैं नेत्र मै शीतलता माने हैं। चंद्रसंबंध तैं नहि माने हैं। औ अधोमुख हुवा पुरुष चंद्रप्रतिबिंब कूं देखै तिसकाल मै ताके नेत्र से चंद्रकिरणा का निरंतर संबंध है नहि। यातैं प्रतिबिंब दर्शनकाल मै

शीतलता की आपत्ति नहि। और जो कहा जल संबंध तैं नेत्ररश्मि का प्रतिघात माने शीलादि संबंध सै तौ अवश्य मान्या चाहिये। प्रतिहत नेत्ररश्मि तैं संबंध द्वारा नयनगोलकादिकन का साक्षात्कार हुवा चाहिये। सो बी संभवै नहि। काहे तैं दृष्ट के अनुसार कल्पना हुयी चाहिये। जलादिक स्वच्छ उपाधि मै प्रतिबिंब दृष्ट है। शिलादिकन मै दृष्ट नहि। यातैं प्रतिबिंब के योग्य स्वच्छ द्रव्य तैं हि नेत्ररश्मि का प्रतिघात होवै है। मलिन शिलादिकन तैं होवै नहि। इस रीति सै दृष्ट के अनुसार पदार्थ का स्वभाव मानने मै दोष नहि। और जो कहा जहां बिंब होवै तहां हि प्रतिहत नेत्ररश्मि का गमन माने पृष्ठभाग तैं व्यवहित पदार्थ का बी प्रतिहत नेत्ररश्मि के संबंध तैं प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। सो बी नहि संभवै है। काहे तैं प्रति-हत नेत्ररश्मि की बिंबदेश मै प्राप्ति होवै है। या पक्ष मै बी बिंब प्राप्ति मै व्यवधान का अभाव चाहिये। अधो-मुख पुरुष जल मै सूर्य के प्रतिबिंब कूं देखै तहां व्यव-धान का अभाव विद्यमान है। यातैं जल तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि कूं सूर्य की प्राप्ति संभवै है। दर्पण मै ऋजुनेत्र सै स्वप्रतिबिंब की न्याईं पार्श्वस्थ पुरुष के प्रतिबिंब कूं बी देखै है। तहां बी व्यवधान का अभाव विद्यमान है। यातैं दर्पण तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि कूं पार्श्वस्थ पुरुष की प्राप्ति बी संभवै है। परंतु पृष्ठभाग तैं व्यवहित वस्तु की प्राप्ति

मै शरीर औ ताके अवयव हि व्यवधान हैं। यातैं दर्पण तैं प्रतिहत नेत्ररश्मि ताकूं प्राप्त होवैं नहि। याहि तैं ताके प्रतिबिंब भ्रम की बी आपत्ति नहि। और जो कहा द्रव्य के चाक्षुष प्रत्यक्ष मै द्रव्यगत हि उद्भूतरूप कारण होवै यह नियम नहि। काहे तैं कल्पित पीतरूप विशिष्ट शंख का चाक्षुप प्रत्यक्ष माने हैं। आरोपित नीलरूप विशिष्ट आकाश का चाक्षुष प्रत्यक्ष माने हैं। मलिन दर्पण मैं गौरमुख के श्याम प्रतिबिंब का चाक्षुप प्रत्यक्ष होवै है। तहां कहूं बी आश्रयगत उद्भूतरूप कारण नहि। तैसे कल्पितरूप विशिष्ट नीरूप वायु आदिकन का बी चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। काहे तैं द्रव्य के चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम मै द्रव्यगत महत्व कारण है। तैसे द्रव्यगत हि उद्भूतरूप बी कारण होवै तब तौ नीरूप का चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम नहि बी संभवै। परंतु गौरमुख का श्याम चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम होवै। तामै मुखगत गौररूप कारण नहि। किंतु मुख दर्पण की संनिधि तैं दर्पणगत श्यामरूप का मुख मै आरोप होवै है। आरोपित श्यामरूप विशिष्ट मुख का चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम होवै है। तैसे कल्पितरूप विशिष्ट नीरूप द्रव्य का बी चाक्षुप प्रतिबिंब भ्रम हुवा चाहिये। सो बी संभवै नहि। काहे तैं कल्पित पीतादि· रूप विशिष्ट शंखादिकन का चाक्षुप प्रत्यक्ष उपाध्याय माने हैं। प्राचीन आचार्य तिन का साक्षिरूप प्रत्यक्ष

माने हैं। परंतु धर्मिज्ञान अध्यास का हेतु है। यातैं 'पीतः शंखः, श्यामं मुखं' इत्यादि भ्रम तैं पूर्व शंखादिकन का सामान्यज्ञान होवै है। तामै शुक्ल गौरादिरूप कारण हि है। अकारण नहि। परंतु दोषवश तैं शुक्लत्वादि ग्रहण का प्रतिबंध होवै है। यातैं पीतादि अध्यास बी संभवै है। आकाश मै नीलताध्यास होवै तहां बी आलोकाकार चाक्षुपवृत्ति होवै है। तामै अभिव्यक्त साक्षी तैं आकाश का सामान्यज्ञान होवै है। अथवा मन सै होवै है। परंतु नीरूप का चाक्षुप प्रत्यक्ष होवै नाहिं। इस रीति सै द्रव्य के चाक्षुप प्रत्यक्ष मै द्रव्यगत हि उद्भूतरूप नियम तैं कारण है। यातैं नीरूप द्रव्य के चाक्षुप प्रतिबिंब की आपत्ति नहि। इस रीति सै विवरण के अनुसारी मत मै मुखादि बिंब अधिष्ठान है। तामै बिंबत्व प्रतिबिंबत्वादिक धर्ममिथ्या उत्पन्न होवै हैं। विद्यारण्यस्वामी आदिकन के मत मै दर्पणादि उपाधि हि प्रतिबिंबाध्यास का अधिष्ठान है। तामै धर्मि प्रतिबिंब मिथ्या उत्पन्न होवै है। परंतु इहां यह शंका होवै है—शुक्ति रजतादिक अन्वय-व्यतिरेक तैं अज्ञान के कार्य हैं। औ ज्ञान तैं निवृत्त होवै हैं। यातैं मिथ्या हैं। तैसे मतभेद तैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्म वा धर्मी प्रतिबिंब अज्ञान के कार्य होवैं औ ज्ञान तैं निवृत्त होवैं तब तौ मिथ्या संभवैं। परंतु तिन के कारण अज्ञान का औ निवर्त्तक ज्ञान का निरूपण

होय सके नहि। यातैं मिथ्या सिद्ध होय सकैं नहि। शंकावादी का तात्पर्य यह है—धर्मसहित धर्मिप्रतिबिंब कूं मिथ्या माने ताका कारण अज्ञान कहा चाहिये। सो संभवै नहि। काहे तैं मुख दर्पणादि अधिष्ठान का विशेष-रूप सै साक्षात्कार होवै तासै मुखादि अवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञान निवृत्त होय गया है। तासै उत्तर बी प्रतिबिंबा-ध्यास होवै है। यातैं अज्ञान ताका कारण नहि संभवै है। औ तादृश साक्षात्कार के होतैं हि अनुवर्तमान प्रति-बिंबाध्यास की तासै निवृत्ति कहना बी संभवै नहि। ज्ञानांतर ताका निवर्तक उपलब्ध होवै नहि। यातैं ताकूं मिथ्या कहना संभवै नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं। यद्यपि विशेषरूप सै अधिष्ठान के ज्ञान तैं अनंतर बी प्रतिबिंबाध्यास होवै है। यातैं आवरण शक्ति विशिष्ट अज्ञान का अंश तौ ताका उपादान नहि संभवै है। औ विशेषरूप सै अधिष्ठान का ज्ञान निवर्तक बी नहि संभवै है। तथापि विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान का अंश उपादान संभवै है। काहे तैं मुखदर्पणादि अधिष्ठान के विशेषज्ञान तैं आवरण शक्ति विशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति होवै है। तैसे विक्षेप शक्ति विशिष्ट-अज्ञानअंश की बी तासै निवृत्ति माने प्रतिबिंबाध्यास की अनुपपत्ति होवैगी। यातैं अधिष्ठान का विशेषरूप सै ज्ञान हुये बी तासै आवरक अज्ञानअंश का हि नाश

मान्या चाहिये। विक्षेपहेतु अज्ञान अंश का नाश नहि होने तैं प्रतिबिंबाध्यास का उपादान संभवै है। औ विवरणानुसारिमत मै 'मुखे दर्पणस्थत्वादिकं नास्ति' यह अधिष्ठान ज्ञान का आकार है। विद्यारण्य स्वामी आदिकन के मत मै 'दर्पणे मुखं नास्ति' यह आकार है। दोनूं मतन मै केवल अधिष्ठान ज्ञान सै तौ प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति नहि बी होवै है। परंतु बिंब उपाधि का संनिधान प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति मै प्रतिबंधक है। प्रतिबंधकाभावसहित द्विविध अधिष्ठान ज्ञान तैं प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति होवै है। यातैं धर्मसहित धर्मि-प्रतिबिंब मिथ्या सिद्ध होवै है। शंका संभवै नहि। इहां यह ज्ञातव्य है—मुख दर्पणादिकन का उपादान मूलाज्ञान है। मुखादिज्ञान तैं ताकी निवृत्ति नहि होवै है। अवस्थाज्ञान की बी आवरण शक्ति विशिष्ट की हि मुखादि ज्ञान तैं निवृत्ति होवै है। विक्षेप शक्ति विशिष्ट की निवृत्ति होवै नहि। मूलाज्ञान का आश्रय ब्रह्मचेतन है। अवस्थाज्ञान का आश्रय मुखादि अवच्छिन्न चेतन है इस रीति सै द्विविध अज्ञान है। तिन मै अवस्थाज्ञान प्रतिबिंबाध्यास का उपादान है। या पक्ष मै उक्त शंका का समाधान कहा। औ अन्य ग्रंथकार तौ मूलाज्ञान कूं प्रतिबिंबाध्यास की उपादानता कहने वास्ते प्रथम अवस्थाज्ञान पक्ष मै यह दोष कहे हैं—ज्ञान मै आवरण मात्र

निवर्त्तकता स्वाभाविक माने विदेह कैवल्य मै बी विक्षेप- शक्तिविशिष्ट अज्ञान की स्थिति हुयी चाहिये। काहे तैं ज्ञान का स्वभाव आवरण मात्र निवृत्ति का है। यातैं ब्रह्म- ज्ञान तैं मुलाज्ञान के आवरक अंश का हि नाश होवैगा। तैसे शुक्ति आदि ज्ञान तैं बी अवस्थाज्ञान के विक्षेप शक्तिविशिष्ट अंश का नाश नहि होवैगा। यातैं विक्षेप- शक्तिविशिष्ट द्विविध अज्ञान की सदा स्थिति होने तैं विदेहकैवल्य मै बी स्थिति हुयी चाहिये। यातैं निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष का हि अभाव होवैगा। जो आवरण मात्र निवर्त्तकताज्ञान का स्वभाव नहि। किंतु विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति मै प्रतिबंधक होतैं ज्ञान मै आवरण मात्र निवर्त्तकता माने तौ ब्रह्मज्ञान तैं विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति मै प्रति- बंधक प्रारब्ध है। भोग सैं ताका नाश हुये ब्रह्मज्ञान के संस्कारविशिष्ट चेतन तैं विक्षेप अंश का नाश संभवै है। यातैं उक्तदोष तौ होवै नहि। परंतु प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति मै प्रतिबंधक बिंब उपाधि का संनिधान है। तासै पूर्व हि 'मुखे दर्पणस्थलादिकं नास्ति' 'दर्पणे मुखं नास्ति' इस रीति से मतभेद तैं चैत्रमुख औ दर्पण का मैत्र कूं साक्षात्कार होवै तासै उत्तरक्षण मै चैत्रमुख के अभिमुख दर्पण होवै तब 'चैत्रमुखे दर्पणस्थलादिकं भाति' 'दर्पणे मुखं भाति' इस रीति से मैत्र कूं प्रतिबिंबाध्यास

होवै है । सो नहि हुवा चाहिये । काहे तैं बिंब प्रतिबिंब के अभेद पक्ष मै अनिर्वचनीय प्रतिबिंबत्वादिक धर्मन की उत्पत्ति माने हैं। भेद पक्ष मै धर्मि प्रतिबिंब की अनिर्वचनीय उत्पत्ति माने हैं । दोनूं मतन मै प्रतिबिंबाध्यास का कारण अवस्था ज्ञान है । सो बिंबउपाधि के संनिधान तैं पूर्व ही वियुक्तमुखदर्पण के ज्ञान तैं सर्वथा निवृत्त होय गया है । यातैं अवस्था ज्ञान प्रतिबिंबाध्यास का उपादान संभवै नहि । किंतु मूलाज्ञान हि ताका उपादान मान्या चाहिये । यद्यपि मूलाज्ञान पक्ष मै बी प्रतिबिंबाध्यास की अनुपपत्तिरूप दोष समान है । काहे तैं बिंबउपाधि के संनिधान तैं पूर्व वियुक्त मुखदर्पणादिकन के साक्षात्कार तैं अवस्था ज्ञान की हि निवृत्ति माने मूलाज्ञान की निवृत्ति नहि माने तौ यत् किंचित् आवरण होतैं मुखादिकन का भान हि नहि हुवा चाहिये । जो मूलाज्ञान की बी निवृत्ति माने तो उपादान के अभाव तैं अध्यास नहि हुवा चाहिये । तथापि मुखादिज्ञान तैं मूलाज्ञान की बी निवृत्ति माने मुखदर्पणादिकव्यावहारिक पदार्थन की बी निवृत्ति हुयी चाहिये । यातैं यह मान्या चाहिये—जड विषय के ज्ञान तैं अवस्थाज्ञान की तौ निवृत्ति होवै है । औ विषय के स्फुरण पर्यंत मूलाज्ञान कृत आवरण का अभिभव मात्र होवै है । निवृत्ति होवै नहि । ब्रह्म ज्ञान तैं हि मूलाज्ञान की निवृत्ति होवै है । यातैं उपादान होतैं प्रतिबिंबाध्यास

की उत्पत्ति संभवै है। तैसे विषय का भान बी संभवै है। दोष नहि। यद्यपि मूलाज्ञान के कार्य मुख दर्पणादिक व्यावहारिक हैं। प्रतिबिंबाध्यास बी मूलाज्ञान का कार्य माने व्यावहारिक हि हुवा चाहिये। तथापि मूलाज्ञान के कार्य कूं हि व्यावहारिक कहैं तौ अनादि अविद्यादिक व्यावहारिक नहि हुये चाहिये। यातैं यह मान्या चाहिये—'अविद्याऽतिरिक्तदोषाजन्यो व्यावहारिकः। तज्जन्यः प्रातिभासिकः' अर्थ यह—अविद्या तैं अतिरिक्त दोपजन्य नहि होवै। सो व्यावहारिक कहिये है। तासै जन्य होवै सो प्रातिभासिक कहिये है। अनादि अविद्यादिक जैसे अविद्याजन्य नहि। तैसे अविद्या अतिरिक्त दोपजन्य बी नहि। यातैं व्यावहारिक संभवै हैं। प्रतिबिंबाध्यासस्थल मैं बिंबउपाधि का संनिधान हि अविद्या तैं अतिरिक्त दोष है। तासै जन्य होने तैं प्रतिबिंबाध्यास प्रातिभासिक संभवै है। परंतु ब्रह्मज्ञान तैं प्रतिबिंबाध्यास का बाध मानै तिन के मत मैं व्यावहारिक प्रातिभासिक का उक्त लक्षण है। औ विरोधिज्ञान तैं बी ताका बाध वक्ष्यमाण है। तिस पक्ष मैं 'ब्रह्मज्ञानं विना बाध्यमानः प्रातिभासिकः। ब्रह्मज्ञानबाध्यो व्यावहारिकः' अर्थ यह—ब्रह्मज्ञान विना जाका बाध होवै। सो प्रातिभासिक कहिये है। ब्रह्मज्ञान तैं बाधित होवै सो व्यावहारिक कहिये है। इस रीति सै बी लक्षण संभवै है। परंतु इहां यह शंका होवै है—शुक्ति रजतादि

अध्यास की उपादान अज्ञान की निवृत्ति द्वारा अधिष्ठान ज्ञान तैं निवृत्ति प्रसिद्ध है। प्रतिबिंबाध्यास का उपादान मूलाज्ञान है। मुखदर्पणादिज्ञान तैं ताकी निवृत्ति होवै नहि। यातैं उपादान अज्ञान होतैं बिंबउपाधि के वियोग-काल मैं बी प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति नहि हुयी चाहिये। या शंका का यह समाधान है। यद्यपि मूलाज्ञान का विषय ब्रह्म है। मुख दर्पणादि ज्ञान का विषय मुखादि अवच्छिन्न चेतन है। औ समान विषयक ज्ञानाज्ञान का हि विरोध होवै है। भिन्न विषयक ज्ञान का अज्ञान तैं विरोध होवै नहि। यातैं मुखादि ज्ञान तैं मूलाज्ञान की निवृत्ति तौ नहि होवै है। तथापि मतभेद तैं 'मुखे दर्पणस्थत्वादिकं नास्ति' 'दर्पणे मुखं नास्ति' इत्यादि ज्ञान प्रतिबिंबाध्यास के अभाव विषयक है। यातैं विरोधिविषयक होने तैं तासै अज्ञान निवृत्ति विना बी प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति संभवै है। तात्पर्य यह—अधिष्ठान ज्ञान तैं अध्यास की निवृत्ति होवै सो तौ अज्ञान की निवृत्ति द्वारा हि होवै है। परंतु विरोधिज्ञान तैं अज्ञान निवृत्ति विना हि अध्यास निवृत्ति संभवै है। जैसे रज्जु मैं सर्प भ्रम तैं उत्तर दंड भ्रम होवै तहां अज्ञाननिवृत्ति विना हि विरोधि दंड भ्रम तैं सर्पाध्यास की निवृत्ति होवै है। औ स्वप्नाध्यास का उपादान मूलाज्ञान है। या पक्ष मैं स्वप्न का विरोधि जाग्रत् ज्ञान है। तासै अज्ञान निवृत्ति विना

हि स्वप्नाध्यास की निवृत्ति माने हैं। यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा। तैसे प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति बी अज्ञान निवृत्ति विना हि विरोधिज्ञान तैं संभवै है। जो ऐसे कहैं—पंचपादिका मै अज्ञान की निवृत्ति द्वारा अध्यास की निवृत्ति कहि है। प्रतिबिंबाध्यास का उपादान मूलाज्ञान है। या पक्ष मै अज्ञान निवृत्ति विना प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति कहने तैं ताका विरोध होवैगा। यातैं अवस्था ज्ञान हि, प्रतिबिंबाध्यास का उपादान मान्या चाहिये मूलाज्ञान उपादान संभवै नहि। यह कहना संभवै नहि। काहे तैं बिंब उपाधि के संनिधान तैं पूर्व हि मुखदर्पणादि साक्षात्कार तैं अवस्थाज्ञान निवृत्त होय जावै है। उत्तर काल मै प्रतिबिंबाध्यास होय के प्रतिबंध का भावसहित मुखादिज्ञान होवै। तासै अज्ञान निवृत्ति विना हि प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति अवस्थाज्ञान पक्ष मै बी कहनी होवैगी। यातैं अवस्थाज्ञान प्रतिबिंबाध्यास का उपादान माने बी पंचपादिका विरोध का परिहार होय सके नहि। औ सूक्ष्म विचार करैं तौ अवस्थाज्ञान पक्ष मै हि पंचपादिका विरोध होवै है। मूलाज्ञान प्रतिबिंबाध्यास का उपादान है। या पक्ष मै विरोध होवै नहि। काहे तैं अधिष्ठान ज्ञान तैंअध्यास की निवृत्ति होवै तहां हि अज्ञान की निवृत्ति द्वारा अध्यास की निवृत्ति पंचपादिका मै विवक्षित है। अवस्था ज्ञान पक्ष मै प्रतिबिंबाध्यास का अधिष्ठान मुखदर्पणादि अव-

च्छिन्न चेतन है। प्रतिबंधकाभाव सहित ताके ज्ञान तैं अज्ञाननिवृत्ति विना प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति पूर्व कहि है। यातैं पंचपादिका का बिरोध होवै है। औ मूलाज्ञानपक्ष मैं प्रतिबिंबाध्यास का अधिष्ठान ब्रह्मचेतन है। प्रतिबिंबाध्यास की निवृत्ति विरोधिज्ञान तैं पूर्व कहि है। यातैं पंचपादिका का विरोध होवै नहि। अथवा प्रतिबिंबाध्यास की बाधरूप निवृत्ति तौ ब्रह्मज्ञान तैं हि मूलाज्ञान की निवृत्ति द्वारा होवै है। प्रतिबंधकाभाव सहित मुख दर्पणादि ज्ञान तैं उपादान मै लयरूप निवृत्ति हि होवै है। बाधरूप निवृत्ति होवै नहि। औ पंचपादिका मै बाधरूप निवृत्ति हि अज्ञाननिवृत्ति द्वारा विवक्षित है। यातैं मूलाज्ञानपक्ष मै पंचपादिका विरोध की शंका का उत्थान हि होवै नहि। औ पूर्व उक्त प्रकार तैं अविद्या अतिरिक्त दोषजन्य होने तैं प्रतिबिंबाध्यास मै व्यावहारिकता की शंका बी नहि संभवै है। इस रीति सै प्रतिबिंबाध्यास की बाधरूप निवृत्ति ब्रह्मज्ञान तैं होवै है। या पक्ष मै उक्त प्रकार तैं पंचपादिका विरोध शंका का अनुत्थान तौ संभवै है। परंतु विरोधि मुख दर्पणादि ज्ञान तैं प्रतिबिंबाध्यास की लयरूप निवृत्ति हि होवै है। बाधरूप निवृत्ति ब्रह्मज्ञान विना होवै नहि। यह कहना संभवै नहि। काहे तैं ब्रह्मज्ञान विना बी प्रतिबिंबाध्यास का बाध अनुभव सिद्ध है। यातैं जाग्रत् के विरोधिज्ञान तैं

मूलाज्ञान की निवृत्ति विना स्वप्नाध्यास की बाधरूप निवृत्ति आगे कहेंगे। तैसे मुख दर्पणादि विरोधिज्ञान तैं मूलाज्ञान की निवृत्ति विना हि प्रतिबिंबाध्यास की बाध-रूप निवृत्ति मान के पंचपादिका विरोध का प्रथम रीति सै हि समाधान समीचीन है। इस रीति से प्रतिबिंबा-ध्यास का उपादानमतभेद तैं अवस्थाज्ञान औ मूलाज्ञान कहा तैसे स्वप्नाध्यास का उपादान बी किसी के मत मै मूलाज्ञान है। मतांतर मै अवस्थाज्ञान ताका उपादान है। मूलाज्ञान कूं उपादानता इस रीति से कहे हैं—अहंकारान-वच्छिन्न ब्रह्मचेतन अथवा अहंकारावच्छिन्न साक्षिचेतन स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान है। तिन मै ब्रह्मचेतन तौ मूला-ज्ञान का हि आश्रय है। तामै तौ अवस्थाज्ञान का संभव हिं नहि। औ साक्षि चेतन मै आवरण का अंगीकार नहि। यातैं तामै बी अवस्थाज्ञान नहि संभवै है। जो अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव चेतन बी अहंकारानवच्छिन्न है ताकूं बी स्वप्नाध्यास की अधिष्ठानता वक्ष्यमाण है। तामै अवस्थाज्ञान का संभव कहैं तथापि संभवै नहि काहे तैं अविद्या मै प्रतिबिंबरूप जीव चेतन मै बी आवरण नहि माने हैं। यातैं तामै बी अवस्थाज्ञान संभवै नहि। इस रीति सै अवस्थाज्ञान रहित चेतन मै स्वप्नाध्यास होने तैं अवस्थाज्ञान ताका उपादान संभवै नहि यातैं मूलाज्ञान हि स्वप्नाध्यास का उपादान मान्या चाहिये। स्वप्नाध्यास

की निवृत्ति बी ब्रह्मज्ञान तैं हि मूलाज्ञान की निवृत्ति द्वारा होवै है। जाग्रत्बोध तैं उपादान मै लयरूप निवृत्ति हि होवै है। बाधरूप निवृत्ति होवै नहि। औ अविद्या अतिरिक्त निद्रादि दोपजन्य होने तैं स्वप्नाध्यास मै प्रातिभासिकता बी संभवै है। यातैं मूलाज्ञान का कार्य औ ब्रह्मज्ञान तैं बाधित स्वप्नाध्यास माने जाग्रत् गजादिकन की न्याईं स्वप्नगजादिक बी व्यावहारिक हुये चाहिये। यह शंका संभवै नहि। इस रीति सै मूलाज्ञान स्वप्नाध्यास का उपादान है। या पक्ष मै कोई ग्रंथकार ब्रह्मज्ञान तैं हि ताका बाध माने हैं। याहि तैं अविद्या अतिरिक्त दोपजन्य होने तैं हि ताकूं प्रातिभासिक सिद्ध करे हैं। औ तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—भाष्यकारादिकन ने जाग्रत्बोध तैं स्वप्न का बाध कहा है। औ उत्थित कूं स्वप्न का बाध अनुभव सिद्ध है। यातैं ब्रह्मज्ञान विना बी जाग्रत् के विरोधिज्ञान तैं स्वप्न का बाध मान्या चाहिये। तात्पर्य यह—आकाशादि प्रपंच का ब्रह्मज्ञान तैं बाध होवै है तासै विना ताका बाध अनुभव सिद्ध नहि। तैसे स्वप्नप्रपंच का बी ब्रह्मज्ञान तैं हि बाध माने उत्थित कूं ताका बाध अनुभव नहि हुवा चाहिये। यातैं शुक्ति रजतादिकन की न्याईं ब्रह्मज्ञान विना बाधित होने तैं हि स्वप्नाध्यास प्रातिभासिक कहा चाहिये। जो रज्जु सर्पादि अध्यासस्थल मै अधिष्ठान ज्ञान तैं हि अज्ञान की निवृत्ति द्वारा अध्यासनिवृत्ति

का नियम है। अहंकारानवच्छिन्न वा अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्न का अधिष्ठान है। मूलाज्ञान उपादान है। अधिष्ठान अगोचर जाग्रत् बोध तैं मूलाज्ञान की निवृत्ति होवै नहिं। यातैं स्वप्नाध्यास निवृत्ति का बी तासैं असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं अज्ञाननिवर्तक अधिष्ठान ज्ञान तैं सर्पाध्यास की निवृत्ति होवै है। तैसे सर्पभ्रम तैं उत्तर दंडभ्रम होवै। तासैं बी ताकी निवृत्ति दृष्ट है। यातैं उक्त नियम के असंभव तैं जाग्रत् बोध तैं स्वप्न की निवृत्ति संभवै है शंका संभवै नहि। इस रीति सै स्वप्नाध्यास का उपादान मूलाज्ञान है। या पक्ष मै दो मत कहे। मूलाज्ञान स्वप्न का उपादान तौ दोनों मतन मैं समान है। स्वप्नाध्यास का बाध कोई ब्रह्म-ज्ञान तैं माने हैं। अन्य विरोधिज्ञान तैं माने हैं। याहि तैं ताकी प्रातिभासिकता बी अविद्या अतिरिक्त निद्रादि दोषजन्य होने तैं, अथवा ब्रह्मज्ञान विना बाधित होने तैं मतभेद तैं हि सिद्ध होवै है। इस रीति से कितने ग्रंथकार अधिष्ठान ज्ञान तैं हि अज्ञाननिवृत्ति द्वारा अध्यास की निवृत्ति होवै है। या नियम कूं नहि मान के जाग्रत् के विरोधिज्ञान तैं स्वप्नाध्यास की निवृत्ति माने हैं। औ त्रिविध जीववादि ग्रंथकार तौ उक्त नियम कूं मान के बी यह कहे हैं– जाग्रत् मै भोगहेतु कर्मन का उपराम होवै तब मूलाज्ञान की अवस्था विशेष निद्रा होवै

हैं । वक्ष्यमाण रीति सै आवरण विक्षेपशक्ति मत्ता अज्ञान का लक्षण निद्रा मै विद्यमान है । यातैं निद्रा अज्ञान की अवस्था विशेष सिद्ध होवै है । जैसे निद्रारूप अवस्थाज्ञान सादि है, तैसे अन्य अवस्थाज्ञान वी या मत मै सादि हैं । व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य के आवरणद्वारा निद्रा हि स्वप्नाध्यास का उपादान है । स्वप्न का द्रष्टा प्रातिभासिक जीव है, ताका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव है । स्वप्न दृश्य का अधिष्ठान व्यावहारिक दृश्य है । या मत मै अहंकारानवच्छिन्न वा अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्नाध्यास का अधिष्टान नहिं । औ मूलाज्ञान उपादान नहि । काहे तैं मूलाज्ञान ब्रह्मचेतन का आवरक है । व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य का आवरक नहि । औ व्यावहारिक जीव जगत् का आवरण अनुभव सिद्ध है । काहे तैं राजाधिराज विष्णुशर्मा जाग्रत् मै अल्पदेशाधीश इतर राजाओं सै नानाविध कर लेके चतुर्विध सेना अनेक कोशगृहादि संपदासहित सोवता हुवा अपने कूं महीदासनाम शूद्रजाति अत्यंत दरिद्र सै व्याप्त शरीर मात्र सहाय तुलाधार का अनुचर अनुभव करे है । तहां व्यावहारिक जीव जगत् का आवरक मूलाज्ञान माने जाग्रत् मै वी ताका आवरण हुवा चाहिये । यातैं अधिष्ठानरूप व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य का अनावरक होने तैं मूलाज्ञान स्वप्नाध्यास का उपादान संभवै नहि । किंतु

निद्रारूप अवस्थाज्ञान हि ताका आवरक होने तैं उपादान मान्या चाहिये। स्वप्नाध्यास का बाध बी अधिष्ठान ज्ञान तैं हि अज्ञान निवृत्ति द्वारा होवै है। औ जैसे जाग्रत् दृश्य मै स्वप्न दृश्य अध्यस्त, है तैसे स्वप्न का द्रष्टा जीव बी जाग्रत् द्रष्टा मै अध्यस्त है। यातैं व्यावहारिक जीव कूं निद्रा सै आवृत माने स्वप्न प्रपंच का अपरोक्ष नहि हुवा चाहिये। यह शंका संभवै नहि। औ व्यावहारिक जीव मै स्वप्न के प्रातिभासिक जीव का तादात्म्य है। यातैं जैसे जाग्रत् दृश्य के ज्ञान तैं स्वप्न दृश्य का बाध होवै हैं। तैसे जाग्रत् द्रष्टा के ज्ञान तैं स्वप्न द्रष्टा का बी बाध होने तैं स्वप्न मै अनुभूत पदार्थन की जाग्रत् मै स्मृति नहि हुयी चाहिये। जो स्वप्न मै प्रातिभासिक जीव के अनुभूत की व्यावहारिक जीव कूं स्मृति माने तौ अन्य के अनुभूत की अन्य कूं स्मृति मानने मै चैत्र के अनुभूत की मैत्र कूं बी स्मृति हुयी चाहिये। यह शंका बी नहि संभवै है। काहे तैं मैत्र मै चैत्र का तादात्म्य नहि। यातैं चैत्र के अनुभूत की मैत्र कूं तौ स्मृति नहि होवै है। परंतु अध्यस्त का अधिष्ठान मै तादात्म्य होवै है। यातैं स्वप्न द्रष्टा का व्यावहारिक जीव मै तादात्म्य होने तैं ताके अनुभूत की जाग्रत् द्रष्टा कूं स्मृति संभवै है। इस रीति सै त्रिविध जीववादी ग्रंथकार अधिष्ठान ज्ञान तैं हि अज्ञाननिवृत्ति द्वारा

अध्यास की निवृत्ति होवै है। या नियम के संरक्षण वास्ते अधिष्ठानरूप व्यावहारिक जीव जगत् के ज्ञान तैं निद्रारूप अज्ञान की निवृत्ति द्वारा स्वप्नाध्यास का बाध माने हैं। परंतु यह मत समीचीन नहि काहे तैं व्यावहारिक जीव जगत् मिथ्या होने तैं जड हैं। तिन मै सत्ता स्फुर्ति प्रदानतारूप अधिष्ठानता संभवै नहि। जो स्वप्न की सत्ता स्फुर्तिचेतन तैं माने तौ अधिष्ठान बी ताकूं हि कहा चाहिये। व्यावहारिक द्रष्टा दृश्य कूं अधिष्ठान कहना संभवै नहि। तामै बी अहंकारानवच्छिन्न वा अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्न का अधिष्ठान है। यह दो पक्ष पूर्व कहे हैं तिन मै प्रथम पक्ष मै यह शंका होवै है—अहंकारानवच्छिन्न चेतन स्वप्न का अधिष्ठान माने स्वप्नगजादिकन की शरीर तैं बाह्यदेश मै स्थिति कहि चाहिये। याहि तैं तिन कूं केवल साक्षिभास्य कहना तौ संभवै नहि। काहे तैं साक्षी के साक्षात् संबंधि सुखादिक केवल साक्षिभास्य माने हैं। बाह्यदेशस्थ स्वप्न गजादिकन का अहंकार उपहित साक्षी तैं साक्षात् संबंध संभवै नहि। औ नेत्रादिक इंद्रिय स्वप्न मै उपराम होय जावै हैं। यातैं वृत्ति द्वारा बी संबंधाभाव तैं साक्षी तैं स्वप्न गजादिकन का प्रकाश नहि संभवै है। समाधान यह है—शरीर तैं बाह्यदेशस्थ चेतन कूं स्वप्न का अधिष्ठान मानैं तौ शंका संभवै। परंतु अहंकारानवच्छिन्न चेतन बी शरीर के अंतर्देशस्थ हि

स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान है, बाह्यदेशस्थ अधिष्ठान नहि। काहे तैं तृतीयाध्याय के द्वितीय पाद मै सूत्रकार भाष्यकार ने स्वप्नगजादिक प्रातिभासिक कहे हैं। अंतर्चेतन अधिष्ठान मानै योग्यदेश के अभाव तैं प्रातिभासिक संभवै हैं। शरीर के बाह्यदेशस्थ कूं अधिष्ठान माने देश-योग्य होने तैं जाग्रतगजादिकन की न्याई स्वप्नगजादिक बी व्यावहारिक हि हुये चाहिये। प्रातिभासिक संभवैं नहि। यातैं प्रातिभासिकता कथन का विरोध होवैगा। इस रीति से शरीर के अंतर्देशस्थ चेतन स्वप्न का अधिष्ठान है। यातैं स्वप्न पदार्थन का साक्षी तैं संबंध होने तैं प्रकाश बी संभवै है। शंका संभवै नहि। या स्थान मै यह ज्ञातव्य है—बिंबरूप ईश्वर चेतन औ अविद्या मै प्रतिबिंब जीव चेतन दोनों अहंकारानवच्छिन्न हैं। औ मतभेद तैं दोनों अधिष्ठान हैं। ईहां बिंबरूप ईश्वर हि अहंकारानवच्छिन्न चेतन विवक्षित है। प्रतिबिंबरूप जीव विवक्षित नहि। काहे तैं ईश्वरचेतन हि सर्व का अधिष्ठान होने तैं उपादान है। जीव उपादान नहि। तामै पुनः यह शंका होवै है—यद्यपि पूर्व उक्त प्रकार तैं स्वप्न पदार्थन का साक्षी तैं संबंध तौ संभवै है। परंतु अपरोक्ष अधिष्ठान मै अपरोक्ष अध्यास होवै है। बाह्य शुक्ति रजतादि अध्यासस्थल मै तौ अधिष्ठान की अपरोक्षता इंद्रियजन्य है। स्वप्न मै इंद्रिय उपराम होय जावै हैं। यातैं अधिष्ठान की अपरोक्षता इंद्रियजन्य

तौ संभवै नहि औ आवृत होने तैं शरीर के अंतर्देशस्थ बी ब्रह्मचेतन का जीव कूं स्वतः अपरोक्ष होवै नहि। यातैं स्वप्नाध्यास अपरोक्ष नहि हुवा चाहिये। समाधान यह है—बाह्यपदार्थ मै इंद्रिय विना अंतःकरण की योग्यता नहि। यातैं शुक्ति रजतादि अध्यास मै तौ अधिष्ठान की अपरोक्षता वास्ते इंद्रिय की अपेक्षा है। परंतु आंतरपदार्थ मै अंतःकरण की योग्यता है। यातैं इंद्रिय निरपेक्ष हि वृत्ति संभवै है। ता वृत्ति मै अभिव्यक्त ब्रह्मचेतन मै स्वप्नाध्यास होवै है। यातैं अपरोक्ष संभवै है। इस रीति से अहंकारानवच्छिन्न ब्रह्मचेतन स्वप्न का अधिष्ठान है। अधिष्ठान गोचर इंद्रिय निरपेक्ष वृत्ति मै ताकी अभिव्यक्ति होवै है। अभिव्यक्त अधिष्ठान मै स्वप्नाध्यास की अपरोक्षता कित ने ग्रंथकार कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—जैसे शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान शास्त्र तैं होवै है तैसे बिंबरूप ईश्वर का ज्ञान बी शास्त्र तैं हि होवै है। यातैं स्वप्न मै शब्द निरपेक्ष वृत्ति अधिष्ठान गोचर संभवै नहि। याहि तैं अपरोक्षता के अभाव तैं बिंबरूप ईश्वर चेतन स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान बी नहि संभवै है। यातैं अविद्या मै प्रतिबिंब जीव हि अधिष्ठान मान्या चाहिये। प्रतिबिंबरूप जीव चेतन बी शरीर के अंतर्देशस्थ हि स्वप्न का अधिष्ठान है। बाह्यदेशस्थ नहि। यातैं पूर्व उक्त दोष नहि। यद्यपि अहमाकार वृत्ति का विषय तौ अहंकारादि

अवच्छिन्न चेतन हि है। अहंकारानवच्छिन्न प्रतिबिंब-
रूप जीव चेतन बी ताका विषय नहि। यातैं अविद्या मै
प्रतिबिंब जीव चेतन स्वप्न का अधिष्ठान माने बी वृत्ति-
कृत अधिष्ठान की अपरोक्षता संभवै नहि। तथापि संक्षेप
शारीरक मै सर्वज्ञात्माचार्य ने स्वतः अपरोक्ष अधिष्ठान
मै स्वप्नाध्यास कहा है। यातैं अविद्या मै प्रतिबिंब जीव
चेतनवृत्ति विना हि अपरोक्ष मान्या चाहिये। जो शरीर
के अंतर्गत बी अहंकारानवच्छिन्न ब्रह्मचेतन आवृत है
तैसे जीवचेतन बी अहंकारानवच्छिन्न आवृत है। यातैं वृत्ति
विना ताके अपरोक्ष का असंभव कहैं तौ संभवै नहि।
काहे तैं ब्रह्मचेतन मै हि अज्ञानकृत आवरण का
अंगीकार है। अहंकारानवच्छिन्न बी अविद्या मै प्रतिबिंब-
रूप जीवचेतन मै आवरण का अंगीकार नहि। यातैं
वृत्ति विना ताका अपरोक्ष संभवै है। यद्यपि अविद्या मै
प्रतिबिंब जीवचेतन व्यापक है ताकूं अनावृत माने
घटादिकन सै सदा ताका संबंध है। यातैं ऐंद्रियकवृत्ति
विना बी सदा सकल विषय का प्रत्यक्ष हुवा चाहिये।
तथापि जीव चेतन घटादिकन का उपादान नहि। यातैं
संनिधिरूप संबंध हुये बी विषय प्रकाश का हेतु जीव
चेतन का घटादिकन सै संबंध नहि। विषय के प्रकाश
का हेतु जीव चेतन का घटादिकन सै संबंध वृत्ति द्वारा
होवै है। वृत्ति द्वारा जीव चेतन का विषय सैं संबंध मत-

भेद तैं प्रथम परिच्छेद मै कहा है। यातैं सदा सर्व विषय के प्रकाश की आपत्ति नहि। यद्यपि 'अहं श्रीकृष्णं पश्यामि' इस रीति सै अहंकारावच्छिन्न प्रमाता स्वप्न का द्रष्टा अनुभव सिद्ध है। अविद्या मै प्रतिबिंब जीव चेतन कूं स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान माने द्रष्टा बी सोई कहा चाहिये। प्रमाता द्रष्टा संभवै नहि। यातैं अनुभव का विरोध होवैगा। तथापि जैसे घटादि प्रपंच का अधिष्ठान ब्रह्म चेतन है। घटादि गोचर वृत्ति द्वारा ताका प्रमातृ चेतन तैं अभेद होवै है। तैसे स्वप्न का अधिष्ठान यद्यपि अहंकारानवच्छिन्न जीव चेतन है। तथापि स्वप्न गजादिगोचर वृत्ति द्वारा ताका प्रमातृ चेतन तैं अभेद होवै है। यातैं प्रमाता बी द्रष्टा संभवै है। विरोध नहि। इस रीति सै अहंकारानवच्छिन्न चेतन स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान है। या पक्ष का मतभेद तैं उपपादन किया। अब अहंकारावच्छिन्न अधिष्ठान है। या पक्ष की सिद्धि वास्ते प्रथम यह शंका होवै है—शुक्ति रजतादिक तादात्म्य संबंध तैं अध्यस्त हैं। यातैं 'इदं रजतं' इस रीति सै तिन का तादात्म्य भ्रम मै भासे है। सुखादिकन का अध्यास आधाराधेयभाव संबंध तैं है। यातैं 'मयि सुखं मयि दुःखं' इस रीति सै तिन का आधाराधेयभाव भासे है। तैसे अहंकारावच्छिन्न चेतन मै स्वप्न गजादिकन का तादात्म्य संबंध तैं अध्यास कहैं 'अहं गजः' या प्रकार तैं तिन का तादात्म्य

भास्या चाहिये। आधाराधेयभाव तैं कहैं 'मयि गजः' या रीति सै आधाराधेयभाव भास्या चाहिये। समाधान यह है—अहंकारावच्छिन्न चेतन साक्षी है। सोई स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान है। औ अहंकाररूप अंतःकरण साक्षी का उपाधि हैं। विशेषण नहि। उपाधि का उपहित के स्वरूप मै प्रवेश नहि होवै है। विशेषण का हि स्वरूप मै प्रवेश होवै है। तात्पर्य यह—स्वप्न गजादिकन का अध्यास तौ यद्यपि तादात्म्य संबंध तैं हि है परंतु अधिष्ठान मै हि तिन का तादात्म्य भास्या चाहिये अहंकारावच्छिन्न साक्षि-चेतन अधिष्ठान है। अहमाकार प्रत्यय का हेतु अहंकार-रूप अंतःकरण ताका विशेषण मान के अधिष्ठान के स्वरूप मै अहंकार का प्रवेश मानै तौ 'अहं गजः' इत्यादि प्रत्यय हुवा चाहिये। परंतु ताकूं उपाधि मान के उपहित चेतन मात्र अधिष्ठान माने हैं। अहंकार मै अधिष्ठानता नहि माने हैं। यातैं उक्त प्रतीति की आपत्ति नहि। इस रीति सै अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान मानै एक एक स्वप्न की सर्व कूं प्रतीति हुयी चाहिये। यह शंका बी नहि होवै है। तात्पर्य यह— अविद्या मै बिंबरूप ब्रह्म चेतन अथवा प्रतिबिंबरूप जीव चेतन अहंकारानवच्छिन्न है ताकूं अधिष्ठान माने सर्व प्रमाता सै ताका संबंध है। यातैं उक्त शंका होवै है। अहंकारावच्छिन्न कूं अधिष्ठान मानै ताका सर्व प्रमाता

सै संबंध नहि। यातैं शंका होवै नहि। या अभिप्राय तैं कित ने ग्रंथकार अहंकारावच्छिन्न साक्षिचेतन हि अधिष्ठान माने हैं परंतु अहंकारानवच्छिन्न चेतन वी शरीर के अंतर्देश-स्थ हि स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान पूर्व कहा है। जाके अंतर्देशस्थ चेतन मै जो स्वप्नकल्पित है सो ताहि कूं प्रतीत होवै है अन्य कूं नाहि। इस रीति सै उक्त शंका का परिहार संभवै है। परंतु रज्जुसर्पादि अध्यासस्थल मै यह शंका होवै है—बाह्य रज्जु चेतन सर्प का अधिष्ठान है। यातैं एक कूं सर्प की प्रतीति काल मै अन्य कूं वी प्रतीति हुयी चाहिये। अथवा एक रज्जु मै दश पुरुषन कूं दश पदार्थ प्रतीत होवैं तहां एक एक की सर्व कूं प्रतीति हुयी चाहिये। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—सुखादिकन की न्याईं कल्पित सर्पादिक अनन्य वेद्य हि प्रसिद्ध हैं। रज्जु चेतन तिन का अधिष्ठान माने अनन्य वेद्य नहि हुये चाहिये। यातैं इदमाकार वृत्ति उपहित चेतन अधिष्ठान मान्या चाहिये। रज्जु चेतन अधिष्ठान नहि। जाकी वृत्ति उपहित मै जो सर्पादिक अध्यस्त है। सो ताहि कूं प्रतीत होवै है। अन्य कूं नहि। यातैं शंका संभवै नहि। तिन सै अन्य ग्रंथकार रज्जुचेतन कूं अधिष्ठान मान के वी प्रति पुरुष अज्ञान भेद तैं व्यवस्था कहे हैं। जाके अज्ञान तैं जो पदार्थ कल्पित है सो ताकूं हि प्रतीत होवै

है। अन्य कूं नहि। इस रीति से मतभेद तैं स्वप्नाध्यास का अधिष्ठान निरूपण किया। प्रसंग तैं मतभेद तैं हि शुक्ति रजतादिक अनन्यवेद्य कहे। परंतु शुक्ति रजतादिकन की न्याईं स्वप्नगजादिकन मै चाक्षुषता का अनुभव होवै है। तहां उपाध्याय के मत मै तौ शुक्ति रजतादिक साक्षात् ऐंद्रियक वृत्ति के विषय हैं। धर्मिज्ञानवाद मै धर्मिज्ञान द्वारा तिन मै इंद्रिय का उपयोग है। यातैं शुक्ति रजतादिकन मै चाक्षुषता अनुभव का संभव है। तैसे स्वप्नगजादिकन मै बी ताका संभव कहा चाहिये। जो प्रातिभासिक इंद्रियन तैं स्वप्नगजादिकन मै चाक्षुषता अनुभव का संभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं शरीर औ शब्दादिक विषय तौ स्वप्न मै प्रातिभासिक माने हैं। परंतु प्रातिभासिक इंद्रियन का अंगीकार नहि। जो गोलक से निकसि के व्यावहारिक इंद्रियन तैं हि स्वप्न शरीर मै प्रवेश द्वारा पदार्थन की प्रतीति होवै है। यातैं चाक्षुषता अनुभव का संभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं स्वप्न मै व्यावहारिक इंद्रियन के व्यापार का अभाव श्रुति मै कहा है। औ मनुष्य कूं स्वप्न मै कदाचित् हस्तिशरीर की प्राप्ति होवै, तहां व्यावहारिक त्वचा इंद्रिय का सूक्ष्म नाडीदेश मै हि प्रवेश संभवै नहि। ताके अंतर्गत स्वअधिक परिमाणवाले सारे हस्तिशरीर मै प्रवेश तौ अत्यंत दूर है। जो हस्तिशरीर के एकदेश मै त्वचा का

प्रवेश कहैं तौ स्वप्न मै जलनिमज्जन तैं सर्वांगन मै शीतता नहि हुयी चाहिये। और जो कहे हैं—जाग्रत् मै विश्वनाम जीव के व्यवहार मै व्यावहारिक इंद्रियन का उपयोग है। व्यावहारिक इंद्रियन के अवयवरूप सूक्ष्म इंद्रिय हैं। स्वप्न मै तैजस के व्यवहार मै तिन का उपयोग है। यातैं चाक्षुपता अनुभव संभवै है। यह कहना बी अत्यंत असंगत है। काहे तैं पूर्व उक्त रीति सै व्यावहारिक त्वगिंद्रिय का हि स्वप्न के सारे हस्तिशरीर मै प्रवेश नहि संभवै है। ताके अवयवरूप सूक्ष्म त्वगिंद्रिय का प्रवेश तौ अत्यंत हि दूर है। औ व्यावहारिक इंद्रियन के अवयवरूप सूक्ष्म इंद्रिय अप्रसिद्ध हैं। यातैं बी सूक्ष्म इंद्रियन तैं स्वप्नगजादिकन मै चाक्षुपता अनुभव कहना असंगत है। किंच 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' यह श्रुति स्वप्न मै आत्मा कूं स्वयं प्रकाश कहे है। ताका यह तात्पर्य है—यद्यपि सकल अवस्था मैं आत्मा स्वयं प्रकाश है। तथापि 'अन्यानवभास्यत्वे सति स्वव्यतिरिक्त सकलावभासन योग्यत्वं स्वयं प्रकाशत्वं' अर्थ यह—अपने प्रकाश मै प्रकाशकांतर की अपेक्षा रहित जो स्वभिन्न सर्व प्रकाश के योग्य होवै सो स्वयं प्रकाश कहिये है। सर्व प्रकाशक कूं स्वयं प्रकाश कहैं तौ सुपुप्ति आदिकन मै सर्व के अभाव तैं ताका प्रकाश आत्मा करै नहि। यातैं स्वयं प्रकाश नहि होवैगा। यातैं योग्य कहा। सुपुप्ति आदि-

कन मै सर्व का अभाव हुये बी ताके प्रकाश योग्य आत्मा है। यातैं दोष नहि। सर्व का प्रकाशक कहने तैं आत्मा अपना बी प्रकाशक प्राप्त होवै है। यातैं स्वभिन्न सर्व का प्रकाशक कहा। स्वभिन्न सर्व के प्रकाशक सूर्यादिक बी हैं तिन मै अतिव्याप्ति वारण वास्ते अपने प्रकाश मै प्रकाशकांतर की अपेक्षा रहित कहा। सूर्यादिक अपने प्रकाश मै आत्मप्रकाश की अपेक्षा करे हैं। यातैं दोष नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—लोक मै सूर्यादिक औ नेत्रादिक सर्व के प्रकाशक प्रसिद्ध हैं, जाग्रत् मै तिन के होतैं आत्मा हि सर्व का प्रकाशक है यह निश्चय होय सके नहि, याहि तैं अपने प्रकाश मै प्रकाशकांतर की अपेक्षा का अभाव बी निश्चय नहि होवै है। तैसे सुषुप्ति आदिकन मै बी स्थूलदर्शी कूं आत्मप्रकाश का निश्चय संभवै नहि। स्वप्न मै सूर्यादिकन का औ नेत्रादिजन्य ज्ञान का अभाव है। यातैं आत्मचेतन हि सर्व का प्रकाशक है। यह निश्चय संभवै है। या अभिप्राय तैं स्वप्न मै आत्मा कूं स्वयं प्रकाश श्रुति मै कहा है। किसी प्रकार तैं बी स्वप्न मै इंद्रियन का व्यापार माने ताका विरोध होवैगा। यातैं किसी रीति सै बी स्वप्न मै इंद्रिय व्यापार कहना संभवै नहि यद्यपि स्वप्न मै मन विद्यमान है ताके होतैं बी स्वयं प्रकाशता का निश्चय संभवै नहि। तथापि वृत्तिज्ञान का उपादान मन है, करणांतर

निरपेक्ष हुवा ताका करण संभवै नहि। औ स्वप्न मै नेत्रादिकरणांतर स्व स्व व्यापार सै उपराम होय जावै हैं। यातैं विद्यमान हुवा बी मन स्वप्न पदार्थन का अवभासक नहि होने तैं स्वयं प्रकाशता का निश्चय संभवै है। अथवा तत्त्वप्रदीपिका मै यह कहा है—स्वप्न का हेतु विविध संस्कार है ताका आश्रय मन है, अविद्या ताका आश्रय नहि। यातैं संस्कारविशिष्ट मन के हि परिणाम विचित्र स्वप्न पदार्थ हैं। अविद्या के परिणाम नहि। इस रीति सै स्वप्न मै मन विषयरूप तैं स्थित है, ताका प्रकाशक संभवै नहि। आत्मा हि सर्व का प्रकाशक है। यातैं स्वयं प्रकाश सिद्ध होवै है। यद्यपि स्वप्न पदार्थाकार अंतःकरण की वृत्ति नहि माने संस्कार के अभाव तैं उत्थित कूं स्मृति नहि हुयी चाहिये। तथापि सुषुप्ति मै अज्ञान सुखादि गोचर अविद्या की वृत्ति मान के संस्कार द्वारा स्मृति का संभव कहे हैं। तैसे स्वप्नगजादिगोचर बी अविद्या वृत्ति तैं हि संस्कार द्वारा स्मृति संभवै है। जो वेदांतकौमुदी मै अज्ञान सुखादिगोचर अविद्यावृत्ति नहि मान के हि सुषुप्ति अवस्था के नाश तैं उपहित साक्षी के नाश द्वारा संस्कार का संभव कहा है। तैसे स्वप्नगजादिगोचर बी अविद्या-वृत्ति नहि मानै तौ स्वप्न अवस्था के नाश तैं हि उपहित साक्षी के नाश द्वारा स्वप्नगजादिगोचर संस्कार संभवै हैं। यातैं उत्थित कूं स्मृति का असंभव नहि। इस रीति

सै स्वप्न मै किसी प्रकार तैं बी इंद्रियन तैं चाक्षुपता अनुभव संभवै नहि। यातैं स्वप्नगजादिकन मै चाक्षुपता अनुभव भ्रमरूप मान्या चाहिये। यद्यपि स्वप्न मै उन्मीलित-नेत्र पुरुष कूं गजादिकन का अनुभव होवै है। निमीलित नेत्र कूं होवै नहि। इस रीति सै जाग्रत् की न्याईं स्वप्न पदार्थन के ज्ञान मै बी नेत्रादिकन का अन्वयव्यतिरेक प्रतीत होवै है। तथापि जैसे शुक्ति रजतादिक साक्षि-भास्य हैं तिन मै 'चक्षुषा रजतं पश्यामि' इस रीति सै चाक्षुपता प्रतीति भ्रमरूप् होवै है। तैसे स्वप्नगजादिकन का अनुभव केवल साक्षिरूप है। तामै नेत्रादि अन्वय-व्यतिरेक प्रतीति बी भ्रमरूप हि है। यातैं यह सिद्ध हुवा—यद्यपि नेत्रादि अन्वयव्यतिरेक की प्रतीति तौ जाग्रत् स्वप्न मै समान है। तथापि पूर्व उक्त प्रकार तैं स्वप्न मै किसी रीति सै बी इंद्रिय व्यापार संभवै नहि। यातैं जाग्रत् गजादिकन का अनुभव हि नेत्रादिजन्य है। स्वप्नगजादिकन का नहि। औ दृष्टि सृष्टिवाद मै तौ जाग्रत् पदार्थन का अनुभव बी इंद्रियजन्य नहि। तिन मै बी चाक्षुषतादि प्रतीति भ्रमरूप हि है। काहे तैं कल्पित की अज्ञातसत्ता संभवै नहि। यातैं दृष्टिकाल मै हि जाग्रत् प्रपंच की सृष्टि है तासै पूर्व उत्तर नहि। यातैं स्वप्न की न्याईं जाग्रत् पदार्थन का अनुभव बी साक्षिरूप है। तामै नेत्रादि अन्वयव्यतिरेक की प्रतीति भ्रमरूप है।

इस रीति सै स्वप्न प्रपंच की न्याईं जाग्रत् प्रपंच बी प्रातिभासिक है। स्वप्न की न्याईं हि ताका बी कल्पक कहा चाहिये। शुद्ध आत्मा कल्पक कहैं तौ मोक्ष मै बी संसार हुवा चाहिये। यातैं अविद्या उपहित आत्मा संसार का कल्पक है। या पक्ष मै कार्यकारणभाव, प्रमाणप्रमेयभाव, गुरुशिष्यभाव, देवतिर्यक्मनुष्यादि विभाग, औ बंध मोक्ष व्यवस्था सर्व स्वप्न की न्याईं है। सृष्टि प्रलयादि प्रतिपादक श्रुतिवाक्यन का बी स्वार्थ मै तात्पर्य नहि। किंतु निष्प्रपंच ब्रह्मात्मबोध मै तात्पर्य है। काहे तैं अध्यारोप औ अपवाद तैं निर्विशेष ब्रह्म का बोध होवै है। ताका साधन होने तैं हि श्रुतिवाक्यन मै सृष्टि प्रलय का निरूपण है। तामै तात्पर्य नहि। यह भाष्यकारादिकन का उद्घोष है। ताका यह निष्कर्ष है। जैसे कोई पुरुष अन्य पुरुष के प्रति आकाशतत्त्व का बोधन करै तब प्रथम 'नीलं विशालं च नभः' इस रीति सै कल्पित नीलतादि विशिष्ट हि आकाश का बोधन करे है। पश्चात् ताका निषेध करके निरूप व्यापक उदासीन आकाशतत्त्व का बोधन करे है। तैसे वेदांतवाक्य बी प्रथम 'यत् जगत्-कारणं तत् ब्रह्म' या रीति सै कल्पित सर्गादि विशिष्ट ब्रह्म का बोधन करे हैं। पीछे 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि निषेधवाक्यन तैं ताके निषेध द्वारा निर्विशेष ब्रह्मात्मा का अभेद बोधन करे हैं। अप्राप्त का निषेध

बनै नहि। यातैं सृष्टिवाक्यन तैं कल्पित द्वैत की प्राप्ति करके ताका निषेध करिये है। इस रीति सै निषेधवाक्यन तैं सृष्टिवाक्यन की एकवाक्यता है। यातैं तिन का फल बी निष्प्रपंच ब्रह्मबोध हि है। स्वार्थ के प्रतिपादन मात्र तैं सफलता नहि। काहे तैं स्वार्थप्रतिपादन मै तिन का फल मिलै नहि। औ निष्फल अर्थ मै वेदवाक्यन का तात्पर्य कहना संभवै नहि। यातैं अर्थवाद वाक्यन का स्वार्थ मै फलाभाव तैं विधिवाक्यन तैं तिन की एक॰ वाक्यता माने हैं। तैसे सृष्टिवाक्यन की बी एक॰ वाक्यता मानी चाहिये। सृष्टिवाक्यन तैं अध्यारोप द्वारा प्रथम सप्रपंच ब्रह्म का बोध होवै है। पश्चात् निषेध॰ वाक्यन तैं तिसी ब्रह्म का निष्प्रपंच बोध होवै है। पूर्व॰ बोधं उत्तरबोध का शेष हि है। स्वतंत्रफल का हेतु नहि। जैसे सृष्टि प्रलयादि वाक्यन का ब्रह्मबोध मै तात्पर्य है। तैसे कर्मउपासना वाक्यन का बी ब्रह्मबोध मै हि तात्पर्य है। काहे तैं कर्म के अनुष्ठान तैं अंतःकरण की शुद्धि होवै है। उपासना तैं एकाग्रता होवै है। निर्मल औ एकाग्र अंतःकरण मै ब्रह्मबोध होवै है। इस रीति सै साक्षात् परंपरा तैं सकल वेद का ब्रह्म मै हि तात्पर्य है। यातैं वेदवाक्यन मै अप्रमाणता की शंका संभवै नहि। जाग्रत् मै कार्य प्रपंच की उत्पत्ति औ सुषुप्ति मै लय श्रुति मे कहा है, ताके अनुसार दृष्टिसृष्टिवाद का निरू॰

पण पूर्वाचार्यों ने किया है। उत्तम अधिकारी कूं यहि उपादेय है। दृष्टि सृष्टिवाद मै दो भेद हैं। कितने आचार्य तौ दृष्टिकाल मै हि कार्य प्रपंच की सृष्टि दृष्टि सृष्टिशब्द का अर्थ कहे हैं। ताका निरूपण किया। औ सिद्धांत मुक्तावलीकारादिक तौ यह कहे हैं —स्वप्रकाश चेतन का नाम दृष्टि है। तासै भिन्न दृश्य प्रपंच की सत्ता माने 'सन् घटः' इस रीति सै सत्रूप चेतन का औ घटादिकन का सामानाधिकरण्य नहि हुवा चाहिये। काहे तैं भिन्न सत्तावाले घट पटादिकन का सामानाधिकरण्य होवै नहि। यातैं चेतनरूप दृष्टि तैं दृश्य की सत्ता भिन्न नहि। किंच 'चिद्धीदं सर्वं'

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः।
अर्थस्वरूपं भ्राम्यंतः पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः॥

इत्यादि श्रुति स्मृति तैं बी चेतनरूप दृष्टि तैं भिन्न दृश्य प्रपंच की सत्ता का अभाव हि सिद्ध होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा— दृश्य प्रपंच मै तादात्म्यापन्न चेतन हि ताके आद्यक्षणावच्छिन्न हुवा ताकी सृष्टि कहिये है। ज्ञानरूप चेतन तैं भिन्न सृष्टि नहि। इस रीति सै अत्यंत शुद्ध अधिकारी के बोध वास्ते मतभेद तैं दृष्टि सृष्टिवाद का निरूपण किया। औ कितने आचार्य तौ मंद मध्यम अधिकारी के बोधन वास्ते सृष्टि दृष्टिवाद हि माने हैं। तिन का यह तात्पर्य है—श्रुति दर्शित क्रम तैं परमेश्वर आकाशादि प्रपंच कूं रचे है।

ताकी अज्ञातसत्ता है। प्रमाण के संबंध तैं ताका दृष्टि कहिये ज्ञान होवै है। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—प्रपंच कूं प्रमाण का विषय माने शुक्ति रजतादिकन की न्याईं कल्पित तौ कहना संभवै नहि। यातैं सत्य मान्या चाहिये। समाधान यह है—यद्यपि दोप संप्रयोग संस्कार जन्यता प्रातीति का ध्यास का लक्षण है। औ आकाशादि प्रपंच दोषादि कारणत्रय जन्य है नहि। यातैं शुक्ति रजतादिकन की न्याईं प्रातीतिक तौ नहि बी संभवै है। परंतु पारमार्थिक सत्य बी सिद्ध होवै नहि। क़ाहे तैं अधिष्ठान के ज्ञान मात्र तैं निवृत्त होवै अथवा सदसद् विलक्षण वा अधिष्ठान मै त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगी होवै सो मिथ्या कहिये है। यह मिथ्या का लक्षण शुक्ति रजतादिकन मै औ आकाशादि प्रपंच मै समान है। यातैं शुक्ति रजतादिकन की न्याईं प्रपंच मिथ्या हि सिद्ध होवै है। सत्य सिद्ध होवै नहि। तात्पर्य यह—प्रपंच सत्यत्ववादी प्रपंच मै उक्तरूप मिथ्यात्व नहि माने हैं। यातैं प्रमाण विषयत्व के समान हुये बी हमारे मत मै परमार्थ सत्यत्व की आपत्ति नहि। अन्य शंका। भाष्यकारादिकन ने धर्मसहित अहंकार के अध्यास मै दोपादि कारणत्रयजन्यता सिद्ध करी है। प्रातिभासिकता की सिद्धि हि ताका फल है। औ पूर्व उक्त रीति से आकाशा-दिकन की न्याईं प्रातिभासिकता विना बी धर्म सहित अहं-

कार मै मिथ्यात्व की सिद्धि संभवै है। यातैं कारण त्रय-जन्यता निरूपण निष्फल होवैगा। चित्सुखाचार्य या शंका का यह समाधान कहे हैं--जैसे शुक्तिरजतादिक साक्षिभास्य होने तैं प्रातिभासिक हैं। तैसे धर्मसहित अहंकार बी केवल साक्षिभास्य है। यातैं भाष्यकारादिकन कूं प्राति-भासिक अभिमत है। औ कारणत्रयजन्यता विना प्रातिभासिकता सिद्ध होवै नहि। यातैं दोषादि कारण-त्रयजन्यता निरूपण सफल है। निष्फल नहि। औ रामाद्वयाचार्य तौ यह कहे हैं--यद्यपि धर्मसहित अहंकार-रूप अंतःकरण केवल साक्षिभास्य है। तथापि ब्रह्मज्ञान विना ताका बाध होवै नहि। यातैं शुक्ति रजतादिकन की न्याईं प्रातिभासिक कहना संभवै नहि। इस रीति सै वास्तव तैं प्रातिभासिकता का अभाव हुये बी प्राति-भासिकता मान के कारणत्रयजन्यता का निरूपण भाष्यकारादिकन का प्रौढिवाद है। यातैं शंका बनै नहि। इस रीति सै दृष्टि सृष्टिवाद मै औ सृष्टि दृष्टि-वाद मै अवांतर प्रक्रिया का भेद हुये बी प्रपंच मिथ्या है। मिथ्या प्रपंच तैं स्वसमान सत्तावाले व्यवहार की सिद्धि बी स्वप्न की न्याईं संभवै है। यातैं व्यवहार सिद्धि तैं बी प्रपंच मै सत्यत्व की शंका संभवै नहि। परंतु द्वैत-वादी यह शंका करे हैं -- प्रपंच कूं मिथ्या कहना संभवै नहि। काहे तैं प्रपंचगत मिथ्यात्व धर्म कूं सत्य माने अद्वैत

की हानि होवैगी। मिथ्यात्व कूं मिथ्यामाने तासै स्वविरोधि सत्यत्व का प्रपंच मै प्रतिक्षेप नहि होवैगा। जो मिथ्या- भूत मिथ्यात्व तैं स्वविरोधि सत्यत्व का प्रतिक्षेप कहैं तौ मिथ्या सप्रपंचत्व तैं बी ब्रह्म के निष्प्रपंचत्व का प्रतिक्षेप हुवा चाहिये। या शंका का यह समाधान है—यद्यपि मिथ्यात्वधर्म मिथ्या है तासै हि स्वविरोधि सत्यत्व का प्रतिक्षेप होवै है। तथापि मिथ्याभूत मिथ्यात्व धर्म तैं स्व- विरोधि सत्यत्व के प्रतिक्षेप मै मिथ्यात्व धर्मनिष्ठ मिथ्यात्व हेतु मानै तब तौ मिथ्या सप्रपंचत्व तैं बी निष्प्रपंचत्व का प्रतिक्षेप हुवा चाहिये। परंतु जैसे एक धर्म तैं स्वविरोधि अपर धर्म के प्रतिक्षेप मै उभयवादि संमत नहि होने तैं धर्मनिष्ठ सत्यत्व हेतु नहि। तात्पर्य यह—घटत्वादिक धर्मन तैं स्वविरोधि अघटत्वादिकन का प्रतिक्षेप होवै तहां नैयायिकादिकन की रीति सै तौ घटत्वादिक धर्मन मै पार- मार्थिक सत्यत्व है। औ घटादि धर्मी के समान सत्ताकत्व वादी प्रतिवादी दोनों कूं संमत है। यातैं अघटत्वादिक धर्मन के प्रतिक्षेप मै घटत्वादि धर्मनिष्ठ सत्यत्व हेतु नहि माने हैं। किंतु उभयवादि संमत होने तैं धर्मी के समान सत्ताकत्व हि हेतु माने है। यातैं यह सिद्ध हुवा—जैसे स्वविरोधि धर्म के प्रतिक्षेप मै धर्मनिष्ठ पारमार्थिक सत्यत्व हेतु नहि। तैसे मिथ्यात्व बी हेतु नहि। किंतु जो धर्म धर्मी के समान सत्तावाला होवै अथवा प्रमाण निर्णीत, वा धर्मिगोचर

तत्त्वसाक्षात्कार तैं जाका बाध नहि होवै, ता धर्म सै स्वविरोधिधर्म का प्रतिक्षेप होवै है। ब्रह्म पारमार्थिक है। ताका धर्म निष्प्रपंचत्व बी पारमार्थिक है। औ श्रुति स्मृतिरूप प्रमाण तैं निर्णीत है। तैसे ब्रह्मगोचर तत्त्व साक्षात्कार तैं निष्प्रपंचत्व का बाध बी होवै नहि। यातैं स्वविरोधि सप्रपंचत्व का तासै प्रतिक्षेप होवै है। तैसे व्यावहारिक प्रपंच का धर्म मिथ्यात्व बी व्यावहारिक है। औ 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुतिप्रमाण तैं निर्णीत है। तैसे धर्मिगोचर तत्त्वसाक्षात्कार तैं ताका बाध बी होवै नहि। काहे तैं प्रपंचरूप धर्मी का तत्त्व ब्रह्म है, ताके साक्षात्कार तैं ब्रह्म मै तौ मिथ्यात्व सहित प्रपंच का बाध होवै है। परंतु प्रपंच मै मिथ्यात्व का दृढ निश्चय होवै है, बाध होवै नहि। यातैं प्रपंच मै स्वविरोधि सत्यत्व का तासै प्रतिक्षेप संभवै है। और जो कोई शंका करे हैं —मिथ्यात्व धर्म मिथ्या है। या पक्ष मै ब्रह्मज्ञान विना ताका बाध होवै नहि। यातैं प्रातिभासिक कहना संभवै नहि। ब्रह्मज्ञान तैं मिथ्यात्व का बाध होवै है। यातैं पारमार्थिक बी कहना नहि संभवै है। किंतु व्यावहारिक हि कहना होवैगा। औ 'सन् घटः' इस रीति सै प्रपंच मै सत्यत्व बी प्रत्यक्ष सिद्ध है। ताका बी ब्रह्मज्ञान विना बाध नहि होने तैं प्रातिभासिक कहना नहि संभवै है। जो सत्यत्व कूं व्यावहारिक कहैं तथापि संभवै नहि।

काहे तैं समान सत्तावाले विरोधिधर्म एकधर्मी मै रहैं नहि। यातैं व्यावहारिक मिथ्यात्व के आश्रय प्रपंच मै सत्यत्व कूं व्यावहारिक कहना बी संभवै नहि। यातैं पारमार्थिक हि कहा चाहिये। पारमार्थिक सत्यत्व का आश्रय प्रपंच बी पारमार्थिक हि कहा चाहिये। यातैं अद्वैत की हानि होवैगी। यह शंका बी नहि संभवै है। काहे तैं धर्मी के समान सत्तावाला होने तैं मिथ्यात्व धर्म व्यावहारिक है। व्यावहारिक मिथ्यात्व धर्म का धर्मि-प्रपंच बी नियम तैं व्यावहारिक हि कहा चाहिये। या प्रकार तैं प्रपंच कूं व्यावहारिक मान के सत्यत्व धर्म मै पारमार्थिकता संपादन द्वारा धर्मिप्रपंच कूं पारमार्थिक कहना सर्वथा विरुद्ध है। जों प्रपंच मै व्यावहारिक प्राति-भासिक सत्यत्व का असंभव तौ पूर्व कहा है। पारमार्थिक सत्यत्व बी नहि मानै सत्यत्व अनुभव का विरोध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं प्रपंच मै व्यावहारिक सत्यत्व का सिद्धांत मै अंगीकार है। यातैं 'घटः सन्' इत्यादि सत्यत्व अनुभव का विरोध नहि। यद्यपि समान सत्तावाले विरोधिधर्म एकधर्मी मै नहि रहे हैं। यातैं व्यावहारिक मिथ्यात्व धर्म के अधिकरण प्रपंच मै सत्यत्व कूं व्यावहारिक कहना संभवै नहि। तथापि व्यावहारिक सत्यत्व तैं मिथ्यात्व का विरोध मानै तौ उक्त दोष होवै। परंतु सिद्धांत मै व्यावहारिक सत्यत्व तैं मिथ्यात्व का विरोध

नहि माने हैं। पारमार्थिक सत्यत्व तैं हि विरोध माने हैं। यातैं मिथ्यात्व के अधिकरण प्रपंच मै पारमार्थिक सत्यत्व की तौ स्थिति नहि बी संभवै है। परंतु व्यावहारिक सत्यत्व की स्थिति संभवै है। यातैं दोष नहि। अन्य शंका। जैसे आकांक्षा ज्ञानादिक शाब्दबोध के हेतु हैं, तैसे योग्यता का ज्ञान बी ताका हेतु है। एकपदार्थ का अपरपदार्थ सै संबंध का नाम योग्यता है। योग्यता औ वाक्यार्थ नियम तैं समान सत्तावाले होवै हैं। जैसे अनाप्तवाक्य मै प्रातिभासिक योग्यता है। तासै प्रातिभासिक अर्थ का हि बोध होवै है। व्यावहारिक वा पारमार्थिक अर्थ का बोध होवै नहि। औ 'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादि वाक्यन मै योग्यता व्यावहारिक है। तिन तैं व्यावहारिक अर्थ की हि सिद्धि होवै है। पारमार्थिक वा प्रातिभासिक अर्थ की सिद्धि होवै नहि। इस रीति सै वाक्यार्थ नियम तैं योग्यता के समान सत्तावाला होवै है। वाक्यार्थरूप ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। यातैं ब्रह्मबोधक-वाक्यनिष्ठ योग्यता बी पारमार्थिक सत्य हि मानी चाहिये। किंच, वाक्यजन्यज्ञान का विषय ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। ज्ञानगत प्रमात्व बी पारमार्थिक सत्य हि मान्या चाहिये। काहे तैं ज्ञान मै प्रमात्व अर्थाबाधरूप है। प्रमात्व कूं पारमार्थिक नहि माने अर्थ मै पारमार्थिकता सिद्ध होवै नहि। यातैं वेदार्थरूप ब्रह्म मै पारमार्थिकता

के संरक्षण वास्ते ब्रह्म ज्ञानगत प्रमात्व कूं अवश्य पारमार्थिक कहा चाहिये। इस रीति सै ब्रह्मभिन्न योग्यता औ प्रमात्व के सत्य सिद्ध हुये अद्वैत की हानि आवश्यक है। यातैं आकाशादि प्रपंच बी सत्य हि मान्या चाहिये। इस रीति सै द्वैतवादी शंका करे हैं। परंतु तिन सै यह पूछा चाहिये—ब्रह्म के शाब्दबोध वास्ते वाक्यनिष्ठ योग्यता सत्य मानी चाहिये। अथवा ब्रह्म मै सत्यत्व की सिद्धि वास्ते योग्यता सत्य मानी चाहिये। जो प्रथमपक्ष कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं मिथ्या प्रपंच तैं स्वसमान सत्तावाले व्यवहार की सिद्धि स्वप्न की न्याईं पूर्व कहि है। यातैं व्यावहारिक योग्यता तैं बी सत्य ब्रह्म का शाब्द-बोध संभवै है। ताकी सिद्धि वास्ते योग्यता कूं पारमार्थिक सत्य मानना निष्फल है। औ 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं हि ब्रह्म मै सत्यत्व की सिद्धि संभवै है, ताकी सिद्धि वास्ते बी योग्यता कूं सत्य मानना निष्फल है। यातैं द्वितीयपक्ष बी संभवै नहि। इस रीति सै व्यावहारिक योग्यतावाले हि वेदांतवाक्यन तैं सत्य ब्रह्म की सिद्धि संभवै है। यातैं प्रमाण के अभाव तैं योग्यता के समान सत्तावाला हि वाक्यार्थ होवै है यह नियम संभवै नहि। जो ब्रह्मज्ञानगत प्रमात्व पारमार्थिक सत्य कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है ब्रह्मज्ञाननिष्ठ प्रमात्व बी ब्रह्मरूप होवै तब तौ

पारमार्थिक सत्य कहना संभवै। परंतु घट ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व घटरूप नहि। तैसे ब्रह्म ज्ञानगत प्रमात्व बी ब्रह्मरूप नहि। यातैं पारमार्थिक सत्य कहना संभवै नहि। औ जो ज्ञान मै प्रमात्व अप्रमात्व स्वाभाविक नहि। किंतु अर्थ के बाधाबाध प्रयुक्त हैं। सो विचार किये तैं अर्थस्वरूप सै न्यारे सिद्ध होवैं नहि। यातैं ब्रह्म ज्ञानगत प्रमात्व ब्रह्मरूप होने तैं ताकूं सत्य कहैं तौ ब्रह्मभिन्न सत्य प्रमात्व के अभाव तैं उक्त द्वैतशंका निर्मूल है। यातैं आकाशादि प्रपंच बी मिथ्या हि मान्या चाहिये। इस रीति सै अद्वितीय ब्रह्म पक्ष मै प्रत्यक्षादि विरोध का अभाव निरूपण किया। अब सुख दुःखादि व्यवस्था के विरोध परिहार वास्ते प्रथम यह शंका होवै है—यद्यपि पूर्व उक्त रीति सै आकाशादि जड प्रपंच तौ मिथ्या है। परंतु जीव चेतन कूं मिथ्या कहना संभवै नहि। काहे तैं जीव कूं स्वरूप सै मिथ्या माने तत्त्वज्ञान तैं ताकी निवृत्ति हुयी चाहिये। यातैं मोक्ष का हि अभाव होवैगा। इस रीति से ब्रह्मभिन्नसत्य जीव के होतैं ब्रह्म अद्वितीय सिद्ध होय सके नहि। जो प्रथम परिच्छेद के अंत मै जीव का ब्रह्म सै अभेद कहा है। यातैं अद्वितीय ब्रह्म की सिद्धि कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं परस्पर भिन्न जीव अनेक हैं। तिन का एक ब्रह्म सै अभेद कहना संभवै नहि। औ कोई सुखी है, कोई दुःखी हैं, कोई राग करे है, कोई द्वेष करे है। इस रीति सैं सुख

दुःखादिक व्यवस्थित हि अनुभव सिद्ध हैं। जीवभेद विना व्यवस्था की अनुपपत्ति होवैगी। यातैं प्रमाण के अभाव तैं परस्पर जीवभेद हि असिद्ध है यह कहना बी नहि संभवै है। समाधान यह है—व्यवस्था की अनुपपत्ति तैं जीवभेद सिद्ध होय सके नहि। काहे तैं स्वरूप सै जीवन का अभेद मानै बी उपाधिभेद तैं हि व्यवस्था संभवै है। यातैं प्रमाण के अभाव तैं जीवन का परस्पर भेद सिद्ध होय सके नहि। याहि तैं ब्रह्म सै बी तिन का भेद सिद्ध नहि होय सके है। यातैं अद्वितीय ब्रह्म की सिद्धि संभवै है। ननु सुख दुःखादिक चेतन के हि धर्म प्रसिद्ध हैं, सोई तिन का आश्रय कहा चाहिये। औ विरुद्ध धर्मन की व्यवस्था बी आश्रय के भेद तैं हि कहि चाहिये। अन्य के भेद तैं अन्यगत धर्मन की व्यवस्था संभवै नहि। यातैं उपाधि के भेद तैं विरुद्ध सुख दुःखादिकन की व्यवस्था कहना असंगत है। काहे तैं उपाधि का भेद हुये बी चेतन आत्मा का भेद होवै नहि ताके भेद विना सुख दुःखादिकन की व्यवस्था बी सिद्ध होय सके नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं। 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव' 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यादि श्रुतिवाक्यन मैं अंतःकरण हि सर्व अनर्थ का आश्रय कहा है। विज्ञान कहिये अंतःकरण शास्त्रीय कर्म कूं करे है। यह द्वितीय श्रुति-

वाक्य का अर्थ है। औ 'असंगोह्ययं पुरुषः असंगो नहि सज्जते' इत्यादि श्रुति मै चेतन आत्मा कूं असंग कह्या है। यातैं कूटस्थ आत्मा सुख दुःखादिकन का आश्रय कहना संभवै नहि। किंतु अंतःकरण हि तिन का आश्रय है। ताके भेद तैं हि व्यवस्था की सिद्धि होय सके है। आत्मा का भेद सिद्ध होय सके नहि। जो 'अहमुपलभे' इस रीति सै जो उपलब्धि का आश्रय प्रतीत होवै है। सोई 'अहं करोमि सुखी दुःखी' इस रीति सै कर्तृत्वादि बंध का बी आश्रय प्रतीत होवै है। औ उपलब्धि का आश्रय आत्मा है। अंतःकरण ताका आश्रय नहि यद्यपि आत्मा उपलब्धिरूप हि है ताका आश्रय कहना संभवै नहि। तथापि जैसे सूर्य प्रकाशरूप हि है तौ बी कल्पितभेद मान के 'सूर्यः प्रकाशते' इस रीति सै प्रकाश का आश्रयव्यवहार करिये है। तैसे कल्पितभेद मान के हि आत्मा उपलब्धि का आश्रय कहिये है। इस रीति सैं कर्तृत्वादि बंध का उपलब्धि तैं सामानाधिकरण्य अनुभव होवै है। अंतःकरण हि बंध का आश्रय मानै ताका विरोध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं इदंता शुक्ति का धर्म है। रजतत्त्व धर्म रजत का है। परंतु शुक्ति मै रजत का तादात्म्याध्यास है। यातैं 'इदं रजतं' इस रीति से इदंता औ रजतत्त्व का सामानाधिकरण्य अनुभव होवै है। तैसे कर्तृत्वादिक यद्यपि अंतःकरण के हि धर्म हैं, आत्मा के धर्म नहि।

उपलब्धिधर्म आत्मा का है अंतःकरण का नहि। परंतु आत्मा मै अंतःकरण का तादात्म्याध्यास है। यातैं कर्तृत्वादिकन का उपलब्धि तैं सामानाधिकरण्य अनुभव संभवै है। विरोध नहि। जो चेतन आत्मा का हि बंध मोक्ष कहा चाहिये। कर्तृत्वादिबंध का आश्रय अंतःकरण मानै चेतन आत्मा मै संसार के असंभव तैं संसारनिवृत्तिरूप मोक्ष का बी असंभव कहैं तथापि संभवै नहिं। काहे तैं 'ध्यायतीव लेलायतीव' 'अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते' इत्यादि श्रुति स्मृति तैं बुद्धिनिष्ठ संसार का आत्मा मै आरोप सिद्ध होवै है। बुद्धि के ध्यान कर्ते आत्माध्यान कर्ता की न्याई प्रतीत होवै है। ताके चलन तैं चलते की न्याई प्रतीत होवै है। स्वभाव सै ध्यानादिकन का आश्रय नहि। यह श्रुतिवाक्य का अर्थ है। कर्तृत्व का आश्रय अहंकाररूप अंतःकरण है, ताके तादात्म्याध्यास तैं आत्मा अपने कूं कर्ता माने है। यह स्मृतिवचन का अर्थ है। तात्पर्य यह है—जैसे भय हेतुता सर्प का धर्म है ताके तादात्म्याध्यास तैं रज्जु मै भय हेतुता का भ्रम होवै है। तैसे कर्तृत्वादि संसारबंध का आश्रय यद्यपि अंतःकरण है परंतु ताके तादात्म्याध्यास तैं आत्मा मै संसारबंध का भ्रम होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा। यद्यपि चेतन आत्मा स्वभाव सै तौ संसार का आश्रय नहि है। तथापि बुद्धिनिष्ठ सादि-

भास्य कर्तृत्वादि संसार का आत्मा मै आरोप होने तैं आरोपित संसार का आश्रय है। कर्तृत्वादि संसार धर्मन का अनिर्वचनीय संबंध आत्मा मै उपजै है। यातैं अन्यथां ख्यातिवाद की आपत्ति नहि। इस रीति सै आत्मा मै भ्रमसिद्ध संसारबंध की तत्त्वज्ञान तैं निवृत्तिरूप मोक्ष बी संभवै है। शंका संभवै नहि। जो पूर्व उक्त रीति सै अंतःकरण तौ स्वभाव से हि संसारबंध का आश्रय है। चिदात्मा मै संसारभ्रांति सिद्ध है। ऐसे माने बी अंतःकरण के भेद तैं ताके हि सुख दुःखादिक धर्मन की व्यवस्था संभवै है। आत्मा मै आरोपित संसार धर्मन की व्यवस्था संभवै नहि। काहे तैं आत्मा सर्व शरीरन मै एक है। इस रीति सै आत्मा मै आरोपित विचित्र सुख दुःखादिकन की व्यवस्था का असंभव कहैं तथापि नहि संभवै है। काहे तैं जैसे अंतःकरणगत संसारधर्मन का आत्मा मै आरोप होवै है। तैसे परस्पर अंतःकरणगत भेद का बी तामैं आरोप होवै है। यातैं आरोपित आत्मभेद तैं आरोपित संसारधर्मन की व्यवस्था संभवै है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार कर्तृत्वादि संसारधर्मन का आश्रय अंतःकरण मान के ताके भेद तैं व्यवस्था का संभव कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—द्वितीयाध्याय के तृतीय पाद मै सूत्रकार भाष्यकार ने चेतन हि संसारधर्मन का आश्रय कहा है। औ कर्तृत्वादिक चेतन के हि धर्म

प्रसिद्ध बी हैं। यातैं जड अंतःकरण संसारधर्मन का आश्रय कहना संभवै नहि। औ कूटस्थ होने तैं साक्षात् चिदात्मा बी तिन का आश्रय नहि संभवै है। किंतु अंतःकरण मै चेतन का आभास संसारधर्मन का आश्रय है। उपाधिभेद तैं मिथ्या चिदाभास का भेद है। यातैं सुख दुःखादिकन की व्यवस्था संभवै है। जो ऐसे कहैं—जाका बंध होवै ताका हि मोक्ष कहा चाहिये। मिथ्या चिदाभास मोक्ष मै रहै नहि। याहि तैं ताका मोक्ष बी कहना नहि संभवै है। जो चिदाभास कूं बंध का आश्रय मान के सत्य आत्मा का मोक्ष माने तौ बंध मोक्ष की व्यधिकरणता होवैगी। यातैं चिदाभास बी बंध का आश्रय कहना संभवै नहि। यह कहना संभवै नहि। काहे तैं यद्यपि स्वभाव सै तौं चिदाभास हि बंध का आश्रय है। अबाधित कूटस्थ आत्मा मै वास्तव तैं संसारबंध का अभाव है। तथापि व्यावहारिक जीव का पारमार्थिक जीव मै तादात्म्याध्यास है। यातैं चिदाभासगत बंध का चिदात्मा मै आरोप होवै है। आरोपित बंध की तत्त्वज्ञान तैं निवृत्तिरूप मोक्ष बी संभवैं है। यातैं बंधमोक्ष की व्यधिकरणता नहि। इस रीति सै आत्मा सर्व शरीरन मै एक है। यातैं सुख दुःखादिकन की व्यवस्था संभवै नहि। या शंका के समाधान मै कोई ग्रंथकार अंतःकरण कूं सुखादिकन का आश्रय मान के ताके भेद तैं व्यवस्था

कहे हैं। त्रिविध जीववादी ग्रंथकार चिदाभास कूं आश्रय मान के ताके भेद तैं व्यवस्था कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे है–यद्यपि आत्मा सर्व शरीरन मै एक है सोई बंध का आश्रय है। परंतु केवल आत्मा संसार-बंध का आश्रय नहि। किंतु 'आत्मेंद्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' या श्रुतिवचन तैं विशिष्ट आत्मा मै भोक्तृत्वादि संसार है। श्रुतिवचन मै आत्मपद शरीर का वाचक है। यातैं शरीर इंद्रिय अंतःकरणयुक्त आत्मा कूं विद्वान् भोक्ता कहे हैं। यहं श्रुतिवाक्य का अर्थ सिद्ध होवै है। तहां शरीर इंद्रिय तौ आत्मा के सहकारी हैं। अंतःकरण विशेषण है। अंतःकरणविशिष्ट आत्मा सुख दुःखादि संसारधर्मन का आश्रय है। विशेषणभेद तैं विशिष्ट का भेद होने तैं सुख दुःखादि व्यवस्था संभवै है। जो अंतःकरण विशिष्ट जीव मोक्ष मै रहै नहि। ताकूं बंध का आश्रय मान के केवल आत्मा का मोक्ष मानै बंध मोक्ष की व्यधिकरणता कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं विशिष्टवृत्ति बंध का विशेष्य चेतन मै संबंध है। औ विशेष्यचेतन शुद्ध सै न्यारा नहि। यातैं व्यधिकरणता दोष नहि। इस रीति सै कोई ग्रंथकार अंतःकरणगत बंध का चेतन आत्मा मै आरोप मान के व्यधिकरणतादोष का परिहार करे हैं। कोई चिदाभास-गत बंध का तामै आरोप मान के परिहार करे हैं। कोई

विशिष्टवृत्ति बंध का शुद्ध मै संबंध मान के परिहार करे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ शुद्ध चेतन कूं हि कर्तृत्वादि बंध का आश्रय मान के बी यह कहे हैं—जैसे जपा कुसुम संबंधि स्फटिक मै उपाधिगत रक्तता से भिन्न हि प्रतिबिंबरूप मिथ्या रक्तता उत्पन्न होवै है। तैसे शुद्ध आत्मा मै अंतःकरणादिगत बंध तैं भिन्न हि मिथ्या कर्तृत्वादि बंध उत्पन्न होवै है। पूर्व उक्त मतन मै अंतःकरणादिगत बंध का अनिर्वचनीय संबंध चिदात्मा मै उत्पन्न होवै है। या मत मै अंतःकरणादिगत बंध के सदृश कर्तृत्वादि बंध हि अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै है। इतना उक्त मतन तैं या मत का भेद है। जो सुख दुःखादिरूप बंधाध्यास का अधिष्ठान आत्मा सर्व शरीरन मै एक है। यातैं व्यवस्था की अनुपपत्ति कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं जैसे एक हि वृक्ष मै मूल औ शाखारूप उपाधि के भेद तैं संयोग औ ताके अभाव की व्यवस्था नैयायिक माने हैं। औ कर्णपुटरूप उपाधि के भेद तैं एक हि आकाश मै कहुं शब्द की प्रतीति होवै है। कहुं नहि होवै है। कहुं तारशब्द की प्रतीति होवै है। कहुं मंद की होवै है। कहुं इष्टशब्द की, कहुं अनिष्ट की प्रतीति होवै है। इस रीति से व्यवस्था माने हैं। तैसे हमारे मत मै बी अंतःकरणादिरूप उपाधि के भेद तैं हि सुख दुःखादि विरुद्ध धर्मन की व्यवस्था संभवै है। परंतु उपाधि भेद तैं

उपहित वृक्षादिकन का भेद नहि मान के यह समाधान है। जो आश्रयभेद तैं हि विरुद्ध धर्मन की व्यवस्था कहि चाहिये। यातैं मूल औ अग्ररूप उपाधिभेद तैं वृक्ष का तैसे कर्ण शष्कुली के भेद तैं श्रोत्ररूप आकाश का भेद नैयायिक कहैं तौ अन्य ग्रंथकारन का यह समाधान है—यद्यपि बंधाध्यास का अधिष्ठान आत्मा वास्तव भेद रहित है। तथापि वास्तव भेद तैं हि विरुद्धधर्मन की व्यवस्था होवै यह नियम नहि। काहे तैं एक हि मुख मै मलिन मणि औ दर्पणकृत मिथ्याभेद तैं श्यामता औ अवदातता की व्यवस्था होवै है। कृपाण औ मणिमय स्तंभादिकृत मिथ्याभेद तैं वर्तुलता दीर्घतादि धर्मन की व्यवस्था होवै है। एक हि चंद्रादिकन मै अंगुली आदिकृत कल्पितभेद तैं पूर्व पश्चिम भावादिकन की व्यवस्था होवै है। औ पूर्व उक्त रीति सै वृक्षादिकन मै कल्पित भेद तैं हि संयोग औ ताके अभावादिकन की व्यवस्था नैयायिक माने हैं। तैसे एक हि आत्मा मै अंतःकरणादिकृत कल्पितभेद तैं हि सुख दुःखादि विरुद्धधर्मन की व्यवस्था संभवै है। इस रीति सै उपाधिभेद तैं अथवा औपाधिक जीव भेद तैं सुख दुःखादिकन की व्यवस्था संभवै है। प्रमाण के अभाव तैं वास्तव जीव भेद सिद्ध होय सके नहि। यातैं जीव ब्रह्म का अभेद होने तैं अद्वितीय ब्रह्म की सिद्धि संभवै है। व्यवस्था विरोध की शंका

संभवै नहि। इस रीति से आत्मा सर्व शरीरन मै एक है। या पक्ष मै व्यवस्था का संभव कहा। औ वैशेषिकादिक तौ व्यवस्था की सिद्धि वास्ते हि आत्मा का भेद माने हैं तिन के मत मै ताका असंभव कहे हैं। तथा हि व्यापक अनेक आत्मपक्ष मै एक कूं कंटकवेधादिजन्य दुःखादिक होवैं तब सर्व कूं दुःखादिक हुये चाहिये। काहे तैं व्यापक होने तैं सकल आत्मा सकल शरीरन मै विद्यमान हैं। जो सर्व आत्मा तौ यद्यपि सर्व शरीरन मै विद्यमान हैं। परंतु जाके शरीर मै कंटकवेधादिक होवैं ताकूं हि दुःखादिक होवैं हैं अन्य कूं नहि। इस रीति सै व्यवस्था कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं सर्व आत्मा की संनिधि मै शरीर उत्पन्न होवै है। यातैं एक हि आत्मा का सो शरीर है अन्य का नहि यह नियम होय सके नहि। जो जाके अदृष्ट तैं जो शरीर होवै, तिस आत्मा का सो शरीर है। इस रीति से नियम कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं आत्ममन का संयोग अदृष्ट का असमवायि कारण है, समवायि कारण आत्मा है। एक आत्मा सै मन का संयोग होवै तिस काल मै अन्य आत्मा सै बी संयोग विद्यमान है। यातैं सर्व आत्मा मै अदृष्ट की उत्पत्ति का कारण समान होतैं एक हि आत्मा मै अदृष्ट उत्पन्न होवै है यह नियम संभवै नहि। जो आत्ममन का संयोग तौ यद्यपि सर्व आत्मा मै अदृष्ट उत्पत्ति का कारण

समान है । तथापि अभिसंधि प्रयत्नादिक असाधारण हैं । फल की इच्छा का नाम अभिसंधि है। जाके अभिसंधि आदिकन तैं जो अदृष्ट होवै तिस आत्मा का सो अदृष्ट है । इस रीति सै अदृष्ट का नियम कहैं तथापि नहि संभवै है । काहे तैं अभिसंधि आदिक बी आत्ममन के संयोग तैं हि होवै हैं । व्यापक नानात्मपक्ष मै मन का संयोग सर्व आत्मा सै कहा है । यातैं अभिसंधि आदिक बी सर्व आत्मा मै हि हुये चाहिये । तिन के नियम तैं बी अदृष्ट का नियम कहना नहि संभवै है । जो जिस आत्मा के मन के संयोग तैं अभिसंधि आदिक होवैं तिस आत्मा के कहैं तथापि संभवै नहि । काहे तैं नित्य मन का सर्व आत्मा सै सदा संयोग है । यातैं यह मन इसी आत्मा का है अन्य का नहि । यह नियम होय सके नहि । औ अदृष्ट का अनियम पूर्व कहा है । यातैं अदृष्ट के नियम तैं बी मन के स्वस्वामिभाव का नियम नहि होय सके है । यातैं मन के नियम तैं बी अभिसंधि आदिकन का नियम होय सके नहि । पूर्व मन के संयोग के अनियम तैं अभिसंधि आदिकन का अनियम कहा है । इहां मन के अनियम तैं तिन का अनियम कहा है । यातैं पुनरुक्ति दोष नहि । जो वैशेषिकादिक ऐसे कहैं—यद्यपि नाना आत्मा व्यापक हैं तिन कूं सुख दुःखादिं बंध का आश्रय मानै पूर्व उक्त प्रकार तैं व्यवस्था नहि संभवै है । यातैं व्यापक

नाना आत्मा बंध के आश्रय नाहि । किंतु तिन के प्रदेश बंध के आश्रय हैं । एक शरीर मै एक हि आत्मा का प्रदेश रहे है । आत्मांतर के प्रदेश शरीरांतर मै रहे हैं। यातैं व्यवस्था संभवै है । यह कहना बी नहि संभवै है। काहे तैं अदृष्ट औ सुख दुःखादिक अव्याप्य वृत्ति हैं। यातैं आत्मा का जो प्रदेश अदृष्टादिकन का आश्रय है सोई इहां प्रदेश शब्द का अर्थ है। औ जहां आसना- दिकन मै चैत्रशरीर स्थित हुवा ताकूं सुखादिकन का हेतु होवै है. ताके गमन तैं अनंतर तहां हि मैत्रशरीर स्थित हुवा ताकूं बी सुखादिकन का हेतु देखिये है। तहां पश्चात् आगत मैत्र शरीर मै चैत्र मैत्र उभयात्मप्रदेश का प्रवेश है । यातैं दोनों कूं भोग हुवा चाहिये । जो ऐसे कहैं चैत्रशरीर के गमन काल मै चैत्रात्मप्रदेश का बी गमन होय जावे है। यातैं पश्चात् आगत मैत्र शरीर मै चैत्र मैत्र उभयात्मप्रदेश का प्रवेश कहना संभवै नहि। याहि तैं दोनों कूं भोग कहना बी नहि संभवै है। यह कहना बी नहि संभवै है । काहे तैं प्रदेशवाले आत्मा कूं स्थायी होने तैं ताके प्रदेश का चलन संभवै नहि । यातैं पूर्व की न्याई स्थित चैत्रात्मप्रदेश का मैत्र शरीर मै प्रवेश अवश्य कहा चाहिये । औ चैत्र मैत्र उभयात्मप्रदेश अदृष्ट के आश्रय हैं । यातैं मैत्र शरीर मै दोनों कूं भोग बी हुवा चाहिये। जैसे पश्चात् आगत मैत्र शरीर मै

चैत्रात्मप्रदेश का संभव कहा है। तैसे आत्मांतर के प्रदेश का बी संभव जानि लेना। इस रीति सै एक शरीर मै एक हि आत्मा का प्रदेश रहे है। या नियम की असिद्धि तैं प्रदेश विशेष तैं बी व्यवस्था संभवै नहि। इस रीति से व्यापक अनेक आत्मपक्ष मै किसी प्रकार तैं बी व्यवस्था संभवै नहि। यातैं विभु आत्मभेद का अंगीकार निष्फल है। औ अणु आत्मवादी तौ व्यवस्था की सिद्धि वास्ते हि अणु आत्मा नाना मानै हैं। तिन का यह तात्पर्य है—व्यापक नानात्मपक्ष मै व्यवस्था का असंभव पूर्व कहा है। औ जीवात्मा का परलोक मै गमन या लोक मै आगमन श्रुति मै कहा है। व्यापक जीव के गमनादिक बी संभवैं नहि। यातैं बी जीवात्मा कूं व्यापक कहना संभवै नहि। मध्यमपरिमाण माने, जीव अनित्य होवैगा। यातैं मध्यम परिमाण कहना बी नहि संभवै है। परिशेष तैं अणु हि कहा चाहिये। औ 'अणुर्ह्येवैष आत्मा' इत्यादि श्रुति मै जीवात्मा कूं साक्षात् हि अणु कहा है। यातैं बी नाना जीवात्मा अणु माने चाहिये। जो निदाघ मै जाह्नवी ह्रद मै निमज्जन तैं सर्व अंगन मै शीतताजन्य सुख का अनुभव होवै है। तैसे एक हि काल मै करशिर चरणादिकन का चालन अनुभव सिद्ध है। औ 'पादे मे वेदना शिरसि मे सुखं' इस रीति से एक हि काल मै पादादिगत दुःख-

सुख का अनुभव होवै है। योगी कूं स्वरचित कायव्यूह मै विचित्र सुखादिकन का एक हि काल मै अनुभव होवै है। योगिरचित अनेक काय का नाम कायव्यूह है। ताका एक हि काल मैं चालन होवै है। अणु आत्म-पक्ष मै ताका असंभव कहैं तौ संभवै नाहि। काहे तैं जैसे दीपक गृह के एकदेश मै हि होवै है, परंतु ताकी प्रभा गृहमात्र मै अनुगत होवै है। तैसे अणुआत्मा यद्यपि शरीर के एकदेश मै हि है। तथापि ताके ज्ञान सुखादिक गुण शरीरमात्र मै अनुगत हैं। यातैं सर्व अंगन मै सुखादिकन का अनुभव संभवै है। औ अणु जीवात्मा सांश है। करशिर चरणादिकन मै ताके अंश अनुगत हैं। तिन मै युगपत् सुखदुःख प्रयत्नादिक संभवै हैं। कायव्यूह मै योगिजीव के अंश अनुगत हैं। तिन मै कायव्यूहगत विचित्र सुख दुःख प्रयत्नादिक बी युगपत् हि संभवै हैं। यातैं कोई बी अनुपपत्ति नहि। औ अणु जीव पक्ष मै सुखदुःखादि व्यवस्था बी अनायास तैं हि सिद्ध होवै है। अत्यंत विलक्षण अणु जीव का ब्रह्म सै भेद बी सिद्ध होवै है। यातैं ब्रह्म अद्वितीय सिद्ध होय सके नहि। अणु आत्मवादी का यह आक्षेप है। अद्वैत दीपिका मै ताका यह समाधान कहा है—योगिजीव के अंश तासै वियुक्त होंय के कायव्यूह मै सुखदुःखादि संसार का अनुभव करे हैं। यातैं अणु आत्मवाद मैं

अंशि जीव तैं अंशन का भेद अवश्य सिद्ध होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—शिरपादादिगत सुखदुःख अंशगत माने बी 'पादे मे वेदना शिरसि सुखं' इस रीति सै अंशि देवदत्त कूं स्वांशगत सुखादिकन का अनुभव होवै है। तैसे यज्ञदत्त के सुखादिकन का बी अनुभव हुवा चाहिये। काहे तैं देवदत्त जीव का अपने अंशन तैं भेद है। तैसे यज्ञदत्त जीव तैं बी भेद समान है। यातैं स्वांशगत सुखादिकन की न्याईं यज्ञदत्तगत सुखादिकन का बी देवदत्त कूं अवश्य अनुभव हुवा चाहिये। इस रीति सै जीव कूं अणु मान के सांश माने बी व्यवस्था सिद्ध होय सके नहि। जो अंशगत सुखादि अनुभव मै अंशांशिभाव नियामक है यातैं भेद के समान हुये बी स्वांशगत सुखादिकन का हि अंशी कूं अनुभव होवै है। यज्ञदत्त देवदत्त का अंश नहि यातैं ताके सुखादि अनुभव का देवदत्त कूं असंभव कहैं तौ जीवगत सुखदुःखादि संसार का 'अहं सुखी दुःखी' इस रीति सै ईश्वर कूं बी अनुभव हुवा चाहिये। काहे तैं 'ममैवांशो जीवलोके' इत्यादि वचन तैं, जीव ईश्वर का अंश सिद्ध हैं। यातैं स्वांशगत सुखादि अनुभव मै अंशांशिभाव नियामक माने बी व्यवस्था संभवै नहि। जो अंशगत सुखादिकनं का अंशी कूं अनुभव होवै तहां मुख्य अंशांशिभाव नियामक है, जीव ईश्वर का मुख्य अंश नहि, किंतु कांतिमत्त्वरूप तैं

ताके सदृश हुवा तासै न्यून परिमाणवाला जीव ईश्वर का गौण अंश है। यातैं जीवगत सुखादि अनुभव का ईश्वर कूं असंभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं प्रकारांतर सै तौ जीव के मुख्य अंशन का निरूपण होय सके नहि। किंतु आरंभक अवयवरूप,अथवा प्रदेशरूप, वा खंडरूप, अथवा भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप, हि जीव के मुख्य अंश कहने होवैंगे। सो संभवैं नहि। काहे तैं पट के आरंभक अवयवरूप अंश तंतु हैं। तैसे अनादि होने तैं जीव के आरंभक अवयवरूप अंश संभवैं नहि। औ घटाकाशादिक महाकाश के प्रदेशरूप अंश हैं। तैसे अणु होने तैं निष्प्रदेश जीवात्मा के प्रदेशरूप अंश वी नहि संभवै हैं। टंकच्छिन्नपाषाण के शकलादिक खंडरूप अंश हैं तैसे अणु होने तैं हि अच्छेद्य जीव के खंडरूप अंश वी नहि संभवै हैं। जो जीवात्मा के भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप अंश कहैं तथापि संभवैं नहि। काहे तैं जीव ईश्वर का स्वाभाविक भेद औ चेतनत्वादिरूप सै अभेद अणु आत्मवादी माने हैं। तैसे जीव के अंशन का वी स्वाभाविक परस्पर भेद औ चेतनत्वादिरूप सै अभेद माने हैं। यातैं यह सिद्ध हुवा—जैसे भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप स्वांशगत सुखादिकंन का जीव कूं अनुभव होवै है। तैसे जीव ईश्वर वी उक्त रीति सै भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप हैं। औ जीव के अंश वी परस्पर भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप हैं यातैं जीव ईश्वर

कूं परस्पर सुखादिकन का अनुभव हुवा चाहिये। तैसे जीव के अंशन कूं बी परस्पर सुखादिकन का अनुभव हुवा चाहिये। किंच जहां उत्सवादिकन मैं मनुष्यन का समूह होवै। तहां मनुष्यन का परस्पर भेद तौ प्रसिद्ध हि है। परंतु अणु आत्मवाद मैं तिन का परस्पर अभेद बी सिद्ध होवै है। काहे तैं समूह से समूहवाले का भेदाभेद अणु आत्मवादी माने हैं। औ 'तदभिन्नाभिन्नस्य तदभेदनियमाभ्युपगमात्' अर्थ यह—तासैं अभिन्न तैं जाका अभेद होवै ताका तासैं बी अभेद का नियम माने हैं। याहि तैं घट पट का संयोग होवै तहां गुण गुणी के अभेदपक्ष मैं यह दोष अणु आत्मवादी कहे हैं घट पट का संयोग होवै तहां संयोग के आश्रय घट पट दोनुं हैं। घट सैं अभिन्न संयोग है। तासैं अभिन्न पट का उक्त नियम तैं घट सैं बी अभेद हुवा चाहिये। तैसे समूह के अंतरगत देवदत्तादिकन सैं अभिन्न समूह है। तासैं अभिन्न यज्ञदत्तादिकन का देवदत्तादिकन सैं बी अभेदसिद्ध होवै है। इस रीति सैं समूह के अंतरगत जीव भिन्नाभिन्न द्रव्यरूप हैं। यातैं तिन कूं बी परस्पर सुखादिकन का अनुभव हुवा चाहिये। इस रीति सैं किसी प्रकार तैं बी जीव के मुख्य अंश सिद्ध होवैं नहि। यातैं पूर्व उक्त रीति से गौण अंश हि कहने होवैंगे। सो बी संभवैं नहि। काहे तैं कांतिमलरूप से ताके सदृश हुवा तासैं न्यून परिमाणवाला अंश

हि गौण अंश कहा है। अणु जीवात्मा के तिस प्रकार के गौणअंश संभवैं नहि। काहे तैं अणु परिमाण हि सर्व परिमाण सै न्यून है। तासै भिन्न न्यून परिमाण का अभाव है। यातैं अणु जीव के अंशन कूं तासै न्यून परिमाणवाला कहना सर्वथा बाधितहै। औ गौण अंश पक्ष मै जीवगत सुखादिकन का ईश्वर कूं अनुभव पूर्व कहा है। यातैं बी जीवात्मा के गौण अंश नहि संभवै हैं। किंच गौण अंश का उक्त लक्षण साद्दश्य घटित है। जिन पदार्थन का साद्दश्य होवै तिन का अत्यंत भेद होवै है। यातैं अंशि जीव तैं अंशन का अत्यंतभेद सिद्ध होवै है। औ अत्यंत भिन्न मैत्र जीव के सुखादिकन का चैत्र कूं अनुभव होवै नहि। तैसे स्वांशगत सुखादिकन का बी अनुभव नहि होवैगा। यातैं करशिरचरणादिकन मै अनुगत अंशन तैं युगपत् सुखदुःख प्रयत्नादिकन का संभव कथन असंगत है। तैसे कायव्यूह मै अनुगत योगिजीव के अंशन तैं योगी कूं कायव्यूहगत विचित्र सुखदुःख प्रयत्नादिकन का युगपत् संभव कथन बी असंगत है। किंच शरीरगत सुखादिक जीव कूं होवै हैं। शिरपादादिगत सुखदुःखादिक अंशन कूं होवै हैं। अंशि जीव तैं अंशन का अत्यंतभेद कहा है। यातैं एक शरीर मै नाना भोक्ता हुये चाहिये। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी अणु जीवात्मा सांशसिद्ध होवै नहि। प्रमाण के अभाव तैं बी सांश नहि सिद्ध होवै

है। यातैं अंशभेद तैं व्यवस्था कथन असंगत है। औ जो ऐसे कहैं—यद्यपि पूर्व उक्त रीति सैं जीवात्मा के अंश सिद्ध होवैं नहि। यातैं अंश द्वारा तौ शिरपादादिगत सुखदुःख प्रयत्नादिक युगपत् जीव मै नहि संभवै हैं। तैसे योगिजीव मै बी कायव्यूहगत विचित्र सुखादिक अंशद्वारा नहि संभवै हैं। तथापि आत्मदीप की नित्य ज्ञानरूप प्रभा अनुगत है। तासैं हि शिरपादादिगत औ कायव्यूहगत सुखदुःख प्रयत्नादिक युगपत् संभवै हैं। यह कहना बी संभवै नहि। काहे तैं सुखदुःख प्रयत्नादिक ज्ञान के धर्म होवैं तब तौ ज्ञान कूं व्यापक होने तैं शिरपादादिकन मै औ कायव्यूह मै युगपत् तिन की उत्पत्ति संभवै। परंतु ज्ञान की न्याईं सुखादिक बी आत्मा के हि धर्म अणु आत्मवादी माने हैं। यातैं ज्ञान कूं व्यापक माने बी शरीर के अवयवन मै औ कायव्यूह मै विचित्र सुखादिक युगपत् संभवैं नहि। जो सुखदुःखादिक ज्ञान के हि धर्म कहैं तौ तिन की विचित्रता तैं ज्ञान का हि भेद सिद्ध होवैगा। आत्मा का भेद नहि सिद्ध होवैगा। यातैं सुखादि भोगकी विचित्रता तैं आत्मा का अभेद संभवै नहि यह कथन असंगत होवैगा। किंच नैयायिकादिक व्यापक नाना आत्मा माने हैं। तिन के मत मै व्यवस्था का असंभव पूर्व कहा है। अद्वैतवादी आत्मा का अभेद माने हैं। तिन के मत मै बी व्यवस्था

नहि संभवै है। सुखादिकन का आश्रय आत्मा अणु मानै व्यवस्था की अनुपपत्ति होवै नहि। यह अणु आत्मवादी का मत है। सुखादिक ज्ञान के धर्म माने ताका भंग होवैंगा। यातैं बी सुखादिक व्यापक ज्ञान के धर्म हैं। यह कहना नहि संभवै है। किंच निबिड आलोक द्रव्य दीपक है। विरल आलोक द्रव्य हि प्रभा है। आलोक का गुण प्रभा नहि। औ ज्ञानादिक आत्मा के गुण माने हैं। यातैं दृष्टांत विषम होने तैं बी आत्मगुणज्ञान सुखादिक व्यापक कहने नहि संभवै हैं। यातैं करशिरचरणादिकन मै औ कायव्यूह मै युगपत् सुखदुःख प्रयत्नादिकन की व्यवस्था संभवै नहि। अनेक प्रकार की निर्मूल कल्पना अणु आत्मवाद मै हैं। परंतु किसी प्रकार तैं बी व्यवस्था सिद्ध होय सके नहि। यातैं अणु आत्मभेद का अंगीकार बी निष्फल है। जो अणु होने तैं अत्यंत विलक्षण जीव का व्यापक ईश्वर तैं भेद कहा सो बी असंगत है। काहे तैं जीवात्मा के गमनागमनादिक श्रुति मै कहे हैं। औ 'अणुर्ह्येष आत्मा' इत्यादि श्रुति मै साक्षात् अणु कहा है। यातैं ताकूं अणु माने तौ 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादि श्रुति मै परमात्मा का प्रवेश कहा है। व्यापक का प्रवेश संभवै नहि। 'स एषोऽणिमा' इत्यादि श्रुति मै ताकूं साक्षात् अणु कहा है। यातैं परमात्मा बी अणु हि मान्या चाहिये। विलक्षणता के अभाव तैं जीव परमात्मा का भेद सिद्ध नहि

होवैगा। जो 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इत्यादि श्रुति तैं औ सर्व का उपादान होने तैं बी परमात्मा सर्वगत सिद्ध होवै है। यातैं अणुत्व प्रतिपादक श्रुतिवाक्यन का सूक्ष्मता मै वा उपासना मै, औ प्रवेश श्रुतिवाक्यन का औपाधिक प्रवेश मै तात्पर्य कहैं तौ 'स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः' 'जीवो नभोपमा' इत्यादि श्रुति मै जीव कूं बी व्यापक कहा है। यातैं 'अणुर्ह्येवैष आत्मा' इत्यादि श्रुतिवाक्यन का बी सूक्ष्मता मै हि तात्पर्य मान्या चाहिये। औ प्राणबुद्धि आदि उपाधि के गमनादिक होवै हैं। तासै जीव मै गमनादिकन का आरोप होवै है। स्वभाव सै जीव गमनादिरहित है। इस रीति सै गमनादि प्रतिपादक वाक्यन का बी औपाधिक गमनादिकन मै तात्पर्य मान्या चाहिये। यातैं ईश्वर की न्याईं जीव बी व्यापक हि सिद्ध होवै है। अणु सिद्ध होवै नहि। याहि तैं तिन का भेद बी नहि सिद्ध होवै है। इस रीति सै जड प्रपंच मिथ्या है। चेतन प्रपंच का ब्रह्म सै अभेद है। यातैं ब्रह्म अद्वितीय सिद्ध होवै है। ताकी प्राप्तिरूप मोक्ष बी ज्ञान तैं हि होवै है। यातैं अद्वितीय ब्रह्म मै वेदांतवाक्यन का तात्पर्य संभवै है। विरोध नहि। इति सिद्धांतदिग्दर्शने द्वितीयः परिच्छेदः॥

श्रीगणेशाय नमः

श्लोक–द्वितीयपरिच्छेदांते विज्ञानं मुक्तिसाधनम्।
केवलं कथितं तत्र वादी प्रत्यवतिष्ठते ॥ १ ॥

अर्थ यह–पूर्व परिच्छेद के अंत मैं केवल ज्ञान हि ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष का साधन कहा है। तामैं समुच्चयवादी यह शंका करे है। 'तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्' तत्प्राप्तिहेतु-विज्ञानं कर्म चोक्तं महामुने' इत्यादि श्रुतिस्मृति मैं कर्म-समुच्चित ज्ञान तैं ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष कहा है। यातैं केवल ज्ञान तैं मोक्ष कथन असंगत है। पुण्यकारी ब्रह्म-वेत्ता तेन कहिये पुण्य समुच्चित ज्ञान तैं एति कहिये ब्रह्म कूं प्राप्त होवै है। यह श्रुतिवाक्य का अर्थ है। या शंका का यह समाधान है–'ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यः पंथा विद्यते अयनाय' इत्यादि श्रुतिवाक्यन मैं केवल ज्ञान हि मोक्ष का साधन कहा है। कर्मसमुच्चित ज्ञान मैं वा केवल कर्म मैं मोक्ष हेतुता का निषेध किया है। किंच आत्मरूप होने तैं ब्रह्म नित्यप्राप्त है। प्रकारांतर से तौ ताकी प्राप्ति कहना संभवै नहि। किंतु अप्राप्तत्व भ्रमादिकन की निवृत्तिरूप हि प्राप्ति कहनी होवैगी। औ लोक मैं

अप्राप्तत्व भ्रमादि निवृत्तिरूप प्राप्ति ज्ञानमात्र तैं हि प्रसिद्ध है । जैसे कंठस्थ हि कनकमाला मै विस्मृति तैं अप्राप्तत्व का भ्रम होवै । ताकी ज्ञानमात्र तैं हि निवृत्ति होवै है । सोई पूर्वसिद्ध कनकमाला की प्राप्ति है । तैसे नित्यप्राप्त ब्रह्म की प्राप्ति मै बी ज्ञान से भिन्न साधन की अपेक्षा कहना संभवै नहि । औ अप्राप्तत्व भ्रमादि निवृत्तिरूप प्राप्ति मै ज्ञान सै भिन्न साधन संभवै बी नहि । यातैं बी कर्मसमुच्चित ज्ञान तैं वा केवल कर्म तैं मोक्ष की प्राप्ति कहना नहि संभवै है । इस रीति सै श्रुतियुक्ति तैं केवल ज्ञान हि मोक्ष का साधन सिद्ध होवै है । पूर्व उक्त श्रुति स्मृति तैं कर्मसमुच्चित ज्ञान मोक्ष का साधन माने ताका विरोध होवैगा । यातैं कर्मसमुच्चित ज्ञान मोक्ष का साधन है । या अर्थ मै श्रुतिस्मृति का तात्पर्य कहना संभवै नहि । किंतु समुच्चयप्रतिपादक श्रुतिस्मृति का क्रमसमुच्चय मै तात्पर्य मान्या चाहिये । मोक्ष मै परंपरा तैं कर्मन का उपयोग क्रमसमुच्चय कहिये है । विविदिषा के साधन कर्म मानै अथवा ज्ञान के साधन मानै दोनों रीति सै परंपरा तैं उपयोग का संभव है । तहां वाचस्पतिमिश्र के अनुसारी यह कहे हैं—यज्ञादि कर्म विविदिषा के हि साधन है, ज्ञान के साधन नहि । काहे तैं तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद मै सूत्रकार ने ज्ञान की उत्पत्ति मै सर्व कर्मन की अपेक्षा कहि है। तहां

भाष्यकार ने यह कहा है—ज्ञान के साधन होने तैं शम दमादिक अंतरंग हैं। विविदिषा के साधन होने तैं यज्ञादिक बहिरंग हैं। तहां हि भाष्य के व्याख्यान मैं वाचस्पतिमिश्र ने यह कहा है—यद्यपि संसार अनित्य अशुचि दुःख अनात्मरूप है। परंतु पाप के वश तैं तामै नित्य शुचि सुख आत्मरूपता का भ्रम होवै है। विहित कर्मन के अनुष्ठान तैं धर्म की उत्पत्ति द्वारा पाप की निवृत्ति होवै हैं। तासै अनंतर संसार मै निर्विघ्न अनित्य अशुचि दुःख अनात्मरूपता का निश्चय होवै है। तासै वैराग्य द्वारा संसार निवृत्ति की इच्छा होवै है। निवृत्ति का साधन तत्त्वज्ञान है। यातैं तत्त्वज्ञान की इच्छारूप विविदिषा उत्पन्न होवै है। तासै तत्त्वज्ञान द्वारा संसार निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है। इस रीति से भामती निबंध मै विविदिषा के संपादन द्वारा ब्रह्मात्मज्ञान की उत्पत्ति मै कर्मन का उपयोग कहा है। यातैं यज्ञादिक कर्म विविदिषा के साधनं सिद्ध होवै हैं। औ 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन' या श्रुति तैं बी वेदाध्ययनादि कर्म विविदिषा के हि साधन-सिद्ध होवै हैं। ज्ञान के साधन माने ताकी उत्पत्ति पर्यंत कर्मन कां अनुष्ठान प्राप्त होने तैं श्रुतिवाक्यन मैं कर्मत्याग-रूप संन्यास ज्ञान का हेतु कहा है। ताका विरोध होवैगा। यातैं बी कर्म विविदिषा के हि साधन सिद्ध होवै हैं। ज्ञान

के साधन सिद्ध होवैं नहि। यद्यपि पुरुषार्थ मै हि कर्मन का उपयोग कहा चाहिये, विविदिषा मुख्य पुरुषार्थरूप नहि। मोक्ष हि मुख्य पुरुषार्थ है। यातैं विविदिषा कर्मन का फल संभवै नहि। तथापि विविदिषा तैं ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है। यातैं मुख्य पुरुषार्थरूप नहि हुये बी गौण पुरुषार्थरूप होने तैं कर्मन का फल संभवै है। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—वेदन की इच्छा का नाम विविदिषा है। ताकूं यज्ञादिकर्मन का फल माने फल की इच्छा विना साधन का अनुष्ठान होवै नहि। यातैं विविदिषारूप फल की इच्छा तैं हि यज्ञादि कर्मन का अनुष्ठान कहा चाहिये। औ विविदिषा मै स्वभाव सै फल-रूपता है नहि। यातैं फलरूपता की सिद्धि वास्ते वेदन द्वारा मोक्षरूप फल की हेतुता कहि चाहिये। यातैं यह क्रम सिद्ध हुवा—प्रथम स्वाभाविक पुरुषार्थरूपता के ज्ञान तैं मोक्ष की इच्छा होवै है। तासै अनंतर मोक्ष साधनता ज्ञान तैं वेदन की इच्छा होवै है। तासै अनंतर वेदन साधनता ज्ञान तैं विविदिषा की इच्छा होवै है। तासै यज्ञादिकर्मन का अनुष्ठान होवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—विविदिषा के उद्देश तैं यज्ञादि करै ताकूं विविदिषा के फलरूप ब्रह्मवेदन की इच्छा माने यज्ञादिकन का अनुष्ठान निष्फल होवैगा। काहे तैं ब्रह्मवेदन की इच्छा हि विविदिषा है सो यज्ञादि अनुष्ठान तैं प्रथम हि सिद्ध

है। विविदिषा के फलरूप ब्रह्म वेदन की इच्छा नहि मान विविदिषा की इच्छा बी नहि होने तैं ताके उद्देश तैं यज्ञादि कर्मन का अनुष्ठान हि नहि होवैगा। इस रीति सै किसी प्रकार तैं बी यज्ञादिकन का अनुष्ठान हि संभवै नहि तिन मै विविदिषा की साधनता तौ अत्यंत दूर है। या शंका का यह समाधान है—जैसे किसी पुरुष कूं दोष वश तैं अन्नभक्षण मै द्वेष होय जावै औ तासैं शरीर कृश होय जावै तब कृशता की निवृत्ति वास्ते अन्नभक्षण मैं उत्कट इच्छा होवै बी है परंतु अधिक अजीर्णादि प्रयुक्त धातु की विषमतारूप दोष तैं अन्नभक्षण मै प्रवृत्तिपर्यंत रुचि होवै नहि। यातैं रुचिकर औषधि का सेवन होवै है। यह अनुभव सिद्ध है। तैसे शुद्ध चित्त पुरुष कूं प्रथम यह निश्चय होवै है—ब्रह्म निरतिशय आनंदरूप है ताकी प्राप्ति का साधन ज्ञान है। तासै अनंतर ब्रह्मप्राप्ति की औ तत्त्वज्ञान की उत्कट इच्छा बी होवै है परंतु प्रतिबंधक पापरूप दोष तैं विषय भोग मै हि चित्त की प्रवणता होवै है। ज्ञानसाधन श्रवणादिकन मै प्रवृत्ति-पर्यंत रुचि होवै नहि। प्रवृत्तिपर्यंत रुचि हि या स्थान मैं विविदिषा विवक्षित है। यातैं पापनिवृत्ति पूर्वक विविदिषा की सिद्धि वास्ते यज्ञादिकर्मन का अनुष्ठान संभवै है। ईहां यह तात्पर्य है—जैसे अन्नविषयक इच्छा दो प्रकार की है। एक तौ अन्नभक्षण मै उन्मुखतारूप है। दूसरी

प्रवृत्तिपर्यंत रुचिरूप है। सो औषधिसेवन का फल है। तिन मैं प्रथम इच्छा तौ औषधिसेवन सैं पूर्व बी अन्न-भक्षण मैं होवै है। परंतु तावन्मात्र तैं औषधि का सेवन निष्फल होवै नहि। किंतु रुचिरूप इच्छा का हेतु होने तैं औषधिसेवन सफल है। तैसे वेदनगोचर इच्छा बी दो प्रकार की है। एक तौ वेदन मैं उन्मुखतारूप है। दूसरी वेदन के साधन श्रवणादिकन मैं प्रवृत्तिपर्यंत रुचिरूप है। तिन मैं प्रथम इच्छा तौ यज्ञादि अनुष्ठान तैं पूर्व बी वेदन मैं होवै है। परंतु तासैं यज्ञादिकन का अनुष्ठान व्यर्थ नहि होवै है। उलटा तासैं वेदन साधनरूप विविदिषा की इच्छा होवै है। यातैं विविदिषा के उद्देश तैं यज्ञादि अनुष्ठान संभवै है। दूसरी यज्ञादि अनुष्ठान का फलरूप होने तैं तासैं अनंतर होवै है। यातैं यज्ञादि कर्म विविदिषा के साधन संभवै हैं। शंका संभवै नहि। इस रीति सैं वाचस्पति मिश्र के अनुसारी यज्ञादि कर्म विविदिषा के साधन माने हैं। औ विवरण के अनुसारी तौ यह कहे हैं—'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिक श्रुतिवाक्य स्वर्ग की कामनावाले कूं यज्ञादिकन का विधान करे हैं। तहां कामना के विषय स्वर्गादिकन के हि साधन यज्ञादिक प्रसिद्ध हैं। कामना के साधन प्रसिद्ध नहि। औ 'अश्वेन जिगमिषति'-'खड्गेन जिघांसति' इत्यादिक लौकिक वाक्य हैं। तिन मैं बी इच्छा के विषय

गमनादिकन के हि साधन अश्वादिक प्रसिद्ध हैं। इच्छा के साधन प्रसिद्ध नहि। तैसे 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' या श्रुति मै बी इच्छा का विषय वेदन है। ताके हि साधन यज्ञादिक माने चाहिये। वेदन की इच्छारूप विविदिषा के साधन संभवैं नहि। जो वेदन के साधन यज्ञादिक मानै फल की उत्पत्ति पर्यंत साधन का अनुष्ठान होवै है। यातैं 'त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक् परं पदं' अर्थ यह—कर्मन के त्यागरूप संन्यास कूं कर्ता हि मुमुक्षु ने अपना प्रत्यगात्मरूप ब्रह्मपद साक्षात् कर्तव्य है। तासै विना नहि। इत्यादिक संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यन का विरोध कहा सो संभवै नहि। काहे तैं जैसे भूमि के कर्षण अकर्षण दोनूं होवैं तब ब्रीहि आदिकन की उत्पत्ति होवै है। तैसे

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥
प्रत्यक्प्रवणतां बुद्धेः कर्माण्यापाद्य शुद्धितः।
कृतार्थान्यस्तमायांति प्रावृडंते घना इव॥

इत्यादि वचन तैं कर्म औ ताका त्यागरूप संन्यास दोनों तैं ज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध होवै है। चित्तशुद्धि विविदिषादिरूप प्रत्यक् प्रवणता गीतावचनगत योगपद का अर्थ है। शमपद्र का अर्थ संन्यास है। यातैं योग की प्राप्ति वास्ते कर्म कर्तव्य है। तासै अनंतर

संन्यास कर्तव्य है। यह गीतावचन का अर्थ सिद्ध होवै है। जैसे वर्षाकाल के अंत मै कृतप्रयोजन हुये मेघ निवृत्त होय जावै हैं। तैसे बुद्धि की शुद्धि द्वारा विविदिषा वैराग्य गुरुदेवता आदिकन की भक्तिरूप प्रत्यक् प्रवणता कूं संपादन करके कृतप्रयोजन हुये कर्मत्याग के योग्य होवै हैं। यह नैष्कर्म सिद्धि वचन का अर्थ है। इस रीति सै दृष्टांत प्रमाण तैं वेदन की उत्पत्ति मै कर्म औ संन्यास दोनुं हेतु माने हैं। यातैं विविदिषा वाक्य तैं वेदन के साधन कर्म मानै संन्यास विधायक श्रुतिवाक्यन का विरोध होवै नहि। जो यज्ञादि कर्म विविदिषा के साधन हैं। या पक्ष मै तौ विविदिषा की उत्पत्तिपर्यंत यज्ञादिकन का अनुष्ठान निर्विवाद हि है। वेदन के साधन मान के बी उक्त रीति सै ताकी उत्पत्ति पर्यंत हि अनुष्ठान मानै, पक्षभेद का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं यद्यपि अनुष्ठान सै तौ पक्षद्वय की विलक्षणता नहि बी संभवै है। परंतु फल तैं विलक्षणता संभवै है। तथा हि- वेदन के साधन कर्म मानै ताकी उत्पत्ति मैं विविदिषा द्वार है। तहां पूर्व कहि रीति सै विविदिषा की उत्पत्ति सैं अनंतर स्वरूप सै तौ यद्यपि कर्मन का त्याग होय जावै है। परंतु कर्मजन्य अदृष्ट का फल की उत्पत्ति विना नाश होवै नहि। यातैं यज्ञादिजन्य अदृष्ट ज्ञान की उत्पत्तिपर्यंत रहे है। जितनी सामग्री विना ज्ञान नहि होवै

सो सारी अदृष्ट तैं होवै है। यातैं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की प्राप्ति, औ तासै श्रवण मनन निदिध्यासन होय के निर्विघ्न ज्ञान होवै है। इस रीति सै ज्ञान के साधन कर्म मानै ज्ञान की उत्पत्ति नियम तैं होवै है। विविदिषा के साधन माने नियम तैं ज्ञान की उत्पत्ति होवै नहि। काहे तैं जैसे चित्त की शुद्धि के साधन कर्म हैं। या पक्ष मै शुद्धि सै अनंतर कर्मजन्य अदृष्ट का नाश होय जावै है। निर्विघ्न श्रवणादिक होवैं तब तौ ज्ञान द्वारा ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष होवै है। श्रवणादिक निर्विघ्न नहि होवैं उत्तमलोक की प्राप्ति हि होवै है। ज्ञान द्वारा मोक्ष होवै नहि। यह पक्ष स्मृतिमूलक है। या पक्ष मै अंतःकरण की शुद्धिमात्र तैं कृतप्रयोजन हुये कर्मन का ज्ञान की उत्पत्तिपर्यंत व्यापार नहि। यातैं नियम तैं ज्ञान की उत्पत्ति होवै नहि। तैसे विविदिषापक्ष मै बी नियम तैं ज्ञान की उत्पत्ति नाहि होवै है। काहे तैं फल की उत्पत्ति तैं कर्मजन्य अदृष्ट का नाश होय जावै है। यातैं विविदिषा की उत्पत्ति तैं अनंतर यज्ञादिजन्य अदृष्ट रहै नहिं। तात्पर्य यह—जैसे औषधिसेवन तैं अन्न मै रुचि हुये बी निर्विघ्न अन्न की प्राप्ति होय जावै तौ ताके भक्षण तैं कृशता दूर होवै है। अन्न का लाभ नहि होवै ताके लाभ वास्ते यत्न करे है। यत्न किये बी अन्न का लाभ नहि होवै तौ कृशता निवृत्त होवै नहि।

तैसे विविदिषा की उत्पत्ति तैं अनंतर निर्विघ्न श्रवणादिक होय जावैं तौ ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति संभवै है। प्रापरूप प्रतिबंधक तैं श्रवणादिक निर्विघ्न नहि होवैं प्रतिबंधक की निवृत्ति वास्ते यत्न करे है। यत्न किये बी प्रतिबंधक की अनुवृत्ति तैं निर्विघ्न श्रवणादिक नहि होवैं तौ ज्ञान द्वारा मोक्ष होवै नहि। इस रीति सै विविदिषापक्ष मै नियम तैं ज्ञान की उत्पत्ति होवै नहि। औ वेदनपक्ष मै ज्ञान की उत्पत्ति नियम तैं कहि है। यातैं फल तैं पक्षद्वय का भेद संभवै है। तैसे शुद्धिपक्ष का औ विविदिषापक्ष का बी फल तैं भेद संभवै है। काहे तैं चित्तशुद्धि के साधनकर्म मानै अथवा विविदिषा के साधन मानै दोनों पक्षन मै ज्ञान की उत्पत्ति मै नियम का अभाव तौ यद्यपि समान है। परंतु तीव्र बुभुक्षा तैं सर्व प्रयत्न तैं अन्नसंपादन मै प्रवृत्ति होवै है। तैसे दृढ विविदिषा तैं सर्व प्रयत्न तैं ज्ञान संपादन मै प्रवृत्ति होवै है। यातैं विविदिषापक्ष मै बहुलता सै ज्ञान की उत्पत्ति होवै है। शुद्धिपक्ष मै ज्ञान की योग्यतामात्र हुये बी विविदिषा हि नियम तैं नहि होवै है। यातैं बहुलता सै ज्ञान की उत्पत्ति होवै नहि। इस रीति सै शुद्धि के साधन कर्म मानै अथवा विविदिषा के वा ज्ञान के साधन मानै सर्वथा आश्रम कर्मन का हि विद्या मै उपयोग. कोई ग्रंथकार कहे हैं। वर्णाश्रम के साधारण धर्मन का उपयोग नहि माने हैं।

तिन का यह तात्पर्य है—'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' या श्रुतिवाक्य मै वेदाध्ययन यज्ञदानादि आश्रमधर्मन का हि ग्रहण है। अन्य धर्मन का ग्रहण नहि। यातैं आश्रमधर्मन का हि विद्या मै उपयोग मान्या चाहिये। अन्य धर्मन का उपयोग संभवै नहि। यद्यपि उक्त श्रुतिवाक्य मै संपूर्ण आश्रमधर्मन का बी श्रवण नहि। यातैं सकल आश्रमधर्मन का बी विद्या मै उपयोग संभवै नहि। तथापि ब्रह्मचारी के धर्मन मै वेदाध्ययन प्रधान है। यातैं 'वेदानुवचनेन' या वचन तैं ताके सर्व धर्मन का ग्रहण है। गृहस्थ के धर्मन मै यज्ञ दान मुख्य हैं यातैं 'यज्ञेन दानेन' या वचन तैं गृहस्थ के सर्व धर्मन का ग्रहण है। वानप्रस्थ धर्मन मै कृच्छ्र चांद्रायणादिक प्रधान हैं। यातैं 'तपसा नाशकेन' या वचन तैं ताके सर्व धर्मन का ग्रहण होने तैं संपूर्ण आश्रम धर्मन का विद्या मै उपयोग संभवै है। शंका संभवै नहि। इस रीति से कित ने ग्रंथकार सकल आश्रम धर्मन का हि विद्या मै उपयोग माने हैं। अन्य धर्मन का उपयोग नहि माने हैं। औ कल्पतरुकार तौ यह कहे हैं—जप तीर्थस्नान देवताध्यानादिक वर्णमात्र के धर्म हैं। तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद मै सूत्रकार भाष्यकार ने तिन का वी विद्या मै उपयोग स्पष्ट कहा है। आश्रमधर्मन का हि विद्या मै उपयोग माने ताका विरोध होवैगा। यातैं आश्रमधर्मन की न्याईं वर्णधर्मन का वी

उपयोग मान्या चाहिये 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति' इत्यादि श्रुतिवाक्य मै वेदाध्ययनादि आश्रमधर्मन का ग्रहण वर्णधर्मन का बी उपलक्षक है। यातैं दोष नहि। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै हैं—यज्ञादि कर्म दो प्रकार के हैं। एक काम्य हैं। दूसरे नित्य हैं। उभयविध यज्ञादिकन का विद्या मै उपयोग है। अथवा नित्यकर्मन का हि उपयोग है। जो प्रथम पक्ष कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं काम्यकर्मन का फल स्वर्गादि है। ताकी विद्या अपेक्षा करै नहि। यातैं काम्यकर्मन का विद्या मै उपयोग संभवै नहि। औ नित्यकर्मन का फल पापनिवृत्ति है। प्रमाणजन्य विद्या ताकी बी अपेक्षा नहि करे है। यातैं द्वितीयपक्ष बी नहि संभवै है। समाधान यह है—यद्यपि काम्यकर्मन के स्वर्गादिफल की विद्या अपेक्षा नहि करे है। यातैं काम्यकर्मन का तौ विद्या मै उपयोग नहि बी संभवै है। परंतु नित्यकर्मन का फल पापनिवृत्ति है। 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः' इत्यादि वचन तैं प्रमाणजन्य बी विद्या अपनी उत्पत्ति मै ताकी अपेक्षा करे है। औ प्रमाणजन्य बी विद्या का पाप तैं प्रतिबंध होवै है। यातैं बी विद्या की उत्पत्ति मै पापनिवृत्ति की अपेक्षा संभवै है। यातैं नित्यकर्मन का हि विद्या मै उपयोग है। काम्यकर्मन का नहि। जो विद्या मै उपयोग की सिद्धि वास्ते स्वर्गादिकन

की न्याईं पापनिवृत्ति बी काम्यकर्मन का फल कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि वाक्यन तैं तिन का स्वर्गादि फल तौ संभवै है। परंतु प्रमाण के अभाव तैं पापनिवृत्ति काम्यकर्मन का फल संभवै नहि। याहि तैं विद्या मै तिन का उपयोग बी नहि संभवै है। इस रीति सै कल्पतरुकार के मत मै वर्णाश्रम साधारण नित्यकर्मन का हि विद्या मै उपयोग है। काम्यकर्मन का उपयोग नहि। औ संक्षेप शारीरक मै तौ यह कहा है—'यज्ञेन दानेन विविदिषंति' इस रीति सै उपयोग बोधकवाक्य मै नित्यकाम्य साधारण यज्ञादि शब्द हैं। यातैं नित्यकर्मन की न्याईं काम्यकर्मन का बी विद्या मै उपयोग मान्या चाहिये। याहि तैं पापनिवृत्ति बी तिन का फल मान्या चाहिये। काहे तैं साधारण यज्ञादि शब्द तैं काम्यकर्मन का बी विद्या मै उपयोग प्रतीत होवै है। पापनिवृत्ति तिन का फल नहि माने ताका असंभव होवैगा। जो नित्यकर्मन का हि पापनिवृत्ति द्वारा विद्या मै उपकार प्रसिद्ध है। तैसे काम्यकर्मन का पापनिवृत्ति द्वारा उपकार प्रसिद्ध नहि। यातैं तिन के उपयोग का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं पापनिवृत्ति द्वारा नित्यकर्मन के उपकार की अन्य तैं सिद्धि माने विविदिषा वाक्य तैं तिन का उपयोगनिरूपण व्यर्थ होवैगा। अन्य तैं सिद्धि नहि माने नित्यकर्मन के अप्रसिद्ध उपकार की

विविदिषा वाक्य तैं सिद्धि होवै है। तैसे पापनिवृत्ति द्वारा काम्यकर्मन के उपकार की बी सिद्धि संभवै है। यातैं नित्यकाम्य साधारण कर्मन का विद्या मै उपयोग दुर्वार हैं। जो पाप दो प्रकार का है—एक तौ ज्ञान की उत्पत्ति का प्रतिबंधक है। दूसरा ताकी उत्पत्ति मै उदासीन हुवा नरकादिकन का हेतु है। तहां 'धर्मेण पापमपनुदति' 'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीपिणां' इत्यादि श्रुतिस्मृतिवचन तैं पापमात्र की निवृत्ति की हेतुता तौ नित्यकर्मन मै प्राप्त है। परंतु नियम तैं ज्ञान के हि प्रतिबंधक पापनिवृत्ति की हेतुता अन्य तैं प्राप्त नहि। किंतु नित्य यज्ञादिकन तैं हि पापनिवृत्ति द्वारा ज्ञान का संपादन करै। इस रीति से विविदिषा वाक्य तैं नित्यकर्मन का ज्ञान मै उपयोग बोधन होवै तब तिन के अनुष्ठान तैं प्रतिबंधक पाप की निवृत्ति होवै है। तासै प्रतिबंधक रहित महावाक्य तैं अवश्य ज्ञान होवै है। विविदिषा वाक्य तैं उक्त रीति से उपयोग का बोधन नहि होवै तब नित्यकर्मन के अनुष्ठान तैं पापमात्र की निवृत्तिरूप शुद्धिमात्र हि होवै है नियम तैं ज्ञान के प्रतिबंधक पाप की हि निवृत्तिरूप शुद्धि विशेष होवै नहि। यातैं अनेक जन्म मै नित्यकर्मन के अनुष्ठान तैं बी नियम तैं ज्ञान होवै नहि। इस रीति से विविदिषा वाक्य तैं नित्यकर्मन के उपयोग का निरूपण सफल कहैं तथापि नियम तैं

ज्ञान के प्रतिबंधक पाप की हि निवर्तकता नित्यकर्मन मै अन्य तैं प्रसिद्ध नहि। औ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की प्राप्ति तासै श्रवणादि विना विशेष शुद्धिमात्र तैं ज्ञान बी होवै नहि। यातैं नित्यकर्मन तैं साधनसंपत्ति का हेतु अदृष्टरूप द्वार बी अप्रसिद्ध हि मानना होवैगा। तैसे काम्यकर्मन तैं बी अप्रसिद्ध उपकार का अंगीकार संभवै है। साधारण यज्ञादि शब्द तैं प्रतीयमान नित्यकाम्य साधारण कर्मन के उपयोग का त्याग उचित नहि। इस रीति सै चित्तशुद्धि द्वारा वा विविदिषा द्वारा अथवा साक्षात् विद्या मै कर्मन का उपयोग निरूपण किया। सर्वथा हि मोक्ष मै परंपरा तैं कर्मन का उपयोग होने तैं। 'तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्'। 'तत्प्राप्तिहेतुर्विज्ञानं कर्म चोक्तं महामुने' या श्रुति स्मृति का ज्ञान तौ साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। कर्म ज्ञान द्वारा ताका साधन है। इस रीति सै क्रमसमुच्चय मै तात्पर्य सिद्ध होवै है। परंतु इहां यह शंका होवै है—'ब्राह्मणा विविदिषंति' इस रीति से विविदिषा वाक्य मै ब्राह्मणपद है। यातैं विद्याहेतु कर्मन मै ब्राह्मण का हि अधिकार है। अन्य का नहि। समाधान यह है—विद्या काम का विद्याहेतु कर्मन मै अधिकार संभवै है। यातैं ब्राह्मणपद क्षत्रिय वैश्य का बी उपलक्षण मान्या चाहिये। अन्य शंका—विद्या की कामना तैं विद्या हेतु कर्मन मै अधिकार

माने शूद्र कूं बी विद्या की कामना संभवै है ताका बी अधिकार मान्या चाहिये। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं। प्रथमाध्याय के तृतीयपाद मै वेद उक्त सगुण उपासना मै औ वेदांतश्रवणादिकन मै शूद्र का अनधिकार सिद्ध किया है। तामै भाष्यकार ने यह हेतु कहा है—शूद्र के वेदाध्ययन का अभाव है। औ अर्थ के ज्ञान विना ताका अनुष्ठान होवै नहि। यातैं वेदार्थ के अनुष्ठान मै ताका ज्ञान नियम तैं हेतु है। सो बी वेद-जन्य हि अर्थ के अनुष्ठान मै हेतु मानें हैं। अध्ययन शून्य कूं वेदजन्य वेदार्थज्ञान संभवै नहि। यातैं वेदार्थ-रूप सगुण निर्गुण विद्या के अनुष्ठान मै शूद्र का अधिकार नहि। इस रीति सै शारीरकशास्त्र के प्रथमाध्याय मै सगुणउपासना औ निर्गुणब्रह्म विद्या के साधन वेदांत-श्रवणादिकन मै शूद्र का अनधिकार कहा है। तैसे विद्या के हेतु कर्मन मै बी ताका अनधिकार संभवै है। जो विद्याकामना तैं विद्याहेतु कर्मन मै शूद्र का अधिकार कहा सो संभवै नहि। काहे तैं निरतिशय आनंदरूप ब्रह्म की प्राप्ति का हेतु विद्या है। इस रीति सै विद्या के प्रभाव के जाने विना तौ ताकी कामना संभवै नहि। औ 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' इस रीति सै शूद्र कूं शास्त्रार्थ के ज्ञान का निषेध किया है। यातैं किसी प्रकार तैं बी विद्या के प्रभाव का ज्ञान संभवै नहि। याहि तैं विद्याकामना

के अभाव तैं विद्याहेतु कर्मन मै ताका अधिकार बी नहि संभवै है। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार विद्या के हेतु कर्मन मै सर्वथा शूद्र का अनधिकार कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—यद्यपि वेदाध्ययन अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्मन मै तौ शूद्र का अधिकार नहि बी संभवै है। परंतु श्रीपंचाक्षर मंत्र राजविद्यादिकन के जप मै सर्व वर्णों का अधिकार शास्त्र मै कहा है। तैसे पापनिवृत्ति के हेतु तपदान द्विजपरिचर्या ईश्वरनाम संकीर्तन तीर्थस्नानादिक बी शूद्र के संभवै हैं। तिन तैं बी अंतःकरण की शुद्धि द्वारा विद्या की प्राप्ति संभवै है। यातैं विद्याहेतु कर्मन मै शूद्र का बी अधिकार अवश्य मान्या चाहिये। जो 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' या स्मृतिवाक्य मै शूद्र कूं शास्त्रार्थ के ज्ञान का निषेध किया है। यातैं विद्याप्रभाव के अज्ञान तैं ताकूं विद्या की कामना संभवै नहि। यातैं विद्याहेतु कर्मन मै अनधिकार कहा सो संभवै नहि। काहे तैं सर्वथा शास्त्रार्थ ज्ञान के निषेध मै स्मृतिवचन का तात्पर्य माने चतुर्थ वर्ण के साधारण असाधारण धर्मन का प्रतिपादक शास्त्र अप्रमाण होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—शूद्र के अनुष्ठान मै अनुपयोगी जो अग्निहोत्रादिकन का ज्ञान ताके निषेध मै स्मृतिवाक्य का तात्पर्य है। 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इत्यादि स्मृति मै इतिहास पुराणादि श्रवण मै चतुर्वर्ण का अधिकार कहा है। यातैं

पुराणादि श्रवण तैं विद्या प्रभाव के ज्ञान तैं शूद्र कूं ताकी कामना संभवै है। यातैं विद्याहेतु कर्मन मै ताके अधिकार का निषेध बनै नहि। जो प्रथमाध्याय के तृतीयपाद मै शूद्र के अधिकार का निषेध किया है। विद्याहेतु कर्मन मै अधिकार मानै ताका विरोध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं आनंदरूप ब्रह्मात्मा का अनुभव फलरूप है। ताकी कामना हि तामै अधिकार है। यातैं ब्रह्मविद्या मै शूद्र के अधिकार का निषेध होय सके नहि। याहि तैं निर्गुण ब्रह्मविद्या के हेतु कर्मन मै बी अधिकार का निषेध नहि होय सके है। यातैं प्रथमाध्याय के तृतीयपाद मै शूद्र के अधिकार का निषेध किया है। ताका यह तात्पर्य मान्या चाहिये—'नच संस्कारमर्हति' या स्मृतिवाक्य मै शूद्र के संस्कार का निषेध किया है। औ उपनयन संस्कार विना वेद का अध्ययन होवै नहि। अध्ययन विना वेद-जन्य वेदार्थज्ञान नहि होवै है। वेदार्थ के अनुष्ठान मै वेदजन्य हि अर्थ का ज्ञान हेतु मान्ने हैं। यातैं वेद उक्त वेदांतश्रवणादिकन मै औ सगुण उपासनादिकन मै शूद्र का अधिकार नहि। जो वेदांतश्रवणादिकन मै अधिकार नहि, मानै विद्याहेतु कर्मन का अनुष्ठान हुये बी विद्या उत्पन्न होवै नहि। यातैं शूद्र का कर्मानुष्ठान निष्फल कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' या स्मृति तैं भाष्यकार ने हि पुराणादि श्रवण मै शूद्र का

अधिकार कहा है। यातैं विद्या की उत्पत्ति का संभव होने तैं कर्मानुष्ठान निष्फल नहि। इस रीति सै बाधक के अभाव तैं विद्याहेतु कर्मन मै शूद्र का बी अधिकार संभवै है। जैसे कर्मन का चित्तशुद्धि द्वारा विद्या मै उपयोग कहा है। तैसे कोई ग्रंथकार संन्यास का बी अंतःकरण की शुद्धि द्वारा हि विद्या मै उपयोग कहे हैं। तिन का यह तात्पर्य है—विद्या की उत्पत्ति मै प्रतिबंधक पाप अनंत हैं। तिन मै कोई कर्मानुष्ठान तैं निवृत्त होवै हैं, कोई संन्यासजन्य अपूर्व तैं निवृत्त होवै हैं। यातैं कर्म की न्याईं संन्यास का बी पापनिवृत्ति द्वारा विद्या मै उपयोग संभवै है। जो गृहस्थादिक बी विद्या की प्राप्ति वास्ते कर्मछिद्र मै श्रवणादि कर्ते देखिये हैं। औ जनकादिक संन्यास विना हि ज्ञानवान् शास्त्र मै कहे हैं। यातैं व्यभिचार होने तैं संन्यास मै पापनिवृत्ति द्वारा विद्याहेतुता का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं लौकिक वैदिक कर्मन का अनुष्ठान हुये बी कोई उत्तम पुरुषन मै विक्षेप का अभाव देखने मै आवै है। यातैं विक्षेपनिवृत्ति वास्ते संन्यास की अपेक्षा नहि होने तैं विद्या की उत्पत्ति मै विक्षेपनिवृत्तिरूपदृष्ट द्वारा तौ संन्यास का उपयोग संभवै नहि। अदृष्ट द्वारा हि उपयोग कहना होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—कर्मछिद्र मै गृहस्थादि कृत श्रवणादिकन तैं जन्मांतर मै हि संन्यास

द्वारा ज्ञान होवै है। इस जन्म मै ज्ञान होवै नहि। औ जनकादिकन कूं पूर्वजन्म मै किये संन्यास तैं ज्ञान हुवा है। यातैं व्यभिचार के अभाव तैं संन्यासजन्य अपूर्व का चित्तशुद्धि द्वारा विद्या मै उपयोग संभवै है। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार पाप की निवृत्ति द्वारा संन्यास का विद्या मै उपयोग कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—च्यारि साधन विशिष्ट पुरुष का श्रवणादिकन मै अधिकार है। औ साधनचतुष्टय के अंतर्गत हि उपरतिरूप संन्यास है। यातैं विवेकादिकन की न्याईं संन्यास बी अधिकारी का विशेषण है। याहि तैं विवेकादिकन की न्याईं हि शुद्धचित्त पुरुष कूं बी अवश्य कर्तव्य है। यद्यपि त्यागक्रियारूप संन्यास अचिरस्थायी है। यातैं अधिकारी का विशेषण संभवै नहि। तथापि संन्यासजन्य अपूर्व ताका विशेषण संभवै है। इस रीति सै अदृष्ट द्वारा संन्यास का उपयोगनिरूपण मै दो मत कहे। तिन मै प्रथममत मै तौ चित्तशुद्धि द्वारा संन्यासजन्य अपूर्व का विद्या मै उपयोग है। यातैं शुद्धचित्त पुरुष कूं विद्या की प्राप्ति वास्ते संन्यास अवश्य कर्तव्य नहि। द्वितीयमत मै अधिकारी का विशेषण होने तैं शुद्धचित्त कूं बी अवश्य कर्तव्य है। यातैं संन्यासजन्य अपूर्व का चित्तशुद्धि द्वारा विद्या मै उपयोग नहि। किंतु विवेकादिकन की न्याईं अधिकारी का विशेषण होने तैं उपयोग है।

औ विवरण के अनुसारी तौ यह कहे हैं—श्रवणादिकन का अंग होने तैं संन्यास का फल आत्मज्ञान सिद्ध होवै है। यह विवरणकार ने कहा है। ताका यह तात्पर्य है-'ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति' 'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया' इत्यादि श्रुतिस्मृति तैं निरंतर किये श्रवणादिकन तैं हि ज्ञान द्वारा मोक्ष होवै है। कदाचित् किये श्रवणादिकन तैं होवै नहि। औ संन्यास विना आश्रमांतर मै श्रवणादिक निरंतर होवैं नहि। यातैं श्रवणादिकन कूं संन्यास की अपेक्षा है।.औ संन्यास का बी निरंतर श्रवणादिरूप दृष्ट साधन द्वारा विद्या मै उपयोग का संभव हुये अदृष्ट साधन द्वारा उपयोग मानना युक्त नहि। यातैं संन्यास कूं निरंतर श्रवणादिकन की अपेक्षा है। तिन मै.बी श्रवणादिक तौ तत्त्व के व्यंजक होने तैं प्रधान हैं। प्रधान कूं हि अंगी कहे हैं। त्यागक्रियारूप संन्यास तत्त्व का व्यंजक नहि। यातैं गौण होने तैं अंग है। इस रीति से परस्पर अपेक्षा के बल तैं श्रवणादिकन के अंग संन्यास का फल आत्मज्ञान सिद्ध होवै है। इस रीति सै विवरणानुसारिमत मै निरंतर श्रवणादिरूप दृष्ट साधन द्वारा ही संन्यास का ज्ञान मै उपयोग है। अदृष्टसाधन द्वारा नहि। इस रीति सै ज्ञान मै संन्यास का उपयोग निरूपण मै तीन पक्ष कहे। तिन मै प्रथम पक्ष मै ज्ञान की उत्पत्ति मै तौ संन्यास का नियम है। संन्यास तैं प्रतिबंधक पाप की निवृत्ति विना

गृहस्थादिकृतश्रवणादिकन तैं ज्ञान होवै नहि। परंतु श्रवणादिक संन्यास विना बी संभवै हैं। यातैं क्षत्रिय वैश्य कूं बी वेदांतश्रवणादिकन मै असंभव की शंका होवै नहि। परंतु संन्यासजन्य अपूर्व अधिकारी का विशेषण है। अथवा श्रवणादिकन का अंग संन्यास है इन दोनूं पक्षन मै संन्यास विना श्रवणादिक संभवैं नहि। यातैं यह शंका होवै है—'ब्राह्मणः प्रव्रजेत्' इत्यादि संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यन मै ब्राह्मण का ग्रहण है। यातैं संन्यास मै ब्राह्मण का हि अधिकार है। क्षत्रिय वैश्य का अधिकार नहि। औ संन्यास विना श्रवणादिकन का संभव नहि। यातैं संन्यास के अभाव तैं क्षत्रिय वैश्य कूं वेदांतश्रवणादिक बी संभवैं नहि। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वा' अर्थ यह—ब्रह्मचर्यादि आश्रमन के मध्य मै जिस आश्रम मै वैराग्य होवै ताहि सै संन्यास करै। या जावाल-श्रुति मै ब्राह्मणादि अधिकारी विशेष का ग्रहण नहि। औ विशेष के ग्रहण विना ब्राह्मण का हि संन्यास मै अधिकार है क्षत्रिय वैश्य का नहि। इस रीति सै क्षत्रिय वैश्य के अधिकार का निषेध होय सके नहि। यातैं जावालश्रुति तैं क्षत्रिय वैश्य का बी संन्यास मै अधिकार सिद्ध होवै है। औ 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा प्रव्रजेत् गृहात्। त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वारः आश्रमाः'। या स्मृति मै तौ

साक्षात् हि क्षत्रिय वैश्य का बी संन्यास मै अधिकार कहा है।

त्रयाणामविशेषेण संन्यासः श्रूयते श्रुतौ ।
यदोपलक्षणार्थं स्यात् ब्राह्मणग्रहणं तदा ॥

या वचन तैं वार्तिककार ने बी क्षत्रिय वैश्य का संन्यास मै अधिकार कहा है। जावालश्रुति मै तीनों वर्णों कूं संन्यास का श्रवण समान है। यातैं 'ब्राह्मणः प्रव्रजेत्' इत्यादि श्रुति मै ब्राह्मण का ग्रहण क्षत्रिय वैश्य का बी उपलक्षण है। यह वार्तिकवचन का अर्थ है। इस रीति सै श्रुति स्मृति वार्तिक-वचन तैं क्षत्रिय वैश्य का बी संन्यास मै अधिकार सिद्ध होवै है। यातैं 'ब्राह्मणः प्रव्रजेत्' इत्यादि संन्यासविधायक-वाक्यन मै ब्राह्मणग्रहण द्विजमात्र का उपलक्षण मान्या चाहिये। यातैं क्षत्रिय वैश्य कूं बी वेदांतश्रवणादिक संभवै हैं शंका संभवै नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार क्षत्रिय वैश्य का बी संन्यास मै अधिकार मान के तिन कूं श्रवणादिकन का संभव कहे हैं। औ भाष्य के अनुसारी तौ यह कहे हैं—"ब्राह्मणो निर्वेदमायात्, ब्राह्मणो व्युत्थाय, ब्राह्मणः प्रव्रजेत्, इत्यादिक संन्यासविधायक वाक्य हैं। तिन मै ब्राह्मण का ग्रहण है। निर्वेदरूप वैराग्य संन्यास का हेतु है। यातैं प्रथम श्रुतिवाक्य मै वैराग्यहेतुक संन्यास का हि विधान सिद्ध होवै है। व्युत्थान नाम संन्यास का है। यातैं द्वितीयवाक्य मै बी संन्यास का हि विधान सिद्ध होवै है। तृतीयवाक्य मै संन्यास का

विधान स्पष्ट हि है। इस रीति से संन्यासविधायक अनेक श्रुतिवाक्यन मै ब्राह्मण का ग्रहण है ताकूं द्विजमात्रं का उपलक्षण मानने मै प्रमाण का अभाव है। जो जावालश्रुति मै ब्राह्मणादि अधिकारिविशेष का ग्रहण नहि। यातैं ब्राह्मणपद द्विजमात्र का उपलक्षण कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं अनेक श्रुतिवाक्यन मै ब्राह्मण अधिकारी का ग्रहण है। ताके अनुसार जावालश्रुति मै बी ब्राह्मण कर्ता का हि अध्याहार सिद्ध होवै है। क्षत्रिय वैश्य के संन्यास मै जावालश्रुति का तात्पर्य सिद्ध होवै नहि। याहि तैं पूर्व उक्त स्मृतिवचन बी क्षत्रिय वैश्य के संन्यास मै प्रमाण नहि सिद्ध होवै है। वार्तिकवचन का बी विद्वत्संन्यास मै हि क्षत्रिय वैश्य के अधिकार मै तात्पर्य है। विविदिषा संन्यास मै तात्पर्य नहि। काहे तैं

सर्वाधिकारविच्छेदि विज्ञानं चेदुपेयते।
कुतोऽधिकारनियमो व्युत्थाने क्रियते बलात्॥

या अनंतर श्लोक तैं वार्तिककार नें हि विद्वत्संन्यास मै हि ब्राह्मण के अधिकार का अनियम कहा है। ताका यह तात्पर्य है—शास्त्र मै जनकादिक ज्ञानवान् कहे हैं। क्षत्रिय वैश्य कूं ज्ञान नहि माने ताका विरोध होवैगा। तिन कूं ज्ञान माने वर्णाश्रमादि अध्यास की निवृत्ति तैं कर्म का अधिकार संभवै नहि। यातैं सकल कर्मन की निवृत्तिरूप विद्वत्संन्यास मै क्षत्रिय वैश्य का

बी अधिकार दुर्निवार है। यातैं विविदिषा संन्यास की न्याईं विद्वत्संन्यास मै बी ब्राह्मण का हि अधिकार है क्षत्रिय वैश्य का अधिकार नहि। यह नियम संभवै नहि। इस रीति सै अनंतर श्लोक तैं वार्तिककार ने हि विद्वत्संन्यास मै हि क्षत्रिय वैश्य का अधिकार कहा है। यातैं पूर्व उक्त वार्तिकवचन का बी तामै हि तात्पर्य मान्या चाहिये। विविदिषा संन्यास मै क्षत्रिय वैश्य के अधिकार मै तात्पर्य संभवै नहि। इस रीति सै संन्यासविधायक वाक्यन मै ब्राह्मणपद कूं द्विजमात्र का उपलक्षण मानने मै प्रमाण का अभाव है। यातैं ब्राह्मण का हि संन्यास मै अधिकार सिद्ध होवै है। क्षत्रिय वैश्य का अधिकार सिद्ध होवै नहि। जो संन्यास मै क्षत्रिय वैश्य के अनधिकारपक्ष मै तिन कूं श्रवणादिकन का असंभव कहा ताका यह समाधान है—विद्या का हेतु विविदिषा संन्यास है। सोई मतभेद तैं अधिकारी का विशेषण अथवा श्रवणादिकन का अंग पूर्व कहा है। तामै ब्राह्मण का हि अधिकार सिद्ध किया है। क्षत्रिय वैश्य का अधिकार नहि। औ ज्ञानार्थी का ज्ञानसाधन श्रवणादिकन मै निषेध बी बनै नहि। यातैं यह मान्या चाहिये—ब्राह्मण अधिकारी का हि संन्यास विशेषण है। यातैं संन्यासरहित ब्राह्मण का श्रवणादिकन मै अधिकार नहि। तांकै श्रवणादिकन का हि अंग है। औ अंग विना अंगी की सिद्धि होवै नहि। यातैं ब्राह्मण

के हि संन्यासरूप अंग विना अंगि श्रवणादिक सिद्ध नहि होवै हैं। क्षत्रिय वैश्य का संन्यास निरपेक्ष श्रवणादिकन मै अधिकार है। यातैं वेदांतश्रवणादिक संभवै हैं। भाष्य के अनुसारी इस रीति सै क्षत्रिय वैश्य कूं श्रवणादिकन का संभव कहे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह कहे हैं—अनेक श्रुतिस्मृति मै संन्यासी कूं श्रवणादिकन का विधान किया है। तिन के नहि करने तैं प्रत्यवाय कहा है। यातैं श्रवणादिक संन्यासी के नित्य कर्मरूप हैं। क्षत्रियादिकन कूं विधान नहि। औ न करने तैं प्रत्यवाय नहि। यातैं क्षत्रिय वैश्य के श्रवणादिक नित्यकर्मरूप तौ नहि बी संभवै हैं। परंतु काम्यकर्मरूप संभवै हैं। यातैं वेदांतश्रवणादिकन का असंभव नहि। इस रीति सै क्षत्रिय वैश्य कूं वेदांतश्रवणादि असंभव शंका के समाधान मै तीन मत कहे हैं। तिन मै अनंतर उक्त तृतीयमत मै संन्यासी कूं श्रवणादिकन् का विधान कहा है। औ कोई ग्रंथकार तौ श्रवणादिकन मैं विधि नहि बी माने हैं। जो विधि माने हैं तिन के मत मै अदृष्ट द्वारा बी श्रवणादिकन का ज्ञान मै उपयोग है। यातैं यह शंका होवै है—संन्यासी कूं तौ विहित श्रवणादिकन तैं अदृष्ट द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति संभवै है। परंतु क्षत्रियादिकन कूं श्रवणादिकन का विधान नहि। औ अविहित श्रवणादिकन का अदृष्ट द्वारा ज्ञान मै उपयोग संभवै नहि। यातैं

वेदांतश्रवणादिक हुये बी क्षत्रियादिकन कूं ज्ञान की उत्पत्ति संभवै नहि । या शंका का यह समाधान है—यद्यपि अविहित श्रवणादिकन का अदृष्ट द्वारा ज्ञान मै उपयोग नहि संभवै है । यातैं क्षत्रियादिकन के ज्ञान मै श्रवणादि-जन्य अदृष्ट का तौ उपयोग संभवै नहि। तथापि यज्ञादि-जन्य अदृष्ट का उपयोग संभवै है ।काहे तैं साक्षात् विद्या मै यज्ञादि कर्मन का उपयोग मानै तिन के मत मै ज्ञान की उत्पत्ति विना कर्मजन्य अदृष्ट का नाश होवै नहि। ज्ञान की सारी सामग्री अदृष्ट तैं होवै है। यातैं विविदिषु क्षत्रियादिकृत श्रवणादिकन तैं बी ज्ञान की उत्पत्ति संभवै है ।इस रीति सै श्रवणादिकन मै विधि मानै तिन के मत मै क्षत्रियादिकृत श्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति का संभव कहा । औ वाचस्पति मिश्र तौ श्रवणादिकन मै विधि हि नहि माने हैं। तिन के मत मै तौ संन्यासिकृत श्रवणादिकन का बी अदृष्ट द्वारा ज्ञान मै उपयोग नहि संभवै है। काहे तैं विहित के अनुष्ठान तैं हि अदृष्ट की उत्पत्ति माने हैं ।यातैं अविहित श्रवणादिकन तैं क्षत्रिय वैश्य की न्याईं संन्यासी कूं बी अदृष्ट की उत्पत्ति संभवै नहि ।यातैं ताकूं बी ज्ञान का उपयोगि अदृष्ट केवल कर्म तैं हि कहना होवैगा । तैसे क्षत्रियादिकन कूं बी कर्म तैं हि ज्ञान का उपयोगि अदृष्ट संभवै है। यातैं श्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति का असंभव नहि । इस रीति सै

क्षत्रियादिकन कूं वेदांतश्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति मै असंभव शंका के समाधान मै दो मत कहे हैं। तिन मै संन्यासी कूं तौ श्रवणादिकन मै विधि के भावाभाव-प्रयुक्त ज्ञानउपयोगि अदृष्ट के भावाभाव की विलक्षणता है। परंतु क्षत्रियादिकन कूं यज्ञादिकर्मन तैं हि ज्ञान-उपयोगि अदृष्ट की उत्पत्ति दोनूं मतन मै समान है। इस रीति सै अविहित श्रवणादिकन तैं अदृष्ट की उत्पत्ति नहि मान के बी क्षत्रियादिकृत श्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति का संभव कहा। औ कोई ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—

दिने दिने तु वेदांतश्रवणाद्भक्तिसंयुतात्।
गुरुशुश्रूषया लब्धात् कृच्छ्राशीति फलं लभेत्॥

अर्थ यह—देवता गुरु वेदांत मै भक्ति औ गुरुशुश्रूषा तैसे शम दम ब्रह्मचर्य अहिंसादिसहित वेदांतश्रवण तैं अस्सी कृच्छ्रव्रत के पुण्यरूप फल कूं प्राप्त होवै है। इत्यादि वचनप्रमाण तैं अविहित बी वेदांतश्रवणादिकन तैं अदृष्ट की उत्पत्ति अवश्य मानी चाहिये। यातैं संन्यासी की न्याईं क्षत्रियादिकन कूं बी प्रतिदिन श्रवणादिजन्य अदृष्ट द्वारा हि वेदांतश्रवणादिकन तैं ज्ञान संभवै है शंका संभवै नहि। इस रीति सै क्षत्रियादिकन कूं मतभेद तैं श्रवणादिकन का संभव औ तिन तैं ज्ञान की उत्पत्ति का संभव कहा। श्रवणादिकन तैं ज्ञान की उत्पत्ति श्रुति स्मृति मै प्रसिद्ध है। परंतु जो जिज्ञासु अत्यंत मंदबुद्धि

है अथवा विचार की सामग्री तैं रहित है । ऊहापोह मैं कुशल श्रेष्ठआचार्य की प्राप्ति विचार की सामग्री है। तासैं रहित निपुणबुद्धि जिज्ञासु कूं बी श्रवणादिकन तैं ज्ञान होवै नहिं । किंतु ध्यानदीप मै निर्गुण ब्रह्म की उपासना तैं ज्ञान कहा है । 'तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्नं' 'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते' । इस रीति सै श्रुति स्मृति तैं बी निर्गुण उपासना तैं ज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध होवै है । मनन निदिध्यासनसहित वेदांतविचाररूप श्रवण सांख्यपद का अर्थ है । निर्गुण ब्रह्म की उपासना का नाम योग है । कारणत्व उपलक्षित ब्रह्म सांख्ययोग तैं ज्ञान द्वारा प्राप्त होवै है । यह श्रुतिवाक्य का अर्थ है। श्रवणादिकन मै तत्पर अधिकारी ज्ञानद्वारा जिस ब्रह्म-रूप स्थान कूं प्राप्त होवै हैं, ताहि कूं उपासक प्राप्त होवै हैं। यह गीतावचन का अर्थ है। यद्यपि भाष्यकार ने गीताभाष्य मै योगपद कर्म पर कहा है। यातैं योग-पद का अर्थ उपासना कहना संभवै नहि। तथापि शारीरक-भाष्य मै उक्त श्रुतिवचनगत योगपद ध्यान पर कहा है। औ योगपद की रूढि बी ध्यान मै हि है । यातैं मुख्ययोग द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का हेतु होने तैं कर्म मै गौण योगरूपता भाष्यकार कूं अभिप्रेत है। यातैं विरोध नहि । मांडूक्यादिक उपनिषदन मै निर्गुण ब्रह्म की उपासना कहि है। तैसे सूत्रकार ने बी तृतीयाध्याय के

तृतीयपाद मैं कहि है। निर्गुण उपासना अहंग्रहरूप हि सर्वत्र विवक्षित है। संवादिभ्रमन्याय तैं तासैं बी प्रमारूप ब्रह्मसाक्षात्कार संभवै है। सफलभ्रम का नाम संवादिभ्रम है। न्याय नाम दृष्टांत का है। जंहां गृह-विशेष मै श्रीकृष्ण तौ अदृष्ट है ताका प्रतिबिंब बाह्य दीखे है तामै श्रीकृष्ण का भ्रम संवादिभ्रम है। तासैं प्रवृत्त हुये पुरुष को बिंब की प्राप्तिरूप फल काल मै श्रीकृष्णगोचरप्रमा उत्पन्न होवै है। तैसे निर्गुण उपासना तैं बी ब्रह्म की प्राप्तिरूप फलकाल मै निर्गुण ब्रह्मगोचर प्रमा होवै है। यद्यपि दृष्टांत मैं तौ समीपप्राप्त पुरुष के नेत्र का श्रीकृष्ण सै संबंध होवै तासैं श्रीकृष्णगोचर साक्षात्काररूप प्रमा होवै है। संवादिभ्रममात्र तैं नहि। औ ब्रह्मगोचर प्रमा की उत्पत्ति मै अन्य सामग्री का अभाव है। यातैं दृष्टांत विषम होने तैं संवादिभ्रमन्याय तैं निर्गुणउपासना तैं ब्रह्मगोचर प्रमारूप साक्षात्कार की उत्पत्ति कहना संभवै नहि। तथापि दहरादि सगुण ब्रह्म की उपासना तैं ताका साक्षात्कार होवै है। यातैं समानविषयक ध्यान तैं समानविषयक साक्षात्कार की उत्पत्ति न्यायसिद्ध है। यातैं निर्गुणब्रह्म की उपासना तैं ताका बी साक्षात्कार संभवै है। औ निर्गुणउपासना यथार्थ है काहे तैं जैसे हस्त मैं पंच वराटका विधान करके अज्ञात पुरुष सै कोई पूछे मेरे हाथ मै कितनी

वराटका हैं तब 'तव हस्ते पंच वराटकाः' इस रीति सैं उत्तरवक्ता दैवयोग तैं पंच वराटका हि कहै तहां वाक्य-प्रयोग का हेतु पंच संख्या का ज्ञान है सो मूलप्रमाण तैं शून्य होने तैं यद्यपि आहार्य आरोपरूप बी है। तात्पर्य यह–'बाधकालीनेच्छाजन्यं ज्ञानमाहार्यं' अर्थ यह–बाधकाल मै हुवा जो पुरुष की इच्छाजन्य ज्ञान सो आहार्य कहिये है। प्रकृत मै मूलप्रमाण का अभाव हि बाध है। ताके हुये बी उत्तरवक्ता की इच्छा तैं हि वराटका मै पंच संख्या का ज्ञान होवै है। यातैं आहार्य आरोप-रूप बी है। परंतु विषय के अबाध तैं यथार्थ है। तैसे 'अखंडैकरसं ब्रह्माहमस्मि' या प्रकार का प्रत्ययप्रवाह-रूप निर्गुण उपासना बी विषय के अबाध तैं यथार्थ है। तात्पर्य यह–श्रवण मनन सै उत्तर निदिध्यासन होवै सो बी उक्त प्रत्यय का प्रवाहरूप हि होवै है। परंतु विचारित वाक्यरूप प्रमाणपूर्वक होने तैं यथार्थ होवै है। तैसे निर्गुण उपासनां यद्यपि विचारित वाक्यरूप प्रमाण पूर्वक तौ नहि है। काहे तैं सगुण उपासना की न्याईं उपासना विधायकवाक्य के श्रवणमात्र तैं होवै है। परंतु ताका विषय अखंड एकरस ब्रह्मात्मा का अभेद अबाधित है। यातैं यथार्थ है। याहि तैं श्रवणादिजन्य साक्षात्कार की न्याईं तासै बी प्रत्यक् ब्रह्म गोचर साक्षात्कार यथार्थ हि होवै है। परंतु इतना भेद है–बुद्धिमंदतादि प्रति-

बंधरहित अधिकारी कूं कुशलगुरु तैं श्रवणादिक होवैं तिन सै शीघ्र हि ज्ञान होवै है। यातैं श्रवणादिक प्रधान साधन हैं। निर्गुण उपासना तैं ज्ञान विलंब तैं होवै है। औ श्रवणादिकन के अलाभ तैं ताका अनुष्ठान होवै है। यातैं निर्गुण उपासना ब्रह्मज्ञान का अप्रधान साधन है। इस रीति सै अधिकारिभेद तैं ज्ञान की उत्पत्ति कहि। उत्तम मध्यम अधिकारी कूं श्रवणादिकन तैं ज्ञान होवै है। तिन कूं सांख्यमार्ग कहे हैं। मंद अधिकारी कूं निर्गुण उपासना तैं होवै है ताकूं योगमार्ग कहे हैं। अब मतभेद तैं ज्ञान के करण का निरूपण करे हैं—तहां कोई ग्रंथकार प्रसंख्यान कूं हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करण कहे हैं। काहे तैं प्रत्ययाभ्यास का नाम प्रसंख्यान है। योगमार्ग मैं प्रथम सै लेके ज्ञान की उत्पत्तिपर्यंत उपासनारूप प्रसंख्यान रहे है। सांख्यमार्ग मै मनन सै अनंतर निदिध्यासनरूप प्रसंख्यान ज्ञान की उत्पत्तिपर्यंत हि रहे है। यातैं ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्तिकाल मैं विद्यमान होने तैं उभयविध प्रसंख्यान ताका करण संभवै है। किंच 'ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' अर्थ यह—निर्विशेष परमात्मा का ध्यान कर्ता हुवा पुरुष ध्यान तैं ताकूं साक्षात्कार करे है। या श्रुतिवचन तैं बी प्रसंख्यान हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करण सिद्ध होवै है। औ लोक मैं व्यवहित कामिनी का प्रसंख्यान कामिनी साक्षात्कार का

करण प्रसिद्ध है। काहे तैं संबंध के अभाव तैं व्यवहित कामिनी के साक्षात्कार मै नेत्र इंद्रिय तौ करण संभवै नहि। केवल मन तैं बी बाह्यपदार्थ का साक्षात्कार नहि संभवै है। यातैं कामिनी का प्रसंख्यान हि कामिनी साक्षात्कार का करण मान्या चाहिये। तृतीयाध्याय के तृतीयपाद मै औ चतुर्थाध्याय के प्रथमपाद मै सूत्रकार भाष्यकार ने सगुणब्रह्म के प्रसंख्यान तैं ताका साक्षात्कार कहा है। तैसे निर्गुणब्रह्म के प्रसंख्यान तैं ताका बी साक्षात्कार संभवै है। इस रीति सै प्रसंख्यान मै ब्रह्म-साक्षात्कार की करणता युक्ति औ प्रमाण तैं सिद्ध है। शंका-प्रमा के करण प्रत्यक्ष अनुमानादिक षट्प्रसिद्ध हैं। तिन मै प्रसंख्यान की गणना नहि होने तैं प्रसंख्यान प्रमाण नहि। तासै ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति माने ब्रह्म-साक्षात्कार प्रमा नहि होवैगा। जो वराटका मै संख्या-विशेष का आहार्यज्ञान प्रमाणजन्य नहि तौ बी विषय के अबाध तैं प्रमा है। तैसे प्रमाणाजन्य बी ब्रह्मसाक्षात्कार कूं विषय के अबाध तैं प्रमा कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं वराटका मै पंचसंख्यागोचर अहार्यआरोप, संवादी है। औ ताका विषय बी अबाधित है। यातैं यथार्थ तौ है परंतु प्रमा नहि। काहे तैं ज्ञानरूप वृत्ति का हि धर्म प्रमात्व है। उपासनावृत्ति की न्याइं आहार्यवृत्ति ज्ञानरूप नहि। किंतु मानसक्रियारूप है। ताकूं विषय

के अबाध तैं प्रमा माने इच्छादिकवृत्ति बी अबाधित अर्थगोचर होने तैं प्रमा हुयी चाहिये। यातैं आहार्य-वृत्ति की न्याई ब्रह्मज्ञान कूं प्रमा कहना संभवै नहि। जो वराटका मै पंचसंख्यागोचर आहार्यवृत्ति तौ ज्ञानरूप नहि होने तैं यद्यपि प्रमा नहि। परंतु मणि-प्रभा मै मणि कूं विषय करनेवाली वृत्ति ज्ञानरूप है। ताकी न्याई ब्रह्मज्ञान कूं प्रमा कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं मणिप्रभा मै मणिज्ञान तैं प्रवृत्त हुये पुरुष के नेत्र का मणि से संबंध होवै तासै उत्पन्न हुवा मणि का ज्ञान हि अबाधित अर्थगोचर होने तैं प्रमा है। मणिप्रभा मै मणि का ज्ञान बाधित अर्थगोचर है। यातैं भ्रमरूप हि है प्रमा नहि। परंतु सफल है। यातैं संवादी है विसंवादी नहि। ताकी न्याई बी ब्रह्मज्ञान कूं प्रमा कहना नहि संभवै है। इस रीति से किसी प्रकार तैं बी प्रसंख्यान-जन्य ब्रह्मसाक्षात्कार प्रमा संभवै नहि। समाधान। प्रमाणजन्य ज्ञान हि प्रमा होवै यह नियम नहि। काहे तैं 'यः सर्वज्ञः' इत्यादि श्रुतिसिद्ध माया की वृत्तिरूप ईश्वर का ज्ञान प्रमाणजन्य नहि तौ बी विषय के अबाध तैं प्रमा माने हैं। तैसे प्रसंख्यानजन्य बी ब्रह्मसाक्षात्कार अबाधित अर्थगोचर होने तैं प्रमा संभवै है। किंच, प्रसंख्यानजन्य बी ब्रह्मसाक्षात्कार का मूल वेदवाक्य है। काहे तैं ध्येयवस्तु के जाने विना ताका ध्यान होय

सके नहि। यातैं सांख्यमार्ग मै विचारित वाक्यजन्य ब्रह्मात्मा का ज्ञान निदिध्यासनरूप प्रसंख्यान का मूल है। योगमार्ग मै निर्गुण उपासनारूप प्रसंख्यान का मूल अविचारित वाक्यजन्य ज्ञान है। यातैं परंपरा तैं वेदवाक्यरूप प्रमाण मूलक होने तैं बी प्रसंख्यानजन्य ब्रह्मसाक्षात्कार प्रमा संभवै है। इस रीति से कित ने ग्रंथकार प्रसंख्यान कूं हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करणं कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—जीव के साक्षात्कार मै मन कूं करणता प्रसिद्ध है। तैसे ब्रह्मसाक्षात्कार मै बी मन हि करण मान्या चाहिये। प्रसंख्यानता का सहकारि मात्र है। स्वतंत्र करण नहि। काहे तैं प्रसंख्यान मै ज्ञान की करणता प्रसिद्ध नहि। जो 'ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' या श्रुतिवाक्य तैं प्रसंख्यान ब्रह्मसाक्षात्कार का करण कहा सो संभवै नहि। काहे तैं 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या' 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' इत्यादिक अनेक श्रुतिवाक्यन मै मन कूं ब्रह्मसाक्षात्कार का करण कहा है। प्रसंख्यान करण माने ताका विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' या प्रकार का संपूर्ण श्रुतिवाक्य है। तामै ज्ञान का साधन होने तैं अंतःकरण ज्ञानपद का अर्थ है। ताकी एकाग्रता प्रसादशब्द का अर्थ है। यातैं श्रुति-

वाक्य का यह अर्थ सिद्ध होवै है—ध्यान तैं अंतःकरणकी एकाग्रता होवै है तासै ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। यातैं श्रुतिवाक्य तैं बी मन का सहकारी हि प्रसंख्यान सिद्ध होवै है। ब्रह्मसाक्षात्कार का स्वतंत्र करण सिद्ध होवै नहि। जो व्यवहित कामिनी के साक्षात्कार मै प्रसंख्यान करण कहा सो बी संभवै नहि। काहे तैं जीव के साक्षात्कार मै मन करण प्रसिद्ध है। अन्यत्र बी ताका संभव हुये अप्रसिद्ध प्रसंख्यानरूप करणांतर का अंगीकार युक्त नहि। यातैं कामिनी साक्षात्कारादिकन मै बी प्रसंख्यान सहकृत मन हि करण मान्या चाहिये। प्रसंख्यान स्वतंत्र करण संभवै नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार प्रसंख्यान सहकृत मन हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करण माने हैं। औ अन्य आचार्य तौ यह कहे हैं—'आचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' इत्यादिक अनेक श्रुतिवाक्यन मै आचार्य के उपदेश सै अनंतर हि ब्रह्मसाक्षात्कार तैं जीवन्मुक्ति कहि है वाक्य तैं हि अपरोक्षज्ञान मानै उपदेशजन्य ब्रह्मसाक्षात्कार तैं अव्यवहित उत्तरकाल मै जीवन्मुक्ति संभवै है। प्रसंख्याम करणतापक्ष मै उपदेशजन्य ज्ञान तैं अनंतर प्रसंख्यान कर्तव्य होने तैं अव्यवहित उत्तरकाल मै जीवन्मुक्ति संभवै नहि। औ 'वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः' या श्रुति मै वेदांतजन्यज्ञान तैं हि ब्रह्मात्मा का अभेदरूप अर्थ सुनिश्चित कहा

है। यातैं वाक्यार्थज्ञान सै अनंतर प्रसंख्यान के अनुष्ठान की अनपेक्षा सिद्ध होवै है। वाक्य तैं हि अपरोक्षज्ञान मानै तासै अनंतर प्रसंख्यान की अनपेक्षा संभवै है। प्रसंख्यानकरणता पक्ष मै वाक्यार्थ ज्ञान सै अनंतर बी अपरोक्षज्ञान वास्ते प्रसंख्यान की अपेक्षा होने तैं ताकी अनपेक्षा संभवै नहि। 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' या श्रुति मै ब्रह्म कूं केवल उपनिषद् वेद्य कहा है। यातैं बी वाक्य हि अपरोक्षज्ञान का करण सिद्ध होवै है। परंतु प्रतिबंधकसहितं वाक्य तैं अपरोक्षज्ञान संभवै नहि। यातैं सांख्ययोगमार्ग के अनुष्ठान तैं दृष्टादृष्ट संपूर्ण प्रतिबंध की निवृत्ति हुये प्रतिबंधकरहित वाक्य तैं हि ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। यातैं वाक्यकरणतापक्ष मै सांख्ययोगमार्ग बी व्यर्थ नहि। इस रीति सै अनेक श्रुतिवाक्यन तैं महावाक्य हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करण सिद्ध होवै है। प्रसंख्यान की न्याई मन बी करण सिद्ध होवै नहि। औ 'यन्मनसा न मनुते' अर्थ यह—जिस चेतन कूं मन करके लोक नहि जाने है। इत्यादि श्रुति मै मन कूं ब्रह्मज्ञान की करणता का सर्वथा निषेध किया है। यातैं बी मन करण नहि संभवै है। जो 'यद्वाचानभ्युदितं' अर्थ यह—जो ब्रह्मशब्द करके अप्रकाशित है। इत्यादि श्रुति मै शब्द कूं बी ब्रह्मज्ञान की करणता का निषेध किया है। यातैं शब्द मै बी ब्रह्मसाक्षात्कार की करणता

का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं लक्षणावृत्ति तैं बी शब्द कूं ब्रह्म की अबोधकता मै उक्तश्रुति का तात्पर्य माने औपनिषदत्व श्रुति का विरोध होवैगा। औ अविरोध तैं श्रुतितात्पर्य का संभव हुये विरुद्ध अर्थ मै तात्पर्य मानना युक्त नहि। किंच, मन कूं करणता मानै तिन के मत मै बी शब्द कूं परोक्षज्ञान की करणता तौ माननी हि होवै है। यातैं उभयवादि संमत होने तैं बी लक्षणावृत्ति तैं शब्द कूं ब्रह्मबोधकता के निषेध मै उक्त श्रुति का तात्पर्य नहि संभवै है। किंतु शक्तिवृत्ति तैं ब्रह्म बोधकता निषेध मै हि तात्पर्य कह्या चाहिये। यातैं विरोध के अभाव तैं लक्षणावृत्ति तैं शब्द कूं ब्रह्मसाक्षात्कार की करणता संभवै है। जो 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं मन कूं करण कहैं तौ 'यन्मनसा न मनुते' इत्यादि श्रुति का विरोध होवैगा। यातैं यह मान्या चाहियें— जैसे उपादान होने तैं मन, चाक्षुषादिवृत्ति का हेतु है। हेतुता के बोधक 'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादिक श्रुतिवाक्य हैं। चाक्षुषादिवृत्ति का मन करण है यह तिन का अर्थ नहि। तैसे शाब्द ब्रह्मसाक्षात्कार का उपादान होने तैं एकाग्रमन हेतु है। 'मनसैवानु-द्रष्टव्यं' इत्यादिक श्रुतिवाक्य बी हेतुता के हि बोधक हैं। ब्रह्मसाक्षात्कार का मन करण है। यह तिन का अर्थ संभवै नहि। औ जो गीताभाष्य

मै 'शमदमादिसंस्कृतं मन एव आत्मदर्शने करणं' या वचन तैं मन कूं ब्रह्मसाक्षात्कार का करण कहा है सो वी उक्त श्रुतिविरोध तैं वृत्तिकार के मत मै मन कूं करणता अभिप्राय तैं कहा है। स्वमताभिप्राय तैं नहि। यातैं विरोध नहि। इस रीति सै बहुत आचार्य महावाक्य हि ब्रह्मसाक्षात्कार का करण सिद्ध करे हैं। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है—शब्द कूं ब्रह्मसाक्षात्कार का करण माने पूर्व उक्त रीति सै श्रुति औ भाष्यवचन का विरोध तौ यद्यपि नहि होवै है। परंतु शब्दसामर्थ्य का विरोध होवै हैं। काहे तैं शब्द मै परोक्षज्ञान जनन का हि सामर्थ्य है। अपरोक्षज्ञान का सामर्थ्य नहि। यातैं शब्द सै अपरोक्षज्ञान की उत्पत्ति कहना शब्दसामर्थ्य तैं विरुद्ध है। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—'तरति शोकमात्मवित्' अर्थ यह—शोक का हेतु होने तैं अज्ञानमूलक कर्तृत्वादि अध्यास का नाम शोक है ताकूं आत्मवेत्ता निवृत्त करे है। इत्यादि श्रुति मै आत्मज्ञान तैं कर्तृत्वादि अध्यास की निवृत्ति कहि है। औ कर्तृत्वादि अध्यास अपरोक्ष है। परोक्षज्ञान तैं ताकी निवृत्ति संभवै नहि। काहे तैं श्रवणजन्य परोक्षज्ञान तैं ताकी निवृत्ति अनुभव सिद्ध नहि। जो श्रवणजन्य परोक्षज्ञान तैं हिं कर्तृत्वादि अध्यास की निवृत्ति माने तौ मननादिक व्यर्थ होवैंगे। लोक मै वी अपरोक्ष-

ज्ञान तैं हि अपरोक्ष अध्यास की निवृत्ति प्रसिद्ध है। यातैं अधिष्ठान के अपरोक्षज्ञान विना कर्तृत्वादि अध्यास की निवृत्ति संभवै नहि। औ केवल उपनिषद्वेद्य ब्रह्म मैं प्रमाणांतर की प्रवृत्ति बाधित है। शब्द तैं बी अपरोक्ष-ज्ञान नहि माने अनिर्मोक्ष प्रसंग होवैगा। यातैं यह मान्या चाहिये—जैसे होममात्र मैं तौ अपूर्व जनन का सामर्थ्य नहि बी है। काहे तैं संस्काररहित अग्नि मैं होम तैं अपूर्व उत्पन्न होवै नहि। परंतु शास्त्र मैं अग्नि का संस्कार विधान किया है। संस्कृतअग्नि मैं होम तैं बी अपूर्व की उत्पत्ति नहि मानै संस्कार का विधान व्यर्थ होवैगा। यातैं श्रुतार्थापत्ति तैं वैदिक संस्कार सहित अग्नि मैं होम तैं अपूर्व की उत्पत्ति माने हैं। तैसे श्रुतार्थापत्ति तैं हि संस्कृतचित्तदर्पण सहित शब्द तैं बी ब्रह्मसाक्षात्कार की उत्पत्ति संभवै है। तात्पर्य यह—जैसे केवल नेत्र मैं तौ सूर्यादिसाक्षात्कार का सामर्थ्य नहि बी है। परंतु निश्चल औ स्वच्छ दर्पणादि उपाधि सहकृत नेत्र तैं तिन का साक्षात्कार होवै है। तैसे केवल शब्द मैं तौ ब्रह्म-साक्षात्कार का सामर्थ्य नहि है। परंतु श्रवण मनन तैं उत्तर निदिध्यासन होवै तासैं एकाग्रचित्तसहित शब्द तैं ब्रह्मसाक्षात्कार संभवै है। इस रीति से कित नें ग्रंथकार श्रुतार्थापत्ति तैं शब्द मैं अपरोक्षज्ञान की जनकता सिद्ध करे हैं। अन्य ग्रंथकार या दृष्टांत तैं सिद्ध करे हैं। जैसे

केवल मन बाह्य पदार्थ के साक्षात्कार मैं असमर्थ बी है। परंतु भावनासहित मन तैं नष्ट वनिता का साक्षात्कार होवै है। तैसे केवल शब्द मैं अपरोक्षज्ञान का सामर्थ्य नहि मानै बी निदिध्यासनरूप भावनासहित शब्द तैं ब्रह्म का अपरोक्षज्ञान संभवै है शंका संभवै नहि। इस रीति सैं शब्द मैं परोक्षज्ञान का सामर्थ्य मान के मतभेद तैं तासैं अपरोक्षज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध करी। औ अन्य ग्रंथकार तौ तामैं परोक्षज्ञान का सामर्थ्य हि नहि मानै हैं। काहे तैं ज्ञान मैं परोक्षता अपरोक्षता करण के अधीन होवै तब तौ शब्द मैं परोक्षज्ञान का सामर्थ्य कहना बी संभवै। परंतु ज्ञान मैं परोक्षताअपरोक्षता करण के अधीन नहि। काहे तैं इंद्रियजन्य ज्ञान हि अपरोक्ष होवै अनुमानादिजन्य परोक्ष होवै तौ ज्ञान मैं परोक्षता-अपरोक्षता करण के अधीन होवै। परंतु इंद्रियजन्य ज्ञान हि अपरोक्ष होवै यह नियम नहि। काहे तैं सुखादि-ज्ञान, ईश्वर का मायावृत्तिरूपज्ञान, स्वप्नगजादिकन का ज्ञान इंद्रियजन्य नहि, परंतु अपरोक्ष है। इस रीति सै ज्ञान मैं परोक्षताअपरोक्षता करण के अधीन नहि, किंतु विषय के अधीन है। 'अयोग्यप्रमाणाजन्यत्वे सति अपरोक्षार्थगोचरं ज्ञानमपरोक्षम्' 'परोक्षार्थगोचरं ज्ञानं परोक्षं' अर्थ यह—अयोग्यप्रमाण तैं अजन्य हुवा अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान अपरोक्ष कहिये है। परोक्ष

अर्थगोचर ज्ञान परोक्ष कहिये है। अपरोक्ष विषय का ज्ञान अपरोक्ष हि होवै है। इंद्रियजन्य होवै अथवा प्रमाणांतरजन्य होवै यामै अभिनिवेश नहि। यद्यपि ज्ञान मै परोक्षताअपरोक्षता विषय के अधीन माने विषयगत परोक्षताअपरोक्षता ज्ञान के अधीन होने तैं अन्योऽन्याश्रय होवैगा। तथापि विषय मै परोक्षताअपरोक्षता परोक्षापरोक्ष ज्ञान की विषयतारूप मानै तौ अन्योऽन्याश्रय होवै परंतु विषयगत परोक्षताअपरोक्षता उक्तरूप नहि। किंतु 'योग्यविषयस्य वर्तमानप्रमातृचैतन्याभिन्नत्वमपरोक्षत्वं' 'तद्भिन्नत्वं परोक्षत्वं' अर्थ यह—प्रमातृचेतन तैं वर्तमान अभेदवाला योग्य विषय अपरोक्ष कहिये है। तासै भिन्न परोक्ष कहिये है। यातैं अन्योऽन्याश्रय दोप नहि। यद्यपि जड विषय का चेतन सै अभेद संभवै नहि। यातैं अर्थापरोक्ष लक्षण की जड अपरोक्ष अर्थ मै अव्याप्ति है। तथापि लक्षणगत अभेदपद तैं कल्पित-अकल्पित साधारण अभेदमात्र विवक्षित है। यातैं ब्रह्म का प्रमातृचेतन तैं वास्तव अभेद है। तैसे जड विषय का वास्तव अभेद तौ नहि बी संभवै है। परंतु 'जड सत' इस रीति सै सत्‌रूप चेतन तैं जड का सामानाधिकरण्य अनुभव होवै है। अभेद विना सामानाधिकरण्य संभवै नहि। यातैं कल्पित अभेद मान्या चाहिये। यातैं अव्याप्ति नहि। सुखादिक अंतःकरण के धर्म साक्षि-

चेतन मैं अध्यस्त हैं। यातैं प्रमातृचेतन सै अभिन्न होने तैं सुखादिक योग्यधर्म औ तिन का ज्ञान अपरोक्ष हिं होवै है। बाह्यघटादिक बी स्वगोचर ऐंद्रियकवृत्ति काल मैं प्रमातृचेतन सै अभिन्न होवै हैं। यातैं अपरोक्ष होने तैं तिन का ज्ञान बी अपरोक्ष हि होवै है। इस रीति सैं अर्थ की अपरोक्षता ज्ञानगत अपरोक्षता का हेतु है। औ 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म' अर्थ यह—ब्रह्म जड की न्याईं स्वभिन्न प्रमातृचेतन की अपेक्षा करके अपरोक्ष नहिं होवै है। किंतु साक्षात् प्रमातृचेतनरूप होने तैं हि अपरोक्ष है। या श्रुति तैं ब्रह्म का प्रमातृचेतन तैं सदा वास्तव अभेद है। यातैं ब्रह्म स्वतः अपरोक्ष है। अपरोक्षार्थगोचर होने तैं शब्दजन्य बी ब्रह्म का ज्ञान अपरोक्ष संभवै है। कित ने ग्रंथकार इस रीति सै ज्ञान औ विषयगत अपरोक्षता का निरूपण करके शब्द तैं अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध करे हैं। औ अद्वैतविद्याचार्य तौ विषय औ ज्ञानगत अपरोक्षता का प्रकारांतर सैं हि निरूपण करे हैं। औ पूर्वमत मैं अपरोक्ष अर्थगोचर जो अयोग्य प्रमाण तैं अजन्यज्ञान सो अपरोक्ष कहिये है। यह ज्ञानगत अपरोक्षता का लक्षण कहा है ताकी स्वरूप सुख के अपरोक्षज्ञान मैं अव्याप्ति कहे हैं। तथा हि—उक्त लक्षण मैं ज्ञान कूं अपरोक्ष अर्थगोचर कहने तैं ज्ञान औ विषय का भेद सापेक्ष विषय विषयी·

भाव होवै तहां हि ज्ञानगत अपरोक्षता का लक्षण संभवै है। स्वरूपसुख का ज्ञान सै भेद नहि। यातैं विषय विषयीभाव के असंभव तैं ताकें ज्ञान मै उक्त लक्षण संभवै नहि। यद्यपि आत्मरूप सुख का अनुभव साक्षि-चेतनरूप होने तैं स्वप्रकाश है। औ 'स्वं प्रकाशते इति स्वप्रकाशः' अर्थ यह—स्वं कहिये अपने स्वरूप कूं प्रकाशते कहिये विषय करे सो स्वप्रकाश कहिये है। या रीति सैं स्वप्रकाशपद का अर्थ करैं तौ अमेद मै बी विषय विषयीभाव का संभव होने तैं स्वरूपसुख के ज्ञान मै बी उक्तलक्षण संभवै है। तथापि संबंध दो के आश्रित होवै है। स्वरूपसुख से ज्ञान का भेद नहि। यातैं एक हि सुखरूप चेतन आत्मा मै विषय विषयीभाव संबंध संभवै नहि। याहि तैं स्वप्रकाशपद का उक्त अर्थ बी नहि संभवै है। किंतु 'स्वस्मात् प्रकाशते इति स्वप्रकाशः' अर्थ यह—स्वस्मात् कहिये अपनी सत्ता तैं प्रकाशते कहिये संशयादि अगोचर होवै सो स्वप्रकाश कहिये है। इत्यादि स्वप्रकाश का लक्षण बृहत् ग्रंथन मै निरूपण किया है। यातैं स्वप्रकाशपद के अर्थ तैं बी अमेद मै विषय विषयी-भाव संभवै नहि। इस रीति सैं स्वरूपसुख के अपरोक्ष-ज्ञान मै अव्याप्ति होने तैं ज्ञानगत अपरोक्षता का उक्त लक्षण संभवै नहि। किंतु अर्थ औ ज्ञानगत अपरोक्षता का यह लक्षण है—'स्वव्यवहारानुकूलचैतन्याभिन्नत्व-

मर्थगतापरोक्षत्वं ' 'विषयव्यवहारानुकूलचैतन्यस्य तद-भिन्नत्वं ज्ञानगतापरोक्षत्वं' अर्थ यह—स्वव्यवहारानुकूल चेतन सैं अभिन्न अर्थ अपरोक्ष कहिये है। विषय के व्यवहारानुकूल चेतन का तासैं अभेद ज्ञानगत अपरोक्षता है। सुखादिधर्म सहित अंतःकरण स्वव्यव-हारानुकूल साक्षिचेतन मैं अध्यस्त होने तैं तासैं अभिन्न है। यातैं अपरोक्ष है। घटादिचेतन बी घटादिगोचर-वृत्ति उपहित हुवा तिन के व्यवहारानुकूल होवै है। तासैं अभिन्न घटादिक अपरोक्ष हैं। ब्रह्मगोचरवृत्ति उपहित साक्षिचेतन ब्रह्म के व्यवहारानुकूल है, तासैं अभिन्न ब्रह्म अपरोक्ष है। स्वप्रकाश चेतनस्वरूप-सुख के व्यव-हारानुकूल है तासैं अभिन्न होने तैं स्वरूपसुख अपरोक्ष है।· यातैं अर्थापरोक्ष लक्षण की कहुं बी अव्याप्ति नहि। चेतन सैं अभिन्न अर्थ कूं अपरोक्ष कहैं तामैं कल्पित घटादिक सदा तासैं अभिन्न होने तैं सदा अपरोक्ष हुये चाहिये। यातैं व्यवहारानुकूल कहा। घटादिगोचर-वृत्ति काल मैं हि घटादि चेतन तिन के व्यवहारानुकूल होवै है सदा नहि। यातैं दोष नहि। यद्यपि वृत्तिरूप ज्ञान चेतन सैं भिन्न है तामैं ज्ञानगत अपरोक्षत्व लक्षण की अव्याप्ति है। काहे तैं वृत्तिज्ञान बी यद्यपि विषय के व्यवहारानुकूल तौ है। परंतु ताका विषय सैं अभेद संभवै नहि। तथापि अनुमितित्व, इच्छात्वादिक अंतःकरण की

वृत्ति के धर्म हैं। तैसे अपरोक्षत्व बी अंतःकरण की वृत्ति का हि धर्म माने सुखादिगोचर अपरोक्ष वृत्ति के अनंगीकार तैं साक्षिरूप तिन के ज्ञान मै औ स्वरूपसुख के प्रकाशरूप चेतन आत्मा मै अपरोक्षत्व नहि हुवा चाहिये। काहे तैं वृत्ति के धर्म अपरोक्षत्व का ताके होतैं हि चेतन मै आरोप संभवै है। वृत्ति के नहि होतै सुखादि भासक साक्षी मै औ स्वरूपसुख के प्रकाशरूप आत्मा मै अपरोक्षत्व संभवै नहि। यातैं सुखादिकन मै औ स्वरूपसुख मै अपरोक्षत्व अनुभव का विरोध होवैगा। यातैं अपरोक्षत्व धर्म चेतन का हि मान्या चाहिये। वृत्ति का धर्म नहि। याहि तैं ज्ञानगत अपरोक्षत्व लक्षण मै ज्ञानपद चेतन पर हि है। वृत्तिज्ञान पर नहि। यातैं दोष नहि। विषयव्यवहार के अनुकूल चेतन कूं अपरोक्ष कहैं अनुमान प्रयोग सै अनंतर–'वह्निरस्ति' इस रीति सै अनुमितिरूप वृत्ति चेतन बी वह्निव्यवहार के अनुकूल है। वह्नि का अपरोक्ष ज्ञानरूप नहि। तामै अतिव्याप्ति होवैगी। यातैं विषय सै अभेद कहा। अनुमानजन्य वृत्ति का विषयदेश मै गमन होवै नहि यातैं अनुमितिरूप वृत्ति चेतन का वह्नि सै अभेद नहि होने तैं अतिव्याप्ति नहि। चेतन का विषय सै अभेद हि ज्ञानगत अपरोक्षता कहैं घटादिगोचर वृत्ति के अभावकाल मै बी घटादि-चेतन का तिन सै अभेद है। तिस

काल मै. घटादि चेतन तिन का अपरोक्ष ज्ञानरूप नहि। तामै अतिव्याप्ति वारण वास्ते विषयव्यवहार के अनुकूल कहा। वृत्ति के अभावकाल मै घटादि चेतन आवृत होने तैं तिन के व्यवहारानुकूल नहि। यातैं अतिव्याप्ति नहि। जो घटादिगोचर ऐंद्रियक वृत्ति मै 'घटं साक्षात्करोमि' इस रीति सै अपरोक्षत्व का अनुभव होवै है। चेतन का धर्म अपरोक्षत्व मानै ताका विरोध कहैं तौ संभवै नहि। कांहे तैं पूर्व उक्त रीति सै अपरोक्षत्व धर्म वृत्ति का तौ संभवै नहि। यातैं यह मान्या चाहिये—वृत्ति औ चेतन का तादात्म्य है। यातैं चेतनगत अपरोक्षत्व का 'घटं साक्षात्करोमि' या प्रकार तैं वृत्ति मै आरोप होवै है वृत्ति मै अपरोक्षत्व का अनुभव नहि। यातैं विरोध नहि। शंका—धर्माधर्मादि गोचर शाब्दादि वृत्ति अंतःकरण मै होवै तहां 'धर्मादिकमस्ति' या प्रकार तैं वृत्ति चेतन धर्मादिकन के व्यवहारानुकूल है। औ धर्मादिक विषय तैसे वृत्ति एक अंतःकरणदेश मै होने तैं उपहित चेतन का भेद रहै नहि। यातैं धर्मादिकन के व्यवहारानुकूल चेतन का तिन सै अभेद होने तैं तामै ज्ञानगत अपरोक्षत्व लक्षण की अतिव्याप्ति है। तैसे धर्मादिविषय का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद होने तैं अर्थगत अपरोक्षत्व लक्षण की बी अतिव्याप्ति है। समाधान—स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेदमात्र अर्थगत अपरोक्षता का साधक मानै

जीव चेतन ब्रह्म के व्यवहारानुकूल हैं। तासैं अभिन्न ब्रह्म संसारदशा मैं बी अपरोक्ष हुवा चाहिये। तैसे अर्थ के व्यवहारानुकूल चेतन का तासैं अभेदमात्र ज्ञानगत अपरोक्षता का साधक माने ब्रह्म के व्यवहारानुकूल जीव चेतन का तासैं सदा अभेद है ताका ज्ञान बी सदा अपरोक्ष हि हुवा चाहिये। यातैं अभेदमात्र अपरोक्षता का साधक नहि। किंतु प्रत्यक्ष अभेद ताका साधक है। पूर्व उक्त विषय औ ज्ञानगत अपरोक्षत्व लक्षण मैं अभेद-पद तैं प्रत्यक्ष अभेद हि विवक्षित है। जा विषय का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद प्रत्यक्ष होवै सो विषय प्रत्यक्ष कहिये है। विषयव्यवहार के अनुकूल जा चेतनरूप ज्ञान का विषय सै अभेद प्रत्यक्ष होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। अनावृत्त विषय का हि स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद प्रत्यक्ष संभवै है। तासै हि स्वव्यवहारानुकूल चेतन का बी अभेद प्रत्यक्ष संभवै है। संसारदशा मै ब्रह्म अनावृत नहि। यातैं ताका स्वव्यवहारानुकूल जीवचेतन सै अभेद प्रत्यक्ष संभवै नहि। तासै स्वव्यवहारानुकूल चेतन का बी अभेद प्रत्यक्ष नहि संभवै है। यातैं संसारदशा मै ब्रह्म औ ताका ज्ञान अपरोक्ष होवै नाहि। तैसे धर्मादिक बी अनावृत नहि। काहे तैं शब्दादिजन्य परोक्षज्ञान तैं अशेष अज्ञान निवृत्त होवै नहि। यातैं आवृत धर्मादिकन का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद प्रत्यक्ष संभवै नहि।

तिन सै.स्वव्यवहारानुकूल चेतन का बी अभेद प्रत्यक्ष नहि संभवै है। यातैं धर्मादिकन मै औ तिन के ज्ञान मै अपरोक्षत्व लक्षण की अतिव्याप्ति होवै नहि। यद्यपि पूर्व उक्त रीति सै विषय औ ज्ञानगत अपरोक्षता अज्ञान की निवृत्ति के अधीन सिद्ध होवै है। औ विषय के आवरक अशेष अज्ञान की निवृत्ति बी अपरोक्ष ज्ञान तैं हि होवै है। यातैं अन्योऽन्याश्रय होने तैं अपरोक्ष का उक्त लक्षण संभवै नहि। तथापि ज्ञानगत अपरोक्षता अज्ञान-निवृत्ति का हेतु माने तौ अन्योऽन्याश्रय होवै। परंतु प्रमाण महिमा तैं जिस ज्ञान का विषय सै तादात्म्य संबंध होवै तिस ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति होवै है। इंद्रिय-जन्य ज्ञान का विषय सै संबंध प्रमाण की महिमा तैं होवै है। तासै अज्ञान की निवृत्ति होवै है। महावाक्यरूप प्रमाण महिमा तैं ब्रह्म संबंधि शाब्दज्ञान तैं बी अज्ञान की निवृत्ति होवै है। यद्यपि ब्रह्म सर्व का उपादान है। औ कार्य का उपादान सै तादात्म्य होवै है। यातैं अनुमिति आदि परोक्ष ब्रह्मज्ञान का बी विषय सै संबंध होने तैं तासै बी अशेष अज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। तथापि अनुमिति आदि ज्ञान का ब्रह्म सै संबंध विषय की महिमा तैं है। प्रमाण महिमा तैं नहि। यातैं तासै अशेष अज्ञान निवृत्ति की आपत्ति नहि। इस रीति सै अज्ञान की निवृत्ति मै ज्ञानगत अपरोक्षता हेतु नहि। यातैं

अन्योऽन्याश्रय दोष के अभाव तैं अपरोक्ष का उक्त लक्षण संभवै है। यद्यपि प्रमाण महिमा तैं विषय संबंधि ज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति माने महावाक्य के उपदेशमात्र तैं ज्ञान होवै तासैं बी अशेष मूलाज्ञान की निवृत्ति हुयी चाहिये। यातैं विचाररूप श्रवण मननादिक व्यर्थ होवैंगे। तथापि अप्रतिबद्ध ज्ञान का प्रमाण महिमा तैं विषय सै संबंध चाहिये। असंभावना विपरीत भावनारूप प्रतिबंधक होतैं महावाक्यजन्य ज्ञान अप्रतिबद्ध नहि, ताका प्रमाण महिमा तैं विषय सै संबंध हुये बी अशेष अज्ञान निवृत्त होवै नहि। श्रवणादिकनं तैं प्रतिबंधक की निवृत्ति हुये अशेष अज्ञान की निवृत्ति होवै है। जाके जन्मांतर के श्रवणादिकन तैं असंभावनादिक नहि होवैं ताकूं महावाक्य के उपदेशमात्र तैं अप्रतिबद्ध ब्रह्मज्ञान होवै है। तासैं अशेष मूलाज्ञान की निवृत्ति इष्ट हि है। यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहि। इस रीति सै मतभेद तैं शब्दजन्य बी ब्रह्मज्ञान अपरोक्ष सिद्ध किया। पूर्वज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति कहि है तामैं यह शंका होवै है— वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान अज्ञान का कार्य है। औ कार्य का उपादान सै विरोध प्रसिद्ध नहि। यातैं ब्रह्मज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति कहना संभवै नहि। समाधान यह है—वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान का उपादान अंतःकरण है, अज्ञान नहि। यातैं तासैं अज्ञान की निवृत्ति मानै लोकप्रसिद्धि का

विरोध होवै नहि। औ जो अंतःकरण द्वारा अज्ञान कूं उपादान मान लेवैं तौ बी अज्ञाननिवृत्ति का असंभव नहि। काहे तैं यद्यपि लोक मै कार्य उपादान की स्थिति का विरोधि प्रसिद्ध नहिं। तथापि समान विषयकज्ञान अज्ञान स्थिति का विरोधि प्रसिद्ध है। यातैं ब्रह्मज्ञान तैं अज्ञान की निवृत्ति संभवै है; विरोध नहि। औ अग्निपट के संयोग तैं पट का दाह होवै तहां कार्य उपादान की स्थिति का विरोधि बी प्रसिद्ध है। काहे तैं पट अग्निसंयोग के उपादान पट अग्नि दोनूं हैं। कार्यरूप संयोग तैं उपादान पट का दाह होवै है। तैसे ब्रह्मज्ञान तैं बी मूलाज्ञान की निवृत्ति संभवै है। लोकप्रसिद्धि के विरोध की शंका हि संभवै नहि। यद्यपि या स्थान मै वैशेषिकन की यह प्रक्रिया है-मुद्गर तैं घट का चूर्णीकरण होवै तहां मुद्गरसंयोग तैं घट के अवयवन मै क्रिया होवै है। क्रिया तैं तिन का विभाग होवै है। विभाग सैं घट के असमवायि कारण अवयव-संयोग का नाश होवै है। संयोगनाश तैं घट का नाश होवै है। इस रीति सै असमवायि कारण के नाश तैं हि घट का नाश होवै है। मुद्गरसंयोग तैं घटनाश की भ्रांति होवै है। नाश होवै नहि। तैसे अग्निसंयोग तैं तंतवों मै क्रिया होवै है। तासै तंतुविभाग होवै है। विभाग तैं पट के असमवायि कारण तंतुसंयोग का नाश होवै है। तासै पट का नाश होवै है। या प्रकार तैं पट का

नाश बी असमवायि कारण के नाश तैं हि होवै है। अग्नि-संयोग मैं पटनाशकता का भ्रम होवै है। तासैं पट का नाश होवै नहि। यातैं कार्यरूप ब्रह्मज्ञान तैं उपादान अज्ञान की निवृत्ति माने लोकप्रसिद्धि विरोध की शंका संभवै है। तथापि दग्धपट मैं बी पूर्व की न्याईं तंतुसंयोग देखिये है। यातैं घट के चूर्णीकरण-स्थल मैं उक्त प्रक्रिया माने बी प्रमाण के अभाव तैं पटदाह स्थल मैं उक्त प्रक्रिया संभवै नहि। ताका अंगीकार हि भ्रांतिमूलक होने तैं असंगत है। और जो प्रक्रियांतर कहे हैं—समवायि कारण के नाश तैं कार्य का नाश होवै है। पट के समवायि कारण तंतु हैं पटदाह स्थल मैं तिन का बी दाह होवै है। यातैं समवायि कारण के नाश तैं हि पट का नाश होवै है। अग्निसंयोग तैं नहि। यह कहना बी भ्रांतिमूलक है। काहे तैं समवायि कारण के नाश तैं कार्य का नाश माने। द्व्यणुक सैं लेके पटपर्यंत कार्यधारा का क्रम तैं हि नाश कहना होवैगा। औ अंशु तंतु आदि सहित पट का युगपत् हि दाह दृष्ट है। क्रम तैं दाह दृष्ट नहि। यातैं क्रम तैं नाश कल्पना संभवै नहि। औ द्व्यणुक के समवायि कारण परमाणु नित्य माने हैं तिन का नाश संभवै नहि। समवायि कारण के नाश तैं हि कार्य का नाश माने द्व्यणुक का नाश नहि होवैगा। जो परमाणु द्वय का संयोग द्व्यणुक का असमवायि कारण है।

पटनाश स्थल मै पूर्व उक्त रीति से द्व्यणुक का नाश तौ ताके नाश तैं माने औ द्व्यणुक भिन्न कार्य का नाश समवायि कारण के नाश तैं माने तौ गौरव होवैगा। औ पटदाह स्थल मै असमवायि कारण के नाश तैं कार्य-नाश का असंभव पूर्व कहा है। यातैं बी परमाणु संयोग के नाश तैं द्व्यणुक का नाश कहना संभवै नहि। किंतु अग्निसंयोग तैं हि ताका नाश कहना होवैगा। तैसे पट का नाश बी अग्निसंयोग तैं कहा चाहिये। तामै पट नाशकता का भ्रम कहना संभवै नहि। इस रीति सै द्व्यणुक अग्निसंयोग तैं ताके उपादान द्व्यणुक का नाश होवै है। पट अग्निसंयोग तैं स्व उपादान पट का नाश होवै है। तैसे कार्यरूप ब्रह्मज्ञान तैं ताके उपादान अज्ञान की निवृत्ति संभवै है। प्रसिद्धि विरोध की शंका संभवै नहि। परंतु या स्थान मै यह शंका होवै है—यद्यपि वृत्ति-रूप ब्रह्मज्ञान तैं सविलास अज्ञान की तौ निवृत्ति संभवै है। परंतु ताका नाशक उपलब्ध होवै नहि। काहे तैं आप तौ अपना नाशक संभवै नहि। असंग होने तैं आत्मा बी ताका नाशक नहि संभवै है। और कोई नाशक रहा नहि। यातैं ब्रह्म निर्विशेष सिद्ध नहि होवैगा। समाधान यह है—ब्रह्मज्ञान तैं भिन्न संपूर्ण दृश्य का प्रथम नाश मानै पश्चात् ब्रह्मज्ञान का नाश मानै तौ उक्त शंका संभवै। परंतु जैसे जल मै प्रक्षिप्त कतकरज अपने सहित

हि इतर रज का विश्लेशक होवै है। तप्तलोहपिंड मै प्रक्षिप्त जल अपने सहित हि अग्नि का नाशक होवै है। शुष्क-तृण कूट मै प्रक्षिप्त उल्का अपने सहित हि ताका नाशक होवै है। तैसे ब्रह्मज्ञान बी अपने सहित हि अज्ञान तत्-कार्य का नाश करे है। इस रीति सै सविलास अज्ञान के नाशकाल मै हि ब्रह्मज्ञान आप हि अपना बी नाशक संभवै है। ताके नाश मै नाशकांतर की अपेक्षा नहि। यातैं शंका संभवै नहि। अन्य शंका—घटादिकन के नाश मै प्रतियोगी सै भिन्न मुद्गरादिक कारण प्रसिद्ध हैं। तैसे ब्रह्मज्ञान के नाश मै बी प्रतियोगी सै भिन्न कारण मान्या चाहिये। ब्रह्मज्ञान हि अपना नाशक कहना संभवै नहि। या शंका का यह समाधान है—जैसे घटादिनाश मै प्रति-योगिभिन्न कारण प्रसिद्ध है। तैसे निरिंधन अग्नि का नाश औ सुषुप्ति तैं अव्यवहित पूर्वकाल मै ज्ञानादि गुणन का नाश कारणांतर विना बी प्रसिद्ध है। यातैं ध्वंसमात्र मै कारणांतर के अनियम तैं कारणांतर विना बी ब्रह्मज्ञान का नाश कहना संभवै है। इहां यह तात्पर्य है—साधारण असाधारणभेद तैं कारण दो प्रकार का होवै है। तिन मै जलसेकादि असाधारण कारणांतर का तौ यद्यपि निरिं-धन अग्निध्वंसादिकन मै व्यभिचार है। परंतु कालादि साधारण कारण का व्यभिचार नहि। तैसे ब्रह्मज्ञान के ध्वंस मै बी असाधारण कारणांतर का हि व्यभिचार है।

साधारण कारण का व्यभिचार नहि । काहे तैं प्रथमक्षणं मै ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति द्वितीयक्षण मै तासै सविलास अज्ञान की निवृत्ति । तृतीयक्षणं मै ब्रह्मज्ञान की निवृत्ति मानै तब तौ ब्रह्मज्ञान के ध्वंस तैं पूर्वक्षण मै कालादिकन का अभाव होय गया । यातैं ब्रह्मज्ञान के ध्वंस मै तिन का व्यभिचार होवै । परंतु द्वितीयक्षण मै हि ब्रह्मज्ञान सहित निखिल कल्पित का नाश माने हैं । तासै अव्यवहित पूर्वक्षण मै कालादिक विद्यमान हैं । यातैं ब्रह्मज्ञान के ध्वंस मै बी कारण संभवै हैं । इस रीति सै साधारण कारण का ब्रह्मज्ञान के ध्वंस मै बी व्यभिचार नहि । असाधारण कारणांतर का निरिंधन अग्निध्वंसादिकन मै बी व्यभिचार है । यातैं पूर्व उक्त दृष्टांत तैं ब्रह्मज्ञान तैं ताका नाश कहना संभवै है । इस रीति सै वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान अज्ञानादिकन की न्याईं अपना बी नाशक कहा ।। औ कोई ग्रंथकार तौ वृत्तिज्ञान कूं अज्ञान तत्कार्य का नाशक हि नहि माने हैं । काहे तैं लोक मै प्रकाश तैं हि तम की निवृत्ति प्रसिद्ध है । तैसे चेतनरूप प्रकाश तैं हि सविलास अज्ञानतम की निवृत्ति मानी चाहिये । जड वृत्तिज्ञान तैं ताकी निवृत्ति संभवै नहि । यद्यपि चेतनरूप प्रकाशस्वरूप सै अज्ञानादिकन का साधक होने तैं निवर्तक संभवै नहि । तथापि जैसे सूर्य का प्रकाशस्वरूप सै तृणादिकन का प्रकाशक हि है । दाह करे नहि । परंतु

सूर्यकांतमणि मै आरूढ हुवा तिन का दाह करे है। तैसे चेतनरूप प्रकाशस्वरूप सै तौ यद्यपि अज्ञान तत्कार्य का साधक हि है। परंतु वृत्ति मै आरूढ हुवा ताका नाशक संभवै है। जो मणि मै आरूढ सूर्य का प्रकाश तृणादिकन का हि दाह करे है। मणि का दाह करे नहि। तैसे वृत्ति मै आरूढ चेतन प्रकाश बी अज्ञानादिकन का हि नाश करैगा। वृत्ति का नाश नहि करैगा। यातैं नाशकांतर के अभाव तैं वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान के नाश का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं उक्त युक्ति तैं वृत्ति मै आरूढ चेतन अज्ञान तत्कार्य का नाशक सिद्ध है। यातैं यह मान्या चाहिये—जैसे किंचित् काष्ठ मै आरूढ अग्नि ग्राम नगरादिकन का दाह कर्ता हुवा ताका बी दाह करे है। तैसे अखंडाकार वृत्ति मै आरूढ चेतन प्रकाश समूल संसार कूं निवृत्त कर्ता हुवा ताका बी नाश करे है। यातैं वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान का नाश संभवै है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार वृत्ति मै आरूढ चेतन तैं हि वृत्ति का बी नाश माने हैं। औ पंचपादिका के अनुसारी तौ यह कहे हैं—ज्ञान का अज्ञान तैं हि साक्षात् विरोध है। कार्यप्रपंच तैं अज्ञानद्वारा विरोध है। साक्षात् विरोध नहि। यातैं ब्रह्मज्ञान तैं तौ अज्ञान की हि निवृत्ति होवै है। अज्ञान निवृत्ति तैं ब्रह्मज्ञान सहित कार्यप्रपंच की निवृत्ति होवै है। यद्यपि उपादान के नाश तैं कार्य की स्थिति संभवै

नहि। यातैं तत्त्वसाक्षात्कार तैं अज्ञान की निवृत्ति हुये जीवन्मुक्त कूं देहादिप्रपंच की प्रतीति नहि हुयी चाहिये। तथापि प्रारब्धरूप प्रतिबंधक होतैं तत्त्वसाक्षात्कार तैं निःशेष अज्ञान की निवृत्ति नहि होवै है। किंतु अविद्या-लेश रहे है। यातैं तत्त्वसाक्षात्कार तैं अनंतर बी जीवन्-मुक्त कूं देहादि प्रतिभास संभवै है। इस रीति सै कार्य प्रपंच तैं ब्रह्मज्ञान का साक्षात् विरोध नहि मानै जीवन्मुक्ति-शास्त्र बी अनुकूल होवै है। अज्ञान की न्याईं कार्यप्रपंच तैं बी ताका साक्षात् विरोध माने प्रारब्धकर्म की हि स्थिति संभवै नहि। तासै अविद्यालेशद्वारा देहादि प्रतिभास तौ अत्यंत हि दूर है। यातैं जीवन्मुक्तिशास्त्र का विरोध होवैगा। यातैं अज्ञानद्वारा कार्यप्रपंच तैं ब्रह्मज्ञान का विरोध मान्या चाहिये। साक्षात् विरोध नहि इस रीति सै पंचपादिकानुसारी वृत्तिरूप ब्रह्मज्ञान के नाश मै अज्ञान का नाश हि हेतु कहे हैं। यातैं ब्रह्म निर्विशेष सिद्ध होवै है।

॥ इति सिद्धांतदिग्दर्शने तृतीयः परिच्छेदः ॥

ॐ

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अथ चतुर्थपरिच्छेदः ॐ

श्लोक–तृतीये हि परिच्छेदे ज्ञानमुक्तं ससाधनं।
तत्फलं तु विमोक्षाख्यं चतुर्थे संप्रकीर्त्यते ॥१॥

श्लोक का अर्थ यह है–तृतीय परिच्छेद मै मोक्षहेतु ज्ञान का साधनसहित निरूपण किया। अब मुक्तिरूप ताका फलनिरूपण वास्ते चतुर्थ परिच्छेद का आरंभ करे हैं। पूर्वपरिच्छेद के अंत मै अविद्या लेश तैं जीवन्मुक्त कूं देहादिकन का प्रतिभास कहा। तामै यह शंका होवै है–लेश नाम अवयव का है। अनादि अविद्या का अवयवरूप लेश संभवै नहि। जो अविद्या का अवयवरूप लेश माने तौ अविद्या सावयव होवैगी। सावयवपदार्थ नियम तैं सादि होवै है। यातैं 'अज्ञानमनादि' अर्थ यह–अज्ञान अनादि है। या सिद्धांत का विरोध होवैगा। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं–अवयवरूपलेश मानै तौ अविद्या कूं सादि होने तैं सिद्धांत विरोध की शंका होवै। परंतु अवयवरूपलेश नहि माने हैं। किंतु मूलाविद्या के आवरण विक्षेपशक्तिविशिष्ट दो अंश हैं। तिन मै आवरण शक्तिविशिष्ट अविद्या अंश का तत्त्व-

साक्षात्कार तैं नाश होवै है। विक्षेपशक्तिविशिष्ट अविद्या अंश के नाश मै प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक है ताका नाश होवै नहि। सोई उपादान होने तैं देहादि प्रतिभास का प्रयोजक अविद्यालेश है। अवयवरूपलेश नहि। यातैं शंका संभवै नहि। यद्यपि तत्त्वज्ञान तैं अविद्यालेश की निवृत्ति नहि माने विदेहदशा मै बी ताकी स्थिति हुयी चाहिये। तथापि प्रतिबंधक प्रारब्ध का भोग तैं नाश हुये तत्त्वज्ञान के संस्कारविशिष्ट निरावरण चेतन हि अविद्या-लेश का नाशक माने हैं। यातैं अनिवृत्ति की शंका बी नहि संभवै है। इस रीति सै कितने ग्रंथकार विक्षेपशक्ति-विशिष्ट अविद्या अंश हि अविद्यालेश कहे हैं। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—जैसे प्रक्षालित लशुनभांड मै गंध की स्थिति का हेतु लशुन का संस्कार रहे है। तैसे तत्त्वज्ञान तैं अविद्या के निवृत्त हुये बी शरीरादिकन की स्थिति का हेतु संस्काररूप अविद्यालेश रहे है। तिन सै अन्य ग्रंथकार यह कहे हैं—जैसे अग्निदग्धपटस्वकार्य मै असमर्थ होवै है। तैसे तत्त्वज्ञान तैं बाधित स्वकार्य मै असमर्थ साक्षात् अविद्या हि अविद्यालेश है। इस रीति सै जीवन्मुक्तिशास्त्र कूं प्रमाण मानै तिन के मतभेद तैं अविद्यालेश का निरूपण किया। औ कोई ग्रंथकार तौ जीवन्मुक्तिशास्त्र कूं श्रवणादिविधि का अर्थवाद माने हैं। स्वार्थ मै ताका तात्पर्य नहि माने हैं। तिन का यह तात्पर्य

है—यद्यपि 'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' इत्यादिक वचन जीवन्मुक्ति के प्रतिपादक हैं। तथापि विरोधि तत्त्वसाक्षात्कार के हुये अविद्यालेश संभवै नहिं। याहि तैं शरीरादिकन के अभाव तैं जीवन्मुक्ति बी नहि संभवै है। यातैं जिन श्रवणादिकन तैं जीवते पुरुष की बी मुक्ति होवै है। ऐसे उत्तम आत्मश्रवणादिक हैं। इस रीति सैं जीवन्मुक्तिप्रतिपादकवाक्य श्रवणादिकन के स्तावक माने चाहिये। स्वार्थ मै तिनका तात्पर्य संभवै नहि। यातैं जीवन्मुक्ति मै प्रमाण के अभाव तैं तत्त्वसाक्षात्कार तैं अव्यवहित उत्तरकाल मै विदेह मुक्ति होवै है। शरीरादिकन का प्रतिभास संभवै नहिं। संक्षेपशारीरक मै यह पक्ष दिखाकर ताका खंडन याप्रकार तैं लिखा है—यद्यपि जीवन्मुक्ति प्रतिपादक वचन श्रवणादिविधि का अर्थवाद हैं। तथापि प्रमाणांतर सै अविरुद्ध अर्थ का प्रतिपादक अर्थवादवाक्य स्वार्थ मै प्रमाण माने हैं। जैसे 'वज्रहस्तः पुरंदरः' इत्यादि अर्थवाद वचन प्रमाणांतर सै अविरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक हैं। काहे तैं देवता विग्रहादिरूप तिन का अर्थ प्रमाणांतर सै विरुद्ध नहि। यातैं स्वार्थ मै प्रमाण हैं। तैसे जीवन्मुक्ति प्रतिपादक वाक्यनका अर्थ बी प्रमाणांतर सै विरुद्ध नहि। उलटा जीवन्मुक्ति विद्वानों के अनुभव सिद्ध है। यातैं 'तस्य तावदेव चिरं' इत्यादि वाक्य स्वार्थ मै

प्रमाण होने तैं जीवन्मुक्ति का अपलाप संभवै नहि। जो तत्त्वसाक्षात्कार अविद्यादि अध्यास का विरोधी है। ताके हुये अविद्या का लेश बी रहै नहि। यातैं शरीरादि अभाव तैं जीवन्मुक्ति का असंभव कहा सो संभवै नहि। काहे तैं रज्जुतत्त्व का साक्षात्कार समूल सर्पाध्यास का विरोधी है। परंतु तासै अनंतर बी अध्यास के संस्कार तैं कुछ काल भय कंपादिक रहे हैं। यातैं यह मान्या चाहिये— अध्यास के संस्कार तैं तत्त्वज्ञान का विरोध नहि। अविद्यादि अध्यास का संस्कार हि अविद्या लेश है। तत्त्वज्ञान तैं उत्तर बी ताके होतैं देहादि प्रतिभास संभवै है। प्रारब्ध का भोग तैं नाश हुये अशेष अविद्या की निवृत्ति होवै है। यातैं जीवन्मुक्ति का असंभव नहि। इस रीति सै संक्षेप शारीरक मै सद्यो मुक्ति पक्ष के खंडनपूर्वक जीवन्मुक्ति पक्ष का उपपादन किया है। यातैं जीवन्मुक्ति प्रतिपादक वाक्यन तैं जीवन्मुक्ति पक्ष हि समीचीन है। परंतु इहां यह शंका होवै है—अविद्या की निवृत्ति आत्मरूप माने आत्मा अनादि है। यातैं ज्ञान विना बी सिद्ध होने तैं आत्मरूप अविद्या निवृत्ति ताका साध्य संभवै नहि। यातैं ज्ञान निष्फल होवैगा। जो आत्मा सै भिन्न मान के अविद्या निवृत्ति कूं सत्य माने तौ द्वैतापत्ति होवैगी। असत्य माने असत्य बी किसी का साध्य नहि होवै है। यातैं अभिन्नपक्ष उक्त दोष होवैगा। या शंका का ब्रह्म

सिद्धिकार यह समाधान कहे हैं—कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है। यातैं सविलास अज्ञान की निवृत्ति आत्मरूप हि है तासै भिन्न नाहि। यातैं भिन्नपक्ष उक्त दोष नहि। जो अभिन्नपक्ष मै ज्ञान की निष्फलतारूप दोष कहा तहां यह पूछे हैं—ज्ञानसंपादन का कोई प्रयोजन नहि। यातैं ज्ञान निष्फल है। अथवा आत्मरूप अविद्या निवृत्ति ज्ञान का साध्य नहि। यातैं ज्ञान निष्फल है। जो प्रथम पक्ष कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं ज्ञान संपादन विना अनर्थहेतु अज्ञान के होतैं अनर्थ बी विद्यमान हि है। यातैं अनर्थ निवृत्ति काम की ज्ञान साधनों मै प्रवृत्ति संभवै है। ज्ञान संपादन का प्रयोजनाभाव तैं ताकूं निष्फल कहना संभवै नहि। तैसे द्वितीयपक्ष बी नहि संभवै है। काहे तैं साध्य का लक्षण दो प्रकार का है। एक तौ सादिपदार्थमात्र का जन्यलरूप असाधारण लक्षण है। दूसरा 'यस्मिन्सत्यग्रिमक्षणे यस्य सत्त्वं यद्व्यतिरेके चाभावस्तत्तत्साध्यं' अर्थ यह—जाके होतैं अग्रिमक्षण मै जाकी सत्ता होवै, जाके नहि होतैं नहि होवै सो ताका साध्य कहिये है। यह सादि अनादि साधारण साध्य का लक्षण है। तिन मै प्रथम लक्षण तौ आत्मरूप अविद्या निवृत्ति मै नहि बी संभवै है। परंतु द्वितीय लक्षण संभवै है। तथा हि—पाप तैं दुःख होवै है। प्रायश्चित के होतैं पाप का नाश होने तैं दुःख होवै नहि। किंतु अग्रिमक्षण

मै दुःख के प्रागभाव की सत्ता होवै है। प्रायश्चित्त के नहि होतैं पाप तैं दुःख की हि उत्पत्ति होवै है। अग्रिमक्षण मै दुःख प्रागभाव की सत्ता होवै नहिं। यातैं सादि पापध्वंस की न्याईं अनादि दुःख प्रागभाव बी प्रायश्चित्त का साध्य माने हैं। तैसे तत्त्वज्ञान के होतैं अग्रिमक्षण मै आत्मरूप अविद्यानिवृत्ति की सत्ता होवै है। काहे तैं यद्यपि आत्मरूप अविद्या निवृत्ति अनादि है यातैं ज्ञान की उत्पत्ति तैं द्वितीयक्षण मै ताकी उत्पत्ति तौ नहि बी संभवै है। परंतु ताकी सत्ता संभवै है। तत्त्वज्ञानके नहिं होतैं अग्रिमक्षण मै अविद्यानिवृत्ति का अभावरूप अविद्या हि होवै है। यातैं अनादि बी अविद्यानिवृत्ति ताका साध्य संभवै है। यद्यपि अविद्या निवृत्तिरूप आत्मा अनंत है। वास्तव तैं ताका अभाव होवै नहि। यातैं अविद्या निवृत्ति का अभाव कहना संभवै नहि। तथापि निर्विशेष चेतन का वास्तव तैं अभाव नहि हुये बी अभाव की भ्रांति बहुत मूढ प्राणियों को होय रहि है। निर्विशेष चेतन का भ्रांति सिद्ध अभाव अविद्या ही है। तासै भिन्न नहि। यद्यपि भावरूप घटादिक अभावप्रतियोगिक अभावरूप हि नैयायिकादिक माने हैं। भाव प्रतियोगिक, अभावरूप नहि माने हूं। यातैं भावरूप अविद्या, कूं चेतन प्रतियोगिक अभावरूप कहना संभवै नहि। तथापि

अधिष्ठान अध्यस्त का अभावरूप होवै है। यातैं निर्विशेष चेतन अपने मैं अध्यस्त अविद्या का अभावरूप है। यातैं यह सिद्ध हुवा—जैसे घट स्वाभाव प्रतियोगिक अभावरूप है। तैसे अविद्या बी स्वाभावरूप चेतन प्रतियोगिक अभावरूप संभवै है। इस रीति सैं ब्रह्मसिद्धिकार सविलास अविद्या निवृत्ति कूं आत्मरूप मान के अभिन्न पक्ष उक्त दोष का परिहार करे हैं। परंतु कल्पित की निवृत्ति केवल अधिष्ठानरूप मानै उक्त रीति सैं दोष की शंका औ ताका समाधान संभवै है। ज्ञात अधिष्ठानरूप मानै दोष की शंका हि संभवै नहिं। काहे तैं ज्ञात अधिष्ठान सादि है। ज्ञान विना ताकी सिद्धि होवै नहि। यातैं सफल होने तैं ज्ञान साधन श्रवणादिकन का अनुष्ठान संभवै है। सर्वथा हि सविलास अज्ञान की निवृत्ति अधिष्ठान आत्मा सैं अभिन्न है। यह पक्ष निर्दोष है। औ कितने आचार्य तौ अविद्यानिवृत्ति कूं आत्मा सैं भिन्न मान के हि भिन्नपक्ष उक्त दोष का परिहार करे हैं। तिन मैं बी आनंदबोधाचार्य यह कहे हैं—भावाभाव की एकता बने नहि। यातैं सविलास अज्ञान की निवृत्ति आत्मरूप नहि। किंतु तासैं भिन्न है। परंतु आत्मभिन्न कल्पित निवृत्ति कूं सत्य माने अद्वैत की हानि होवैगी। असत्य माने ज्ञान निष्फल होवैगा। सत् असत् उभयरूप माने विरोध होवैगा। तैसे उभयपक्ष उक्त दोष होवैगा।

आत्मभिन्न कल्पित निवृत्ति कूं अनिर्वचनीय माने तौ बी ताकूं अनादि तौ कहना संभवै नहि। सादि हि कहना होवैगा.। सादि अनिर्वचनीय पदार्थ का उपादान नियम तैं अज्ञान होवै है। यातैं मोक्ष मै बी अज्ञान विद्यमान होने तैं अनिर्मोक्ष प्रसंग होवैगा। किंच कल्पित की निवृत्ति कूं अनिर्वचनीय माने कल्पित की न्याईं ताकी बी ज्ञान तैं हि निवृत्ति कहि चाहिये। मोक्ष मै सामग्री के अभाव तैं ज्ञान का संभव नहि। यातैं बी कल्पित निवृत्ति कूं अनिर्वचनीय कहना नहि संभवै है। इस रीति सै आत्मभिन्न अज्ञान तत्कार्य की निवृत्ति सत्‌रूप वा असत्‌रूप अथवा सत् असत् उभयरूप किंवा अनिर्वचनीय नहि। किंतु उक्त प्रकार चतुष्टय तैं भिन्न पंचम प्रकार है। यद्यपि पंचम प्रकार अप्रसिद्ध है। तथापि पूर्व उक्त रीति सै प्रकार चतुष्टय मै तौ कल्पित निवृत्ति का अंतरभाव संभवै नहि। प्रकारांतररूप बी नहि माने कल्पितनिवृत्तिः के हि अभाव तैं मोक्षशास्त्र अप्रमाण होवैगा। यातैं अप्रसिद्ध बी पंचमप्रकार मान्या चाहिये। इस रीति सै आनंदबोधाचार्य आत्मभिन्न कल्पितनिवृत्ति पंचमप्रकाररूप माने हैं। औ अद्वैतविद्याचार्य तौ यह कहे हैं—यद्यपि कार्यसहित अज्ञान की निवृत्ति आत्मा सै भिन्न है। परंतु जैसे सविलास अज्ञान अनिर्वचनीय है। तैसे ताकी निवृत्ति बी अनिर्वचनीय हि है। पंचमप्रकाररू

नहि। जो अनिर्वचनीय पक्ष मै दोप कहा। सादिअनिर्वचनीय का उपादान नियम तैं अज्ञान होवै है। यातैं मोक्ष मै बी अज्ञान विद्यमान होने तैं अनिर्मोक्ष प्रसंग होवैगा। सो दोप संभवै नहि। काहे तैं कल्पित की निवृत्ति कूं अनिर्वचनीय मान के स्थायी मानै तौ मोक्ष मै अज्ञान की प्राप्ति होवै। परंतु प्रमाण के अभाव तैं कल्पित की निवृत्ति स्थायी नहि। किंतु क्षणिक है। तथा हि—जैसे घट की उत्पत्ति तैं पूर्व 'उत्पत्स्यते घटः' इस रीति सै घट की उत्पत्ति भावी प्रतीत होवै है। पश्चात् 'उत्पन्नो घटः' इस रीति सै अतीतप्रतीत होवै है। केवल आद्यक्षणमात्र मै हि 'उत्पद्यते घटः' या प्रकार तैं घट की उत्पत्ति वर्तमान प्रतीत होवै है। यातैं क्षणिकभावविकाररूप है। अभावरूप नहि। तैसे घट की निवृत्ति तैं पूर्व 'निवर्तिष्यते घटः' या रीति सै घट की निवृत्ति भावी प्रतीत होवै है। पश्चात् 'निवृत्तो घटः' इस रीति सै अतीत प्रतीत होवै है। अंत्यक्षणमात्र मै हि 'निवर्त्तते घटः' या प्रकार तैं वर्तमान प्रतीत होवै है। यातैं घट की निवृत्ति बी क्षणिकभाव विकाररूप हि मानी चाहिये। अभावरूप संभवै नहि। जो घट की निवृत्ति कूं स्थायी माने तौ घटनाश तैं मासपीछे बी 'इदानीं निवर्त्तते घटः' इस रीति सै निवृत्ति मै वर्त्तमान व्यवहार हुवा चाहिये। काहे तैं न्यायमत मै ध्वंसरूप निवृत्ति अनंत है। यातैं मासपीछे बी भग-

घट के अवयवन मै विद्यमान होने तैं तामै वर्त्तमान व्यवहार हुवा चाहिये। औ होवै नहि यातैं ध्वंसरूप निवृत्ति कूं स्थायी कहना संभवै नहि। किंच लक्षण के अभाव तैं बी ताकूं स्थायी कहना नहि संभवै है। तथा हि–'जन्यत्वेसति अभावत्वं ध्वंसत्वं' अर्थ यह–जन्य हुवा जो अभाव होवै सो ध्वंस कहिये है इस रीति सै ध्वंस का लक्षण कहैं तौ घट मै अतिव्याप्ति होवैगी, काहे तैं घट जन्य है, औ स्वध्वंस का प्रागभावरूप है। यातैं जन्य अभावरूप होने तैं घट बी घटध्वंस कहा चाहिये। तैसे सामयिकाभाव बी जन्य अभाव है, ताकूं बी ध्वंस कहा चाहिये। जो उक्त लक्षण मै अभाव पद तैं सप्तमपदार्थ-रूप अभाव का ग्रहण करैं तौ अत्यंताभावादिक सप्तम-पदार्थरूप अभाव हैं। जन्य नहि। यातैं तिन मै अति-व्याप्ति नहि। स्वध्वंस का प्रागभावरूप घट जन्य है, सप्तमपदार्थरूप अभाव नहि। यातैं तामै बी अतिव्याप्ति नहि। परंतु घट कूं स्वप्रागभाव का ध्वंसरूप माने हैं। तामै उक्त लक्षण के अभाव तैं स्वप्रागभाव की ध्वंस-रूपता नहि होवैगी। यातैं घटकाल मै घटप्रागभाव का उत्तरकाल व्यवहार नहि हुवा चाहिये। काहे तैं घट-प्रागभाव के ध्वंस का कालत्व हि घटकाल मै घटप्रागभाव का उत्तर कालत्व है। घट मै स्वप्रागभाव की ध्वंसरूपता होवै तौ घटकाल मै घटप्रागभाव के ध्वंस का कालत्व

रूप घटप्रागभाव का उत्तर कालत्व होवै। ध्वंस लक्षण के अभाव तैं घट मै स्वप्रागभाव की ध्वंसरूपता संभवै नहि। याहि तैं घटकाल मै घटप्रागभाव के ध्वंस का कालत्वरूप घटप्रागभाव का उत्तर कालत्व बी नहि संभवै है। यातैं 'घटकालः घटप्रागभावोत्तरकालः' इस रीति सै घटकाल मै घटप्रागभाव का उत्तरकाल व्यवहार नहि हुवा चाहिये। जो घटप्रागभाव के ध्वंस कूं घट सै भिन्न हि सप्तमपदार्थरूप माने तौ उक्त दोष तौ यद्यपि नहि होवै है। काहे तैं घटप्रागभाव के ध्वंस का काल हि घटप्रागभाव का उत्तर काल है। घट सै भिन्न बी सप्तम-पदार्थरूप घटप्रागभाव ध्वंस के होतैं घटकाल मै घट-प्रागभाव का उत्तरकाल व्यवहार संभवै है। परंतु ध्वंस, प्रागभाव दोनों मै कादाचित्क अभावरूपता समान है। यातैं घटप्रागभाव के ध्वंस कूं घट सै भिन्न माने घट-ध्वंस का प्रागभाव बी घट सै भिन्न हि मान्या चाहिये। तैसे घटप्रागभाव के ध्वंस का प्रागभाव बी घटप्रागभाव तैं जुदा हि कहा चाहिये। काहे तैं जैसे घटध्वंस का प्रागभाव ध्वंस के प्रतियोगिघट सै भिन्न कहा है। तैसे घटप्रागभाव के ध्वंस का प्रागभाव बी ध्वंस का हि प्रागभाव है। सो बी ध्वंस के प्रतियोगिघट प्रागभाव सै जुदा हि कह्या चाहिये। ताका ध्वंस बी प्रथमध्वंस तैं भिन्न हि कहा चाहिये। द्वितीयध्वंस का प्रागभाव बी

द्वितीय प्रागभाव सै जुदा हि कहा चाहिये। ताका ध्वंस बी द्वितीय ध्वंस तैं भिन्न हि कहा चाहिये। इस रीति से तृतीयादि ध्वंस के चतुर्थादि प्रागभाव भिन्न कहने तैं अनवस्था होवैगी। यातैं ध्वंस का उक्त लक्षण संभवै नहि। औ 'जन्यत्वे सति अभावत्वं ध्वंसत्वं' या लक्षण मै अभाव पद तैं सप्तमपदार्थरूप अभाव का ग्रहण किये बी सामयिकाभाव मै अतिव्याप्ति का वारण होवै नहि। यातैं बी उक्त लक्षण नहि संभवै है। जो 'ध्वंसाप्रतियोगित्वे सति त्रैकालिकभिन्नाभावत्वं ध्वंसत्वं' अर्थ यह–ध्वंस का अप्रतियोगी हुवा त्रैकालिक वस्तु सै भिन्न अभाव होवै सो ध्वंस कहिये है। यह ध्वंस का लक्षण कहैं तौ त्रैकालिक वस्तु सै भिन्न अभाव कहने तैं अत्यंताभावादिकन मै अतिव्याप्ति नहि। काहे तैं अत्यंताभावादिक त्रैकालिक वस्तु से भिन्न अभाव नहि। औ प्रागभाव सामयिकाभाव त्रैकालिक वस्तु सै भिन्न अभाव हैं। ध्वंस के अप्रतियोगी नहि। यातैं तिन मै बी अतिव्याप्ति नहि परंतु ध्वंसघटित ध्वंस का लक्षण कहने तैं आत्माश्रय दोष होवैगा। याहि तैं 'सादित्वे सति अनंताभावत्वं ध्वंसत्वं' अर्थ यह–सादि हुवा अनंत अभाव होवै सो ध्वंस कहिये है। यह लक्षण बी नहि संभवै है। काहे तैं अंत, नाश, ध्वंस यह पर्याय शब्द हैं। यातैं ध्वंस का अप्रतियोगी हि अनंतपद का अर्थ सिद्ध होने तैं या

लक्षण मै बी आत्माश्रय दोप समान है । जो 'प्रागभावा-त्यंताभाव भिन्नत्वे सति संसर्गाभावत्वं ध्वंसत्वं' अर्थ यह— प्रागभाव औ अत्यंताभाव सै भिन्न हुवा संसर्गाभाव होवै सो ध्वंस कहिये है । इस रीति से ध्वंस का लक्षण कहैं तौ आत्माश्रय दोप तौ यद्यपि नहि होवै है । परंतु 'ध्वंसा-त्यंताभावभिन्नत्वे सति संसर्गाभावत्वं प्रागभावत्वं' 'ध्वंस-प्रागभावभिन्नत्वे सति संसर्गाभावत्वमत्यंताभावत्वं' इस रीति सै प्रागभावादिकन के लक्षण मै ध्वंसभिन्न कहने तैं अन्योऽन्याश्रय होवैगा । तैसे सामयिकाभाव मै अति-व्याप्ति होवैगी । इस रीति सै किंसी प्रकार तैं बी ध्वंसरूप निवृत्ति का लक्षण संभवै नहि । यातैं बी ताकूं स्थायी कहना नहि संभवै है । प्रमाण के अभाव तैं बी ताकूं स्थायी कहना संभवै नहि । उलटा 'अतोऽन्यदार्तं' इत्यादि श्रुतिविरुद्ध हि अनंतध्वंस का अंगीकार होने तैं असंगत है । तैसे प्राग-भाव का लक्षण बी नहि संभवै है । तथा हि—'अनादित्वे सति सांताभावत्वं प्रागभावत्वं' अर्थ यह—अनादि हुवा सांत जो अभाव होवै सो प्रागभाव कहिये है । इस रीति सै प्रागभाव का लक्षण कहैं तौ घट स्वध्वंस का प्रागभाव रूप है । तामै अव्याप्ति होवैगी । काहे तैं स्वध्वंस का प्रागभावरूप घट प्रागभाव के लक्षण का लक्ष्य तौ है । परंतु तामै लक्षण संभवै नहि । काहे तैं घट सांत है । औ स्वध्वंस का प्रागभावरूप होने तैं अभावरूप बी है । परंतु

अनादि नहि। जो उक्त लक्षण मै अभावपद तैं सप्तम-पदार्थरूप अभाव की विवक्षा कहैं तौ स्वध्वंस का प्राग-भावरूप होने तैं अभावरूप हुवा बी घट सप्तमपदार्थरूप अभाव नहि। यातैं प्रागभाव के उक्त लक्षण का लक्ष्य नहि होने तैं तामै अव्याप्ति तौ होवै नहि परंतु प्रागभाव के लक्षण के अभाव तैं घट स्वध्वंस का प्रागभावरूप नहि होवैगा। यातैं घटकाल मै घटध्वंस का पूर्व काल व्यवहार नहि हुवा चाहिये। काहे तैं घटध्वंस के प्रागभाव का कालत्व हि घटकाल मै घटध्वंस का पूर्व कालत्व है। घटस्वध्वंस का प्रागभावरूप होवै तौ घटकाल मै घटध्वंस के प्रागभाव का कालत्वरूप घटध्वंस का पूर्व कालत्व होवै। प्रागभाव लक्षण के अभाव तैं घट स्वध्वंस का प्राग-भावरूप संभवै नहि। याहि तैं घटकाल मै घटध्वंस के प्रागभाव का कालत्वरूप घटध्वंस का पूर्व कालत्व बी नहि संभवै है। यातैं 'घटकालः घटध्वंसस्य पूर्व कालः' इस रीति सै घटकाल मै घटध्वंस का पूर्व काल व्यवहार नहि हुवा चाहिये। जो घटध्वंस का प्रागभाव घट सैं भिन्न हि सप्तमपदार्थरूप माने तौ उक्त दोष तौ होवै नहि। काहे तैं घटध्वंस के प्रागभाव का काल हि घटध्वंस का पूर्व काल है। घट सै भिन्न बी सप्तमपदार्थरूप घट-ध्वंस का प्रागभाव होतैं घट काल मै घटध्वंस का पूर्व काल व्यवहार संभवै है। परंतु घटध्वंस के प्रागभाव कूं

घट सै भिन्न माने पूर्व उक्त रीति सै ताका ध्वंस बी घट-ध्वंस तैं भिन्न हि मानना होवैगा। यातैं पूर्व की न्याईं हि अनवस्था होवैगी। यातैं प्रागभाव के उक्त लक्षण मै अभावपद तैं सप्तमपदार्थरूप अभाव की विवक्षा माने बी लक्षण निर्दोष होवै नहि। जो 'प्रतियोगिजनकाभावत्वं प्रागभावत्वं' अर्थ यह—प्रतियोगी का जनक अभाव प्रागभाव कहिये है। यह प्रागभाव का लक्षण कहैं तौ जनक नाम कारण का है कार्य तैं अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति कारण होवै है। कार्य तैं अव्यवहित ताके प्रागभाव काल मै वृत्ति होवै सो कार्य तैं अव्यवहित पूर्व काल वृत्ति कहिये है। यातैं प्रागभाव के लक्षण मै प्रागभाव की अपेक्षा होने तैं आत्माश्रय दोष होवैगा। 'ध्वंसात्यंताभावभिन्नत्वे सति संसर्गाभावत्वं प्रागभावत्वं' या लक्षण मैं अन्योऽन्याश्रयादि दोष पूर्व कहा है। इस रीति सै प्रागभाव का लक्षण बी किसी प्रकार तैं नहि संभवै है। यातैं यह सिद्ध हुवा—उत्पत्ति तैं पूर्व घटादिकन का प्रागभाव औ नाश तैं अनंतर प्रध्वंसाभाव संभवै नहि। किंतु मध्य मै हि अनिर्वचनीय उत्पत्ति स्थिति नाशरूप भाव विकारसहित घटादिकन का अध्यास होवै है। इस रीति सै घटादिकन का नाशरूप निवृत्ति क्षणिक है। तैसे अविद्या की निवृत्ति बी क्षणिक होने तैं मोक्ष मै ताकी स्थिति होवै नहि। याहि तैं अज्ञान की प्राप्ति बी नहि

होवै है। तैसे ज्ञान तैं ताकी निवृत्ति की आपत्ति बी होवै नहि। इस रीति सै अद्वैतविद्याचार्य अविद्यानिवृत्ति कूं आत्मा सै भिन्न क्षणिकभाव विकाररूप मान के दोष का परिहार करे हैं। परंतु या पक्ष मै यह शंका होवै है— अविद्या की निवृत्ति हि ज्ञान का फल होने तैं मोक्ष है। घटादिनाश की न्याई ताकूं क्षणिक माने मोक्ष पुरुपार्थ-रूप नहि होवैगा। या शंका का यह समाधान है—यद्यपि अविद्या की निवृत्ति ज्ञान का फल है। परंतु मुख्य पुरुपार्थरूप नहि होने तैं ज्ञान का मुख्यफल अविद्या निवृत्ति नहि। कांहे तैं सुख वा दुःखाभाव हि मुख्य पुरुपार्थ है। अविद्यानिवृत्ति सुखरूप वा दुःखाभावरूप नहि। यद्यपि निखिल दुःख का हेतु अविद्या है। ताके नाश तैं अशेष दुःख का अभाव होवै है। यातैं अविद्या-निवृत्ति दुःखाभाव का साधक तौ संभवै है। परंतु दुःखा-भावरूप नहि। याहि तैं मोक्ष नहि। किंतु निरतिशय आनंद औ संसारदुःख का अभाव हि मोक्ष है। ब्रह्मानंद का आवरक औ संसारदुःख का हेतु अविद्या है ताके नाश तैं अखंड आनंद का स्फुरण औ संसारदुःख का अत्यंत अभाव होवै है। यातैं मुख्य पुरुपार्थ का साधन होने तैं अविद्यानिवृत्ति ज्ञान का फल अंगीकार करिये है। ताका मुख्य फल अविद्यानिवृत्ति नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार ब्रह्मानंद की प्राप्ति औ दुःखाभाव दोनों कूं मुख्य

पुरुपार्थ मान के उक्त शंका का समाधान कहे हैं। औ चित्सुखाचार्य तौ यह कहे हैं—जैसे अविद्या की निवृत्ति असुख्य पुरुपार्थ है। तैसे दुःखाभाव बी मुख्य पुरुपार्थ नहि। काहे तैं दुःख होतैं स्वरूपसुख की अभिव्यक्ति होवै नहि। यातैं दुःख स्वरूपसुख की अभिव्यक्ति का प्रतिबंधक मान्या चाहिये। ताका अभाव प्रतिबंधकाभाव है। यातैं स्वरूपसुख की अभिव्यक्ति वास्ते हि ताकूं पुरुष चाहे है। सुख की न्याई स्वरूप सै नहि। यातैं सुख का शेप हि दुःखाभाव है। स्वरूप सै पुरुपार्थ नहि। सुख हि स्वरूप सै पुरुपार्थ है। किंच सुख कूं हि स्वरूप सै पुरुपार्थ मान के दुःखाभाव कूं ताका शेप मानै दुःखाभाव के साधन बी सुख के हि साधन सिद्ध होवै हैं। यातैं सुख साधनों मै औ दुःखाभाव के साधनों मै सर्वत्र सुखसाधनता ज्ञान तैं हि प्रवृत्ति संभवै है। दुःखाभाव बी स्वरूप सै पुरुपार्थ माने ताके साधन सुख के साधन तौ कहे जावैं नहि। याहि तैं सुखसाधनताज्ञान तैं तिन मै प्रवृत्ति बी नहि संभवै है। किंतु दुःखाभाव की साधनता ज्ञान तैं हि प्रवृत्ति कहनी होवैगी। यातैं प्रवृत्तिमात्र मै एक कारण का लाभ नहि होवैगा। जो इच्छा का विपय होने तैं सुख इष्ट है। तैसे दुःखाभाव बी इच्छा का विपय होने तैं इष्ट है। यातैं इष्टसाधनताज्ञान तैं सर्वत्र प्रवृत्ति कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं प्रवृत्तिमात्र मै इष्टसाधनता का

ज्ञान कारण है। कारणता का अवच्छेदक इष्ट साधनता ज्ञानत्व है । तहां सुख हि मुख्य इष्ट मानै कारणता अवच्छेदक के शरीरगत इष्ट पदार्थ मै सुखत्व जाति का प्रवेश मानना होवै है। औ उपाधिरूप धर्म तैं जातिरूप धर्म के ग्रहण मै लाघव माने हैं । यातैं कारणता अवच्छेदक मै लाघव मिले है। दुःखाभाव वी मुख्य इष्ट माने इष्ट पदार्थ मै इच्छा विषयत्वरूप उपाधि का प्रवेश मानना होवै है। यातैं कारणता अवच्छेदक मै गौरव होवैगा। यातैं दुःखाभाव कूं शेष मान के सुख हि मुख्य पुरुषार्थ मानना युक्त है। जो दुःखाभाव हि मुख्य पुरुषार्थ है। ताका शेष होने तैं सुख कूं पुरुष चाहे है स्वरूप सै नहि। इस रीति सै विपरीत शेष शेषीभाव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं इच्छा विषयत्व की न्याई दुःखाभावत्व वी उपाधिरूप धर्म है। दुखाभाव कूं हि मुख्य इष्ट माने इष्ट पदार्थ मै दुःखाभावत्व का प्रवेश होने तैं गौरव दोष समान है। यातैं विपरीत शंका संभवै नहि । जो सिद्धांत मै सुख आत्मरूप माने हैं। औ आत्मा एक माने हैं। यातैं सुखव्यक्ति एक होने तैं सुखत्व कूं जातिरूप तौ कहना संभवै नहि। उपाधिरूप हि कहना होवैगा। यातैं सुख कूं हि मुख्य इष्ट मानि कि इष्ट पदार्थ मै सुखत्व का प्रवेश माने वी गौरव दोष समान है। यातैं विपरीत शंका का संभव कहैं तथापि संभवै नहि । काहे तैं यद्यपि आत्मरूप सुखव्यक्ति वास्तव

तैं एक है। तथापि वृत्तिरूप उपाधि के भेद तैं ताका भेद सिद्धांत मैं माने हैं। यातैं सुखत्व कूं जातिरूपता संभवै है। पूर्व उक्त रीति सै इष्ट पदार्थ मैं ताका प्रवेश मानै लाघव है। इच्छा विषयत्व की न्याईं दुःखाभावत्व का प्रवेश माने बी गौरव होवैगा। यातैं विपरीत शंका संभवै नहि। किंच दुःखाभाव कूं मुख्य पुरुषार्थ मान के सुख कूं ताका शेष माने क्षणिक दुःखाभाव वास्ते बहुकाल दुःखानुभव का अंगीकार संभवै नहि। यातैं निंदित ग्राम्यधर्मादिकन मै प्रवृत्ति नहि हुयी चाहिये। तात्पर्य यह—लोक मै क्षणिक सुख वास्ते बहुकाल दुःख के अनुभव का अंगीकार करके बी अगम्य गमनादिकन मै प्रवृत्ति देखिये है तहां अगम्य गमनादिजन्य सुख क्षणिक है। ताकूं दुःखाभाव का शेष माने कालांतरवृत्ति दुःखाभाव का शेष तौ कहना संभवै नहि। स्वकालवृत्ति दुःखाभाव का हि शेष कहना होवैगा। औ क्षणिक सुखकालीन दुःखाभाव बी क्षणिक हि होवै है ताके वास्ते बहुकाल दुःखानुभव का अंगीकार संभवै नहि। यातैं बहुकाल दुःख करके साध्य औ क्षणिक सुख के जनक निंदित परस्त्रीगमनादिकन मै प्रवृत्ति नहि हुयी चाहिये। जो निंदित प्रवृत्तिस्थल मै सुख बी क्षणिक है। यातैं क्षणिक दुःखाभाव वास्ते बहुकाल दुःखानुभव के अंगीकार का असंभवरूप दोष कहा है। तैसे क्षणिक सुख

वास्ते बी बहुकाल दुःखानुभव के अंगीकार का असंभव· रूप दोष समान है। यातैं सुख कूं बी मुख्य पुरुषार्थता का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं भावरूप सुख मै उत्कर्ष अपकर्ष अनुभव सिद्ध हैं। श्रुति मै बी मानुष आनंद सै लेके हिरण्यगर्भ के आनंदपर्यंत सुख मै उत्कर्ष अपकर्ष कहे हैं। यातैं निंदित प्रवृत्तिस्थल मै क्षणिक बी उत्कृष्टसुख वास्ते बहुकाल दुःखानुभव का अंगीकार संभवै है। दुःखाभाव कूं मुख्य पुरुषार्थ माने अभाव मै उत्कर्ष अपकर्ष संभवैं नहि। यातैं पूर्वउक्त रीति सै क्षणिक दुःखाभाव वास्ते बहुकाल दुःखानुभव का अंगीकार नहि हुवा चाहिये। यातैं बी सुख कूं शेष मान के दुःखाभाव कूं मुख्य पुरुषार्थ कहना नहि संभवै है। इस रीति से चित्सुखाचार्य के मत मै अविद्यानिवृत्ति की न्याई संसारदुःख का अभाव बी सुख का हि शेष है। निरतिशय आनंद की प्राप्ति हि मुख्य पुरुषार्थ है। यातैं अविद्यानिवृत्ति कूं आत्मा से भिन्न क्षणिक भावविकार· रूप मानै मोक्ष मै अपुरुषार्थता की शंका संभवै नहि। परंतु यह शंका होवै है—अप्राप्त वस्तु की हि प्राप्ति संभवै है। आत्मरूप होने तैं निरतिशय आनंद जीव कूं नित्यप्राप्त है। ताकी प्राप्ति कहना संभवै नहि। यातैं प्राप्ति के साधनों मै प्रवृत्ति नहि हुयी चाहिये। या शंका का कोई ग्रंथकार यह समाधान कहे हैं—यद्यपि ब्रह्मानंद जीव कूं सदा

प्राप्त है। तथापि जैसे प्राप्त बी कंठगत भूषण मैं अज्ञान तैं अप्राप्ति का भ्रम होवै है तासैं विक्षिप्त हुवा पुरुष भूषण के अन्वेषण मैं प्रवृत्त होवै है। अन्वेषण तैं ज्ञान द्वारा समूल विक्षेप की निवृत्ति हि भूषण की प्राप्ति कहिये है। तैसे प्राप्त बी पूर्ण आनंद मैं अज्ञान तैं अप्राप्ति का भ्रम होवै है। औ तासैं विपरीत हि दुःखरूप संसार बी प्रतीत होवै है। यातैं आनंद प्राप्ति की इच्छा तैं साधनों मैं प्रवृत्ति संभवै है। साधनानुष्ठान तैं ज्ञानद्वारा समूल संसार दुःख का अभाव हि निरतिशय आनंद की प्राप्ति कहिये है। इस रीति सैं कंठस्थ भूषणप्राप्ति की न्याईं प्राप्त बी ब्रह्मानंद की अमुख्य प्राप्ति कित नैं ग्रंथकार कहे हैं। तिन सैं अन्यग्रंथकार तौ यह कहे हैं—'एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति' 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्' 'यो वै भूमा तत्सुखं' इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध बी निरतिशय आनंद है। परंतु ताका भान होवै नहि। उलटा 'तादृशानंदो मम नास्ति' इस रीति सैं ताका अभाव हि प्रतीत होवै है। श्रुतिसिद्ध निरतिशय आनंद का वास्तव अभाव तौ कहा जावै नहि। कल्पित हि कहना होवैगा। यातैं यह सिद्ध हुवा—जाके होतैं अग्रिमक्षण मैं जाकी सत्ता होवै। जाके नहि होतैं नहि होवै सो ताका साध्य कहिये है। यह बी साध्य का लक्षण पूर्व कहा है। तत्त्वज्ञान के होतैं अग्रिमक्षण मैं निरतिशय आनंद की सत्ता

होवै है। ताके नहि होतैं ताका पूर्व उक्त अभाव हि होवै है। यातैं प्राप्त बी निरतिशय आनंद की मुख्य हि प्राप्ति संभवै है। औ अन्य ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—यद्यपि स्वरूप सैं ब्रह्मानंद जीव कूं सदा प्राप्त है। परंतु ताका स्वरूपमात्र पुरुषार्थ नहि। किंतु अपरोक्ष ब्रह्मानंद पुरुषार्थ है। ज्ञान तैं पूर्व संसारदशा मै स्वरूप से विद्यमान बी निरतिशय आनंद अपरोक्षता के अभाव तैं पुरुषार्थ होवै नहि। ज्ञान तैं हि अज्ञाननिवृत्ति द्वारा ब्रह्मानंद अपरोक्ष होवै है। सोई पुरुषार्थ है। यातैं ज्ञान तैं ताकी प्राप्ति संभवै है। परंतु या पक्ष मैं यह शंका होवै है—स्वप्रकाश चेतनरूप ज्ञान तैं ब्रह्मानंद की अपरोक्षता विवक्षित है। अथवा वृत्तिरूप ज्ञान तैं ताकी अपरोक्षता विवक्षित है। जो प्रथम पक्ष कहैं तौ संभवैं नहि। काहे तैं स्वव्यवहारानुकूल चेतन तैं अभेद हि अर्थगत अपरोक्षता है। ब्रह्मानंद के व्यवहारानुकूल साक्षिचेतन स्वप्रकाश ज्ञानरूप है। तासै ताका सदा अभेद है। यातैं संसारदशा मै आवृत ब्रह्मानंद मै बी अपरोक्षता का संभव होने तैं ज्ञान तैं ताकी प्राप्ति कहना संभवै नहि। यातैं ज्ञान साधनों मै प्रवृत्ति का असंभव होवैगा। तैसे द्वितीय पक्ष बी नहि संभवै है। काहे तैं मोक्ष मै वृत्तिज्ञान के अभाव तैं अपरोक्षता का बी अभाव होवैगा। या शंका का यह समाधान है—स्वव्यवहारानुकूल चेतन तैं अभेदमात्र

विषयगत अपरोक्षता माने घटगोचरवृत्ति तैं घटचेतन की अभिव्यक्ति होवै तासैं अभिन्न घटगंध बी अपरोक्ष हुवा चाहिये। काहे तैं वक्ष्यमाण रीति सैं घटचेतन हि गंध का बी प्रकाशक होने तैं ताके व्यवहारानुकूल है। घटचेतन तैं गंधचेतन भिन्न नहि। याहि तैं गंध चेतन गंध के व्यवहारानुकूल नहि। यातैं घटगोचरवृत्ति तैं अभिव्यक्त घटचेतन है। तासैं अभिन्न घटगंध बी अवश्य अपरोक्ष हुवा चाहिये। जो घट पटादिक द्रव्य चेतन के अवच्छेदक हैं। तैसे एक द्रव्यवृत्ति गुण बी ताके अवच्छेदक हैं। यातैं घटचेतन तैं गंधचेतन भिन्न है। घटाकार चाक्षुपवृत्ति तैं घटचेतन की हि अभिव्यक्ति होवै है। तासैं अभिन्न होने तैं घट हि अपरोक्ष होवै है। गंधाकार घ्राणजवृत्ति के अभाव तैं गंधावच्छिन्न चेतन की अभिव्यक्ति होवै नहि। यातैं गंध की अपरोक्षता का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं एक द्रव्य मैं रूप, रस, गंधादिक गुणन के भेद तैं चेतन का भेद होवै तौ उक्त व्यवस्था संभवै। परंतु प्रमाण के अभाव तैं तिन के भेद तैं चेतन का भेद सिद्ध होवै नहि। तथा हि—जैसे घटादिक द्रव्य हि आकाश के अवच्छेदक हैं। तिन के गंधादिक गुण पृथक् ताके अवच्छेदक नहि। काहे तैं द्रव्यभेद तैं हि आकाश का भेद अनुभवसिद्ध है। गंधादिक गुणन के भेद तैं ताका भेद अनुभव सिद्ध नहि।

यातैं घटादि द्रव्यगत गंधादिकगुण पृथक् आकाश के अवच्छेदक संभवैं नहि। तैसे चेतन के अवच्छेदक बी घट पटादिकद्रव्य हि हैं। गंधादिक गुण ताके अवच्छेदक नहि। कांहे तैं घटादिद्रव्य मै प्रदेश भेद तैं गंधादिक रहैं तब तौ गुणन के भेद तैं चेतन के भेद की शंका बी होवै। परंतु गंधादिक गुण व्याप्यवृत्ति अनुभव सिद्ध हैं। यातैं पृथक् चेतन के अवच्छेदक संभवैं नहि। इस रीति सै घटादि एक द्रव्य मै गंधादिक गुणन के भेद तैं चेतन का भेद नहि। किंतु द्रव्यचेतन हि गुणचेतन है। गंधादिक गुणन का प्रकाश बी द्रव्यचेतन तैं हि होवै है। काहे तैं जैसे रजत शुक्ति अवच्छिन्न चेतन मै अध्यस्त है। ताका प्रकाश बी शुक्ति चेतन तैं हि होवै है। शुक्ति चेतन तैं भिन्न स्वावच्छिन्नचेतन तैं रजत का प्रकाश होवै नहि। तैसे रूप, रस, गंधादिक गुण द्रव्यचेतन मै कल्पित हैं। तिन का प्रकाश बी तासै हि होवै है। द्रव्यचेतन तैं भिन्न स्वावच्छिन्न चेतन तैं गुणन का प्रकाश होवै नहि। इस रीति से घटचेतन तैं गंधचेतन का भेद नहि। औ गंध का प्रकाश बी घटचेतन तैं हि होवै है। यातैं स्वव्यवहारानुकूल चेतन तैं अभेदमात्र विषयगत अपरोक्षता माने घटाकार चाक्षुपवृत्ति तैं घटचेतन की अभिव्यक्ति होवै तासैं अभिन्न घटगंध बी अपरोक्ष हुवा चाहिये। जो स्वाकारवृत्ति उपहित चेतन तैं हि घटादिकन का प्रकाश होवै

है। तैसे गंध का प्रकाश बी गंधाकारवृत्ति उपहित चेतन तैं हि कहा चाहिये। घटाकारवृत्ति उपहित चेतन तैं गंध का प्रकाश कहना संभवै नहि । औ घटगोचर चाक्षुष-वृत्तिकाल मै गंधगोचरवृत्ति हुयी नहि। यातैं अभिव्यक्त घटचेतन तैं अभिन्न बी गंध के अपरोक्ष का असंभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं अनावृत प्रकाश का संबंध हि विषय मै प्रकाश मानता है। वृत्तिउपहित अनावृत प्रकाश का संबंध प्रकाश मानता नहि। काहे तैं सुखादि-गोचरवृत्ति के अनंगीकार तैं वृत्ति अनुपहित हि साक्षि-रूप प्रकाश का सुखादिकन मैं संबंध हैं। वृत्ति उपहित का नहि । वृत्ति उपहित हि अनावृत प्रकाश के संबंध कूं विषयगत प्रकाशमानता माने सुखादिकन मै प्रकाशमा-नता व्यवहार नहि हुवा चाहिये। यातैं विषयाकारवृत्ति होवै अथवा नहि होवै। सर्वथा अनावृत प्रकाश संबंधि विषय मै प्रकाशमानता मानी चाहिये। तामै अप्रकाशमानता कथन असंगत है। औ घटगोचर वृत्तिकाल मैं अनावृत घटचेतन गंध का अधिष्ठान है। गंध सै ताका असंबंध कथन बी संभवै नहि । यातैं गंधगोचर वृत्ति नहि हुये बी अभिव्यक्त घट-चेतन तैं अभिन्न गंध की अपरोक्षता दुर्निवार है। इस रीति सै स्वव्यवहारानुकूल चेतन तैं अभेदमात्र विषयगत अपरोक्षता माने अभिव्यक्त घटचेतन तैं अभिन्न गंध बी अपरोक्ष हुवा चाहिये। यातैं अनावृत विषय का अनावृत

चेतन तैं अभेद विषयगत अपरोक्षता मानी चाहिये। घटा-
कार चाक्षुपवृत्ति होवै तब घटचेतन औ घट दोनों निरा-
वरण होवै हैं। यातैं अनावृत घटरूप विषय का अनावृत
चेतन सै अभेद होने तैं घट अपरोक्ष कहिये है। गंधाकार
वृत्ति के अभाव तैं गंध अनावृत नहि। यातैं अनावृत
घटचेतन सै ताका अभेद हुये बी अपरोक्ष होवै नहि। यातैं
यह सिद्ध हुवा—यद्यपि आवरण के अनंगीकार तैं साक्षि-
चेतन सदा अनावृत है तासै संसारदशा मै बी ब्रह्मानंद
का अभेद विद्यमान है। परंतु संसारदशा मै निरतिशय
ब्रह्मानंद अनावृत नहि। औ अनावृत चेतन से अभिन्न
अनावृत विषय हि अपरोक्ष कहिये है। यातैं संसारदशा
मै ब्रह्मानंद अपरोक्ष होवै नहि। तत्त्वसाक्षात्कार तैं हि
आवरण की निवृत्ति होवै तब अपरोक्ष होवै है। यातैं
पुरुषार्थरूप अपरोक्ष ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति संभवै है।
औ निरतिशय आनंद का अपरोक्ष स्वप्रकाश चेतनरूप
है। वृत्तिरूप नहि। यातैं मोक्ष मै अपरोक्षता का अभाव
बी नहि। इस रीति सै कित ने ग्रंथकार अनावृत विषय
का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद हि अर्थगत
अपरोक्षता मान के अपरोक्ष ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति
सिद्ध करे हैं। तिन सै अन्य ग्रंथकार तौ विषय का
अनावृत विशेषण नहि माने हैं। किंतु स्वव्यवहारानुकूल
चेतन से अभेद हि अर्थगत अपरोक्षता कहे हैं। जो या

पक्ष मै पूर्व दोष कहा—घटाकार चाक्षुप वृत्ति तैं घटचेतन की अभिव्यक्ति होवै तासै अभिन्न घटगंध बी अपरोक्ष हुवा चाहिये। सो दोष संभवै नहि। काहे तैं धर्माधर्मादिक साक्षिचेतन मै अध्यस्त हैं। अनावृत साक्षी सै तिन का अभेद बी है। परंतु अपरोक्ष होवैं नहि। तैसे अनावृत घटचेतन सै अभिन्न बी घटगंध की अनपरोक्षता संभवै है। विषय का अनावृत विशेषण मानना निष्फल है। जो धर्मादिक प्रत्यक्ष के योग्य नहि। यातैं साक्षिचेतन सै तिन का अभेद हुये बी अपरोक्ष होवैं नहि। गंधगुण प्रत्यक्ष के योग्य है। यातैं अभिव्यक्त चेतन सै ताका अभेद होने तैं अपरोक्षता का संभव कहैं तथापि संभवै नहि। काहे तैं योग्यता अयोग्यता फल बल तैं जानिये है। अनावृत साक्षी तैं अभेद हुये बी धर्मादिकन का अपरोक्ष होवै नहि। यातैं धर्मादिक अयोग्य हैं। तैसे गंधाकार घ्राणजवृत्ति तैं चेतन की अभिव्यक्त होवै तासै अभिन्न गंध का अपरोक्ष होवै है। यातैं गंध गुण ताके हि योग्य है। घटाकार चाक्षुपवृत्ति मै अभिव्यक्त घट-चेतन सै अभेद हुये बी गंध अपरोक्ष होवै नहि। यातैं ताके योग्य नहि होने तैं दोष नहि। इस रीति सै स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभिन्न विषय अपरोक्ष कहिये है। यह अर्थगत अपरोक्षता का लक्षण निर्दोष है। या मत मै अर्थापरोक्ष लक्षण मै हि पूर्वमत सै विलक्षणता है। अपरोक्ष

ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति पूर्वमत के समान है। यातैं यह शंका होवै–है स्वरूपानंद का स्वव्यवहारानुकूल साक्षिचेतन सै सदा अभेद है। यातैं ज्ञान विना बी अपरोक्षता विद्यमान होने तैं अंपरोक्ष ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति कहना संभवै नहि। समाधान यह है–अर्थगत अपरोक्षता लक्षण मैं अभेद पद तैं कल्पित अकल्पित साधारण भेदमात्र का अभाव विवक्षित है। यातैं जैसे जीवन का परस्पर वास्तव भेद नहि हुये बी कल्पित भेद होने तैं जीवांतर कूं जीवांतर का अपरोक्ष होवै नहि। तैसे ब्रह्मानंद का साक्षिचेतन सै वास्तव भेद नहिं हुये बीं अज्ञानकल्पित अनादि तिन का भेद विद्यमान है। यातैं ब्रह्मानंद का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै कल्पित अकल्पित साधारण भेदमात्र का अभावरूप अभेद नहि होने तैं संसारदशा मै निरतिशय आनंद अपरोक्ष होवै नहि। ज्ञान तैं अज्ञाननिवृत्ति द्वारा कल्पित भेद की बीं निवृत्ति होवै तब अपरोक्ष होवै है। इस रीति सै तत्त्वज्ञान तैं समूलभेद की निवृत्ति द्वारा स्वरूपानंद की अपरोक्षता होवै है। यातैं अपरोक्ष ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति कहना संभवै है। इस रीति सैं कितने अंधकार विषय का अनावृत विशेषण नहि मान के स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै अभेद हि अर्थगत अपरोक्षता मान के बी अपरोक्ष ब्रह्मानंद की ज्ञान तैं प्राप्ति सिद्ध करे हैं। परंतु या मत मै ब्रह्मज्ञान तैं पूर्व घटादिक

अनात्मपदार्थ बी अपरोक्ष नहि हुये चाहिये। काहे तैं स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै कल्पित अकल्पित साधारण भेदमात्र का अभावरूप अभेद हि अर्थगत अपरोक्षता है। घटादिक अनात्मपदार्थन का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सैं वास्तव भेद सिद्धांत मै नहि हुये बी व्यवहार- दशा मै कल्पितभेद का अभाव कहा जावै नहि। याहि तैं घटाकार चाक्षुषवृत्ति मैं अभिव्यक्त घटचेतन सै अभिन्न घटगंध मै धर्मादिकन की न्याई योग्यता के अभाव तैं अनपरोक्षता कथन बी नहि संभवै है। काहे तैं अपरोक्षता का साधक होतैं अपरोक्षता नहि होवै तौ धर्मादिकन की न्याई गंध कूं अयोग्य कहना संभवै। परंतु धर्मादिसहित गंध का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सै वास्तव भेद नहि हुये बी व्यवहारदशा मै कल्पितभेद का अभाव कहना संभवै नहि। यातैं धर्मादिसहित गंध मैं अपरोक्षतासाधक के अभाव तैं हिं अनपरोक्षता कथन संभवै है। धर्मादिकन की न्याई योग्यता के अभाव तैं गंध मै अनपरोक्षता कथन संभवै नहि याहि तैं योग्य विषय का स्वव्यवहारानुकूल चेतन सैं अभेद अर्थगत अपरोक्षता है यह कहना बी नहि संभवै है। यातैं पूर्वमत की रीति सै हि अर्थगत अपरोक्षता का लक्षण समीचीन है। इस रीति सै प्राप्त बी निरतिशय आनंद की ज्ञान तैं प्राप्ति का मतभेद तैं निरूपण किया। अब मुक्त कूं शुद्ध.

ब्रह्म की प्राप्ति होवै है अथवा ईश्वररूप ब्रह्म की प्राप्ति होवै है। यह विचार मतभेद तैं लिखे हैं। तहां एक जीववाद मैं तौ अज्ञान एक है। जीव ईश्वरादि संपूर्ण प्रपंच जीव के अज्ञानकल्पित है। तत्त्वज्ञान तैं अज्ञान तत्कार्य की अशेषनिवृत्ति होवै है। यातैं निर्विशेष चेतनमात्ररूप सै मुक्त की स्थिति होने तैं अनायास तैं हि शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति सिद्ध होवै है। नाना जीववाद मै बी दो पक्ष हैं। तिन मैं जीव की न्याईं ईश्वर बी प्रतिबिंबरूप है। या पक्ष मै मुक्त कूं बिंबरूप शुद्ध ब्रह्म की हि प्राप्ति होवै है। प्रतिबिंबरूप ईश्वर की प्राप्ति होवै नहि। काहे तैं अनेक उपाधि मै एक सूर्यादिकन का प्रतिबिंब होवै। तहां एक उपाधि के नाश तैं ताके प्रतिबिंब का बिंबरूप सूर्यादिकन तैं हि अभेद प्रसिद्ध है। प्रतिबिंबांतर तैं अभेद प्रसिद्ध नहि। तैसे एक हि ब्रह्म का अविद्या वा अंतःकरण मै प्रतिबिंब जीव है। माया मै प्रतिबिंब ईश्वर है। तहां बी अविद्यादिरूप एक उपाधि के नाश तैं तामै प्रतिबिंबरूप मुक्त जीव का बिंबरूप शुद्ध ब्रह्म तैं हि अभेद मान्या चाहिये। प्रतिबिंबांतररूप जीवांतर तैं वा ईश्वर तैं अभेद संभवै नहि। इस रीति सै जीव की न्याईं ईश्वर बी प्रतिबिंबरूप है। या पक्ष मैं बी मुक्त कूं शुद्ध ब्रह्म की हि प्राप्ति सिद्ध होवै है। औ अविद्या मै प्रतिबिंब जीव है। बिंब ईश्वर है। दोनों मै अनुगत चेतन शुद्ध है। या पक्ष

मै तौ मुक्त कूं सत्य संकल्पादि विशिष्ट ईश्वर की हि प्राप्ति माने हैं। काहे तैं जैसे दर्पणादिक अनेक उपाधि मैं मुखादिकन का प्रतिबिंब होवै तहाँ एक उपाधि के नाश तैं ताके प्रतिबिंब का बिंबत्व धर्मविशिष्ट मुख तैं हि अभेद होवै है। बिंबत्वधर्मरहित शुद्ध मुख तैं अभेद होवै नहि। काहे तैं एक दर्पण का नाश हुये बी दर्पणांतर का संनिधान होतैं मुख मै बिंबत्वधर्म की निवृत्ति होवै नहि। सकल दर्पणों के नाश तैं हि बिंबत्व की निवृत्ति होवै है। तैसे अविद्यारूप उपाधि नाना हैं तिन मैं प्रतिबिंबरूप जीव बी नाना हि हैं। एक जीव के ज्ञान तैं एक अविद्या का नाश हुये तामै प्रतिबिंबरूप मुक्त जीव का बिंबत्व विशिष्ट ईश्वर तैं हि अभेद संभवै है। बिंबत्वधर्मरहित शुद्ध चेतन तैं अभेद संभवै नहि काहे तैं अविद्या के संबंध तैं हि चेतन मै बिंबत्वरूप ईश्वरत्व है। एक जीव के ज्ञान तैं एक अविद्या का नाश हुये बी अन्य जीवन की अन्य अविद्या विद्यमान हैं तिन का संबंध होतैं चेतन मै बिंबत्व रूप ईश्वरत्व की निवृत्ति होवै नहि। सकल जीवन के ज्ञान तैं सकल अविद्या की निवृत्ति होवै तब बिंबत्व की निवृत्ति होवै है। यातैं सकल जीवन की मुक्ति पर्यंत तौ मुक्त कूं सत्यसंकल्पादि विशिष्ट बिंबरूप ईश्वर की हि प्राप्ति होवै है। तासै अनंतर शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति होवै है। जो सत्य संकल्पादिक अविद्याकृत हैं। औ मुक्त की

अविद्या निवृत्त होय गयी है। यातैं तामै सत्य संकल्पादिकन का असंभव कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं स्वअविद्याकृत सत्य संकल्पादिक मानै तौ अविद्या के अभाव तैं मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का अभाव कहना संभवै। परंतु ईश्वर मै बी बद्ध जीवन की अविद्याकृत हि सत्य संकल्पादिक हैं ताकूं प्राप्त मुक्त मै बी संभवै हैं। यातैं शंका संभवै नहि। जो 'यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति' अर्थ यह—यां लोक मै पुरुष यादृश गुणविशिष्ट ब्रह्म का ध्यान करे है देहपात सै अनंतर तादृश ब्रह्म कूं हि प्राप्त होवै है इत्यादि श्रुति मै सगुण ब्रह्म की उपासना तैं ताकी प्राप्ति कहि है। निर्गुण ब्रह्मज्ञान तैं बी सगुण ईश्वर की हि प्राप्ति माने सगुण निर्गुण विद्या के फल का भेद नहिं होवैगा। यातैं ब्रह्मलोक मै प्राप्त सगुण उपासकन कूं निर्गुण ब्रह्मज्ञान का अंगीकार निष्फल कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं तत्त्वसाक्षात्कार के अभाव तैं उपासकन की अविद्यानिवृत्त होवै नहि। याहि तैं अहंकारादिक बी निवृत्त नहि होवै हैं। आवरणनिवृत्ति के अभाव तैं तिन कूं पूर्ण आनंद का स्फुरण होवै नहि। तत्त्वसाक्षात्कार तैं मुक्त के समूल अहंकारादिक निवृत्त होवै हैं। निरावरण आनंद का ताकूं स्फुरण होवै है। तैसे परमेश्वर हिरण्यगर्भ मै प्रवेश करके दिव्य भोगन कूं भोगे है उपासकन कूं बी भोग तौ

ताके समान हि होवै है । याहि तैं भोग मै उपयोगी दिव्य शरीर इंद्रिय वनितादिक बी संकल्पमात्र तैं होवै हैं । परंतु सकल जगत् के सृष्टि प्रलयादिकन का सामर्थ्य उपासकन मै होवै नहि । सर्वरूप तैं ईश्वर कूं प्राप्त मुक्त मै संपूर्ण सामर्थ्य होवै है । इस रीति सै सगुण उपासना के फल तैं निर्गुण ब्रह्मविद्या के फल का महान् भेद है । यातैं ब्रह्मलोक मै प्राप्त उपासकन कूं निर्गुण विद्या का अंगीकार निष्फल नहि । औ जो कहे हैं— ईश्वर मै राम कृष्णादि अवतार शरीरन मै अज्ञतादिक शास्त्र मै सुने हैं सो बंधरूप हैं । मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति माने पुनः अज्ञतादिरूप बंध की प्राप्ति होवैगी । यह कहना बी नहि संभवै है । काहे तैं 'नतत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'अंतर्याम्यमृतः' 'एष सर्वेश्वरः' 'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदं' इत्यादि श्रुति मै जाके सम वा अधिक कोई नहि सो ईश्वर नित्य मुक्त सर्व का प्रेरक मुक्त प्राप्य कहा है । अवतार शरीरन मै जीव की न्याई ईश्वर मै अज्ञतादिक माने ताका विरोध होवैगा । यातैं यह मान्या चाहिये—अस्मदादिक जीवन के उपदेश वास्ते नट की न्याई अपनी इच्छा तैं हि अवतार शरीरन मै अज्ञतादिकन का व्यवहार है । जीव के समान अज्ञतादिक नहि । यातैं सर्व जीवन की मुक्तिपर्यंत मुक्त कूं विश्वरूप ईश्वर की प्राप्ति निर्दोष है । किंच सूत्रकार भाष्यकार ने

चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद मै मुक्त कूं सत्य संकल्पादि विशिष्ट ईश्वररूप की प्राप्ति जैमिनि के मत सै कहि है। औ डलोमि के मत मै सत्य संकल्पादिरहित चेतनमात्र की प्राप्ति कहि है। सिद्धांत मै सत्य संकल्पादिकन का भाव अभाव दोनों कहे हैं। ताका यह अभिप्राय है- विद्वान् का शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांड मै हि नष्ट होवै है। ताका आत्मा बी विदेहमोक्ष मै ब्रह्मांड सै बाहर गमन करे नहि। औ ब्रह्मांड सारा ईश्वर शरीर के अंतर्भूत है। यातैं ईश्वर के सत्य संकल्पादिकन का मुक्त मै अन्य जीव व्यवहार करे हैं। औ परमार्थ दृष्टि तैं ईश्वर शुद्ध हि है। यातैं परमार्थ दृष्टि तैं मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का अभाव है। इस रीति सैं सूत्रकार भाष्यकार ने मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का व्यवहार कहा है। यातैं बी मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति सिद्ध होवै है। इस रीति सै अनेक जीववाद मै हि अविद्या मै चेतन का प्रतिबिंब जीव है। बिंब:ईश्वर है। या पक्ष मै सर्व जीवन की मुक्ति पर्यंत मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति किंत ने ग्रंथकार कहे हैं। परंतु यह पक्ष समीचीन नहि। काहे तैं सर्व की मुक्ति पर्यंत मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति माने चरम मुक्त कूं तौ निर्विशेष ब्रह्म की हि प्राप्ति कहनी होवैगी। तासै पूर्व मुक्तन की स्वरूप सै चेतनमात्ररूप तैं स्थिति हुये बी ईश्वर की प्राप्ति तैं ऐश्वर्य की प्राप्तिरूप मुक्ति होवै है।

इस रीति से पूर्व मुक्तन कूं ऐश्वर्य की प्राप्ति, चरम मुक्त कूं ताकी अप्राप्ति कहने तैं परम मुक्ति मै एक प्रकार की विषमता प्राप्त होवै है। तैसे पूर्व मुक्तन कूं ऐश्वर्य की प्राप्ति समान हुये बी तिन का मोक्ष तौ क्रम तैं हि होवै है। यातैं किसी कूं बहुत काल ऐश्वर्य की प्राप्ति किसी कूं अल्पकाल ताकी प्राप्ति होने तैं बी परम मुक्ति मै तारतम्य की प्राप्ति होवै है। तिन कूं हि सर्व की मुक्ति पर्यंत ऐश्वर्य की प्राप्ति होय के पश्चात् ताका अभाव होने तैं बी तारतम्य प्राप्त होवै है। यातैं तृतीयाध्याय के अंतिम सूत्र मै सगुण विद्या के फलरूप अवांतर मोक्ष मै हि तारतम्य कहा है। निर्गुण विद्याफल परममुक्ति मै तारतम्य का अभाव सिद्ध किया है ताका विरोध होवैगा। जो परम मुक्ति मै वास्तव तैं तारतम्य नहि। या अर्थ मै सूत्र का तात्पर्य कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं अवांतर मुक्ति मै बी वास्तव तारतम्य सिद्धांत मै नहि मानै हैं। यातैं अवांतर मुक्ति मै हि तारतम्य है। परममुक्ति मैं नहि। या प्रकार की व्यवस्था के प्रतिपादक भाष्यादिक निर्विषय होवैंगे। यातैं मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति सिद्धांतसंमत नहिं। किंच सगुण ब्रह्म विद्या तैं सगुण की प्राप्ति औ निर्गुण विद्या तैं निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हिं युक्तियुक्त है। निर्गुण ब्रह्मज्ञान तैं सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति युक्तियुक्त नहि। तथा हि—ईश्वर मै सत्य संकलपादिक बद्ध जीवन की अविद्या-

कृत पूर्व कहे हैं। जो निर्गुण ब्रह्मज्ञान तैं बद्ध जीवन की अविद्याकल्पित सत्य संकल्पादि विशिष्ट ईश्वर की प्राप्ति माने तौ एक रज्जु मै दश पुरुषन कूं दश पदार्थ प्रतीत होवैं तहां एक कूं रज्जुज्ञान तैं पुरुषांतर की अविद्या कल्पित पदार्थांतर विशिष्ट रज्जु की हि प्राप्ति हुयी चाहिये केवल रज्जु की प्राप्ति नहि हुयी चाहिये। यातैं बी मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति कथन अयुक्त है। जो सूत्रकार भाष्य-कार ने मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का भाव अभाव दोनों कहे हैं। यातैं मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति कहि सो बी संभवै नहि। काहे तैं मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति माने भक्तन के अनुग्रह वास्ते ईश्वर मायामय शरीर का स्वीकार करै तब मुक्त बी शरीरी हि कहना होवैगा। यातैं 'अशरीरं वावसंतं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' या श्रुति मै मुक्त कूं अशरीर कहा है ताका विरोध होवैगा। परब्रह्म की प्राप्ति तैं हि श्रुति उक्त अशरीरता की सिद्धि भाष्यकार ने कहि है। ताकी प्राप्ति सै अनंतर बी सशरीरता माने ताका बी विरोध होवैगा। यातैं सूत्रकार भाष्यकार का यह तात्पर्य मान्या चाहिये—मुक्त कूं सत्य संकल्पादिरूप की प्राप्ति मान लेवैं तौ बी जैमिनिमत की न्याई सिद्धांत मै अद्वैतश्रुति का विरोध होवै नहि। काहे तैं जैमिनि के मत मै सत्य संकल्पादिक सत्य हैं। सिद्धांत मै बद्ध जीवन की अविद्या कल्पित होने तैं मिथ्या हैं। किंच शुद्ध ब्रह्म हि ईश्वररूप तैं बी स्थित है। यातैं ईश्वर के सत्य

संकल्पादिक शुद्ध ब्रह्म के हि हैं ताकूं प्राप्त मुक्त के बी सत्य संकल्पादिक संभवै हैं। या अभिप्राय तैं बी मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का अंगीकार संभवै है। इस रीति सै चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद मै मुक्त मै सत्य संकल्पादिकन का अंगीकार सूत्रकार भाष्यकार का मुक्त कूं ईश्वरभावापत्ति अभिप्राय तैं नहि। किंतु प्रौढिवाद तैं है। यातैं तासै बी मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति सिद्ध होवै नहि। औ जो अन्यत्र बी सूत्रभाष्यादिकन मै कहुं ब्रह्मगत सत्य संकल्पादिकन का मुक्त जीव मै अंगीकार किया है सो बी प्रौढिवाद तैं हि किया है। मुक्त कूं ईश्वरभावापत्ति अभिप्राय तैं नहि। संक्षेप शारीरक मै सर्वज्ञात्माचार्य ने बी मुक्त कूं ईश्वर की प्राप्ति प्रतिपादक सूत्र भाष्यादिक प्रौढिवाद हि कहे हैं। यातैं मुक्त कूं शुद्धब्रह्म की प्राप्ति मानै सूत्रभाष्यादिकन का विरोध होवै नहि। यातैं यह सिद्ध हुवा—प्रारब्ध का भोग तैं नाश हुये देहपात सै अनंतर निरतिशय आनंद निर्विशेष ब्रह्मरूप तैं मुक्त स्थित होवै है।

श्लोक—सिद्धांतदिग्दर्शनवारिवेगाः,
गताश्चिदानंदमये पयोधौ।
यस्मिन् गते सर्वमिदं गतं स्यात्
मृदीव कार्यं प्रणमाम्यहं तम् ॥२॥

श्लोक का अर्थ यह है—जैसे गंगा यमुनादिक नदी समुद्र मै प्राप्त होवै हैं। तैसे या ग्रंथ मै निरूपण किये जित ने सिद्धांत लव हैं सो सारे तात्पर्य

के प्रतिपादक श्रुतिवाक्यन का विरोध कहूँ तौ संभवै नहि। काहे तैं मोक्ष का साधन अद्वितीय ब्रह्मज्ञान है। कारण ब्रह्म हि कार्यप्रपंच का वास्तव स्वरूप है तासैं भिन्न ताका वास्तव स्वरूप नहि। या ज्ञान तैं हि अद्वितीय ब्रह्मज्ञान की सिद्धि संभवै है। प्रतिज्ञावाक्यन तैं असाधारणरूप तैं प्रपंच के ज्ञान का अंगीकार निष्फल है। औ कारणब्रह्म के ज्ञान तैं सर्वप्रपंच का असाधारणरूप तैं ज्ञान संभवै बी नहि। तामैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य मानै वाक्य अप्रमाण होवैंगे। किंच, असाधारणरूप तैं प्रपंच का ज्ञान भेदज्ञान हि है। 'मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं ताकी निंदा करी है। यातैं बी असाधारणरूप तैं प्रपंचगत पदार्थन के ज्ञान मैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य कहना संभवै नहि। किंतु 'आत्मनि विदिते सर्वं विदितं भवति' इत्यादि प्रतिज्ञावाक्यन मैं सर्वपद सर्वप्रपंच के वास्तव स्वरूप पर है। सत्‌रूप कारण ब्रह्म हि संपूर्ण कार्यप्रपंच का वास्तव स्वरूप है। यातैं ब्रह्मात्मज्ञान तैं वास्तवरूप तैं हि सर्व के ज्ञान मैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य होने तैं अविरोध नहि।

अद्वैतेऽभिमुखीकर्तुमेवात्रैकस्य बोधतः।
सर्वबोधः श्रुतो नैव नानात्वस्य विवक्षया॥

या वचन तैं पंचदशी मैं बी वास्तवरूप तैं सर्वज्ञान मैं हि प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य कहा है। मुमुक्षु कूं अद्वितीय ब्रह्म के बोध वास्ते हि वेदांतवाक्यन मैं एक ब्रह्म के बोध तैं सर्व का बोध कहा है। औ सर्व का वास्तवस्वरूप ब्रह्म हि है। ब्रह्म से भिन्न ताका

तैं चिदानंदरूप ब्रह्म मैं हि प्राप्त होवै हैं। औ जैसे मृत्तिका के ज्ञात हुये घट शरावादिरूप ताका कार्य ज्ञात होय जावे है। तैसे जिस चेतन आनंदरूप परमात्मा के ज्ञात हुये यह संपूर्ण प्रपंच ज्ञात होय जावे है ताकूं नमस्कार है तात्पर्य यह—घटादि कार्य का वास्तव स्वरूप मृत्तिका हि है। मृत्तिका सै भिन्न ताका वास्तव स्वरूप नहि। यातैं मृत्तिका के ज्ञान तैं वास्तवरूप तैं घटादि कार्य अज्ञात रहैं नहि। तैसे संपूर्ण कार्य प्रपंच का वास्तव स्वरूप ब्रह्म हि है। ब्रह्म सै भिन्न कार्य प्रपंच का वास्तव स्वरूप नहि। कांहे तैं 'आत्मैवेदं सर्वं' 'ब्रह्मैवेदं सर्वं' इत्यादि श्रुतिवाक्यन मै ब्रह्म कूं सर्वरूप कहा है। औ 'आत्मनि विदिते सर्वं विदितं भवति' इत्यादि वाक्यन मैं ब्रह्मात्मज्ञान तैं सर्वज्ञान की प्रतिज्ञा करी है। कार्यप्रपच का वास्तव स्वरूप ब्रह्म सै भिन्न माने ताका विरोध होवैगा। तैसे 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक श्रुतिवचन ब्रह्म मै प्रपंच का निषेध करे हैं। कार्यप्रपंच कूं सत्य माने ताका विरोध होवैगा। यातैं बी कार्यप्रपंच का ब्रह्म सै वास्तव भेद कहना संभवै नहि। किंतु सतरूप ब्रह्म हि ताका वास्तव स्वरूप है। ताके ज्ञान तैं वास्तवरूप तैं प्रपंच अज्ञात रहै नहि। जो ब्रह्मज्ञान तैं प्रपंच का वास्तवरूप तैं ज्ञान हुये बी प्रपंच के अंतर्गत पदार्थन का असाधारण-रूप तैं ज्ञान संभवै नहि। यातैं एक के ज्ञान तै सर्व ज्ञान

के प्रतिपादक श्रुतिवाक्यन का विरोध कहैं तौ संभवै नहि। काहे तैं मोक्ष का साधन अद्वितीय ब्रह्मज्ञान है। कारण ब्रह्म हि कार्यप्रपंच का वास्तव स्वरूप है तासैं भिन्न ताका वास्तव स्वरूप नहि। या ज्ञान तैं हि अद्वितीय ब्रह्मज्ञान की सिद्धि संभवै है। प्रतिज्ञावाक्यन तैं असाधारणरूप तैं प्रपंच के ज्ञान का अंगीकार निष्फल है। औ कारणब्रह्म के ज्ञान तैं सर्वप्रपंच का असाधारणरूप तैं ज्ञान संभवै बी नहि। तामैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य मानें वाक्य अप्रमाण होवैंगे। किंच, असाधारणरूप तैं प्रपंच का ज्ञान भेदज्ञान हि है। 'मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि श्रुतिवाक्यन तैं ताकी निंदा करी है। यातै बी असाधारणरूप तैं प्रपंचगत पदार्थन के ज्ञान मैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य कहना संभवै नहि। किंतु 'आत्मनि विदिते सर्वं विदितं भवति' इत्यादि प्रतिज्ञावाक्यन मैं सर्वपद सर्वप्रपंच के वास्तव स्वरूप पर है। सत्‌रूप कारण ब्रह्म हि संपूर्ण कार्यप्रपंच का वास्तव स्वरूप है। यातैं ब्रह्मात्मज्ञान तैं वास्तवरूप तैं हि सर्व के ज्ञान मैं प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य होने तैं विरोध नहि।

अद्वैतेऽभिमुखीकर्तुमेवात्रैकस्य बोधतः।
सर्वबोधः श्रुतो नैव नानात्वस्य विवक्षया॥

या वचन तैं पंचदशी मैं बी वास्तवरूप तैं सर्वज्ञान मैं हि प्रतिज्ञावाक्यन का तात्पर्य कहा है। मुमुक्षु कूं अद्वितीय ब्रह्म के बोध वास्ते हि वेदांतवाक्यन मैं एक ब्रह्म के बोध तैं सर्व का बोध कहा है। औ सर्व का वास्तवस्वरूप ब्रह्म हि है। ब्रह्म सैं भिन्न ताका

वास्तव स्वरूप नहि। या ज्ञान तैं हि अद्वितीय ब्रह्म का बोध संभवै है। यातैं निष्फल होने तैं तैसे बाधित औ निंदित होने तैं बी श्रुतिवाक्यन मै नानात्व बोध विवक्षित नहिं। यह वचन का अर्थ है। यातैं मृद् घटादि दृष्टांत तैं परमात्मज्ञान तैं संपूर्ण प्रपंच के ज्ञान की सिद्धि संभवै है। औ जैसे समुद्र कूं प्रणत हुये जलप्रवाह समुद्ररूप होय जावै हैं। तैसे जिस परमात्मा के प्रणाम तैं जीव परमात्मा हि होय जावे है। सो परमात्मा मै हूं।

श्लोक—कृतविद्यांजनं कस्य नायाति बुद्धिनेत्रयोः।
येषां संगतिमात्रेण शतशस्तान्नुमः सतः ॥१॥

अन्यश्लोक—नभोवसुग्रहाब्जे हि वत्सरे वैक्रमे तथा।
वैशाखे कृष्णपक्षे च सौमे सूर्येंदुसङ्गमे ॥१॥
गंगातीरे हृषीकेशे स्थाने तु महतां सतां।
निष्प्रत्यूहं समाप्तं च सिद्धांतदिक्प्रदर्शनम् ॥२॥

अर्थ यह—अब्ज नाम चन्द्रमा का है अमावस्या का नाम सूर्येंदुसंगम है औ अंकन की वामगति होवै है यातैं संमत् १९८० उन्नीसैअस्सी वैसाख वदि अमावस्या सोमवार मैं औ हृषीकेश मै गंगातीर पर संत महात्मा का स्थान झाड़ी प्रसिद्ध है तामै यह ग्रंथ निर्विघ्न समाप्त हुवा।

इति सिद्धांतदिग्दर्शने चतुर्थः परिच्छेदः ॥
समाप्तोऽयं सिद्धांतदिग्दर्शनाख्यो ग्रंथः ॥

—ॐ नमः श्रीविघ्नेश्वराय ॐ—